1994-95

साहित्य वार्षिकी

20 रुपए

इंडिया टुडे

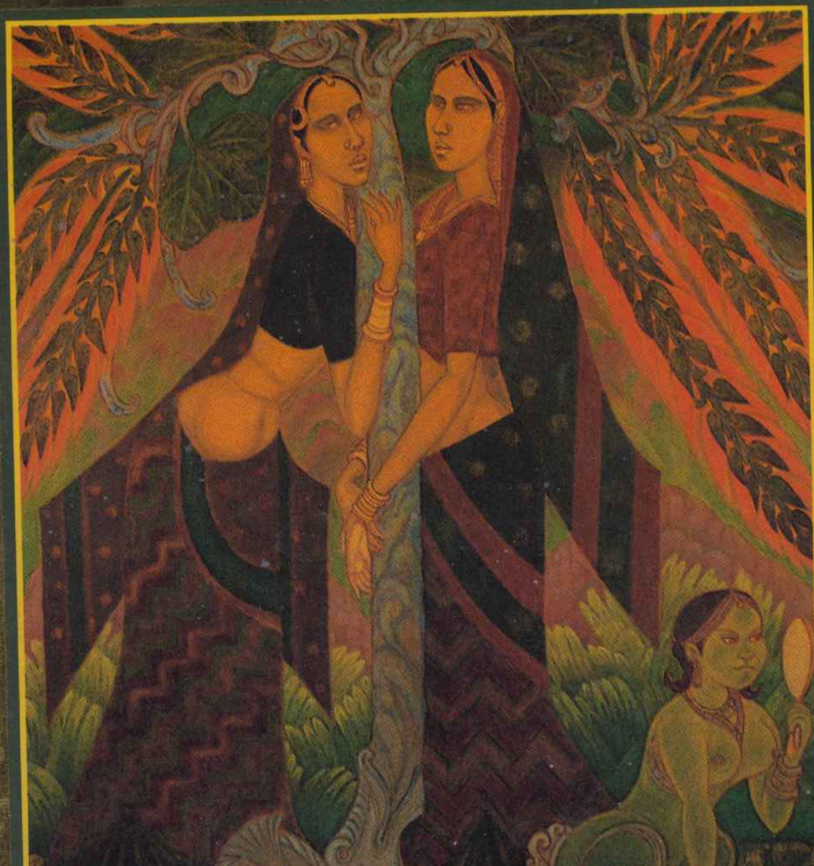

संवेदना के सत्य

मौजूदा दौर के सशक्त हस्ताक्षरों की कहानियों, कविताओं, उपन्यास-अंशों के साथ महत्वपूर्ण साहित्यिक प्रश्नों पर परिचर्चा, और पत्रों की धरोहर. साथ में हिंदी सिनेमा पर विशेष सामग्री.

THE INTERNATIONAL FAVOURITE

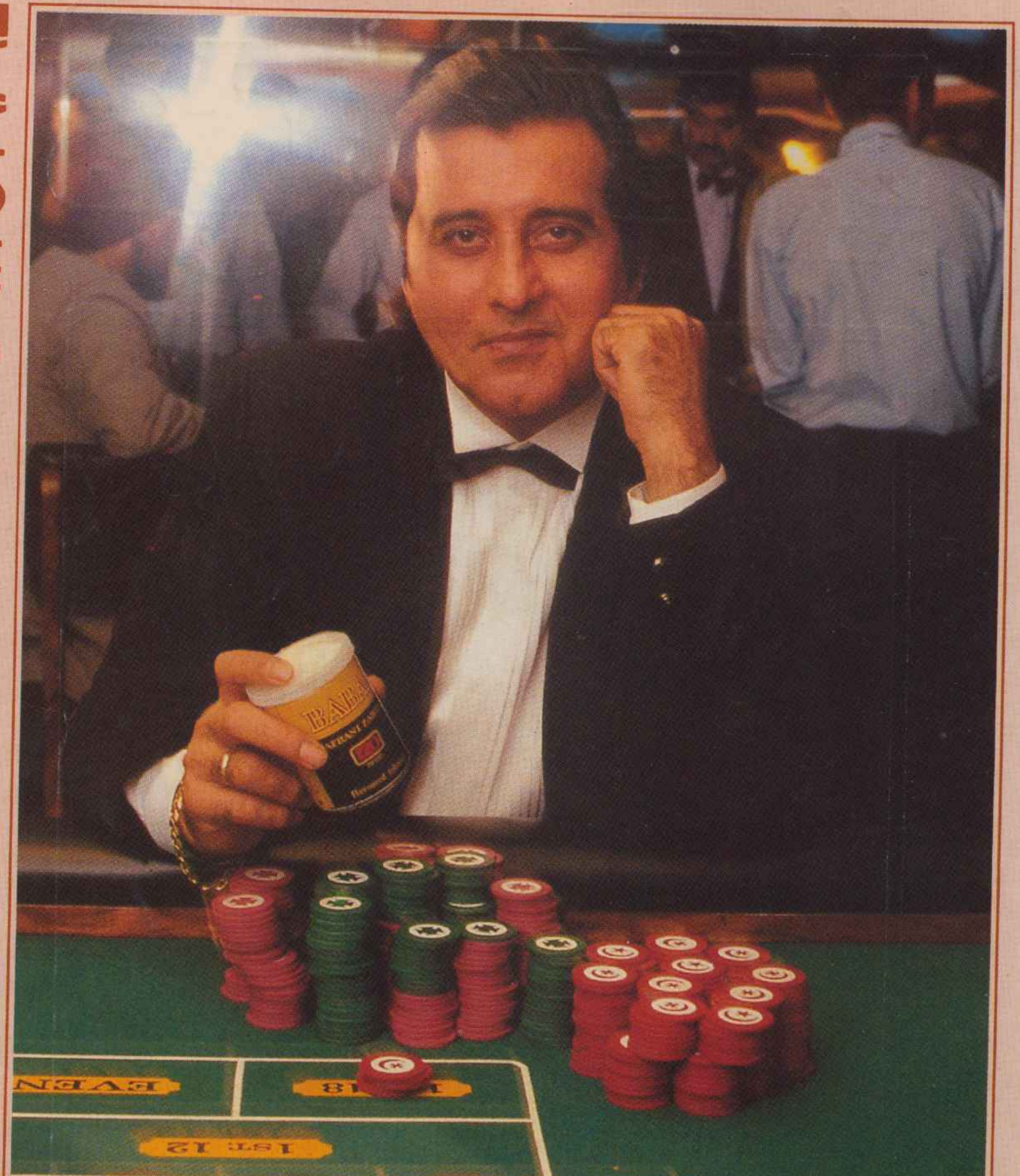

STATUTORY WARNING : CHEWING TOBACCO IS INJURIOUS TO HEALTH

BABA®

PREMIUM CHEWING TOBACCO

CRAYONS

अपनी बात

साहित्य वार्षिकी का यह तीसरा अंक प्रस्तुत करते हुए हमें थोड़ा संतोष भी है और थोड़ा विश्वास भी. यह संतोष और विश्वास इस बात से बना है कि न केवल साहित्य रसिक पाठकों ने बल्कि हर रंग के साहित्यकारों ने इसके प्रकाशन के बारे में अपनी उत्सुकता दिखाई है. उन सबकी यह उत्सुकता हमारा संबल है. और इसी उत्सुकता ने हमें इस बार अंक की पृष्ठ संख्या बढ़ाने का उत्साह दिया है.

इस बार हमने साहित्यकारों के बीच सीधा संवाद तो नहीं कराया मगर परिचर्चा आयोजित की. 'हिंदी साहित्यकारः स्वायत्तता का सवाल' विषय पुराना लग सकता है मगर आज संचार माध्यमों के वर्चस्व, बढ़ते उपभोक्तावाद और साहित्यिक पत्रिकाओं की सिकुड़ती संख्या के संदर्भ में साहित्यकार की स्वायत्तता अथवा स्वाधीनता का सवाल पुनः प्रासंगिक हो गया लगता है. वरिष्ठ और युवा साहित्यकारों की टिप्पणियां इस ओर इशारा भी करती हैं. साहित्य के दिग्गजों के पत्रों से बेहतर 'धरोहर' और क्या हो सकती थी. श्रीमती बिंदु अग्रवाल और श्री नंदकिशोर नवल ने अपने पास के सभी पत्रों को जिस सहजता से हमें चयन के लिए सौंप दिया उसके लिए हम उनके आभारी हैं.

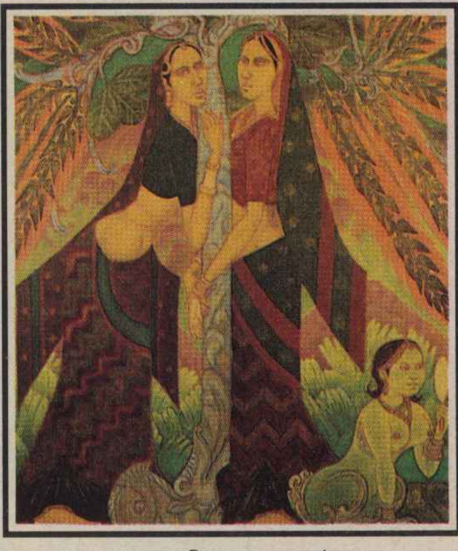

आवरण चित्रः ए. रामचंद्रन

इस बार रचनाकारों में कुछ पुराने नाम हैं तो कुछ नए नाम भी जुड़े हैं. हमें इस बात का गर्व है कि वरिष्ठ कथाकार और व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल पहली बार कहीं उपन्यास अंश प्रकाशित करवा रहे हैं और इसका श्रेय हमें दिया है. इसी तरह वरिष्ठ कवि एवं आलोचक अशोक वाजपेयी ने आलोचना से इतर गद्य विधा में अपनी पहली रचना 'स्मृति-रेख' हमें प्रकाशित करने का अवसर दिया है. वरिष्ठ साहित्यकारों का यह स्नेह हमें आश्वस्त करता है.

इस बार ऐसी गद्य रचनाओं की अधिकता है जिसमें स्त्री-पुरुष संबंधों को, किशोर वय की प्रेम संवेदनाओं को अलग-अलग रूपों में चित्रित किया गया है. राजनैतिक-सामाजिक सचाइयों को उजागर करती गद्य रचनाएं अपने आप में विशिष्ट हैं. अंक की कविताओं में भी ये तमाम रंग महसूस किए जा सकते हैं.

सिनेमा खंड में इस बार हमने अभिनय जगत में, अपनी विशेष शैली के लिए अपनी विशेष जगह बनाने वाले अभिनेताओं से अंतरंग बातचीत के क्रम को बरकरार रखते हुए शम्मी कपूर से बातचीत प्रकाशित की है. अपने ज़माने के 'रिबेल स्टार' कहे जाने वाले शम्मी कपूर ने जो शैली चलाई उसकी भौंडी नकल आज भी जारी है. इसलिए शम्मी कपूर की प्रासंगिकता आज भी बनी लगती है. फिल्म में संवादों की भूमिका कितनी अहम है यह बताने की जरूरत नहीं. एक वक्त था जब संवादों के कारण फिल्में हिट हो जाती थीं, और आज भी याद की जाती हैं. मगर आज उसमें पतन क्यों आया है इस पर चार प्रमुख पटकथा और संवाद लेखकों ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं.

अंक की साजसज्जा में वरिष्ठ और युवा चित्रकारों ने जिस सहजता और उत्साह से हमारा सहयोग किया और बेहद कम समय में हमारे आग्रहों को सम्मान दिया, उसके लिए हम उनके हृदय से आभारी हैं. वरिष्ठ चित्रकार ए. रामचंद्रन ने अपनी प्रदर्शनी और पुस्तक लिखने की तैयारियों के दौरान भी आवरण चित्र के चयन में अपना अमूल्य समय दिया. मंजीत बावा ने सज्जा के लिए सुझाव के साथ-साथ शिप्रा और मशहूर फिल्मकार ऋत्विक घटक की पुत्री शुचिस्मिता घटक के चित्रों की पारदर्शियां अंदर के आवरणों के लिए हमें जुटाईं.

एक बार फिर तमाम पाठकों, रचनाकारों और चित्रकारों और अंक के प्रकाशन में सहयोग करने वालों के प्रति हम हृदय से अपना आभार व्यक्त करते हैं.

वरिष्ठ कॉपी एडीटर **अशोक कुमार** और उप संपादक **संजय चौहान** के संपादन सहयोग से तैयार यह साहित्य वार्षिकी आप सबको समर्पित!

अरुण पुरी

अंक की साज-सज्जा: **अनिल शर्मा, सुबाचन यादव, सुधीर जे. कुमार, नूपुर मेहता, काजल राय**

साहित्य वार्षिकी ● 1994-95

● **संपादकीय कार्यालय**: लिविंग मीडिया इंडिया लि., एफ-14/15, कनाट प्लेस, नई दिल्ली-110001. फोन: 3315801-4, टेलेक्स: 31-61245 INTO IN, फैक्स: 3316180, तार: लिवमीडिया, नई दिल्ली. **ग्राहकी चंदा भेजें** इंडिया टुडे (हिंदी), पो. बॉक्स 114, नई दिल्ली-110001 ● **सर्कुलेशन कार्यालय**: इंडिया टुडे, एफ-14, कनाट प्लेस, मिडल सर्कल, नई दिल्ली-110001. फोन: 3313076-8. टेलेक्स: 31-62634 INTO IN. तार: सर्कुलेट, नई दिल्ली. ● **मुख्य विज्ञापन कार्यालय**: 28 ए और बी, जॉली मेकर चैंबर-2, नरीमन पाइंट, बंबई-400 021. फोन: 2026152, 2029326, 2026091, 2029435. टेलेक्स: 011-85373 THOM IN. फैक्स: 2026164 तार: लिवमीडिया, बंबई. ● **क्षेत्रीय विज्ञापन कार्यालय**: **हैमिल्टन हाउस** ए-1, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली-110001; फोन: 3313076/7/8, टेलेक्स: 031-62634 INTO IN. फैक्स: 3712998 ● डॉ. राधाकृष्णन सलाई, द्वितीय मंजिल, 98-ए, मायलापोर, मद्रास-600 004. फोन: 831605, 831719. टेलेक्स: 014-6177 INTO IN. फैक्स: 832178. तार: लिवमीडिया, मद्रास ● 201-204, रिचमंड टावर्स, द्वितीय मंजिल, 12, रिचमंड रोड, बंगलूर-560 025 फोन: 2212448, 2213037, टेलेक्स: 0845-2217 INTO IN. फैक्स: 2210809. ● **रजिस्टर्ड कार्यालय**: के-9, कनाट प्लेस, नई दिल्ली-110001 ● कॉपीराइट 1992 लिविंग मीडिया इंडिया लि. विश्व भर में सर्वाधिकार सुरक्षित. किसी भी रूप में सामग्री की नकल प्रतिबंधित. इंडिया टुडे अनिमंत्रित प्रकाशन सामग्री को लौटाने की जिम्मेदारी स्वीकार नहीं करता. ● लिविंग मीडिया इंडिया लि., एफ-14 कंपिटेंट हाउस, कनाट प्लेस, नई दिल्ली के लिए अरुण पुरी द्वारा संपादित और प्रकाशित तथा थॉमसन प्रेस इंडिया लि. फरीदाबाद, हरियाणा में मुद्रित.

LIBERTY

एक टिपटॉप सहेली की टिपटॉप पहेली

मिसिज़ जुनेजा के
खूबसूरत सैण्डिल

दिलकश डिज़ाइन, मज़बूत, टिकाऊ और भरोसेमन्द ! असली चमड़े से बने, पी.यू. सोल वाले शानदार व लेटेस्ट सैण्डिल. आरामदायक और बढ़िया फिटिंग.

TIPTOPP™
FROM LIBERTY

अनोखी शान
भरपूर आराम

Montage LT 32 94

अगले पन्नों पर

परिचर्चा 7

• भीष्म साहनी • राजेंद्र यादव • अशोक वाजपेयी • मृणाल पांडे • गिरधर राठी • रमेशचंद्र शाह • पंकज बिष्ट • मंगलेश डबराल • बटरोही

धरोहर 23

• भारतभूषण अग्रवाल • सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय • शरद जोशी • केदारनाथ अग्रवाल • अमृतलाल नागर

उपन्यास अंश और स्मृति रेख 31

• श्रीलाल शुक्ल • मंजूर एहतेशाम • अशोक वाजपेयी

कहानियां 51

• अमरकांत • भीष्म साहनी • निर्मल वर्मा • रामकुमार • शिवानी • रमेशचंद्र शाह • गोविंद मिश्र • विजयमोहन सिंह • मैत्रेयी पुष्पा • स्वयं प्रकाश • ममता कालिया • प्रियंवद • संजीव

हास्य व्यंग्य 169

• रवींद्रनाथ त्रिपाठी • मनोहर श्याम जोशी • ज्ञान चतुर्वेदी

कविताएं 183

• रघुवीर सहाय • नागार्जुन • जगदीश गुप्त • केदारनाथ सिंह • रामदरश मिश्र • यश मालवीय • अजित कुमार • पद्मा सचदेव • विष्णु खरे • गिरधर राठी • प्रयाग शुक्ल • गुलज़ार • शलभ श्रीराम सिंह • जितेंद्र कुमार • मंगलेश डबराल • विनोद भारद्वाज • अरुण कमल • उदय प्रकाश • पंकज सिंह • विनय दुबे • चंद्रकांता • विमल कुमार • संजय चतुर्वेदी • कुमार अंबुज • हरिमोहन • स्वप्निल श्रीवास्तव • एकांत श्रीवास्तव • बद्रीनारायण • मिथिलेश श्रीवास्तव • हेमंत कुकरेती • कात्यायनी • शहंशाह आलम • दिनेश कुशवाहा • कृष्ण मोहन झा और ग़ज़लें: • सूर्यभानु गुप्त • ज़हीर कुरेशी • ज्ञानप्रकाश विवेक • हरजीत सिंह • एहतेराम इस्लाम • महेश अनघ

सिनेमा 225

• शम्मी कपूर से अंतरंग बातचीत
• पंडित मुखराम शर्मा • सलीम • कमलेश पांडे • के. के. सिंह

दो साल पहले साहित्य वार्षिकी के प्रथम अंक में हमने हिंदी साहित्य के वर्तमान परिदृश्य और भावी दिशा पर 'संवाद' का आयोजन किया था. इस अंक के लिए परिचर्चा के सूत्र उसी 'संवाद' से लिये हैं. उस 'संवाद' में प्रख्यात लेखिका कृष्णा सोबती ने एक जगह कहा था कि "आज लेखक का जो अंतस है वह बाहर से आक्रांत है...हमारे लेखक अपने एकांत से दूर चले गए हैं." हर लेखक समाज में रहते हुए अपनी भी एक दुनिया में रहता है जिसे महफूज रखने की स्वतंत्रता उसे होनी चाहिए. इस स्वतंत्रता या स्वायत्तता में क्या कुछ आड़े आता है इसकी पहचान भी होनी चाहिए. साथ ही कुछ और महत्वपूर्ण प्रश्नों पर भी चर्चा होनी चाहिए. इसके लिए हमने निम्नलिखित प्रश्नों पर हिंदी के महत्वपूर्ण हस्ताक्षरों के विचार आमंत्रित किए: 1. लेखकीय स्वायत्तता को व्यापक परिप्रेक्ष्य में आप किस तरह परिभाषित करते हैं? हिंदी साहित्य जगत या हिंदी समाज में इसका कोई विशेष अर्थ है तो आपकी दृष्टि में क्या है? 2. आपके विचार से आज का हिंदी साहित्यकार कितना स्वायत्त है? 3. वैचारिक प्रतिबद्धता अथवा प्रतिबद्ध लेखन लेखकीय स्वायत्तता को किस तरह प्रभावित करता है. हिंदी के साहित्यकारों की स्वायत्तता को इसने कितना प्रभावित किया? 4. वामपंथ के प्रति प्रतिबद्धता को लेकर भारी सिर-फुटौवल हिंदी साहित्य में हुई है मगर आज के बचे-खुचे समाजवादी देशों में क्या हिंदी साहित्य के प्रति, उसमें चल रही धाराओं के प्रति उतनी सजगता रही है? नहीं, तो क्यों नहीं? 5. हिंदी साहित्य में तीन-चार दशकों में अपने समय को स्वर देने वाले, अपने दौर को समझने और आत्मसात करने वाले सबसे प्रमुख रचनाकार के रूप में आप किसका नाम लेना चाहेंगे और क्यों? 6. आज का हिंदी साहित्य देसी या राष्ट्रीय समाज की अस्मिता कितनी ईमानदारी से प्रस्तुत करता है? 7. हिंदी साहित्य में किसी को स्थापित करने या किसी को कूड़ेदान के हवाले करने की प्रवृत्ति की बहुत चर्चा रही है. क्या ऐसा सचमुच है? अगर हां, तो इससे मुक्त होने का रास्ता क्या हो सकता है?

जयंतो

आज के परिप्रेक्ष्य को भी देखें

—भीष्म साहनी

सभी रेखाचित्र: मनमोहन गुलाटी

लेखक अपनी बात कहने में तो स्वतंत्र है, पर उसका यथोचित प्रकाशन भी हो जाए, उसमें वह स्वतंत्र नहीं होता. मैंने बड़े धूमधड़ाके से एक लेख 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के लिए लिखा. उन्होंने छूटते ही आधे से ज्यादा लेख 'स्थानाभाव' के कारण काट दिया. अगर प्रेस मेरा होता तो मैं निश्चित ही सारा का सारा लेख छपवा देता पर प्रेस मेरा नहीं था.

हमारे सांस्कृतिक क्षेत्र में जगह-जगह ऐसी ही स्थिति है. प्रत्येक संस्थान, कहीं-न-कहीं, दखल देने के अपने अधिकार का इस्तेमाल करता है. लेखक उस अधिकार को मानने पर मजबूर नहीं है, पर लेखक संस्थान को भी अपनी बात मनवाने पर मजबूर नहीं कर सकता, ऐसी ही व्यवस्था में हम जी रहे हैं और लिख-पढ़ रहे हैं.

हां, हम अपनी स्वायत्तता की रक्षा करते हुए स्वतंत्र रूप से अपनी बात पाठक वर्ग तक पहुंचाने के लिए निजी प्रयास भी करते हैं, पर अपने जोखिम पर, अथवा ऐसे प्रकाशकों आदि के द्वारा जिनके साथ हमारा दृष्टि-साम्य होता है.

हमारे यहां तरह-तरह की विसंगतियां, तरह-तरह की रुकावटें पाई जाती हैं. बेशक, खीझ भी उठती है, पर कहने वाले अपनी बात कहते भी हैं, और बड़े तमतड़ाक से कहते हैं. किसी से झिझकते-डरते भी नहीं और उसके लिए हमेशा जोखिम उठाने को भी तैयार रहते हैं. यानी लेखक अपनी स्वायत्तता का अधिकार खो नहीं बैठा है. और हमारे देश का लेखक तो कदापि नहीं.

आज, प्रसारण माध्यमों का दबाव निश्चित ही बढ़ता जा रहा है, मनोरंजन प्रधान कार्यक्रम अधिक लोकप्रिय होते जा रहे हैं. हमारे यहां इस समय लेखन के क्षेत्र में समाजोन्मुख साहित्य की प्रधानता है. यों भी हमारी साहित्यिक परंपरा मात्र मनोरंजन से संतुष्ट होने वाली नहीं रही है. हम प्रत्येक साहित्यिक कृति से किसी-न-किसी विशेषता की अपेक्षा करते हैं, भले ही वह नैतिक धरातल पर हो अथवा किन्हीं शाश्वत तत्वों के धरातल पर. विदेशी सीरियल, जो आजकल टेलीविजन पर दिखाए जाने लगे हैं, मनोरंजन प्रधान होते हैं. कहानी शैतान की आंत की तरह लंबी खिंचती चली जाती है, और उत्तरोत्तर जीवन की वास्तविकताओं से दूर होती चली जाती है. कथानक को बड़ी चतुराई से नए-नए मोड़ दिए जाते हैं. इनके प्रभाव के कारण हमारे यहां भी ऐसे कार्यक्रमों का असर बढ़ेगा. और फिर टेलीविजन में पैसा है, अच्छी रकम कमा पाने की खासी संभावना है.

यदि कोई लेखक ऐसे सीरियल लिखने का बीड़ा उठाता है तो वह जरूर टेलीविजन की मांगों के अनुरूप ही लिखेगा. तो क्या इस तरह उसकी स्वायत्तता बनी रह पाएगी? और यदि कुछ समय बाद हमारे दर्शकों-पाठकों की रुचि में ऐसा परिवर्तन हो कि उन्हें मात्र मनोरंजन प्रधान कार्यक्रम ही रुचिकर लगें तो क्या हमारा लेखक भी इसी रौ में बहने नहीं लगेगा? और ऐसा करते हुए वह यह भी नहीं मानेगा कि उसने अपनी स्वायत्तता कहीं खो दी है.

मेरे विचार में लेखकीय स्वायत्तता के सवाल को आज के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने-समझने की जरूरत है.

यदि कुछ समय बाद दर्शकों-पाठकों को मात्र मनोरंजन प्रधान कार्यक्रम ही रुचिकर लगने लगें तो क्या लेखक भी इस रौ में नहीं बहेगा?

—भीष्म साहनी

पान पराग®

पान मसाला एवं गुटखा

दुनिया का सबसे ज़्यादा बिकने वाला पान मसाला एवं गुटखा

पान मसाला चबाना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हो सकता है।
वैधानिक चेतावनीः तम्बाकू चबाना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।

कोठारी उत्पादन

everest/d93/KP/85 Hin

है पर प्रतिबद्धता की दृष्टि से वांछनीय है.

दुर्भाग्य से हिंदी में प्रतिबद्धता का अर्थ-विस्तार हुआ ही नहीं. प्रतिबद्ध का अर्थ ही हो गया वामपंथ से प्रतिबद्ध. यों तो साहित्य अधिकतर वाम में ही रहता है. ऐतिहासिक संयोग से हिंदी को सत्ता-समर्थन से अपनी सर्जनात्मकता विकसित करने का कोई विशेष अनुभव भी नहीं हुआ. विचार की दृष्टि से असमृद्ध, बहुलता की अनाकांक्षी और स्वयं हिंदी के सर्जनात्मक झुकाव को समझने में असमर्थ वामपंथी प्रतिबद्धता ने दृश्य पर भयानक किताबीपन और ऊब लाद दिए. रचना में, वामपंथ से प्रतिबद्ध रचना में भी जो विविधता और द्वंद्वात्मकता थी, उसे वामपंथी आलोचना ने नज़रअंदाज किया. खुद उसके अंदर किसी तरह का संवाद नहीं बन पाया. दुनिया में मार्क्सवादी विचार से इन रणबांकुरों का प्रायः कोई संबंध नहीं रहा. साहित्य और समाज के संबंध की खासी मोटी समझ पूरे दृश्य पर फैल गई है. स्वयं सामाजिक संघर्ष और कलात्मक संघर्ष की बड़ी इकहरी अवधारणाएं ऐसे लेखकों और उनके प्रतिबद्ध पाठकों ने अंगीकार कर ली हैं. अन्य भारतीय भाषाओं में ऐसा सिर-फुटौवल नहीं है जैसा कि हिंदी में. बंगाल और केरल में वामपंथ सत्तारूढ़ रहा है और इस कारण वहां साहित्यिक वाम अधिक जिम्मेदार, संयमित और परिष्कृत रहा है. हिंदी में सत्ता की जिम्मेदारी से कोसों दूर साहित्यिक वाम अकसर गैरजिम्मेदार, आक्रामक और असहिष्णु रहा है.

हिंदी साहित्य में तीन-चार दशकों में अपने समय को स्वर देने वाले, अपने दौर को आत्मसात् करने में हमारी मदद करने वाले किसी एक प्रमुख रचनाकार का नाम लेना ठीक या काफी नहीं होगा. उससे पहले के समय के बारे में भी हम ऐसा एक नाम लेकर काम नहीं चला सकते. आजादी के पहले हमें प्रसाद, निराला, प्रेमचंद, पंत, रामचंद्र शुक्ल आदि कई नाम लेने होंगे. आजादी के बाद के प्रमुख लेखक भी कई हैं: जैनेंद्र कुमार, अज्ञेय, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, नागार्जुन, त्रिलोचन, रेणु, रघुवीर सहाय, निर्मल वर्मा, कृष्णा सोबती, कृष्ण बलदेव वैद, विजयदेव नारायण साही, श्रीकांत वर्मा, मलयज, नामवर सिंह, विनोद कुमार शुक्ल, रमेशचंद्र शाह. यह दौर बहुत उलझा और जटिल दौर है—उसमें आदमी की हालत का बखान किसी एक दृष्टि से न तो किया जा सकता है, न ही किया गया है. इन लेखकों में समय के हमारे और अपने, हमारी जिज्ञासा और उत्सुकताओं के, चिंताओं और विकलताओं के, संदेह और कुंठाओं के, संघर्ष और निम्नताओं के, नए मूल्यों, मूल्य विमूढ़ताओं के, हमारे भूगोल, हमारी परंपराओं के, हमारे सुख-दुख के अनेक मानवीय चेहरे और रूप हैं. उनके माध्यम से हिंदी जनपद ने विस्तार और गतिशीलता पाई है.

देसी या राष्ट्रीय अस्मिता कोई दोटूक चीज़ या अवधारणा नहीं है कि सीधे-साधे प्रस्तुत कर दी जाए. इस दौरान का सारा महत्वपूर्ण साहित्य बिना ऐसी कोई घोषणा किए अंततः अपनी गहराई, अपने समग्र मानवीय सरोकारों और अपनी विविध शिल्पधर्मिता से देसी और अनिवार्यतः बहुल अस्मिता को खोजता और विन्यस्त करता रहा है. यह मानना भ्रामक होगा कि रेणु और नागार्जुन भारतीय अस्मिता से वाबस्ता हैं जबकि निर्मल वर्मा और कृष्ण बलदेव वैद नहीं. अस्मिता ईमानदार और सच्ची वही है जो इन सबसे मिलकर बनती है. हमारी अस्मिता को पश्चिम से मुठभेड़ करने वाले अज्ञेय, मुक्तिबोध और शमशेर भी चाहिए और उसकी ओर पीठ किए त्रिलोचन भी.

प्रतिष्ठा, मान्यता और प्रसिद्धि की प्रवृत्ति प्रायः सभी जगह ऐसी है. सिर्फ हिंदी में ही स्थापित करने या कूड़ेदान के हवाले करने की प्रवृत्ति है, ऐसा नहीं है. बल्कि अन्य कई भारतीय भाषाओं के मुकाबले हिंदी आलोचना अधिक समृद्ध, संवेदनशील और सजग है. सारे घमासान के बावजूद एक आलोचनात्मक मतैक्य बना रहता है कि महत्वपूर्ण रचनाएं और लेखक कौन से हैं. अज्ञातकुलशील रेणु के पहले उपन्यास को मिली तत्पर मान्यता और एक छोटे कस्बे के चुप्पा कवि विनोद कुमार शुक्ल की व्यापक स्वीकृति इसके दो उदाहरण हैं कि आलोचनात्मक विवेक चौकन्ना बना रहता है. कई बार लगता है कि अगर जीवन-दृष्टि को प्राथमिकता देने के बजाय साहित्यनुराग को हम आलोचना में प्रमुखता दें तो दुश्चक्र से मुक्ति मिल सकती है. साहित्यनुराग बिना जीवनासक्ति के नहीं होगा यह बताना अनावश्यक है. हमारी आलोचना अगर इतनी अवधारणा-ग्रस्त न होकर ब्यौरों में जाने, जीवन-प्रतीतियों को टटोलने का जतन करने लगे तो वह उस अन्याय से मुक्त हो सकती है जो लेखकों के साथ वैचारिक असहमति के कारण होता रहता है.

मार्क्सवादियों ने साहित्य की अस्मिता को सापेक्ष माना है. इसे सरलीकृत रूप में लेने से ही गड़बड़ी हुई है.
—नंदकिशोर नवल

हिंदी लेखक स्वयं को सर्वथा स्वायत्त न मानें

—नंदकिशोर नवल

लेखक शून्य में साहित्य-सृष्टि नहीं करता है. जैसे उसके बाहर एक जंजाल फैला हुआ है, वैसे ही उसके भीतर भी. यह पूरा जंजाल उसकी सर्जन क्षमता को निर्मित और निर्धारित करता है. हां, मार्क्स का यह कथन स्मरणीय है कि लेखक का अकेलापन भी समाज की देन होता है. ऐसी स्थिति में लेखकीय स्वायत्तता को सापेक्ष रूप में ही ग्रहण किया जा सकता है. मार्क्सवादियों ने साहित्य की अस्मिता को सापेक्ष माना है. इसे सरलीकृत रूप में लेने से गड़बड़ी हुई है. साहित्य निश्चित ही सापेक्ष वस्तु है, लेकिन समाज के साथ उसका संबंध ऐसा भी हो सकता है कि वह 'संबंधहीनता' का रूप ले ले, अथवा संबंध विरोध के रूप में दिखलाई पड़े. साहित्य के साथ पूरा न्याय करने के लिए इस बात को याद रखना जरूरी है.

हिंदीभाषी समाज चूंकि संसार का एक पिछड़ा हुआ समाज है, कहना चाहिए संघर्षरत, इसलिए हिंदी लेखक अपने को 'सर्वथा स्वायत्त' मानकर न चलें तो बेहतर. लेखकीय स्वायत्तता को बाधित करने वाले अनेक तत्व मौजूद हैं, यथा जीविका का अभाव, आत्माभ्युदय की आकांक्षा, विचारधारात्मक प्रतिबद्धता आदि. इधर हिंदी में अनेक सरकारी, गैर-सरकारी बड़े पुरस्कार चालू हो गए हैं. ये बहुत ही सूक्ष्म ढंग से लेखकीय स्वायत्तता में दखल देते हैं. यह प्रसन्नता की बात है कि हमारे बीच अभी भी अनेक ऐसे लेखक हैं, जो स्पृहणीय रूप में स्वायत्त रहकर सर्जन और चिंतन के क्षेत्र में काम कर रहे हैं.

वैचारिक प्रतिबद्धता जहां एक बाहरी चीज होती है, वहां निश्चय ही वह लेखकीय स्वायत्तता को प्रभावित कर सर्जनशीलता को नष्ट करती है. लेकिन जहां वह एक सौंदर्यात्मक अवधारणा के रूप में आती है, वहां अनेक बार वह सर्जनशीलता को परवान चढ़ाने वाली सिद्ध होती है. विश्व साहित्य में इसके अनेक उदाहरण हैं कि प्रतिबद्धता विरोधी लेखकों

ने श्रेष्ठ साहित्य रचा है, तो घोर प्रतिबद्ध लेखकों ने भी. वह प्रतिबद्धता, जो दलीय निर्देशों को मानकर चलने का पर्याय होती है, उसका निकृष्टतम रूप है, इसे लेकर दो मत नहीं हो सकते. यहां यह कह देना भी जरूरी है कि ऐसा सोचना भी ठीक नहीं है कि गैर-प्रतिबद्ध लेखन हर हालत में श्रेष्ठ लेखन होगा. हिंदी में सब के उदाहरण मौजूद हैं.

चीन, वियतनाम, क्यूबा और उत्तरी कोरिया में समकालीन हिंदी साहित्य की विभिन्न धाराओं के प्रति सजगता यदि नहीं है, तो उसका एक ही कारण हो सकता है—पारस्परिक सांस्कृतिक संबंध की शिथिलता.

पिछले तीन-चार दशकों में हिंदी में जो सर्वप्रमुख रचनाकार हुए हैं, वे असंदिग्ध रूप से मुक्तिबोध हैं. उन्होंने प्रगतिवादी ही नहीं, यथार्थवादी कविता का सीमा-विस्तार किया और ज्ञान तथा संवेदना के स्तर पर अपने विश्व और काल को समझने में हमारी मदद की है.

जातीय व राष्ट्रीय अस्मिता कोई ऐसी बंद चीज नहीं है कि उसे बाहर की हवा भी न लगे. अस्मिता का निर्माण और विकास देसी-विदेशी प्रभावों के घात-प्रतिघात से ही होता है. जो उपन्यास के संबंध में सही है, वही समकालीन हिंदी साहित्य की दूसरी विधाओं के संबंध में भी. वैसे, मात्र विदेशी प्रभाव लेकर रचे जाने वाले, अपनी जमीन से कटे हुए साहित्य की भी समकालीन हिंदी में कमी नहीं.

हिंदी में उखाड़ने और जमाने की प्रवृत्ति रही है, लेकिन उन्हीं में जो साहित्य को गंभीरतापूर्वक नहीं लेते. जिनके लिए साहित्य एक गंभीर वस्तु है, जिनके सामने साहित्य-रचना का एक बड़ा परिप्रेक्ष्य है, वे कभी उखाड़ने-जमाने के टुच्चे काम में न पड़ेंगे.

नैतिक निष्ठा की जरूरत है

—मृणाल पांडे

हमारे समय में लेखक की कुल मानवीय जिम्मेदारी की व्यापक पृष्ठभूमि से हटकर, सिर्फ लेखकीय स्वायत्तता पर अलग से बातचीत नहीं की जा सकती. रचनाधर्मिता का एक छोर लेखक की निजी जिंदगी से जुड़ा होता है, तो दूसरा उस समाज से जिसने व्यवस्थागत विचार और भाषा के माध्यम से लेखक को संस्कारित किया है. अपने समय के पूरे राज-समाज से सभी लेखकों का एक जीवंत दोतरफा रिश्ता बनता है, जिसके तहत समाज के कुछ अंशों की कटुतम आलोचना करते हुए भी लेखकगण अपने समय और समाज के प्रति एक सघन रागात्मक संवेदना बरकरार रखकर लगातार सधे पैर, एक नट की तरह (परंपराबोध और वैचारिक असहमति के दो छोरों के बीच) तनी डोर पर दौड़ते जाते हैं.

राज और समाज जरूरी तो है पर लेखकों के लिए अपनी निजी अद्वितीयता की रक्षा भी जरूरी है.
—मृणाल पांडे

लेखकीय प्रतिबद्धता इन दो ध्रुवों के बीच खिंचे लंबे रिश्ते का ही एक हिस्सा है. पर दुर्भाग्य से हमारे यहां प्रायः इसे खेमेबंद राजनैतिक विचारधाराओं और चालू नारेबाजी से जोड़कर देखने की एक बचकानी आलोचकीय उत्कंठा हावी रही है. सचाई यह है कि लेखन के केंद्र में राजनीतिसम्मत वाद-विशेष नहीं, बल्कि मानवीय समाज जैसी जटिल इकाई होती है. इसलिए राजनीति की इकहरी कालसम्मत स्थापनाओं के प्रति एक समर्पित स्वामिभक्ति बनाए रखना किसी लेखक को रचनाकार के रूप में रास नहीं आ सकता, भले ही एक सामाजिक प्राणी के रूप में वह पार्टी विशेष की रैलियों, धरनों और सम्मेलनों में बदस्तूर निजी भागीदारी क्यों न करता रहा हो. खेमेबंद राजनीति में प्रतिबद्धता की जड़ें प्रायः एक तरह की जड़ भावुकता में होती हैं, जो एक वर्ग-विशेष को हीरो और दूसरे को विलेन बनाकर सुखी रहती हैं. लेकिन रचनात्मक प्रतिबद्धता एक अक्खड़, एकांतिक, वैचारिक घुमक्कड़ी से निकलती है, जिसकी रीढ़ नैतिक निष्ठा में है.

आज जिस वैचारिक प्रतिबद्धता की बात हमारे समालोचकीय क्षेत्रों में बड़े जोरशोर से उठाई जा रही है, उसमें जीवन की जटिल रहस्यमयता के प्रति आदर और आग्रह कहीं नहीं. वह तो रचनात्मकता की अंदरूनी दुनिया और राजनीति, दोनों की एक खासी सपाट और सीमित-सी समझ पर ही टिकी है. हम सब भली तरह जानते हैं कि आज वाम, मध्य या दक्षिणपंथी, कोई भी देश हो, सीधी वैचारिक टक्कर होने पर, एक कलम के बरक्स हर सत्ता तलवार (अथवा गोली) ही चलाएगी; जिसके आगे बेचारी कलम कहीं नहीं टिक सकेगी. यह भी हम देख चुके हैं कि महज देश छोड़कर बाहर चले जाना भी आज पहले की तरह एक लेखक की निजी या लेखकीय अद्वितीयता की सुरक्षा की कोई गारंटी-वारंटी नहीं! तब क्या सोचकर एक विद्रोही लेखक आत्म बलिदान या निर्वासन की राह चुने? इसलिए नए सिरे से संत और सीकरी के रिश्ते पर हमें सोचना ही पड़ेगा. संत के सीकरी आने या न आने की बात अब बेमानी है, क्योंकि आज लोकतंत्र में सब जंगल कट चुके हैं. लेखक चाहे न चाहे सीकरी उसके चारों ओर अनिवार्यतः मौजूद है. सीकरी में आ खड़े होने का मतलब है उसमें चल रही तमाम साहित्येतर लड़ाइयों में अनिवार्य भागीदारी, जो एक लोकतांत्रिक समाज में लड़ी जाएगी, कभी राजनीति के खेमे में, और कभी बीच बाजार में.

तो कुल मिलाकर आज इन तमाम राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय संदर्भों की पृष्ठभूमि में एक लोकतंत्र में हम लेखकों की हैसियत कहां है? क्यों यह जरूरी है कि हम खुद विपन्न, अहिंसावादी या नास्तिक होते हुए भी अपने लेखन में समाज के कमजोर लोगों के साथ-साथ, समाज के उन अनेकों धनाढ्य अरसिकों, धार्मिक कट्टरपंथियों और सिरफिरे आतंकियों के प्रति भी जिम्मेदारी महसूस करें, जिनके पास सरकार तथा समाज—दोनों को बनाने और तोड़ने की भरपूर क्षमता है? वे हमारे कुछ नहीं, यह कह देने भर से हमारी दिक्कत आसान नहीं होती, क्योंकि लेखन की बुनियादी शर्तों के तहत हमें वे कितना ही चिड़चिड़ाएं, पर उन मूर्खों, कट्टरपंथियों और सिरफिरों के बिना क्या हम आज के पूरे समाज की सही व्याख्या कर सकते हैं? विचार और रचना के क्षेत्रों में उनका हर पल हमारे लिए मोल है, वे हमारे लिए निजी तौर पर बहुत प्रिय भले ही न हों. इसके साथ ही, यह कहकर, कि यह हमने इनकी बाबत अथवा इनके लिए नहीं रचा, हम उनके प्रति अपने लेखन की जवाबदेही की संभावना से बरी नहीं होंगे, कम-से-कम एक लोकतंत्र में जिसे हम अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता बनाए रखने को गंवाना नहीं चाहते.

कुल मिलाकर वैचारिक प्रतिबद्धता और व्यक्ति-स्वातंत्र्य जैसी स्थापनाओं के बावजूद राज और समाज के परे विशुद्ध रूप से हम लेखकों के पास नितांत अपनी कही जा सकने वाली जमीन सिर्फ उतनी ही है, जिस पर खड़े होकर हम एक कालखंड के बीच रचना करते हैं. यहां और सिर्फ यहां, हम सिर्फ रचना करने के दौरान, बिना किसी तरह की

सामाजिक रियायतें लिये और दिए ठहर सकते हैं. और यही टुकड़ा है जिसके छिनने के बाद रचना असंभव है. यह टुकड़ा हमसे निरंतर अपने बचाए जाने की मांग करता है. और हमारी रचना ही अंततः हमारे तमाम सामाजिक कर्मों-कुकर्मों का निचोड़ होगी.

अफसोस की बात है, कि इसी जटिल और संकट तथा आत्मशंका की छाया से सतत ढके इलाके पर, हमारे यहां खुद रचनाकारों के बीच, सबसे कम साझा-चिंतन और विचार-विमर्श हुआ है. कई जरूरी सवालों के जवाब हमें अभी भी खोजने हैं: मसलन, हमारे वक्त में एक लेखक अपने समाज में, भाषा में व्याकरण और अर्थ की पुनर्स्थापना को लेकर सचमुच कितना स्वायत्त रह गया है? किस बिंदु तक एक राज या समाज लेखकीय आत्यंतिकता में घुसपैठ करके लेखक से जवाबतलब कर सकता है, और किस सीमा के बाद नहीं. राज और समाज जरूरी तो है पर लेखकों के लिए क्या अपनी उस निजी अद्वितीयता की रक्षा भी कहीं उतनी ही जरूरी नहीं, जिसके बिना उसके लिए देर-सबेर झूठमूठ के नायकत्व का हर देसी-विदेशी लबादा बेमानी हो जाएगा?

हमारे समय के गंभीर लेखकों के भीतर आज असली व्यग्रता स्थापित या खारिज किए जाने की नहीं, बल्कि इस बात को लेकर है, और होनी भी चाहिए, कि हम सब किस तरह अपनी रचनात्मकता के इस भीतरी, एकदम भीतरी अंश में विद्यमान इन बुनियादी सवालों को लेकर एक सतत सिनिकल संत या एक अगंभीर मसखरे भर न बने रहें.

प्रतिबद्धता के लिए 'स्व' की बलि न दें

—गिरधर राठी

लेखकीय स्वायत्तता के प्रसंग में लेखकीय 'स्व' और उसके द्वारा 'आयत्त' इतर बहुत कुछ है जिसे ध्यान में रखना होगा. यदि यह 'स्व' 'पर' या 'इतर' का विरोधी हो तो ऐसे स्वत्व की अवधारणा मूल में ही खंडित हो जाएगी. दरअसल लेखकीय 'स्व' अन्य सभी 'स्व' से विशिष्ट तो है, लेकिन उनका विरोधी नहीं. संगीत की भाषा में यह 'स्व' एक संवादी स्वर है. दूसरे तमाम 'स्व' को जानते-समझते हुए भी यह न तो दूसरों से परिचालित है, न ही दूसरों का संचालन करता है. किसी भी पूर्व-निर्धारित सिद्धांत, विचारधारा, विचार, शासन या पंथानुशासन से संचालित होने से यह इनकार करता है. लेखन की प्रक्रिया में विचार, विचारधारा, सिद्धांत, आदर्श या मूल्य इत्यादि बनते-बिगड़ते चलते हैं.

किसी भी तरह की बद्धता से मुक्त 'स्व' ही अपनी स्वायत्तता का उपयोग कर सकता है.

—गिरधर राठी

फिलहाल मैं यह मानना चाहता हूं कि यदि उक्त विभिन्न कारणों से लेखक 'निमित्त' मात्र है, मूल कर्ता नहीं, तब भी हर लेखक एक खास 'निमित्त' है. विभिन्न ग्रंथ या पाठ, भाषा के विभिन्न अर्थ या स्तर, चेतना के पीछे अवचेतन या अचेतन, सामाजिक-राजनैतिक शक्तियों का अपना सत्तापरक निर्वैयक्तिक 'खेल' और अन्य कारक, कारण या दबाव जो भी भूमिका अदा करते हों—प्रत्येक लेखक एक अलग ढंग का या विशिष्ट संपुजन केंद्र तो है ही. लिहाजा, अहंकेंद्रित अहम्मन्य मानववाद की गुंजाइश बची रहती है. विसर्जित होता है 'अहं', 'स्व' नहीं.

हिंदी साहित्य में लेखक की स्वायत्तता के निहितार्थ अनेक हैं. भारत की अन्य भाषाओं से और विश्व की भाषाओं से—आज के समय में प्राचीन और कम प्राचीन साहित्यों से भी—अपनी विशिष्टता बरकरार रखना आसान नहीं है. फिर भी मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि 'मध्ययुग' के भूषण जैसे एकाध लेखकों को छोड़ हिंदी साहित्य की धारा आज तक तमाम तरह की संकीर्णताओं, सांप्रदायिकताओं, क्षुद्रताओं से बची रही है. लिया और सीखा हमने सबसे है, पर आवाज अपनी बनाए रखी है. हर जीवित इकाई यही करती है.

वैचारिक प्रतिबद्धता अपने आप में कोई बुरी चीज नहीं है. पहला सवाल, मनुष्य या व्यक्ति के रूप में यह है कि किस तरह के विचार से प्रतिबद्धता? मानव-पोषी या मानव-द्वेषी विचार से? दूसरा सवाल यह है, जो अधिक दुरुह सवाल है, कि क्या ऐसी प्रतिबद्धता लेखक के 'स्व' को बलि चढ़ाकर अपनाई गई है? यह दूसरा पक्ष बेहद खतरनाक है. लेखन चूंकि राग-विराग में, आसक्ति-अनासक्ति में, बाहर-भीतर के संसार में निरंतर आवाजाही की प्रक्रिया है, अतः किसी भी तरह की बद्धता से मुक्त 'स्व' ही अपनी स्वायत्तता का उपयोग कर सकता है.

हिंदी में प्रतिबद्धता वामपंथ के साथ अधिक रही है. राजसत्ता पर मुख्यतः दक्षिणपंथ का कब्जा रहा, लेकिन गलियारे-ओसारे में वामपंथ का, बल्कि कम्युनिज्म से संबंधित लोगों का सत्ता-प्रतिष्ठान भी आजादी के दसेक साल बाद खुल चुका था. चूंकि भारत सरकार का सोवियत संघ की सरकार से घनिष्ठ संपर्क हो गया था, इसलिए सोवियतपंथी वामवाद राजसत्ता के प्रश्रय में साहित्य में काफी चला. सोवियत प्रतिष्ठान ने पूर्णतः और किसी सीमा तक चीनी प्रतिष्ठान ने भी अपने भरसक उन्हीं लोगों पर ध्यान दिया है जो उनके खेमों में थे. नतीजा स्पष्ट है: समाजवादी देशों में पूरे भारतीय साहित्य की कोई सम्यक छवि नहीं बन पाई.

हिंदी में वामपंथी रुझान से व्यक्तिगत स्तर पर समाज-चेतना जरूर मुखरित हुई है, सही या गलत—लेकिन सतही नारेबाजी का साहित्य इतना अधिक लिखा गया कि उससे खुद साहित्य की साख गिरी है. घोषित वामपंथियों में भी श्रेष्ठ साहित्य वे ही लिख पाए जो तथाकथित प्रतिबद्धता की दीवारें फांद सके.

अपने जीवनकाल में पद, प्रतिष्ठा, सम्मान और पुरस्कार पाने की शर्तें अकसर साहित्येतर होती हैं: ऐसे सौभाग्यशाली कम हैं जिन्हें केवल साहित्य-लेखन की श्रेष्ठता के कारण यह सब मिला हो. इन साहित्येतर कारणों में सत्ता के समीकरणों के अलावा भी कई कारण होते हैं: समय और इतिहास के खास दबाव, रुचियों और फैशनों का दबाव, प्रचलित शैलियों या अंतर्वस्तुओं से भिन्न ऐसा कुछ लिखा जाना जो समकालीन आलोचकों-पाठकों को समझ में ही न आए. किसी भाषा-समाज में साहित्य को प्राप्त प्रतिष्ठा-सम्मान की मात्रा भी इन कारणों में जोड़ लें. साहित्य-रसिक समाज और सत्ता-पोषी समाज में बड़ा फर्क है.

अस्मिता का प्रश्न आजादी से पहले जितनी आसानी से, कम-से-कम बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में, सुलझाया जा सकता था, अब उतना आसान नहीं रहा. भारतीय अस्मिता के नाम पर पूजा-पुराणवाद एक छोर है, तो यूरोपीय भारतवाद का दूसरा छोर. वर्तमान हिंदी समाज और उसका साहित्य इस संशय को काफी हद तक वाणी दे रहा है. पश्चिमी भाषा में जिसे उपराष्ट्रीयता कहेंगे, उसके स्वर भी उठ रहे हैं:

भाषा, जाति, धर्म, पंथ, क्षेत्र इत्यादि के नाम पर. चूलें हिल रही हैं, हालांकि अभी वे उखड़ी नहीं हैं. वंचितों की अपने अधिकार के लिए लड़ाई एक शुभ लक्षण है: अशुभ है उनका कुटिल उपयोग.

हिंदी में पिछले तीन-चार दशकों में कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण रचनाकार आए हैं: कविता में रघुवीर सहाय, विजयदेव नारायण साही, शमशेर बहादुर सिंह, नागार्जुन, अज्ञेय. इनमें से अनेक का कथा-साहित्य और विचार-साहित्य भी हमारे समय की विडंबनाओं, अंतर्विरोधों और विकटताओं से सीधी मुठभेड़ करता है. फणीश्वरनाथ रेणु, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी और कृष्णा सोबती उन कुछेक वरिष्ठ कथाकारों में गिने जाएंगे जिन्हें पढ़कर हमें अपने देश काल की काफी कुछ समझ मिली है. उक्त रचनाकरों के अलावा भी 40-50-60 वर्ष की वय के अनेक कवि, कथाकार हैं जिन्होंने अपनी दृष्टि और सृष्टि की प्रामाणिकता से हमारे चेतना संसार और भाव जगत को समृद्ध किया है.

'साहित्य प्रतिष्ठान' के सत्ता संघर्ष में पड़े बगैर जो लोग लिख-पढ़ पा रहे हैं उन्हें इससे शायद विचलित नहीं होना चाहिए कि कोई उन्हें पूछता है या नहीं. विगत लेखकों में हम जिन्हें महत्वपूर्ण समझते हैं, उन्हें पढ़ना, उनके बारे में लिखना-बोलना, उन पर शोध-अनुसंधान करना और अपने खुद के समय के संदर्भ में उन्हें पुनः परिभाषित करना, खुद अपने लिए अपनी एक परंपरा रचना शायद यही एकमात्र रास्ता है हमारे सामने.

प्रतिबद्धता विकलांग रचना देती है

—रमेशचंद्र शाह

आपकी प्रश्नावली ने मुझे आचार्य रामचंद्र शुक्ल की एक व्यंग्योक्ति की याद दिलाई. है तो वह कविता को लेकर, मगर साहित्य-मात्र पर लागू होती है. शुक्ल जी का कहना है कि..."काव्य-क्षेत्र में किसी 'वाद' का प्रचार धीरे-धीरे उसकी सार-सत्ता को ही चर जाता है. कुछ दिनों में लोग कविता न लिखकर 'वाद' लिखने लगते हैं." वरिष्ठ आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी की पुस्तक 'कविता का पक्ष' का भी जो निष्कर्ष है, वह आचार्य शुक्ल के मेल में ही है, "रचनाकार अनेक विचारों की टकराहट के बीच से अपनी दृष्टि को पकाता है." यह भी, कि "नए संदर्भों के अंतर्गत साहित्य में विचार-तत्व का अधिकाधिक घुलाना जितना जरूरी होता गया है, उतना ही जरूरी हुआ है उसे विचारधारा के दबाव से मुक्त रखना."

प्रेमचंद और शुक्ल के उत्तराधिकारियों, प्रतिबद्ध लेखन के ध्वजाधारियों ने ही लेखकीय स्वायत्तता की मिट्टी पलीद की है.

—रमेशचंद्र शाह

क्या यह सच नहीं, कि साहित्य साहित्य कहलाता ही इसीलिए है कि वह मनुष्य के समग्र जीवन की, उसके चराचर पर्यावरण की भी चिंता करता है. "कविता से मनुष्य भाव की रक्षा होती है..." "शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक संबंधों का निर्वाह होता है..." यह आखिर किसने कहा है, क्यों कहा है? कामू की 'द आर्टिस्ट' कहानी में एक चित्रकार हफ्तों सारी सुध-बुध भूलकर एक चित्र बनाने में जुटा हुआ है और आखिर जब कृतकृत्य होकर उठता है तो उत्सुक दर्शक क्या देखते हैं? एक कोरा चित्रफलक, जिस पर केवल एक शब्द अंकित है धुंधला-सा. वह 'सॉलिडैरिटी' भी हो सकता है, 'सॉलिटरी' भी हो सकता है. यह कैसी 'सॉलिडैरिटी' है जो निविड़तम एकांत में साधी जाती है? सब कुछ के साथ तादात्म्य पाने की यह कैसी प्रक्रिया है?.. इसका अर्थ है वह निष्ठा, जो किसी भी तत्कथित प्रतिबद्धता से अधिक व्यापक और गहरी चीज है.

निष्ठा और प्रतिबद्धता के बीच विवेक न कर पाना या इस विवेक को ही मिटा देना लेखक को आत्महत्या का नुस्खा थमाना है. निष्ठा 'आत्मा' के प्रति होती है, जो समाज और संस्कृति का रूप निर्धारित करते हुए भी, उनका भी अतिक्रमण कर सकती है. ऐसा एक भी बड़ा लेखक आधुनिक काल का नहीं मिलेगा जिसने अपनी सभ्यता और संस्कृति के प्रति गहरा असंतोष व्यक्त न किया हो.

मनुष्य ने भाषा की—प्रतीकों की—सृष्टि करके प्रकृति की सीमाओं से मुक्त होने की संभावना विकसित की. प्रकृति से संस्कृति की ओर संचरण संभव किया. लिहाजा, मानव-संस्कृति का आद्य-प्राथमिक मूल्य यह स्वातंत्र्य-चेतना ही है. जिसे आप 'लेखकीय स्वायत्तता' कह रहे हैं, उसका आधार यही है. पर इसे ठीक से समझना आवश्यक है. जैसा कि आनंद कुमार स्वामी ने लक्ष्य किया था, "हम मानव-देहधारियों की बनावट ही कुछ ऐसी है कि हम अपनी अंतर्मुखता में 'आर्केटाइपल' हैं और अपनी बहिर्मुखता में नाम-रूपात्मक. मनुष्य को अपने इस स्वभाव के किसी भी पक्ष को नकारना नहीं है, बल्कि उच्चतर और निम्नतर, पारमार्थिक और लौकिक के बीच सामंजस्य स्थापित करना है." इस तरह, देखा जाए तो लेखक की आस्था और लेखक के विद्रोह, दोनों की गुणवत्ता और प्रामाणिकता का संदर्भ यही है और यही स्वातंत्र्य के सर्वोच्च मानव मूल्य की पहचान और प्रतिष्ठा का भी आधार है.

यही पहचान लेखक को एक ओर महज इतिहास की गुलामी ढोने से विरत करती है और दूसरी ओर उस "ऐब्सोल्यूट" से भी, जो खुद तो सृष्टि से बाहर और परे है, किंतु फिर भी मानव इतिहास के केंद्र में पैठकर एक सर्वसत्तावाद को वैधता प्रदान करता है. इस प्रकार व्यक्ति और समाज दोनों के आत्म-क्रियान्वयन को, रचना-स्वातंत्र्य को कुंठित करने वाली बलात्कारी राजनीति और अर्थनीति साहित्य की भी नियामक बन बैठती है. जाहिर है कि इस तरह महज राजनैतिक प्रतिबद्धता पर टिकने वाली रचना जन्म से ही विकलांग होने को अभिशप्त है. देखा गया है कि अन्याय का मुकाबला करने की शक्ति भी राजनैतिक प्रतिबद्धता से नहीं, बल्कि किसी भी प्रतिबद्धता के अस्वीकार से आती है. रचना भी कर्म है; पर रचनात्मक कर्म के लक्ष्य सदा-सर्वदा राजनीति से बड़े होंगे... "बहुजन के हित के एक इकाई के सुख का स्वेच्छित उत्सर्ग और विलय ही वास्तव में व्यक्ति-स्वातंत्र्य की सच्ची-संपूर्ण परिभाषा करना है"—अज्ञेय के इस कथन के साथ यदि आप 'तीसरा सप्तक' में संकलित विजयदेव नारायण शाही की एक कविता को रख देखें तो मेरा आशय स्पष्ट होगा. *'साथियो इतिहास का संदेश है बहुजनहिताय आज मर लें, मार लें, कल मौज करना है हमें'*

कविता का व्यंग्य इस बीच इस कदर चरितार्थ भी हो चुका है कि उस बारे में भ्रम की कोई गुंजाइश अब रह नहीं गई है. फिर भी, हमारे कुछ स्वनामधन्य लेखक—अपने आप में चुके हुए, फिर भी नेतृत्वकामी लेखक—अभी भी किस लाइलाज़ दुराशा और आत्म-प्रवंचना के साथ उसी 'आज' और 'कल' की विडंबना से चिपटे हुए हैं, देखने लायक दृश्य है. आखिर हमारे आज के समाज में स्वयं स्वातंत्र्य-बोध के प्रति, स्वयं

सृजनशीलता के प्रति एक संदेह का, अकारण द्रोह का सा भाव क्यों है, इसकी पड़ताल क्या अब निहायत जरूरी नहीं जान पड़ती? स्वतंत्र व्यक्ति समाज से नहीं, समाज में स्वतंत्र होता है; पर उसी समाज में, जो सृजनशीलता और स्वातंत्र्य चेतना से संपन्न हो या उसकी ओर उन्मुख हो. कहना न होगा कि स्वतंत्र समाज में स्वतंत्र व्यक्ति का यह परस्पर प्रेरक संबंध ही लेखकीय स्वायत्तता को फलप्रद बनाता है. लेखकीय स्वतंत्रता का महत्व केवल इतना नहीं कि हम जो चाहें लिख सकें, यह भी है कि हम समाज को वैसा बनाने को स्वतंत्र हों, जैसा हम उसे बनाना चाहते हैं. मगर बिचौलियों के मारे हुए इस देश में तो तथाकथित सेतु भी अपना सेतुधर्म नहीं, केतुधर्म निभा रहे हैं. इसका क्या इलाज है? इसी तरह, हमारे रचे हुए का क्या होगा, वह पढ़ा जाएगा कि नहीं और क्या पढ़ा जाएगा, इसकी व्यवस्था अगर उस प्रतिष्ठान के हाथ में है, जो खुद ही रचना-द्रोही है और फिर भी अपने को 'समाज' कहके मनवा लेना चाहता है, तो रचना-स्वातंत्र्य वैसे भी संकटापन्न है.

पूरा समाज जिस भाषा में, जिस भाषा के साथ जीता है, उसमें और उसी के साथ जीते हुए अगर हम उस जीवन संदर्भ को पहचानते हैं, तो हमारा समाज भी रचनाशील हो सकता है. मगर हमारा यह बिचौलिया बुद्धिजीवी वर्ग तो अधिकांशतः एक छाया-मस्तिष्क, अनुवादजीवी बनकर ही कृतकार्य हो जाता है. जिस तरह दूसरे तमाम क्षेत्रों में, उसी तरह साहित्य में भी हमने अपनी बमुश्किल कमाई गई स्वतंत्रता-स्वायत्तता को अपने ही हाथों अवमूल्यित होने दिया है. स्वतंत्रता-प्राप्ति के तुरंत बाद के रचनात्मक आत्मविश्वास और संवाद का स्तर देखिए और उसकी तुलना आज के इस शर्मनाक आत्महीन दृश्य से करिए, जहां हर सांस्कृतिक उपक्रम में सरकारी हस्तक्षेप आमंत्रित किया जा रहा है. लेखकीय स्वायत्तता की इस तरह मिट्टी पलीद करने वाले लोग कौन हैं? वही, जो तथाकथित प्रतिबद्ध लेखन के ध्वजाधारी हैं, प्रेमचंद और आचार्य शुक्ल के उत्तराधिकारी हैं.

समाजवादी देशों में हिंदी साहित्य के प्रति कोई खास सजगता रही है क्या? मैं नहीं जानता. अपने ही देश में दूसरी भारतीय भाषाओं के साहित्यकार कितने हमारे प्रति सजग, उन्मुख हैं? जिस सिर-फुटौवल का जिक्र आपने किया, वह जरूर हकीकत है. यह भी, कि उससे हिंदी साहित्य और साहित्यकार का अहित ही हुआ है. हां, समाजवादी चिंतन का जो देसी तेवर प्रकट हुआ था हमारे यहां—जिसका उक्त सिर-फुटौवल से कुछ भी लेना-देना नहीं है, उससे संपर्कित लेखकों के कृतित्व में प्रतिबद्धता का खोखला रेट्टरिक नहीं मिलेगा. उनमें साहित्य की स्वायत्त गरिमा का आग्रह और निर्वाह दोनों देखे जा सकते हैं. वह 'सॉलिडैरिटी' भी, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया.

अपने देश-काल के शरों से भरपूर बिंधी हुई, भरपूर जागी हुई और अपने समकालीनों-परवर्तियों की भाव-ऊर्जा तथा बुद्धि-ऊर्जा को भी भरपूर उकसाने वाली प्रतिभा और संवेदना भला किस लेखक में सबसे अधिक उजागर हुई है? किसके सृजनात्मक और चिंतनात्मक कृतित्व में संस्कृति और परिस्थिति द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों का सबसे खरा और पर्याप्त प्रत्युत्तर मिलता है? किसकी रचनाओं में एक समग्र भारतीय अस्मिता की पहचान उत्तरोत्तर निखरती गई है? किसमें समकालीन भारत के संकट की यथातथ्य सुपरिभाषित तीखी पहचान उजागर हुई है? आधुनिक हिंदी रचनाकारों में अज्ञेय इस श्रेय के सर्वोच्च अधिकारी हैं.

जिस प्रवृत्ति को आपने लक्ष्य किया है, उसे व्यापक स्तर पर उद्घाटित किया जा सके तो इस व्याधि से मुक्त होने की राह भी दिखने लगेगी. एक भिन्न संदर्भ में, 'हिंद स्वराज' के संदर्भ में, गांधी जी ने जो बात कही थी उसी को मैं यहां हिंदी के वैचारिक और साहित्यिक स्वराज के संदर्भ में भी दोहराना चाहूंगा. और वह यह कि "अपनी ही गुलामी में खुद सहायक होने के लिए कोई बंधा नहीं है." चतुर्वेदी जी की पुस्तक से एक उद्धरण देकर अपनी बात समेटना चाहूंगा. "कविता को राजनीति और विचारधारा के सर्वग्रासी चरित्र से इसलिए भी बचना है क्योंकि समकालीन जीवन में इनकी गहरी सांठगांठ संचार माध्यमों से है. यदि कविता राजनीति के प्रभाव में रहती है तो उसे संचार माध्यम का अनुचर होना होगा. विचारधारा-राजनीति-संचार साधनः यह संयुक्त मोर्चा है जो स्वाधीनता और सर्जनात्मकता को अपने अनुकूल नहीं मानता और जिसकी मूल प्रकृति तात्कालिकता की है जबकि कविता सर्जनात्मकता का सर्वश्रेष्ठ रूप है. यों कविता का अपना और बृहत्तर समाज दोनों का हित कविता की स्वायत्तता में है. स्वायत्त होकर ही कविता समाज और व्यवस्था-तंत्र में प्रतिपक्ष का स्थायी दायित्व निभा सकेगी और मनुष्य की सांस्कृतिक प्रदूषण से सुरक्षा कर सकेगी."

कहना न होगा कि बात यहां कविता तक ही सीमित नहीं है. यहां जो विशेषतः 'कविता का पक्ष' है, वह सामान्यतः समूचे साहित्य का, रचना मात्र का पक्ष है. जहां तक आज का हिंदी साहित्य इस अर्थ में अपनी स्वायत्त गरिमा को निभा सका है, वहां तक वह आपके छठे प्रश्न में उल्लिखित 'राष्ट्रीय समाज की अस्मिता' को ईमानदारी से प्रस्तुत कर सका है, ऐसा मानना अनुचित न होगा.

मूल प्रश्न है मूल्यों में आस्था का

—पंकज बिष्ट

वैचारिक प्रतिबद्धता और लेखकीय स्वायत्तता में मुझे तो किसी तरह का विरोधाभास नहीं नजर आता है.

—पंकज बिष्ट

लेखक की दुनिया को मैं बाकी दुनिया से अलग नहीं मानता. फिर भी उसकी एक स्वायत्तता होती है जो शेष समाज से इस मायने में भिन्न होती है कि उसके आदर्श और मूल्य कहीं अधिक ऊंचे होते हैं पर इसकी जड़ें पूरी तरह समाज विशेष में ही होती हैं. लेखक की दुनिया में नैतिक मूल्य और आदर्श सबसे महत्वपूर्ण होते हैं इसलिए जिस मूल्यहीनता और अनैतिकता के संकट से हमारा समाज आज गुजर रहा है उसको देखते हुए हिंदी साहित्य और हिंदी समाज के संदर्भ में, या हमारे पूरे समाज के संदर्भ में, ये कई गुना महत्वपूर्ण हो जाते हैं. साहित्यकार की स्वायत्तता वास्तव में इस स्वायत्तता को हासिल कर पाने की क्षमता और प्रतिबद्धता पर निर्भर करती है. लेखन चूंकि मात्र मनोरंजन या समय काटने की एय्याशी नहीं है, इसलिए उस लेखक की रचना में इन मूल्यों की झलक स्वायत्तता का मानदंड होती है. लेखक इस मायने में समाज से अलग हो सकता है कि वे परंपरागत मूल्य और मान्यताएं जो व्यापक संदर्भ में समाज और मानव के हित में न रह गई हों, उनका सक्रिय विरोधी होता है. इसलिए अगर लेखक इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील और संघर्षरत नजर आता है तो वह अपनी स्वायत्तता का लाभ उठा रहा होता है.

जहां तक वैचारिक प्रतिबद्धता का सवाल है, मुझे इसमें और लेखकीय स्वायत्तता में किसी तरह का विरोधाभास नहीं नजर आता है. वैचारिक प्रतिबद्धता मूलतः समाज को समझने की एक दृष्टि प्रदान करती है और इस अर्थ में वह चीजों को हमारे सामने सिलसिलेवार रखकर ज्यादा स्पष्ट कर देती है. प्रतिबद्ध लेखन की ओर इशारा करते हुए आपका आशय मूलतः मार्क्सवादी विचारधारा के मानने वालों पर अंगुली उठाने से है. सच बात यह है कि मार्क्सवादी विचारधारा अपनी वैज्ञानिकता के कारण आज भी सर्वाधिक प्रासंगिक और सार्थक है. कठमुल्लापन, चाहे वह किसी भी विचारधारा में हो, यहां तक कि भौतिकशास्त्र तक में क्यों न हो, गलत नतीजों की ओर ले जाता है. एक बार एक फ्रांसीसी लेखक ने मुझसे व्यंग्य से कहा कि आप लोग बिना समझे-बूझे मार्क्सवादी विचारधारा को अपना लेते हैं. इस पर मेरा उत्तर था, हमारी परिस्थितियों को देखिए और बतलाइए हमें किस विचारधारा को अपनाना चाहिए. उनके पास उत्तर नहीं था. मैं यह बात जोर देकर कहना चाहता हूं कि पिछले करीब पचास-साठ वर्षों का उत्कृष्ट हिंदी साहित्य इसी विचारधारा के मानने वाले लेखकों की उपज है.

जैसा कि मेरा शक था, प्रतिबद्धता यहां मार्क्सवाद को गलियाने के लिए ही संदर्भित है. किसी भी समाज का साहित्य मूलतः उस समाज के प्रति, जिसके कारण और जिसकी पृष्ठभूमि में वह लिखा गया है, वफादार व उपयोगी हो, यही उसकी सार्थकता है. मुझे यह प्रश्न हास्यास्पद लगता है कि हिंदी साहित्य समाजवादी देशों में क्यों नहीं पढ़ा जा रहा है? साहित्य की सार्थकता न इस बात में है, न ही उसका मूल्यांकन इस बात से होता है कि वह किन्हीं विशेष देशों में पढ़ा जा रहा है या नहीं, बल्कि इस बात से होता है कि वह अपनी कलात्मकता व मानवीय सरोकारों को किस तरह अभिव्यक्त कर रहा है और इसी बूते वह अपनी सार्वकालिकता व सार्वदेशिकता सिद्ध करता है.

आज हम जिस दौर से गुजर रहे हैं वह समय एक सीधे-सरल समाज का नहीं है, जिसे आप सुविधापूर्वक एक पात्र के माध्यम से अभिव्यक्त कर सकें. समाज की जटिलताएं इतनी बढ़ गई हैं कि किसी के लेखक के लिए इन सबको किसी एक रचना में समेट पाना संभव नहीं रह गया है. शायद यही कारण है कि बार-बार यह कहा जाता है कि आज के दौर में कोई महान रचना (महाकाव्य या उपन्यास) उस अर्थ में नहीं हो सकती जिस अर्थ में उन्नीसवीं शताब्दी या बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक होती रही है. इसलिए यदि हम समाज को समझना चाहते हैं तो उसे किसी एक पात्र के माध्यम से नहीं बल्कि एक दौर विशेष में लिखे गए संपूर्ण साहित्य के माध्यम से ही समझ सकते हैं.

ऐसा कोई भी साहित्य, जो ईमानदारी से अपने समय के यथार्थ को अभिव्यक्त करता है वह उस समाज की अस्मिता को अभिव्यक्त कर रहा होता है. इसलिए यह प्रश्न कि आज का हिंदी साहित्य देसी या राष्ट्रीय समाज की अस्मिता को ईमानदारी से प्रस्तुत कर रहा है कि नहीं, अपने आप में खतरनाक लगता है. यहां इच्छा यह जानने की नहीं है कि लेखक अपना कार्य कितनी ईमानदारी से कर रहा है बल्कि यह जानने की है कि वह समाज विशेष और उसके शासक वर्ग के हितों का किस तरह से समर्थन कर रहा है. यहीं आकर वास्तविक स्वायत्तता का प्रश्न आता है. जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं, मूलतः लेखक के लिए जरूरी यह है कि वह जिन मूल्यों पर विश्वास करता है, उन्हें अभिव्यक्त कर रहा है या नहीं? अगर वह उन्हें अभिव्यक्ति कर रहा है तो यदि वह तत्कालीन समाज के तथाकथित देसी और राष्ट्रीय हितों के खिलाफ भी जाते हैं तो मुझे इसमें कोई खराबी नजर नहीं आती.

साहित्य की राजनीति एक तरह से साहित्य का अविभाज्य अंग है. उठापटक, जोड़-तोड़ का शिकार बड़े-बड़े लेखक होते रहे हैं. मुझे नहीं लगता कि यह किसी एक दौर में नहीं रहा होगा. अगर हिंदी संदर्भ में ही कहें तो कबीर और तुलसीदास भी इसके शिकार हुए हैं. पर इन बातों का अंततोगत्वा विशेष महत्व नहीं होता, क्योंकि अंततः रचनाकार अपनी रचना के कारण ही जीवित रहता है.

स्वायत्ततावाद से साहित्य और समाज में अलगाव बढ़ा

—मंगलेश डबराल

महान रचना तो हारे हुए लोग ही करते हैं, या वे जिनमें ग्लानिबोध हो. हिंदीभाषी समाज तो विजेता जाति की तरह है.

—मंगलेश डबराल

स्वायत्तता एक भ्रामक शब्द है. राजनीति ने हमारे समाज में जिन शब्दों को दूषित और प्रायः निरर्थक बना दिया है उनमें स्वायत्तता भी है. हिंदी में एक खास साहित्यिक धारा ने इसे मान्यता देने के काफी प्रयत्न किए, पर यह अवधारणा के रूप में जगह नहीं पा सका. दरअसल स्वायत्त कोई नहीं है. वह भी नहीं जो अपने को स्वायत्त घोषित करता है. हमारी रोजमर्रा की भौतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक संसार के कुछ स्वायत्त होने की बात की जा सकती थी, पर हम पाते हैं कि आध्यात्मिक संसार भी घोर और अकसर पतित किस्म की भौतिकता में डूबा हुआ है.

साहित्य में कुछ समय तक कहा जाता रहा कि लेखक अपने एक स्वायत्त, समांतर संसार की रचना करता है. वही उसका नियंता और नियामक भी है. वह हिंदी में आधुनिकतावाद का दौर था जो नई कविता आदि से होता हुआ अकविता जैसे 'असामाजिक' प्रलाप तक आया कुछ अतिरेक से काम लें तो कह सकते हैं कि हिंदी में स्वायत्ततावादी आग्रहों ने साहित्य और समाज के बीच अलगाव पैदा करने का काम किया. अज्ञेय आधुनिक लेखकीय स्वायत्तता में विश्वास करते थे और हज़ारी प्रसाद द्विवेदी देसी गैर आधुनिक लेखक माने जाते थे, पर आज हम पाते हैं कि हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ज्यादा आगे तक देख पाए, उनके उपन्यासों की अंतर्दृष्टि एक बड़ी साहित्य-दृष्टि बन गई है. दूसरी ओर अज्ञेय के उपन्यास उस समय से आगे नहीं बढ़ पाए जब वे लिखे गए थे. असल में हिंदी में कई लेखकों के साथ ऐसा हुआ है कि उनकी ज्यादातर रचनाएं अपने ही दौर को अभिव्यक्त करती आ रही हैं.

अच्छा साहित्यकार खुद को स्वाधीन तो जरूर महसूस करेगा, पर स्वायत्त नहीं. स्वाधीनता एक मूल्य है और अनेक बार या तरह-तरह की गुलामियों के समय में वह आंतरिक या फिर एक कल्पित मूल्य भी हो सकता है, जबकि स्वायत्तता एक विशेषणपरक स्थिति है. पोलैंड के प्रसिद्ध कवि तदेउश रूजेविच एक कविता में कहते हैं कि नेता, अफसर, पुलिस, पादरी और धर्मतंत्र के मठाधीशों को कवि और कविता की जरूरत नहीं

है लेकिन कवि को उनकी बहुत जरूरत है. ऐसी ही एक घटना अंग्रेज कवि डब्ल्यू एच. ऑडेन के बारे में कही जाती है कि एक विश्वप्रसिद्ध बीटल गायक ने कहा कि आपका नाम कभी नहीं सुना. इस पर ऑडेन ने कहा: "कोई बात नहीं, मैंने आपका नाम खूब सुना है."

आशय यह है कि समाज से जुड़े बिना लेखक का काम नहीं चल सकता. वह साधारण मनुष्य की तरह दुखों और खुशियों के बीच रहता है, उसकी नियति साधारण मनुष्य जैसी ही है. और हो सकता है कभी ऐसा समय आए कि समाज को उसकी आवश्यकता न रह जाए तब भी वह समाज में होगा, उसकी तरफ लौटता रहेगा.

मेरी जानकारी में प्रतिबद्धता को लेकर कोई सिर-फुटौवल नहीं हुई. साहित्य अगर शब्दों के अर्थ की रक्षा करता है तो 'सिर-फुटौवल' जैसे शब्द का इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए.

यह जानी-मानी बात है कि समाजवादी (या पूर्व समाजवादी?) देशों में साहित्य के प्रति, लिखित शब्द के प्रति गहरा अनुराग रहा है. वे अपने लेखकों की रचनाओं, यहां तक कि उसकी कलमों, लिखने के कागजों और जूतों को भी संभाल कर रखते आए हैं. उन देशों में समाजवाद या कम्युनिज्म के नाम पर चल रही राज्यसत्ताएं ढह गईं, देश टूट गए, पर सांस्कृतिक चेतना और संवेदना सत्ताओं पर निर्भर नहीं रहती. तॉल्स्ताय, चेखव, गोर्की, पास्तेरनक, यारोस्लाव साइफर्त, कारेल चापेक और ज्बीग्नीयेव हेर्बेत की रचनाएं कौन नष्ट कर सकता है? वे किसी और देश और काल में भी जीवित रहेंगी. जहां तक बचे-खुचे समाजवादी देशों में हिंदी साहित्य के प्रति सजगता का सवाल है, वह हमारी नहीं, उन देशों की चिंता का विषय होना चाहिए. पहले भी सोवियत संघ और पूर्व यूरोपीय देशों से हमारे साहित्यकारों के रिश्ते राजनैतिक, सरकारी या पार्टी स्तर पर ही थे. इसमें लेखकों को जो कुछ 'लाभ' होता था वह ग़ालिब की तर्ज पर 'दिया है ख़ल्क को भी ताकेवां नजर न लगे/बना है ऐश तजम्मुल हुसैन खां के लिए' जैसा ही था.

पिछले तीन-चार दशकों में अपने समय को स्वर देने वाले सबसे प्रमुख हिंदी रचनाकार का चयन काफी कठिन है क्योंकि अनेक बड़े कृतिकारों ने यह काम किया है. इनमें से कई कवि आज सौभाग्य से हमारे बीच हैं भी. पर पहला नाम मेरे अनुसार, निश्चित ही गजानन माधव मुक्तिबोध का है जिन्होंने शायद पहली बार हिंदीभाषी समाज के उस राजनैतिक दुःस्वप्न और नैतिक संशय को दर्ज किया जिससे आज हम सब घिरे हुए हैं. मुक्तिबोध शायद अकेले लेखक हैं जिन्होंने विचार और संवेदना के बीच एक असंभव-सी लगने वाली एकता अपनी रचनाओं में हासिल की है.

मुझे लगता है कि ऐसा साहित्य जो एक दूसरे समाज के सारतत्व को, उसकी शरीर आत्मा को सामने रख सके, हिंदी में नहीं लिखा जा रहा है. शायद किसी वैचारिक-नैतिक या भावनात्मक संकट और यंत्रणा का सामना करने वाला समाज महान साहित्य की संभावना पैदा करता है. हिंदीभाषी उत्तर भारतीय समाज का व्यवहार एक अरसे से एक विजेता जाति की तरह है. वह अपनी सांस्कृतिक दरिद्रता और वैचारिक शून्यता के बावजूद संतुष्ट और जीता हुआ महसूस करता है. महान रचना तो हारे हुए लोग ही करते हैं. या वे लोग जिनमें कोई ग्लानिबोध बचा हो.

हिंदी आलोचना रचनाशीलता को पहचानने में अक्षम रही है—यह सभी कहते-जानते हैं. 'किसी को स्थापित करने या कूड़ेदान के हवाले करने की प्रवृत्ति' से मुक्त होने का रास्ता यही है कि हम किसी के द्वारा स्थापित होने और किसी के द्वारा कूड़ेदान में फेंके जाने से भी इनकार करते रहें.

हमारे साहित्य ने हिंगरेजी समाज की रचना की है

—बटरोही

एक लेखक होने के नाते मुझे हमेशा महसूस होता था कि लेखक के पास अपनी एक स्वायत्त दुनिया अवश्य होनी चाहिए, जो शायद मौजूदा दुनिया के समान ही जीवंत लेकिन अधिक आकर्षक और जीने योग्य होती है. हिंदी की जिस नई साहित्यिक दुनिया में मैंने कदम रखा, वह अविश्वासों और निहायत निजी सरोकारों की एक दुनिया थी, जहां हरेक बात का व्यंग्यार्थ ग्रहण किया जाता था. धीरे-धीरे मुझे लगा कि हमारी लेखकीय दुनिया में शब्द का मूलार्थ तो दबता चला गया और व्यंग्यार्थ मुख्य हो गया. करीब बीस-पच्चीस वर्ष पूर्व जब हमारी पीढ़ी ने पत्र-पत्रिकाओं में लिखना शुरू किया था, उन दिनों (आज भी) पत्रिकाओं के द्वारा यह कहा जाता था कि पत्रिका के अनुरूप ही रचना भेजें. हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं में जो लेख-चर्चाएं प्रकाशित होती थीं, उनमें अंग्रेजी के शब्दों-वाक्यांशों का प्रयोग पढ़े-लिखे होने का प्रमाण माना जाता था. जो लेखक या पुस्तकें उद्धृत किए जाते थे वे भी हमारी धरती के नहीं, दूर यूरोप, अफ्रीका आदि देशों के लेखक होते थे जो नितांत अपरिचित, विदेशी और आतंकित करने वाले होते थे. न वे शब्द हमारी समझ में आते थे, न लेखकों से हम खुद को जोड़ पाते थे. धीरे-धीरे हिंदी के रचना-संसार की तरह हिंदी प्रदेशों का समाज भी बनता चला गया. इस रूप में आज हमारा साहित्य यथार्थवादी तो अवश्य है लेकिन उससे बना यह नया हिंगरेजी समाज किसी देसी या राष्ट्रीय समाज की अस्मिता को हमारे सामने नहीं रखता.

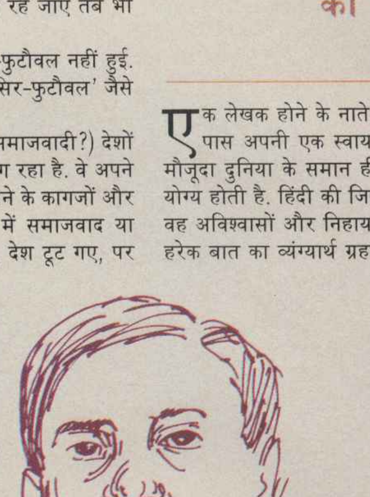

हिंदी लेखन में नैसर्गिक शक्ति का वाहक लेखक सत्ता के गलियारे में खड़ा दिखता है. इस कारण सारा संतुलन गड़बड़ा गया है.

—बटरोही

इसी दौर में देखते-देखते 'प्रगतिशील' शब्द का अर्थ 'वामपंथी' हो गया और हम छोटे कस्बों के लेखकों के द्वारा वामपंथ एक सहज साहित्यिक संस्कार के रूप में अपना लिया गया. एक और संस्कार पनपा कि हम लोग अपनी रचनाएं पत्रिकाओं को ध्यान में रखकर लिखने लगे. ज्यों-ज्यों हम साहित्य के क्षेत्र में अपनी जड़ें गहराने लगे, एक-दूसरे के प्रति हमारे सरोकार बदलने लगे. 'नमस्कार' के बदले 'लाल सलाम' का प्रयोग करने लगे और हमारे चरित्र अल्पसंख्यकों, दलितों, महिलाओं आदि के रूप में निर्मित होने लगे—ठीक कांग्रेस के मेनीफेस्टो की तरह.

और फिर लेखकों की दुनिया अपने-आप में इतनी सिमटती चली गई कि वह अपने पाठक-वर्ग के बारे में उसी तरह की हीनता का रवैया अपनाता चला गया जैसा कि भारतीय समाज में अंग्रेजी पढ़े-लिखे व्यक्ति के मन में अंग्रेजी न जानने वाले के बारे में होता है. लेखक धीरे-धीरे खुद ही अपना पाठक बन गया. लेखक की ओर से इस तरह हाथ

खींच लेने का परिणाम यह हुआ कि पाठक अपने हिसाब से खुद ही साहित्य लिखने लगा. जिस दिन लेखक ने खुद को पाठक बनाया, उसी दिन पाठक ने भी खुद को लेखक बना लिया.

यहीं पर आजादी के बाद के हिंदी साहित्य का सिंहावलोकन करने पर एक वास्तविक मुद्दा उठ खड़ा होता है कि हम लेखकों के पास क्या अपना कोई जातीय रचना-संसार था भी? हिंदी में रचनाएं तो लगातार लिखी जा रही हैं, जबकि उनमें से कोई चरित्र पैदा नहीं हो पा रहे हैं. जो चरित्र बन भी रहे हैं, उनकी अनुहारि अपने माता-पिता से नहीं मिल रही—जिसके दो ही अर्थ हो सकते हैं. या तो इन रचनाओं के माता-पिता कोई और हैं या माता-पिता के गुणसूत्र इतने प्रभावशाली नहीं हैं कि वे अपनी संतानों को अपना चेहरा दे सकें.

यह कोई छोटी बात नहीं है कि विगत चालीस वर्षों में जिस संपूर्ण हिंदी साहित्य को वामपंथी सरोकारों और चिंतन पद्धतियों के द्वारा देखा-परखा गया है, उसके एक भी रचनाकार या किसी एक रचना का दखल वामपंथी (या किसी भी विचारधारा की) मुख्यधारा में नहीं हो सका है. इस बीच देश के सभी विश्वविद्यालयों में मार्क्सवादी सौंदर्य-शास्त्र को एक पृथक विषय के रूप में मान्यता मिली है. दर्जनों पत्रिकाओं के इस विषय पर विशेषांक प्रकाशित हुए हैं, नेहरू को स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का विभाजक बिंदु माना गया है. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने साहित्य के समाजवादी-मार्क्सवादी अध्ययन के लिए करोड़ों रुपया आवंटित किया है और साहित्य और संस्कृति से जुड़ी शासकीय अकादमियां पूरी तरह वामपंथ के रंग में रंगी है. गरज कि हिंदी लेखक को शासकीय स्तर पर तब तक मान्यता नहीं मिलती थी, जब तक कि वह साम्यवादी, समाजवादी सोच का न हो.

शायद यही कारण है कि आजादी के बाद के राजनैतिक मॉडल में, जिसे आज के दिन बिना किसी संशय के नेहरूवादी मॉडल कहा जा सकता है, तथा हिंदी के साहित्यिक मॉडल में कोई फर्क नहीं दिखाई देता. हमारे लेखक अपने साहित्य के जरिये अपनी कोई अलग दुनिया नहीं रचते, वरन एक यथार्थवादी आलोचक की भांति सिर्फ नेहरूवादी दुनिया को पुनर्प्रस्तुत करते हैं. तब फिर स्वायत्तता की बात उठती ही कहां हैं? और अगर हम वही लिख रहे हैं जिसे सत्ता के पक्षधारी नियोजक चाहते हैं तो दो ही विकल्प बचते हैं—या तो उन राजनेताओं को भी लेखक मान लिया जाए या इन लेखकों को राजनेता की मान्यता दे दी जाए.

हिंदी लेखन में विगत तीन-चार दशकों से दरअसल, नैसर्गिक शक्ति का यह वाहक (लेखक) सत्ता के गलियारे में खड़ा दिखाई देने लगा है, इस कारण सारा संतुलन ही गड़बड़ा गया है और आम व्यक्ति की जीवन रेखा सत्ता-वर्ग की जीवन रेखा के प्रभाववश असंतुलित होती जा रही है. एक प्रकार से लेखक आम आदमी का स्थानापन्न बन गया है और उसने आम आदमी की स्वायत्त अवधारणा को बीते युग की बात बना दिया है.

हिंदी लेखकों के बीच यह संभव ही नहीं है कि जिसे हाइकमान के द्वारा स्वीकृति न मिली हो, उस पर किसी भी पत्रिका में सार्थक चर्चा प्रकाशित हो जाए. ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब संपादक जी अपनी आलोचना सुनकर किसी लेखक को मटियामेट करने की न सिर्फ धमकी देते हैं, ऐसा करके भी दिखा देते हैं. हिंदी लेखकों ने खुद ही पाठक बनकर पत्रिकाओं-पुस्तकों का व्यवसाय तो खत्म कर ही दिया है अब जो बची-खुची पत्रिकाएं हैं, उन पर अपना कब्जा जमाकर, निरंकुश तानाशाह की तरह जिसे चाहते हैं लेखक का ताज पहनाते हैं, जिसे चाहे कूड़े की टोकरी में डाल देते हैं.

कोई शिकायत करे भी तो किससे? ऐसे भी संपादक देखे गए हैं जो एक-दो शुरुआती कहानियां छाप कर कहानियों के साथ-साथ उनके लेखकों को भी गोष्ठियों-चर्चाओं में प्रेमिका की तरह ढोते फिरते हैं और हिंदी में दस गोष्ठियों की चर्चा का पुण्य एक लाख पाठकों के बराबर मिलता है. अब इससे कोई भी अंदाज लगा सकता है कि हिंदी लेखक की स्वायत्तता कौन छीन रहा है? ■

अमूल्य धरोहर होते हैं पत्र. उनमें से पूरा एक दौर झांकता है. साहित्य की विभूतियों के पत्रों का तो अपना ही विशेष महत्व होता है. दिवंगत कवि भारतभूषण अग्रवाल की पत्नी श्रीमती बिंदु अग्रवाल और 'आलोचना' पत्रिका के सह संपादक रह जाने-माने आलोचक नंदकिशोर नवल के संग्रहों से छांटे गए इन पत्रों में हिंदी साहित्य की महान शख्सियतों के आग्रहों, टकराहटों, विचारों, चिंताओं की झलक मिलती है.

वैचारिक टकराहट

भाई,

इधर आपके दो पत्र आए हैं, जिनका उत्तर चाह कर भी जल्दी न दे पाया. व्यस्तता का बहाना न बनाऊंगा, असली कारण बताना उचित समझता हूं. तीन-चार साल पहले आपको बड़ा भाई मान कर मैंने कई पत्र लिखे थे जिनमें अपने मन की कुछ दशा बताने की कोशिश की थी. साधारणतः अपने संबंध में कुछ कहते मुझे अपार संकोच और कष्ट होता है. पत्र न लिख पाने का भी यही रहस्य है. पर बिना लिखे काम चलता नहीं दीखता, क्योंकि मन नहीं मानेगा. इसलिए कुछ समय ले रहा हूं.

'प्रतीक' की योजना में स्वेच्छा से और दृढ़ विश्वासी की भांति मैंने भाग लिया था, वह मैं कहां तक निभा पाया, यह बात दूसरी है. तब काफी दूर तक प्रतीक के आदर्शों से मैं सहमत था, और सोचता था कि उससे हम साहित्य और साहित्यकारों का सहारा बनेंगे. उस समय के 'प्रतीक' एक या दो में संपादकीय में आपने आकाश के लाल या काले होने की कुछ चर्चा की थी, जो मेरे कुछ मित्रों को अच्छी नहीं लगी थी. तब भी मैंने धैर्य नहीं छोड़ा क्योंकि तटस्थता भी बल है, निरपेक्षता संयम का भी चिह्न है. साहित्य में मैं राजनीति को यथासंभव बचाए रखने का विश्वासी हूं, लेकिन लानी ही पड़े तो फिर राजनैतिक समझ भी पूरी और साफ आए. इसीलिए पिछले 'प्रतीक' में रूस और अमरीका की जो द्वेष और पक्षपात भरी तुलना है उससे मुझे विस्मय भी हुआ, और शोक भी. क्रोध भी नहीं आया, यह नहीं कहूंगा.

भारतभूषण अग्रवाल: 'प्रगति' की चिंता

'थॉट' में आप कुछ भी लिखते रहे हों, नौकरी सब कराती है. नौकरी करने का जो समझौता करता है वह फिर उससे बच नहीं सकता. पर 'प्रतीक' आपका पत्र है उसमें जो छपे उसकी जिम्मेदारी आपकी है. इसलिए, आपकी कल्चरल कॉन्फ्रेंस की जो साधारण प्रतिक्रिया हिंदी जगत में हुई, उससे चिढ़ कर या उत्तेजित होकर आपने जो लिख या लिखवा डाला है, उससे मुझे चोट पहुंची है. क्योंकि वह तात्कालिक और गौण है. वह आपकी स्थायी विचार-प्रणाली नहीं है. मैं औरों की भांति चट से यह मानने को तैयार नहीं हूं कि आपने आर्थिक अथवा स्वार्थ के कारण से प्रगति को छोड़ कर प्रतिक्रिया को अपना लिया है. आपने जो साहित्य दिया है, वह ठोस है, और मैं मन ही मन गर्व और संतोष से यह देखता आ रहा था कि प्रेमचंद के उपरांत साहित्य में धीरे-धीरे आप उभर कर आ रहे हैं, और यह बात बहुत सुख देती थी. इसलिए भाई, जल्दी में चिढ़ कर ऐसी बात छापना आपके संयत व्यक्तित्व के लिए अच्छा नहीं लगा, मुझे शर्म भी लगी. मेरी बातों पर यदि आप हंसे तो लिखना व्यर्थ हुआ, बुरा मानें तो संतोष होगा, क्योंकि बुरा मानने के लिए ही यह सब लिखा है.

'बारहखंभा' में मेरा नाम सम्मिलित कर लें, और जिस अंश को कोई और न ले रहा हो वह मुझे दे दें. इस माला में तीन नाम मैं और प्रस्तावित करना चाहता हूं, जैसा आप उचित समझें— जैनेंद्र कुमार, यशपाल, नरेश कुमार मेहता.

सादर आपका
भारत भूषण अग्रवाल

लखनऊ, 29.6.51

भारत जी,

आपके दो पत्र उत्तरापेक्षी हैं: एक का उत्तर बहुत पहले देता पर मैं 5 सप्ताह के लिए 'डूब लगा गया था', 8 जुलाई को लौटा हूं. उपन्यास लगभग पूरा लिखलाया, इसलिए अगर डाक नहीं मंगाता रहा और अखबार भी नहीं देखता रहा तो क्षम्य हूं—अपने को क्षम्य समझता हूं और आप से उदारता की आशा करता हूं.

आपका 6 जून का पत्र. उससे मन को क्लेश अवश्य हुआ, पर बुरा नहीं मान सका, और उस मामले में आपको निराश ही करूंगा. कुछ 'परप्लेक्सिंग' भी लगा पत्र, क्योंकि सोच न सका, किस बात पर आपका कथन लागू होता है. 'प्रतीक' के पिछले अंक पढ़ कर देखे. मैं समझ रहा था कि 'संख्या का तर्क' पर आप रुष्ट हैं, वह संपादकीय है और मेरा लिखा है. पर उसमें रोष का कोई कारण न दीखता था, मतभेद का तो खैर हो ही सकता है. र.स. से पूछा, उनका कहना है कि उससे पहले हलचलों में 'शांति अपील' की जो बात है उसको लक्ष्य करके आपने लिखा है. जो हो, बात बढ़ाऊंगा नहीं, संक्षेप में दो-एक बातें कहूंगा. मैं अकेला आदमी आप जितना सोचते होंगे उससे भी अधिक अकेला. इसलिए कोई मेरे बारे में क्या सोचता-कहता है, इस बात को लेकर काफी क्लेश पा सकता हूं और पाता रहा हूं. बहुत सी आलोचना और झूठे प्रचार को अमान्य करता हूं. पर 'इग्नोर' इस अर्थ में नहीं कर पाता कि चोट न लगे. अकेला न होता, कोई दल या संस्था होता, तो शायद ऐसी उदासीनता या कि 'इनवलनरेबलनेस' भी पा सकता. या कह लीजिए 'इनसेंसिटिविनेस'. इसलिए आप ने जो लिखा उससे क्लेश हुआ. पर साथ ही कृतज्ञ हूं कि आपने मुझे लिखा. वही साहस का काम है, और साहस ही उसका 'जस्टिफिकेशन' है.

आपसे सहमत नहीं हूं कि कुछ गलत 'प्रतीक' में छपा है, न तथ्य, न उनसे निकाले गए परिणाम. पर यह अनुभव करता हूं कि शायद अनावश्यक कुछ जरूर छपा है. आपके लिखने से पहले भी द्विधा मन में बढ़ रही थी कि क्या मैं अपनी शक्ति का श्रेष्ठ उपयोग कर रहा हूं? जो मैं दूसरो की अपेक्षा अधिक अच्छा कर सकूंगा, उसकी उपेक्षा करके क्या वह नहीं करने जा रहा जो दूसरे मुझसे अच्छी तरह कर सकते हैं? आपके पत्र ने उस द्विधा को और भड़का दिया—या कहूं कि उसे शांत करने में मदद की, क्योंकि यह अनुभव करके कि मैं मेरे लिए अनावश्यक उलझनों में पड़ रहा हूं, मैं स्वयं 'अपने' काम की ओर खिंच आने का उपक्रम कर रहा हूं शीघ्र ही दिल्ली भी शायद छोड़ रहा हूं, 'थॉट' भी, और सांस्कृतिक स्वातंत्र्य सम्मेलन का मंत्रित्व भी. इसलिए नहीं कि वह गलत है—वह आग्रहपूर्वक कहूं कि ठीक मानता हूं—पर इसलिए कि वह मुझ पर बोझ है और उन कामों में बाधक है जिनमें मेरी शक्तियों का लगना अधिक फलप्रद हो सकता है.

आपने 'नौकरी' के नाम पर बड़ी रियायत की है. मैं इस मामले में कम लचकीला हूं—मुझसे वैसा समझौता नहीं बन पड़ता. पर यह कहूं कि 'थॉट' में वैसा कोई प्रश्न नहीं था, मैं था भी 'साहित्य संपादक,' राजनीति पक्ष मेरे जिम्मे नहीं था; और दूसरे ऐसा कोई अवसर नहीं हुआ जब मुझसे मेरे मन के प्रतिकूल कुछ लिखाया गया हो या लिखने की आशा भी की गई हो. 'थॉट' में मुझे वास्तव में संपूर्ण स्वाधीनता रही और है; उसे छोड़ूंगा तो किसी मतभेद या उसकी किसी न्यूनता के कारण नहीं, अपने ही 'लिमिटेशन' के कारण—कि मुझसे ये सब काम निभते नहीं.

जानता हूं कि यह आपके पत्र का ठीक 'उत्तर' नहीं हुआ. पर सोचता हूं, क्या आप भी इसके बाद 'उत्तर' को अनावश्यक न मान लेंगे? यों रूस/अमरीका की तुलना की जो बात आपने कही, मैं कहूं कि मैं जो कुछ सोचता हूं उसमें मेरी बुनियादी मान्यताएं दो हैं: (1) शक्ति की दौड़—स्ट्रगल फॉर पावर—एक अनैतिक/अतिनैतिक (अमॉरल) संघर्ष है, और उसमें कोई पक्ष लेने का कोई नैतिक आधार इसलिए नहीं हो सकता. (2) राजनीति को अतिनैतिक मैं नहीं मानना चाहता, इस अर्थ में कि जितने मानवी कर्म-व्यापार हैं, उन्हें मैं नैतिक प्रतिमानों से परखना जायज समझता हूं. ''अमुक कार्य राजनीति है इसलिए 'इथिकल जजमेंट' से परे है'' यह तर्क परंपरा मुझे स्वीकार्य नहीं है.

ये आधार हैं जिन पर मैं ठीक-बेठीक को पहचानता हूं. आप इन मांगों को भी अमान्य कर सकते हैं, वह दूसरी बात है. अगर दूसरी नहीं है, पहली ही है, तो भी कहूं कि आप मेरे परिणामों को भी अमान्य कर दे सकते हैं, पर जब और उनका प्रचार करना भी मैं अनावश्यक मान रहा हूं तब आप झगड़ा करेंगे भी तो कैसे?

'कवि के मुख से' में मुझे भी ऐसा ही लगा था. मैंने पंत जी से कहा भी था कि चुनाव गलत है, और यह भी कि ''क्या मुझे अभियुक्त बना कर आपने वह जूरी बिठाई है?'' पर सुमन का वैसे कंट्रीब्यूशॅन कुछ रहा, अश्क जी सिफ़र थे और भ.च. वर्मा जी तो एंटी हैं ही—और बिना कारण! 'परिसंवाद' छप गया है, उस पर अवश्य टिप्पणी कीजिए. हमें भेजिए, छापेंगे.

आपके पलायनवादी नाटकत्रय हम छापेंगे. आपको पत्र लिखाया था. तीसरा कब मिलेगा? जल्दी भेज दीजिए न?

आपकी 'कवि मुख' से और कविताएं नहीं मिलीं. तुरंत भेजें.

दूसरे पत्र का उत्तर कल दूंगा—ताकि कुछ निश्चयात्मक लिख सकूं. 'थॉट' आदि छोड़ने की बात अभी अपने तक रखें: पत्र की कोई क्षति हो यह नहीं चाहता.आप सब ठीकठाक हैं न?

सस्नेह

वात्स्यायन

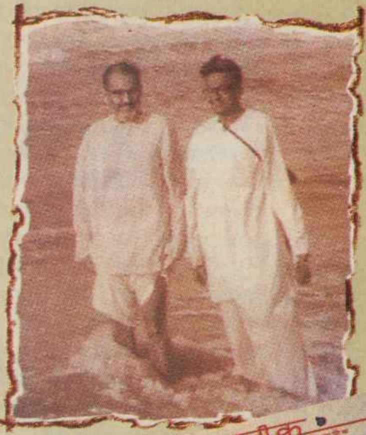

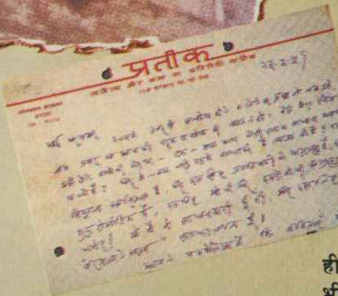

(ऊपर) अग्रवाल और अज्ञेय; (नीचे) अज्ञेय का पत्र

मुक्तिबोध प्रसंग

बिजली मिल्स, हाथरस, 18.3.1948

प्रिय भाई

...मुक्तिबोध की स्मृति आज घेरे-घेरे सी रही है, आधे दिन से. (माचवे का लेख देखा था)-और पत्र उस मर्द आदमी को अभी तक नहीं लिखा है मैंने. पत्र से क्या होगा. मगर लगूंगा तो हूं ही. पर तेज बहादुर को (तुम जानते हो न, मेरे भाई, तेज डॉक्टर हैं और दुर्ग के ही इलाके में हैं) लिखूंगा कि मुक्तिबोध पर ध्यान दें. लगता है, जैसे अपनी ही कोई नस बुरी तरह कुचली गई है. तरस अपने

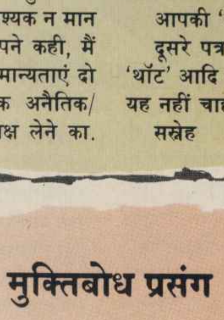

ऊपर आता है—मुक्तिबोध पर तो गर्व ही होता है. वह अब भी हम सबों से कहीं अधिक जवान है. और तगड़ा !—जो शक्ति उसके व्यक्तित्व के पीछे है, वह क्या है, यही सोचता हूं. मगर हम लोग सोचते ही रहेंगे? सोचते ही रहेंगे, क्या?

'इस नोट' पर पत्र को समाप्त तो नहीं करना चाहता था—मगर यह इतिहास की बातें हैं, और मैं भारत को पत्र लिख रहा हूं.—माचवे को सलाम कहना!

सप्रेम

तुम्हारा शमशेर

प्रिय भाई, नई दिल्ली, 26 जुलाई 1965

आप तो गोपाल, भोपाल पर ही अटक गए. मैं तो जब भोपाल में था तभी टिनोपाल तक पहुंच गया था. पर तुक्तक जोर-जबरदस्ती से थोड़े ही लिखा जाता है. हालांकि हिंदी में हास्यरस का दर्जा परंपरावादियों ने बहुत नीचा रखा है, पर हास्यरस भी तभी लिखा जाता है जब वह भीतर से फूटता है. बहरहाल. आपको कई बार पत्र लिखने की सोचता रहा पर फिजूल के दुनियावी धंधों में असली काम तो छूट ही जाते हैं. इसलिए कृपया यही मान कर क्षमा कर दें कि मैं आपको पत्र लिखना अपना असली काम मानता हूं. बहरहाल.

मुक्तिबोध की याद करना और उनकी याद में बैठक करना दोनों बातें समझ में आती हैं. पर यह समझ में नहीं आता कि जिस व्यक्ति ने साहित्य में नई सड़क बनाने के लिए मिट्टी काटना और रोड़े पीटना तक स्वीकार किया हो, उसकी याद गद्देदार कुर्सियों पर बैठ कर की जाए और मुक्तिबोध की भी हालत वही कर दी जाए जो तीन-चार सौ साल पहले सनातनी पंडितों ने क्रांतिकारी कवि तुलसीदास की कर दी थी अर्थात् उन्हें पूर्वप्रचलित स्थापित समाज का ही अंग मान कर स्वीकार कर लिया जाए. नहीं, ऐसी कोई भी बात मुक्तिबोध के विरुद्ध ही पड़ेगी. मुक्तिबोध अभाव में रहे, उनकी यादगार की गोष्ठी में वैभव का प्रदर्शन नहीं होना चाहिए, कम से कम वह गोष्ठी वैभव के प्रदर्शन पर समाप्त नहीं हो जानी चाहिए. अर्थात् जो रुपया हम आप इकट्ठा करके इस दो दिन के मेले में बहाने की सोचते हैं उस रुपये से मुक्तिबोध की कुछ और रचनाएं छाप कर साहित्य के अखाड़े में खड़ी कर देनी चाहिए. ग्यारह सितंबर को उनका प्रकाशन हो जाए तो क्या कहना. फिर आप जरूर गंभीर चर्चा के लिए एक गोष्ठी भी करें चाहे भोपाल में, चाहे उज्जैन में, चाहे राजनांदगांव में. पर गोष्ठी में वे ही सम्मिलित हों जिनके हृदय में मुक्तिबोध के प्रति भाव भी हो और स्वयं सारा खर्च वहन करके वहां तक पहुंच कर उसका प्रमाण भी दे सकते हों. जो इतना भी नहीं कर सकते वे मुक्तिबोध के साहित्य की चर्चा करने के अधिकारी नहीं हैं, ऐसा मेरी ओर से मान लीजिए. आने-जाने के लिए खर्चा देने पर तो कृष्णायन की भी गोष्ठी हो सकती है, मुक्तिबोध को ऐसे घटाटोप में मत डालिए. उससे उनकी स्मृति और भी जल्दी फीकी पड़ जाएगी और अपने आयोजन से कृपया ऐसे महानुभावों को भी दूर रखिए जो मुक्तिबोध की जरूरत के समय भी उन्हें एक भी अनुवाद-कार्य न दिला सके या जो उन्हें रेडियो-टॉक देने से कतराते रहे. पर उनके महत्वपूर्ण होते ही 'मेरे मित्र मुक्तिबोध', 'भोपाल में मुक्तिबोध', 'दिल्ली में मुक्तिबोध' का नारा लगाने लगे. मैं जानता हूं मेरी बात आपको मीठी नहीं लगेगी, पर अब सच्ची कहने से नहीं बचना चाहता.

सस्नेह आपका,

भारतभूषण अग्रवाल

प्रिय भारत जी,

पत्र के अंत में आपने यह खूब लिखा कि मेरी बात आपको अच्छी नहीं लगेगी. मुझे वह बहुत अच्छी लगी क्योंकि वह मेरे मन की बात है. 'भोपाल में मुक्तिबोध' और 'दिल्ली में मुक्तिबोध' के तो मैं भी खिलाफ रहा हूं. मैंने इसे कहा भी है राजनांदगांव के भाषण में पर इस 'एक्सपोजीशन' की जिम्मेदारी आप ही ले सकते हैं, मैं नहीं. आपने ही मुक्तिबोध के पलंग के पास खड़े हो उनके साथ चित्र खिंचवाया है और अपने तुक्तकों पर उनके कार्टून दिए. यहां भोपाल में ही नहीं, सभी जगह आपके विषय में जो चित्र है वह परम मैत्री का है. इसका एक ऐतिहासिक तारसप्तकी आधार भी है. इसे आपको ही तोड़ना होगा. खैर, माचवे जी तो नहीं आ रहे कि इस संबंधी बात यहीं निपट जाती. मैं आपका समर्थन करता और शायद परसाई माचवे का. मैं तो मुक्तिबोध जैसे शानदार शख्स को जिसकी जिंदगी चाहे लंबी नहीं रही पर जितनी रही सार्थक रही, उद्देश्यपूर्ण रही—करुणा से याद नहीं करना चाहता, शान से याद करना चाहता हूं. मैं नहीं चाहता कि मुक्तिबोध के बच्चे यतीमों की तरह देखे जावें और बचपन से उनमें असहायता का भाव बन जाए जो उनके कुल में कभी नहीं रहा. पर राजनांदगांव में मैंने यह कहा तो भाभी ने स्वीकार किया कि वे नहीं चाहते कि हमें ऐसे रुपया मिले. पर परसाई ने जो मुक्तिबोध सहायता आंदोलन के अगुआ थे, मेरा विरोध किया और 'कल्पना' में भी दबे-छुपे मुझे लिखा.

शरद जोशीः मुक्तिबोध की चिंता

खैर! यह सारा पृष्ठ ऐसा है जिसमें हमने अलग-अलग रूपों में सबको देखा है. मुक्तिबोध के अपने-पराये स्पष्ट हैं. पर मृत्यु के एक साल बाद ही यह सब कहना अजीब होगा. कुछ देर और रुक जावें तो बेहतर है. मुक्तिबोध के अंतिम दिनों पर मेरे पास बहुत बातें हैं उसमें मैं ऐसे लोगों के वे एक्शन बता सकता हूं कि सारे लोगों को शॉक लगेगा. मैं उनके विषय में लिखी हर रचना का बिटवीन-दी-लाइन मैटर बता सकता हूं. उस समय इस आंदोलन में आप हम एक होंगे. एक सिद्धांतवादी, त्रस्त व्यक्ति की ट्रेजेडी से अवसरवादी सुखी व्यक्ति लाभ लें इससे ज्यादा क्या दुखकर है.

अब रही फस्ट कलास की बात तो मैं जानता हूं कि साहित्यकारगण चाहे वे मुक्तिबोध के मित्र ही क्यों न हों, नहीं आते. शुभकामना संदेश भेज देते हैं. या कुछ और बातें जो नई समस्याएं खड़ी करें. राजनांदगांव में मुक्तिबोध की मृत्यु के बाद ही जो कार्यक्रम हुआ था उसमें सिवाय नरेश मेहता के कोई नहीं आया. मैं, परसाई और प्रमोद वर्मा, रामविलास शर्मा कवि—बस. इतने उत्साह और भावनामय वातावरण में किराये के बावजूद लोग नहीं जा पाए. फिर नागार्जुन, शमशेर, परसाई आदि की स्थिति में, माचवे जी की स्थिति से फर्क है, अतः फेअर देना जरूरी है. यह सब बहसें यहां हुई थीं. कई लोग इस मत के नहीं थे पर व्यावहारिकता जीत गई. यों ही लोग ताक में बैठे हैं कि किसी तरह मुक्तिबोध संबंधी जोश ठंडा हो और यदि कार्यक्रम असफल हुआ तो उनकी बात बन जावेगी. हम यह नहीं चाहेंगे. जिन्हें बुलाया वे मुक्तिबोध से संबंधित हैं पर वे आ सकें इस कारण किराया जरूरी है. फंक्शन का व्यय बढ़ जाने के बावजूद यह करना पड़ रहा है.

उक्त संदर्भ में बात लिखने की सोच रहा था अतः देरी हो गई. आज लिख रहा हूं. आप आएंगे और अवश्य आएंगे यह मैं मान रहा हूं. इसमें कोई गड़बड़ नहीं होगी. कोई बहाना नहीं चलेगा. हर हालत में आप यहां आ रहे हैं. विस्तार से निमंत्रणपत्र छपने जा रहा है. किसी तरह आना है. मेरे पास दिल्ली से पत्र आया है कि इस फंक्शन में श्याम परमार को भी बुलाइए. मैं उत्तर दे रहा हूं कि हम उनकी प्रतिभा से तबसे परिचित हैं जब वे भोपाल में थे, अतः बुलाना आवश्यक नहीं समझते हैं. भोपाल दिल्ली नहीं है जहां चार छोकरे इकट्ठे कर कोई भी लीडर हो जाए. बहरहाल. आप आ रहे हैं.

भाभी को नमस्कार.

आपका

शरद जोशी

जाने-माने आलोचक नंदकिशोर नवल को प्राप्त हुए पत्रों के संग्रह में से छांटे गए इन पत्रों में लोकप्रिय कविता पर शमशेर बहादुर सिंह और केदारनाथ अग्रवाल के विचार और कुछ आत्मीयता भरे पत्र प्रख्यात कथाकार अमृतलाल नागर के:

लोकप्रिय कविता क्या?

भाई जान, 23.9.78

क्या मैं कोई आलोचक हूं? क्या वाकई मैं समकालीन कविता इतनी पढ़ता हूं, या चुनकर इस तरह पढ़ता हूं कि कोई सही संतुलित राय देने की स्थिति में होऊं? मैं तो नहीं समझता. और मैं कोई आलोचक भी नहीं. जब-तब अपने सरसरी इंप्रेशंस भले ही नोट कर लूं. मगर ऐसी बातों का वजन क्या?

'समकालीन' से मतलब? सन 77-78? या पिछले पांच साल? या पिछले दस साल?

और फिर 'लोकप्रिय' ? लोकप्रिय तो कवि-सम्मेलनों में गीत हैं, सुरीले कंठ से गाए गए तराने हैं, फिल्म और रेडियो पर 'फिट' होने वाले पद्य और छंद हैं. लोकप्रिय तो काका हाथरसी और अनेक उनके संगी-साथी हास्यरस के कवि हैं.

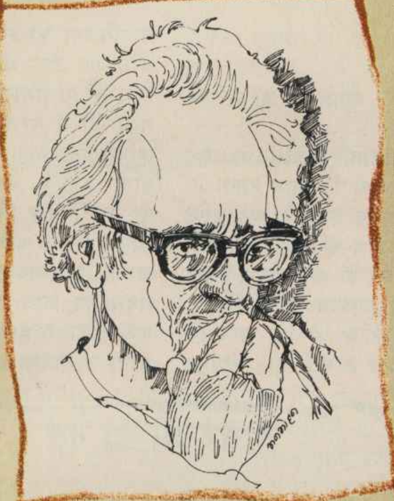

उन पर मेरे विचार?...आधुनिक हिंदी खड़ी बोली कविता अगर आज कमोबेश पढ़ी-लिखी जनता से कहीं 'जुड़ी' हुई है तो वह इन्हीं मंच के कवियों द्वारा ही. भले ही यह मंचीय मनोरंजन स्थायी न होता हो. —शेष तो प्रायः पत्र-पत्रिकाओं के पन्नों में ही 'जुड़े' हुए रह जाते हैं. पाठकों के दिलो-दिमाग तक कहां पहुंच पाते हैं? और लोकप्रिय ग़ज़लें भी हैं. दुष्यंत कुमार शायद लोकप्रिय हैं. (मगर ग़ज़लें, और अन्य हिंदी कवियों की नहीं.)

लोकप्रिय दरअसल अपने-अपने इलाकों में भोजपुरी गीत हैं जो आजकल फैल रहे हैं—किसे पर्वा उन्हें इकट्ठा करने की; या अवधी और अन्य क्षेत्रीय गीत भी होंगे. इत्यादि.

आज के पत्र-पत्रिकाओं और संकलनों में छपनेवाले हिंदी काव्य में जो शहरी-कस्बाती पाठक दिलचस्पी लेते हैं... कितने होंगे, मैं नहीं जानता... उनमें बेशक धूमिल लोकप्रिय होंगे; सर्वेश्वर; रघुवीर सहाय; जगूड़ी; कभी-कभी और भी अनके कवि. —इस शहरी सीमा में 'लोकप्रियता' के जुमरे में सर्वेश्वर और धूमिल ही होंगे; शायद. मैं जानता नहीं.—

बाकी, इस बहस से अलग, एक बात पर मैं इन दिनों हैरान रहा हूं. फैज अहमद फैज जबसे भारत में इस बार आए हैं, वह जहां-जहां भी गए, बंबई, हैदराबाद, लखनऊ, चंडीगढ़, अलीगढ़ भोपाल... जहां-जहां भी गए, उनका ऐसा प्यार-भरा और अह्लादभरा—दिल के दर्द से भरा, कह सकते हैं—स्वागत हुआ कि.... कविता की लोकप्रियता की बात जहां तक है—दिलों में बसी हुई चीज; यानी जो हमारी अंदरूनी और परिवेशगत दर्द और दुख और उनके कारण और उपचार की समस्याओं के पहलुओं से लबालब है—ऐसी चीज, लोगों ने महसूस की, कि उनके बीच अकस्मात उपस्थित है. यह कविता सारे सीमा-बंधनों को तोड़ने में, सारे भाषा-देश जाति-आदि पूर्वग्रहों को तोड़ने में, सहज ही, अनायास ही कामियाब हुई.—अस्तु, मैं आलोचक नहीं, क्या कहूं. 'धरातल' की परिचर्चा में शामिल विद्वानों के मत-मतांतरों से यथासमय लाभान्वित हो लूंगा मैं भी—

फुटनोटः नमूने के लिए मुलाहजा हो 'हिरावल' का ताजा अंक, जो अभी-अभी मेरी नजर पड़ी.

प्रिय बंधु 25.9.78

यह पैरा भी जोड़ लें मुख्य नोट के साथः- सवाल यह भी है कि 'लोकप्रिय' किस वर्ग में, किस क्षेत्र में. और कहां, किस विधा में भी. (गीत, मुक्तछंद; कव्वाली-टाइप, लोकगीत-टाइप, गजल-टाइप कविता; या भजन-टाइप.)

यह डायलाग मुझ जैसे लोगों से अधिक ऐसे गंभीर रचनाकार (मंचकवि) जैसे वीरेंद्र मिश्र, बलवीर सिंह 'रंग', वगैरह के सहयोग से अधिक उपादेय सिद्ध हो सकता है—इन कवियों की पीढ़ी में जो नए कवि जैसे रमेश रंजक व अन्य नए कवि हैं, वे और भी अधिक रोशनी लोकप्रिय कविता की समस्याओं पर डाल सकेंगे. रचना और मंच पर संप्रेषण दोनों ही महत्वपूर्ण अंग हैं ऐसी कविता के. मैं बिलकुल ऐसी कविता के पक्ष में हूं, बशर्ते कि वह सामान्य जनता की वास्तविक समस्याओं से सच्चे भावात्मक धरातल पर, नैसर्गिक प्रतिभा के माध्यम से, जुड़ती हो. रचनाकार में नैसर्गिक और, फोर्सफुल प्रतिभा का होना जरूरी है. यों तो अभ्यास के लिए कई लोग कुछ न कुछ लिख लेते हैं. मैंने भी मसलन 'प्रेम की पाती' लिख डाली थी. पर मेरी स्वाभाविक गति उस ओर है नहीं. जिनकी है, वे मैदान में उतरें. विशेषकर लोकभाषा के कविः वे पढ़े-लिखे न भी हों, तो कोई हर्ज नहीं.

मैंने फुटपाथ पर बिकनेवाला साहित्य देखा है. उसके पदचिह्नों पर स-विवेक चलना श्रेयस्कर होगा.

आपका

शमशेर बहादुर सिंह

प्रेमचंद सृजन पीठ विक्रम विश्वविद्यालय
उज्जैन (म.प्र.) 27.8.81

प्रिय भाई नंदकिशोरजी,

आपका पत्र यथासमय मिल तो गया था, और मेरी आंतरिक इच्छा भी रही है कि नागार्जुन जी पर मैं कोई लंबा सा लेख लिखूं. मगर यह अजब बात है कि यहां मैं अभी तक अपने लिखने पढ़ने में जैसा चाहता हूं, व्यवस्थित नहीं हो सका. एक मुख्य कारण मेरा स्वास्थ्य भी रहा, यानी कुछ महत्वपूर्ण लिखने के लिए जैसा अपेक्षित सुकून चाहिए वैसा वस्तुतः मिल नहीं सका.

इधर कुछ जल्दी-जल्दी हिंदी विभाग के सहयोग से प्रेमचंद पीठ ने नागार्जुन जी को आमंत्रित भी किया है कि वो इस परिसर में दो

दिन के कार्यक्रमों में भाग लेकर हमें गौरवान्वित करें. तारीख *निश्चित रूप से तय नहीं हुई, सब कुछ उन पर डाल दिया गया है,* कल वो आ रहे हैं, मैं चाहता तो था कि आप भी आते मगर फिलहाल ये संभव हो न पाया कुछ विवशताओं के कारण. मेरी कोशिश है कि इस बीच कुछ नोट्स 'जॉट डाउन' करूं. अगर इन *नोट्स की कोई शकल बनती है तो मैं वह सामग्री आपकी किताब* के लिए भेज दूंगा—यदि बहुत अधिक देर नहीं हो गई है.

आशा है आप स्वस्थ होंगे. सस्नेह, शमशेर बहादुर सिंह

प्रिय श्री नवल जी, बांदा (उ.प्र.)
5.11.78

'धरातल' का सितंबर अंक कल मिला. कृतज्ञ हूं, इस अंक के भेजने के लिए.

लोकप्रियता का संबंध कविता में अंतर्निहित वस्तुवत्ता और आत्मवत्ता से है और उसमें घनिष्ठ रूप से विद्यमान रहता है. दोनों वत्ताओं की सृष्टि ही काव्य की सृष्टि होती है. यह सृष्टि सबको प्रिय लगे, ऐसा आवश्यक नहीं है. रुचि-वैचित्र्य की वजह से सभी कविताएं सभी को प्रिय नहीं लग सकतीं. वर्गभेदवाले हमारे समाज में लोकप्रियता भी वर्गभेदीय स्वभाव की होती है. कविसम्मेलन मुख्यतया मनबहलाव के उद्देश्य से एवं भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए ही वे लोग आयोजित करते हैं जो पारंपरिक मानसिकता की सार्थकता एवं सामर्थ्य के पक्षधर होते हैं और अधिकांश श्रोता भी उसी मानसिकता के समर्थक और पोषक होते हैं. इसीलिए समाजवादी मानसिकता के कवियों की कविताएं इन सम्मेलनों में सराहनीय नहीं हो पातीं और पूर्वअवधारणाओं की अभिव्यक्तियों के चमत्कार-प्रयोगों से ही जनता भाव-विभोर होती रहती है. अच्छी कविताएं कभी भी लोकमंचीयप्रियता नहीं पा सकतीं और निकट भविष्य में भी न पा सकेंगी. समाजवादी मानसिकता के कवियों को इससे हताश न होना चाहिए. जनता की जड़ता (मानसिकता की) को तोड़ना पड़ेगा चाहे देर हो. संस्कार बनने का काम समय लेगा. कविता को नीचे गिराकर उसे अवैज्ञानिक रूढ़िवादी मानसिकता के क्षेत्र में जीने के लिए नहीं छोड़ा जा सकता. सस्नेह आपका, केदारनाथ अग्रवाल

नागर जी का नेह

श्री कृष्ण जन्मभूमि 31.12.79
मथुरा-1

परमप्रिय नवल,

नए वर्ष की हार्दिक मंगल-कामनाएं. तुम्हारी समीक्षा (*'नाच्यो बहुत गोपाल'* की) पढ़ी थी, लिखने का विचार भी किया... मगर तब तक बाबा सूरदास की अंधी आंखों ने मुझे अपनी बंदिश में ले लिया. (अक्टूबर में एक बार पंद्रह दिनों के लिए आया, व्रज घूम गया. फिर 3 नवं. से यहां आकर लिखने बैठ गया.) बहरहाल दो महीने बाद कल लखनऊ जाऊंगा. 20 फरवरी को फिर यहीं लौट आऊंगा. 'खंजन नैन' व्रज में बैठकर ही लिखा जा सकता है. सूर के पदों में देखना, नैन, लोचनों की बेतहाशा भरमार है. फिर भी साहित्य के पंडितगण उसकी तड़प को नजरअंदाज करके कहते हैं कि आंखों से देखे बिना कोई इतने रंग, इतनी मनतरंगों और भाव-भंगिमाओं के वर्णन नहीं कर सकता. मेरी 'इनर आइ' अब सूर के कलाकार की लगन को देख सकती है—कैसे उसने सारे जन-जीवन को, व्रज को अपनी आंखें बनाकर कृष्ण को देख लिया. गोपालजी, खगेंद्र के प्रति नववर्ष में मंगलकामनाएं देकर मेरी याद दिलाना. चि. चिंतन, चि. पूरबी, सौ. रागिनी (जहां तक याद है यही नाम है) सबको मेरा बहुत स्नेह और आसीसें.

अमृत.

परमप्रिय नवल, 29.1.81

बधाई कार्ड (*पद्मभूषण की उपाधि प्राप्त होने पर*) मिला. अखंड सौभाग्यवती रागिनी, चि. चिंतन और भाग्यवती चि. पूरबी सह स्वस्थ और सानंद होंगे. 26 की सुबह से यह सम्मान चक्रवात मुझे आसमान में नचा रहा है. लोगों से मिलने, दूरभाष पर बातें करने और अनगिनत तारों-चिट्ठियों के उत्तर देने में ही पूरे दिन और रातों का बहुत सा समय बीत रहा. बेटे कहने लगे, कार्ड छपवाए देते हैं, आप हस्ताक्षर कर दीजिएगा. मैं सोचता हूं जिसने पत्र या तार लिखकर इतने प्रेमभाव से मुझे भेजा है, उसे अपने हाथ से पत्र लिखकर ही यदि उत्तर दूंगा तभी किसी हद तक हक अदा हो पाएगा. इसलिए एक सप्ताह तो इसी काम से बंधा रहूंगा. 'कविता की मुक्ति' किताब मिल गई. एक चौथाई पढ़ भी गया पर अभी उसके संबंध में लिख पाना कठिन है. खैर कुछ दिनों बाद सही.

शुभाकांक्षी अमृतलाल नागर

परमप्रिय नवल, 17.9.84

'आलोचना' में मार्क्सीय पाठकों की प्रदर्शनी* अब तक लग चुकी होगी. मैंने तुम्हें नाराज करके भी उस नुमाइश में अपने को न जोड़ना ही अच्छा समझा.

मार्क्स, मार्क्स और एंगेल्स, एंगेल्स की जो कुछ पुस्तकें इस समय मेरी अलमारी में मिलीं वह पढ़ चुका हूं. यह सब किताबें '45-46 तक की खरीदी हैं. बाद को प्राप्त 'इसकस' से पा.ई. लेनिन और अन्य पुस्तकों का हवाला यहां नहीं दे रहा.

डेढ़ महीने से रीढ़ की हड्डी के निचले भाग में विकारवश घर से बाहर नहीं निकला. घर में भी व्यक्तियों के सहारे बिना आवश्यक कामों के लिए भी नहीं चल पाता था. अब छड़ी के सहारे कुछ-कुछ चल फिर लेता हूं.

शेष ठीक.

सौ. रागिनी, चि. चिंतन और भा. पूरबी सहित तुम्हें हार्दिक शुभाशीष. पत्र की पहुंच अवश्य सकार देना.

तुम्हारा अमृतलाल नागर

1.मैनीफेस्टो ऑफ द कम्युनिस्ट पार्टी
—के. मार्क्स ऐंड एफ. एंगेल्स
2. कैपिटल (1,2,3)—मार्क्स
3. थ्योरिज़ ऑफ द सरप्लस वैल्यू (1,2)
4. सेलेक्टेड वर्क्स —मार्क्स ऐंड एंगेल्स
5. द जर्मन आइडियोलॉजी—मार्क्स ऐंड एंगेल्स
6. द ओरिजन आफ द फेमली, प्राइवेट प्रापर्टी ऐंड द स्टेट
—एफ. एंगेल्स
7. अनार्किज्म ऐंड एर्नाको-सिंडीकलीज्म
—मार्क्स, एंगेल्स ऐंड लेनिन.
8. धर्म—मार्क्स और एंगेल्स, अनु. रमेश सिन्हा
(यह '50 के बाद की है.)

★ 'आलोचना' के मार्क्सकेंद्रित अंक के लिए हिंदी लेखकों को एक प्रश्नावली भेजी गई थी, जिसमें उनसे यह भी पूछा गया था कि उन्होंने मार्क्स की कौन-कौन सी पुस्तकें पढ़ी हैं.

परमप्रिय नवल, 2.3.88

तुम्हारा कार्ड पाकर तुमसे मिलने जैसी प्रसन्नता ही हुई. घर भर के चेहरे आंखों के सामने आ गए. इस बार जब पटना आऊंगा तो चि. बेटी पूर्वा पहले से लंबी और बड़ी मिलेगी, चि. चिंतन भी अब रामकृपा से अपनी यूनिवर्सिटी की शिक्षा में बहुत बालिग होकर मुझे दिखलाई देगा. तुमसे और सौ. रागिनी से मिलकर तुम सब लोगों के साथ कुछ समय बिताकर मुझे जो आनंद प्राप्त होगा वह मेरी कल्पना में अभी से ही स्फूर्त हो उठा है. लाख रुपयों का अब वह पुराना भाव नहीं रहा, हां राजेंद्र बाबू के नाम के साथ जुड़ा हुआ सम्मान पाना मेरे लिए सचमुच सौभाग्य की बात है. जिस पाटलिपुत्र से वर्ष, उपवर्ष और पाणिनि जैसे महान विद्वानों ने प्रतिष्ठा पाई वह भूमि मुझे भी सम्मान प्रदान करेगी, इस विचार से भी मुझे प्रसन्नता हुई है. सबसे बड़ी बात कि सरकारी खर्च पर अपने प्यारों के प्यारे-प्यारे चेहरे फिर देखने का अवसर पाऊंगा इस लाभ से अत्यंत प्रसन्न हूं. बाकी मिलने पर. ठाकुर (खगेंद्र) को मेरा स्नेहस्मरण.

तुम सौ फीसदी मार्क्सिस्टों को राम-राम कहने से मुझे बहुत आनंद लाभ होता है. प्रियवर रामविलासजी से तो जै बजरंगी तक हो जाती है इसलिए तुम सबको सस्नेह राम-राम.

सदा तुम्हारा

अमृतलाल नागर

MUSIC TODAY

ऋतुओं की रागिनी

होरी, रसिया, चैती, कज़री, झूला, और सावनी

ऋतुओं का चक्र बड़ा सुहाना और उनके साथ जुड़ी एक जीवंत परंपरा सुहाने गीतों की

इस परंपरा को आगे बढ़ा रही है चार सुप्रसिद्ध गायिकाएं — एक एक घंटे के चार कैसेंटो में

कृप्या ध्यान दें :
प्रति कैसेट 55 रु. (सभी कर सहित). कैसेट कम से कम चार की संख्या में ऑर्डर कर सकते हैं. डिलिवरी के लिए अतिरिक्त 15 रु. भेजे. पेशकश/दरें केवल भारत में लागू हैं. कैसेट रजिस्टर्ड / पोस्ट/कूरियर से भेजे जायेगें. डिलिवरी के लिए 4-6 हफ्ते का समय दें. चैक/डिमांड ड्राफ्ट म्यूजिक टुडे को देय हो. कृप्या संपर्क करें : MUSIC TODAY, P.O. BOX 29, NEW DELHI-110 001.
कैसेट के नं॰ सहित अपना ऑर्डर, शुल्क, तथा अपने नाम और पते के साथ भेजें, या अपने पास के कैसेट विक्रेता से संपर्क करें।

शोभा गुर्टू B 94002

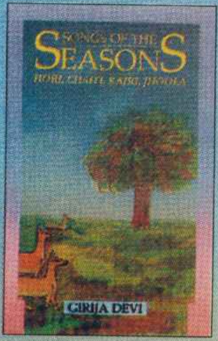

गिरिजा देवी B 94001

शुभा मुद्‌गल B 94004

लक्ष्मी शंकर B 94003

Satish Sud Graphics

अलविदा, **ओनिडा २१!** जलसमाधि मुबारक! वैसे तो चुल्लुभर पानी ही काफी था।

पर शुकर है तुम्हारा अकड़बाज़ चेहरा अब समंदर की गहराईयों में इस तरह गुम हो जायेगा कि बस, कुशल गोताखोर भी ढूंढ न पाएंगे।

तुम्हारे अहंकारी फुल-स्क्वेयर-ट्यूब में रिसते हुये नमकीन पानी के बुलबुले मेरे खयालों को झंकृत करेंगे।

तुम्हारे अछूते फीचरस्, तुम्हारा खानदानी चेहरा, तुम्हारा ३०-चैनल् प्री-सेट मेमोरी आज से भूल जायेंगे लोग।

पूछो तो कहेंगे, कोई था जो शहर भर में ईर्ष्या की आग फैलाना चाहता था... पर अफसोस, उसके इरादों पे बहुत सारा पानी फिर गया!

ओनिडा २१

पड़ोसियों की *जलन.* आपकी *शान.*

Avenues:O:177:94

उपन्यास अंश

एवं स्मृति-रेख

श्रीलाल शुक्ल

मंजूर एहतेशाम

अशोक वाजपेयी

MASTERPIECES
INSPIRED BY NATURE
'Garden at Argenteuil'
by Claude Monet, 1875.
Six classic fragrances
Misty Rose
Jasmine Blossom
Spring Lavender
Sandal Spray
Brut
Musk
Created by J.K. Helene Curtis
PREMIUM
Room Freshener
PREMIUM
ROOM FRESHENER
HELENE CURTIS
AFTER SHAVE COCONUT SHAMPOO PERFUME SPRAY SHAVING CREAM TALCUM POWDER STYLING GEL
AFTER SHAVE GEL AFTER SHAVE MOISTURISER BODY DEODORANT
IMPULSE/JKHC/RS1192E

परछाइयों के पीछे

• श्रीलाल शुक्ल • चित्र: गोपी गजवानी

सत्ता-मोह की कोई उम्र नहीं होती. लेकिन अतीत की आभा में ही जीने वाले राजनीतिज्ञों के लिए बदलते वक्त के साथ कदम मिलाकर चल पाना परछाइयों के पीछे भागने जैसा ही होता है.

अब एक सप्ताह बाद उनकी गवर्नरी का दूसरा दौर भी खत्म होने वाला था. कुछ ही महीनों में वे अस्सी पार करने वाले थे. 'महामहिम' और 'योर एक्सिलेंसी' के प्रयोग का सरकारी निषेध होने के बावजूद अपने लिए ये संबोधन सुनते-सुनते उन्हें अपनी सूझ-समझ पर इतना ज्यादा भरोसा हो गया था कि उन्हें हर दूसरा आदमी अपनी बेवकूफी में या तो हास्यास्पद दिखता था या दयनीय. उन्हें इत्मीनान था कि उनकी जैसी दुर्लभ योग्यता के आदमी के लिए कोई-न-कोई ऊंची कुर्सी हमेशा खाली मिलेगी. देश की बगटुट राजनीति में प्रधानमंत्री के इर्दगिर्द डोलने-फिरने वाले दो-ढाई दर्जन लोगों की तरह वे भी सत्तारूढ़ बने रहने को अपना मौलिक अधिकार मानने लगे थे, इसके बावजूद कि प्रधानमंत्री के आगे-पीछे डोलने-फिरने वालों में उनकी गिनती नहीं थी. भीतर ही भीतर वे कहीं अपने को प्रधानमंत्री का मार्गदर्शक और विघ्नविनाशक (ट्रबलशूटर) मानने के आदी हो गए थे. अपनी समझ में उन्होंने कई मौकों पर इस राज्य की खतरनाक राजनीति में प्रधानमंत्री को बहुत बड़े असमंजस से उबारा था. उन्हें विश्वास था कि प्रधानमंत्री उसे कभी नहीं भूलेंगे.

पिछले पखवाड़े वे राज्य की कई दर्शनीय जगहों पर अपना विदाई-भोज ग्रहण कर चुके थे और अब इस पहाड़ी शहर के ग्रीष्म समारोह का उद्घाटन करने आए थे. यहीं उनका ग्रीष्मकालीन निवास था. यहां रुककर उन्हें तीन दिन विदाई-भोजों और सौम्य सामाजिकताओं के बीच बिताने थे.

देवदारुओं से ढकी एक पहाड़ी चोटी की निगहबानी में फैले हुए अपने ग्रीष्म निवास की बालकनी पर वे अलसाए हुए बैठे थे. आलस की जड़ में उम्दा नाश्ता और गुनगुनी, सुनहरी धूप थी. उनके पास एक कॉफी टेबल पर कई अखबार और पत्रिकाएं फैली थीं, पर वे उन्हें न देखकर नीचे कस्बे की मुख्य सड़क को देख रहे थे. दरअसल, देख वे सड़क को भी नहीं रहे थे, सिर्फ उनकी आंखें सड़क पर थीं. उन आंखों में वाशिंग्टन का एक जीवंत सपना था.

उन्होंने जो सुना, उस पर आसानी से यकीन नहीं हो रहा था. वाशिंग्टन में उनके राजदूत बनकर जाने का सपना टूट चुका था.

उनके दो-एक हितैषी कुछ महीनों से दिल्ली में उनके लिए कोई काम ढूंढ़ने में लगे हुए थे. वे उन्हें बराबर भरोसा दिला रहे थे कि प्रधानमंत्री उनके विस्तीर्ण अनुभव का इस्तेमाल उन्हें किसी बड़े देश में राजदूत बनाकर करने वाले हैं. खुद प्रधानमंत्री ने उन्हें कोई खुला संकेत नहीं दिया था. बस, दो महीने पहले उन्होंने जानना चाहा था कि गवर्नरी की अवधि बीतने पर उनकी भावी योजनाएं क्या हैं, और उसी के साथ मुस्कराकर अंग्रेजी में कहा था, "हमें आपकी जरूरत है."

नीचे सड़क पर पर्यटकों की चुहलबाजी और बेफिक्री में एक खूबसूरत हिल स्टेशन की नकली संपन्नता बिखरी हुई थी. उसके बीच किसी स्विमिंग पूल के साफ पानी पर अचानक उतरा आने वाली गंदगी के धब्बों जैसे स्थानीय आबादी के लोग भी थे. मैले-कुचैले कुली, कुछ घोड़ेवाले जो घुड़सवार पर्यटकों की हिफाजत के लिए घोड़े की दुम पर उंगलियां छुवाए हुए घोड़े की ही रफ्तार से दौड़ रहे थे, कुछ खोमचे वाले, मजदूरी और भीख के बीच झूलते हुए कुछ बेपनाह लड़के!

आंखों में वाशिंग्टन का सपना न होता तब भी वे इस भीड़ को देख नहीं सकते थे. हर जटिल मानवीय त्रासदी को सुलभ मुहावरों और सैद्धांतिक शब्दजाल में डुबो देने की जो सहज क्षमता हमारे सत्तारूढ़ राजनीतिज्ञों में आ जाती है और जिसके सहारे वे आदिवासियों को सिर्फ लोककला के साथ, खेतिहर मजदूरों को प्रजातंत्र के सतर्क प्रहरी के रूप में या शोषित महिला वर्ग को भविष्य की क्रांतिदर्शी चेतना बनाकर देखने लगते हैं, वह उनमें बहुत पहले

आ चुकी थी. सत्तारूढ़ों के इस अंधेपन को हासिल करने के लिए अब उन्हें खुली आंखों में कोई दिलफरेब सपना पालने की जरूरत न रही थी.

बहरहाल, उनके सपने को तोड़ने के लिए उनका एक अनुसचिव कॉर्डलेस टेलीफोन लिये उनके पास आ गया. दिल्ली से फोन था. टेलीफोन हाथ में लेकर उन्होंने अनुसचिव को घूरा, पर इस इशारे की जरूरत न थी. वह पहले ही फोन पर होने वाली बातचीत की परिधि से बाहर चला गया था.

पहले कुछ औपचारिक, फिर स्नेहपूर्ण बेतकल्लुफी, फिर बेतकल्लुफ नाराजगी के साथ वे फोन पर बात करते रहे. उन्होंने जो सुना, उस पर आसानी से यकीन नहीं हो रहा था. वाशिंग्टन में उनके राजदूत बनकर जाने का सपना टूट चुका था.

"...पर बिपिन, वे अमेरिका में उसे राजदूत बनाकर कैसे भेज सकते हैं? फॉरिन सर्विस से रिटायर हुए उसे चौदह साल हो गए. इस बीच उसने न जाने कैसी-कैसी राजनैतिक चरागाहों में मुंह मारा है. यही नहीं, मैं जानता हूं, वह पूरी तौर से 'सिनाइल' हो चुका है...!

"क्या हो गया है इन लोगों को दिल्ली में? ऐसी जगहों पर जिन्हें भेजा जाता है उनका पुराना रिकॉर्ड नहीं देखते? कोई जांच-पड़ताल नहीं? जब वह अफगानिस्तान में ऐम्बेसडर था, वहां के अमीरों से कर्ज लिया करता था. उनका न जाने कितना रुपया उसने कभी वापस ही नहीं किया. और पश्चिम जर्मनी में उसके साथ जुड़ा हुआ चांदी की डिनर सर्विस वाला स्कैंडल! वह तो सरासर चोरी थी. उस पर मुकदमा चलना चाहिए था!

"ठीक है! वे जानें, उनका काम जाने. मैं निश्चिंत हूं.

"नहीं, यहां से फुरसत पाकर दिल्ली ही आऊंगा. कुछ दिन वहीं रुकूंगा. नहीं, किसी सरकारी अतिथिशाला में नहीं, होम मिनिस्टर साहब बहादुर की मेजबानी में तो हरगिज नहीं. अपने बेटे के पास रुकूंगा. विवेक की पुरानी शिकायत है. फिर, मुझे भी कुछ सुकून, कुछ घरेलू आराम पाने का हक है."

मगर एक छोटी-सी घटना ने उनका सुकून छीन लिया.

गवर्नरी का पद छोड़कर, उन्हीं के शब्दों में, "सारे झमेलों से फुरसत पाकर" वे कुछ दिन के लिए दिल्ली आ गए थे और विवेक के साथ ठहर गए थे. आर्थिक विकास संस्थान के निदेशक की हैसियत से अब इस विस्तीर्ण दुमंजिले बंगले में रहना विवेक की मजबूरी थी.

उस शाम वे लोग छत पर बैठे थे. उमस भरी गरमी थी. शाम को नहाने की बात उठते ही उन्होंने ऐलान किया कि वे वहीं छत पर नहाएंगे. विवेक ने बाअदब सुझाव दिया कि गुसलखाने में उन्हें ज्यादा सुविधा होगी पर उन्होंने कहा, "पता है, पर मैं पुराने दिनों की तरह नहाना चाहता हूं."

उनके साथ रियासत के दिनों वाला उनका भरोसेमंद सेवक धीरज सिंह था. रियासत के एक पुराने नौकर का एक नौजवान लड़का भी वहां पर था, वह विवेक का खाना बनाता था. फिल्मी अंदाज में उसका नाम था मुकेश. दोनों उन्हें पुराने ढंग से नहलाने लगे.

एक बड़ी चौकी छत के कोने में रखी गई. केवड़ा डालकर ठंडे पानी की कई बाल्टियां उसके पास सजाई गईं. संदल का चर्बीहीन, सुगंधित साबुन लाया गया. तब दोनों नौकरों ने उनकी काया को धोना, मलना, उस पर साबुन लगाना, फिर मलना, फिर धोना शुरू किया. इस तरह कुछ देर बाद उनके जिस्म का—और उसके वृत से कई हाथ दूर तक का—तापमान जब कुछ नीचा हुआ तो धीरज सिंह ने तौलिए से उनके सिर, गरदन, पीठ, पेट, जांघ, टांगों आदि को संभाल-संभालकर पोंछा. उसके बाद वे गीली धोती से पानी टपकाते हुए धीरज सिंह के कंधे का सहारा लेकर चौकी पर खड़े हो गए.

बाद की कार्रवाई के लिए विशेषज्ञों के कौशल की जरूरत थी. होना यह चाहिए था कि एक सेवक उनकी गीली धोती खोलकर नीचे गिराता और उसी समय दूसरा सेवक सूखी धोती से उनकी कमर और टांगों को चारों ओर से ढक लेता. इसमें कमाल इस बात का था कि कहीं से उनकी बेपर्दगी न होने पाए. यहां मुकेश एक सेकेंड के लिए चूक गया. धोती लपेटने की असावधानी में उनके अंगों की झलक दिख गई. तभी उनके ढीले हाथ का तमाचा मुकेश की नाक पर पड़ा.

विवेक अपनी जगह खड़ा हो गया था. उसने पुकारा, "बाबू जी!" मुकेश दूसरी ओर सिर झुकाकर हथेली से नाक पोंछने लगा था.

विवेक की आवाज से जैसे जागकर मुकेश अचानक घूमा, उसने तीखी निगाह से उनकी ओर देखा और झटके से नीचे के लिए जीने की ओर बढ़ा. पर चलते-चलते उसके पैर की ठोकर एक खाली बाल्टी को लगी, या शायद जानबूझकर उसने बाल्टी को ठोकर मारी और वह लुढ़ककर छत की मुंडेर से जा टकराई. अब तक धीरज सिंह ने उनकी धोती बाकायदा कमर पर लपेट दी थी और सिर झुकाकर दिखा रहा था जैसे उसके लिए कहीं कुछ नहीं हुआ है, जैसे उसने कुछ नहीं देखा है.

कुंवर जयंती प्रसाद सिंह को लगा, वे हमेशा के लिए नंगे हो गए हैं.

जब तक किसी को कुछ सूझे, या कोई किसी को पुकारकर मुकेश को रोकने की कोशिश करे, वह तेजी से जीना उतरकर बंगले के फाटक की ओर बढ़ गया.

वे कमर से धोती लपेटे कुछ पल चौकी पर खड़े रहे. फिर नीचे उतरकर धीरे से आरामकुर्सी पर बैठ गए. धीरज सिंह ने एक पेडस्टल पंखे को घुमाकर हवा का रुख उनकी ओर कर दिया.

"किसका लड़का है यह?" उन्होंने पूछा.

विवेक ने उसके बाप का नाम भर बताया, कुछ और नहीं कहा. फिर अपने पिता को कुछ ज्यादा ही खामोश देखकर बोला, "वह जा चुका है, अब वापस नहीं आएगा."

"उसके बाप को एक खत लिख दो."

"कोई फायदा नहीं, मुझे लगता है कि वह वहां भी नहीं जाएगा."

थोड़ी देर खामोशी रही, उन्होंने धीरज सिंह से टेलीफोन लाने को कहा, विवेक से बोले, "वक्त बदल गया है."

विवेक ने सहमति में सिर हिलाया पर

प्रधानमंत्री के पहले सवाल से ही उन्हें अपनी बीमारी वाली रणनीति के खोट का एहसास हो गया था. उन्हें लगा, शायद इसी कारण मंजे हुए राजनीतिज्ञ की जगह उन्हें बूढ़े रोगी के रूप में देखा जा रहा है.

उसका चेहरा बता रहा था कि बदले हुए वक्त के लिए उसके मन में जरा भी अफसोस नहीं है.

दूसरे दिन नाश्ते पर उन्हें विवेक ने बताया, ''रेड्डी साहब का फोन आया था. वे दस बजे आने वाले हैं.''

''आने दो. पर उसकी गपबाजी से मैं ऊब गया हूं. दिखाता यही है कि पी.एम. की ओर से सारे फैसले वही ले रहा है, पर उसकी हैसियत कुत्ते से भी गई-बीती है.''

विवेक ने मुस्कराकर यह अनावश्यक वक्तव्य सुन लिया. कुंवर जयंती प्रसाद सिंह को यहां आए हुए एक महीने से ऊपर हो रहा था. विवेक को पता था कि इस बीच उसके पिता कोई हैसियतदार ओहदा पाने के लिए छिपे-छिपे कई तरह की खींच-तान कर रहे हैं. वह कोई प्रतिक्रिया दिखाए बिना इन दिनों अपने ही घर में भारत सरकार की उच्चतर नियुक्तियों का दिलचस्प खेल बहुत करीब से देख रहा था. चिंता यही थी कि उसके पिता इन दिनों अपने स्वभाव के विपरीत बहुत खुली और खीझ भरी बातें करने लगे थे, जो उनके पुराने मित्रों और परिचितों के लिए किसी भी दृष्टि से सम्मानजनक नहीं थी.

उन्होंने कहा, ''तुम हंस रहे हो.''

इस बार वह सचमुच ही हंसा, बोला, ''बाबू जी, इन राजनैतिक जंतुओं में अगर सचमुच ही कोई ऐसा प्राणी यहां आए जिसकी असली हैसियत कुत्ते से बेहतर हो उसे मुझको दिखा दीजिएगा. देखना चाहूंगा कि वह कैसा दिखता है.''

रेड्डी के आने के कुछ ही देर बाद एक विपत्ति भी आई.

वह केंद्रीय मंत्री रह चुका था. बाद में—जब वह लोकसभा का चुनाव हार गया—उसे राज्यसभा में भेज दिया गया. वह आदतन हमेशा जल्दबाजी में रहता, किसी भी बात को पूरे विस्तार और तथ्यों के साथ पढ़ने, सुनने, सोचने, समझने का उसमें धीरज नहीं था. फिर भी, उसे एक बार वित्त आयोग का अध्यक्ष बनाकर कुछ दिनों के लिए उसके राज्य में प्रतिद्वंद्वी मुख्यमंत्री का मार्ग निष्कंटक करने की व्यवस्था की गई और केंद्रीय वित्त व्यवस्था को अराजक बनाने का मार्ग प्रशस्त किया गया. हाल ही में वह उस पद की लुटिया डुबोकर और प्रधानमंत्री के मुंह से ढेर-सी सार्वजनिक वाहवाही लूटकर बेकार हो गया था, पर वह बेकार बैठा नहीं था.

रेड्डी ने कुंवर जयंती प्रसाद सिंह से अपनी जल्दबाजी वाली शैली में पूछा, ''क्या कहते हैं? क्या सोचते हैं आप? भारतीय संस्कृति संबंध परिषद के बारे में? यानी, मेरा मतलब है, उसकी अध्यक्षता के बारे में?''

उन्होंने जवाब दिया, ''आप क्या सोचते हैं?''

''ले लेना चाहिए बिला हिचक! मेरे ख्याल से. आपको फिलहाल छोड़ना नहीं चाहिए. अच्छा काम है, फिलहाल के लिए!''

''ओह!'' कुंवर जयंती प्रसाद सिंह उसे देखते रहे, बोले, ''मैं समझा था ऐसा कोई प्रस्ताव आपके लिए है.''

''मेरे लिए?'' रेड्डी ने कहा, ठठाकर हंसा, ''मैं तो प्राइम मिनिस्टर की 'आइ नीड यू' का शिकार हो गया हूं. वे खामोश हैं. तीन बार यह फार्मूला बोल चुके हैं. तीनों बार उसके बाद खामोश हो गए हैं.''

उन्होंने सोचा और कहते-कहते रुके. मेरे साथ भी ऐसा हो चुका है. प्रधानमंत्री के खिलाफ मन विरक्ति से भर उठा, कहा, ''दोस्तमन, जिसने भी आपसे मेरी राय जानने के लिए आपसे कहा हो, उसे बता दें कि मैं आइ.सी.सी.आर.—क्या कहते हैं उसे—सांस्कृतिक संबंध परिषद जैसी महत्वपूर्ण संस्था की अध्यक्षता के लायक नहीं हूं, इतने बड़े पद की जिम्मेदारियां संभालना मेरे बूते का नहीं!''

रेड्डी समझ गया, हंसने लगा. वे बोले, ''उर्दू तो आप समझते होंगे. जिगर का एक शेर है:

मैं? और तेरे इश्क के काबिल? नहीं, नहीं!
मुझको मुआफ कर कि मैं तुझसा हंसी नहीं!

दोनों बूढ़े इस पर और जोर से हंसे. अचानक कुंवर जयंती प्रसाद सिंह ने अपनी छाती पर हाथ रखा, उनके चेहरे पर बेचैनी-सी झलकी, उन्हें हिचकी आने को हुई पर वह हलक से बाहर नहीं निकली. दूसरा हाथ सोफे से लटके तार की स्विच तक ले जाकर उन्होंने घंटी बजाई, विवेक को बुलाया, कहा, ''मेरे सीने में दर्द हो रहा है, बेचैनी महसूस हो रही है.'' कहकर उन्होंने आंखें मूंद लीं.

उन्हें तुरंत अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में भर्ती कराया गया जहां वे कई दिन शरीर के अंग-प्रत्यंग के परीक्षण के लिए रोके गए, बाद में और कई दिन पूर्ण विश्राम और पूर्ण आरोग्य लाभ के लिए.

एक अधिकारी ने कुंवर जयंती प्रसाद सिंह के कान के पास कहा, ''उन्हें दस मिनट बाद विज्ञान परिषद के अधिवेशन में जाना है.''

वे पहले से जानते थे, पर इसे उस अधिकारी की बदतमीजी समझते हुए उन्होंने आदतन अपनी आंखों में हैरत की चमक प्रज्ज्वलित करके उसकी ओर रोब के साथ देखा. जवाब में अधिकारी के होंठों पर अनुनय की एक मुस्कान दिखी, पर उसकी आंखों में जमी हुई अवज्ञा छिप नहीं सकी.

प्रधानमंत्री के निवास पर सहज अनौपचारिकता वाले दिन बहुत पीछे, बरसों पीछे छूट चुके थे. तब उन्हें घेरकर मिला जा सकता था. अब हफ्तों की प्रतीक्षा, मुलाकात का निश्चित समय और अवधि, सुरक्षा के नाम पर न जाने क्या-क्या!

गहरी सांस दबाकर खामोश पछतावे को लगभग अपने आप से छिपाते हुए वे प्रधानमंत्री के कमरे में घुसे. प्रधानमंत्री वहां पहले ही से एक सोफे के पास खड़े थे. उनकी पीठ बाहरी दरवाजे की ओर थी. वे सोफे की बगल में एक

छोटी मेज पर झुके हुए थे जहां एक लंबे फूलदान में गुलाब के ताजे फूल लगे थे. शायद कोई फूल गलत कोण पर हिलग गया था. वे उसी को ठीक कर रहे थे.

उनके अंदर आते ही प्रधानमंत्री ने चुस्ती से पलटकर, उनके नमस्कार के पहले ही, उन्हें नमस्कार किया. फिर हाथ के फैलाव और मुस्कान से उनको बड़े सोफे पर बैठने का इशारा किया, उनके बैठ जाने पर वे उन्हीं के पास एक दूसरे कोण पर रखे हुए सोफे पर बैठ गए जहां एक दूसरे को देखने के लिए किसी को भी गरदन घुमाने की जरूरत नहीं थी.

कमरा काफी बड़ा और बहुत खूबसूरत था, बाहरी जिंदगी के तनाव का वहां दूर-दूर तक पता नहीं था.

अपनी लोकप्रिय तस्वीरों वाली प्रसिद्ध मुस्कान अब भी प्रधानमंत्री के चेहरे पर थी. मधुरता, आत्मीयता और उसके साथ थोड़ी दूरी की मिलावट से ईजाद की गई अपनी वैसी ही लोकप्रिय आवाज में वे कह रहे थे, ''अब आप कैसे हैं?''

''बिलकुल ठीक हूं—आपकी कृपा से.''

''इंस्टीट्यूट में काफी दिन रहना पड़ा? वे गुर्दे की तकलीफ के बारे में कुछ बता रहे थे...''

प्रधानमंत्री के पहले सवाल से ही उन्हें अपनी बीमारी वाली रणनीति के खोट का एहसास हो गया था. उन्हें लगा कि उन्हें बीमारी का सहारा नहीं लेना था और न आयुर्विज्ञान संस्थान में भर्ती होना चाहिए था. दिल्ली में अपनी मौजूदगी दर्ज कराने और लोगों का ध्यान खींचने के बारे में यह रणनीति दोधारी तलवार साबित हो सकती है. शायद इसी के कारण एक चुस्त-दुरुस्त और मंजे हुए राजनीतिज्ञ की जगह उन्हें एक थके हुए, बूढ़े रोगी के रूप में देखा जा रहा है. उन्होंने कहा, ''अब सब ठीक है. अस्सी साल की उम्र के हिसाब से तंदुरुस्ती को लेकर मुझे अपने को भाग्यशाली ही मानना चाहिए.''

इधर लगभग बीस साल से उनके चापलूसों ने उन्हें खुश करने के लिए उनकी उम्र का इस्तेमाल शुरू कर दिया था. वे उन्हें हमेशा याद दिलाते रहते थे कि देखने में वे अपनी उम्र से कम से कम पंद्रह साल छोटे लगते हैं. तभी जब कभी उन्हें अपनी तथाकथित सदाबहार जवानी की तारीफ सुननी होती, वे किसी-न-किसी बहाने अपनी उम्र का जिक्र करने में न चूकते. और सुनने वाले जवाब में यह कहना न चूकते कि सर, ऐसा नहीं हो सकता, आपकी उम्र इतनी ज्यादा नहीं हो सकती. इस नाटक की अनेक आवृत्तियों के बाद उन्हें अपनी उम्र का बार-बार जिक्र करने की आदत-सी पड़ गई थी.

अब प्रधानमंत्री के सामने इस आदत का प्रदर्शन कर चुकने पर उन्हें एक और गलती का एहसास हुआ.

वे दिन गए जब लंबी उम्र किसी राजनैतिक नेता में लंबी सूझ-समझ और अनुभव का सबूत मानी जाती थी, कम से कम वह दीर्घकालीन साधना और त्याग के साथ तो जुड़ी ही थी. अनजाने ही अपनी उम्र का जिक्र करके वे प्रधानमंत्री से यह उम्मीद तो नहीं ही कर सकते थे कि वे हैरत से आंखें घुमाकर उनको साठ साल का पट्ठा जैसा दीखने की दाद दें, पर मन के किसी कोने में उम्र के साथ जुड़ी अतिरिक्त इज्जत पाने की इच्छा जरूर थी.

पर मुंह से ''अस्सी साल'' निकलते ही उन्हें अचानक एक और बात याद आई. इन्हीं प्रधानमंत्री के कार्यकाल में दो-तीन कुकर्मी बूढ़ों को छोड़कर—जिनकी प्रधानमंत्री के लिए अब भी कुछ उपयोगिता बनी हुई थी—बाकी सभी राजनैतिक बूढ़े धीरे-धीरे इतिहास के कूड़ेदान में फेंके जा चुके थे. बचे-खुचे भी अब वहीं पहुंचने वाले थे. वे इशारा करना

वाक्य पूरा हो गया था पर प्रधानमंत्री की आवाज उसके अधूरेपन का आभास दे रही थी. उन्होंने प्रधानमंत्री को दोबारा धन्यवाद दिया... उन्होंने फैसला नहीं किया, बस उन्हें यकीन था कि अब वे दोबारा इस कमरे में नहीं आएंगे.

चाहते थे कि वे एक औसत नौजवान जैसे ही सक्रिय हैं, कम-से-कम इस राज्यपाल या उस राजदूत से ज्यादा ही, पर उनकी बात उन्हीं के विपरीत पड़ रही थी.

प्रधानमंत्री कह रहे थे, ''कॉफी या चाय इस वक्त तो अब भी न लेते होंगे? फ्रूट जूस......?''

उन्होंने भद्रतापूर्वक इनकार किया. उनका मन प्रधानमंत्री की इस आत्मीयता से नहीं पिघला कि उन्हें उनके खान-पान की आदतें याद हैं, क्योंकि फलों का रस संदिग्ध पदार्थ था. उसका जिक्र क्या इसीलिए कि दस मिनट की स्वीकृत अवधि में रस का गिलास इत्मीनान से खत्म किया जा सकता है, गरम कॉफी के कारण यह अवधि पल-दो-पल खिंच भी सकती है.

अचानक: ''शास्त्री जी ने आपके यहां जनोत्थान मंच का ऐलान किया है. कहते हैं कि राज्य का पिछड़ापन दूर करने के लिए यह एक गैर-राजनैतिक संगठन होगा... कौन-सा लफ्ज कहा था उन्होंने? विकासधर्मी! वे यह लफ्ज बार-बार दोहरा रहे हैं. आपने इसके बारे में सोचा ही होगा...'' प्रधानमंत्री उन्हें सवालिया निगाह से देख रहे थे.

जिस आकस्मिक ढंग से यह बात उठी थी उसने उन्हें सच्ची प्रतिक्रिया के सिवाय कुछ और नहीं कहने दिया. वे बोले, ''पिछले कुछ महीनों से मैं यहीं हूं. शास्त्री जी का पार्टी में पुराना रिकॉर्ड त्याग और निष्ठा का है. इसलिए सुनी-सुनाई बातों के सहारे मैं कुछ कहना नहीं चाहता. वहां जाने पर ही पता लग पाएगा कि इस सबके पीछे क्या है.''

''कब जा रहे हैं?''

''जल्दी ही जाऊंगा,'' कहते ही लगा कि एक और गलत बात उन्होंने कह डाली है. एक ही नहीं, शायद दो. उधर प्रधानमंत्री ने उनके जाने का दिन या तारीख जानने की कोशिश नहीं की.

उन्हें अपने आप से हैरत हो रही थी. शायद पहली बार ऐसा हो रहा था कि उनके मुंह से इतनी बातें एक साथ निकली हों जिनकी जगह उनकी सूझ-समझ उनसे कुछ और कहलाना पसंद करती. शास्त्री जी के जनोत्थान मंच ही को लें. यह मंच उन्हीं के गृह-राज्य में गठित हुआ है. शास्त्री जी ने अपनी ही पार्टी के मुख्यमंत्री के मनमाने और ढुलमुल तरीकों से खीझकर यह मंच बनाया है. पर सत्तारूढ़ पार्टी के अध्यक्ष की हैसियत से प्रधानमंत्री को इसमें अपने खिलाफ व्यापक विद्रोह की झलक मिल रही है. उन्हें शास्त्री जी की निष्ठा और त्याग से कोई सरोकार नहीं है, है भी तो सिर्फ इतना कि उसी के कारण कहीं इस मंच का आंदोलन सफल न हो जाए.

माना कि वे प्रधानमंत्री से किसी प्रकट उद्देश्य के बिना, सिर्फ शिष्टताजन्य मुलाकात के लिए आए थे, फिर भी वे इतने लापरवाह कैसे हो गए कि शास्त्री जी के मंच के बारे में प्रधानमंत्री के प्रश्न की उन्होंने पहले से प्रत्याशा नहीं की? और नतीजा? जिसे प्रधानमंत्री उनके गृह राज्य में अपनी पार्टी की जिंदगी और मौत का मुद्दा समझ रहे हों उसके बारे में इन अस्सी साल के भीष्म पितामह या चाणक्य की कोई प्रतिक्रिया ही नहीं है! ''वहां जाने पर पता लग पाएगा..!'' हद है बेवकूफी की!

फिर दूसरी गलती! जब प्रधानमंत्री पूछ रहे थे कि कब जा रहे हैं तो क्यों नहीं कहा कि यह तो आप पर निर्भर है? कुछ तो उन्हें इशारा करना चाहिए था कि अपने बारे में उनकी अपनी कोई योजना नहीं, उनका अपना कोई स्वतंत्र भविष्य नहीं, कि उनकी वही योजना है, उनका वही भविष्य है जो प्रधानमंत्री उनके लिए तय करेंगे.

उधर प्रधानमंत्री इशारों से, अधूरे वाक्यों

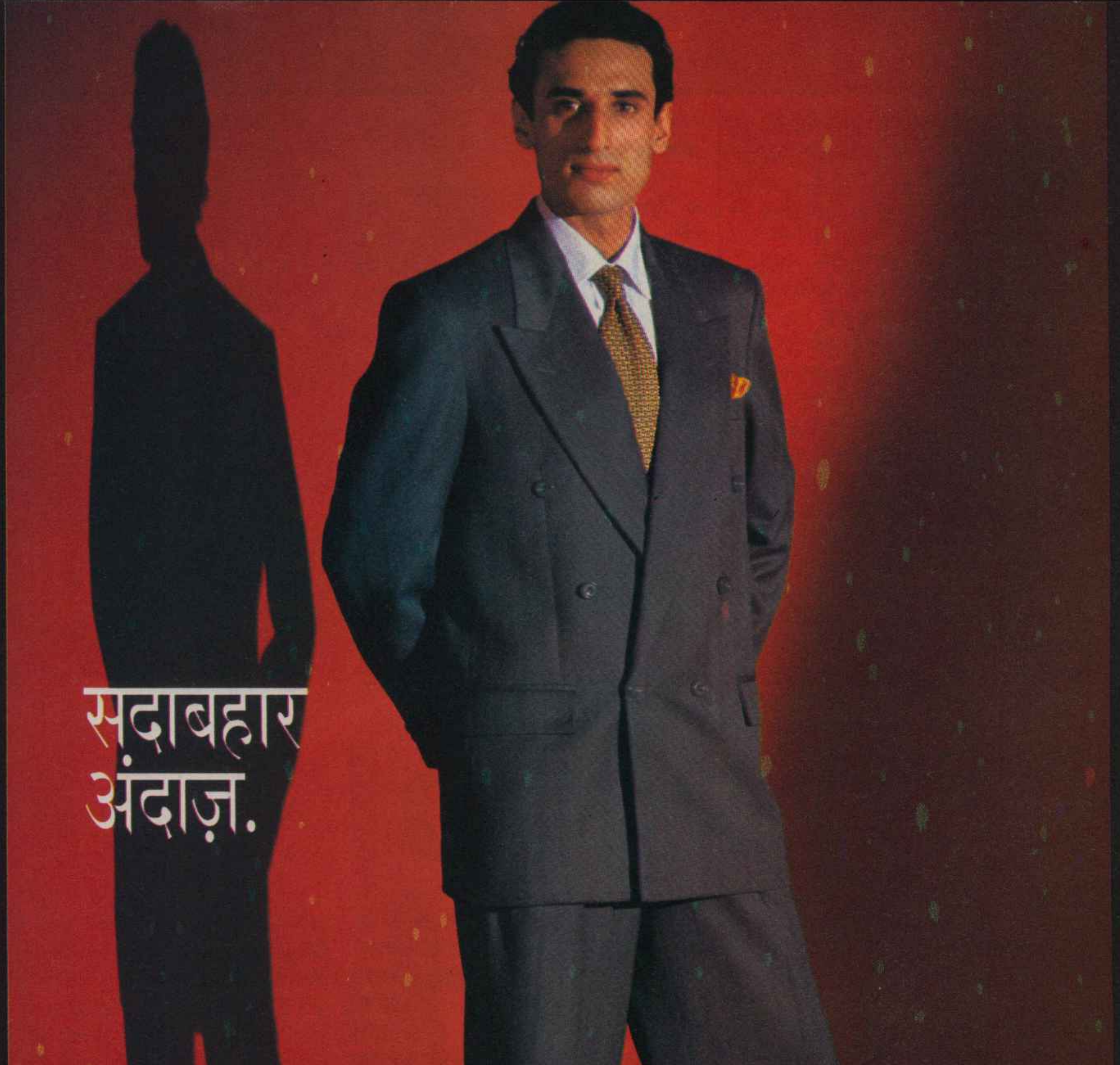

सेरेमोनिया. सूपरफ़ाइन पॉलियेस्टर और ऊन के सम्मिश्रण से बनी विशिष्ट सूटिंग.
शादी-ब्याह, उद्‌घाटन, पुरस्कार समारोह - यह हर अवसर की गरिमा बढ़ा दे.

रेमण्ड
१ ९ २ ४ से
सूटिंग जो पूरे इन्सान की पहचान बने

NEXUS EQUITY 1562 HN K

टिप्पणीकारों के हवाले से पार्टी संगठन को ध्वस्त करने में शास्त्री जी की जन्मजात प्रतिभा का उल्लेख कर रहे थे, पर वैसे ही मुस्कराते हुए जैसे यह एक ऐसा मजाक हो जिसे किसी भी वक्त हंसकर भुलाया जा सकता हो.

उत्तर में इस बार उन्होंने जान-बूझकर, लगभग हताशा के आवेश में, एक गलत बात कही, ''फिर भी शास्त्री जी में बहुत खूबियां रही हैं. आजादी के संघर्ष में अपने जीवट और त्याग के कारण वे एक 'लीजेंड' बन चुके थे. हम लोगों ने—जिन्होंने उन दिनों उनको देखा था... पर आपसे क्या बताना, आप उनके बारे में सब कुछ पहले ही पढ़ चुके हैं!'' वे मुस्कराए, इस खुशी में कि उन्होंने एक अप्रिय, पर सही बात सही ढंग से कह ली है!

कुंवर जयंती प्रसाद सिंह स्वतंत्रता आंदोलन में कभी सीधे सहभागी नहीं रहे, पर वे 'हम लोग' के स्तर पर जानते रहे हैं कि वह आंदोलन क्या था, चुन-चुनकर वह कैसे-कैसे सामान्य लोगों को केंद्र में खड़ा करता था और किस तरह उन्हें असामान्यता के मंडल में उछाल देता था! वह काठ में बिजली दौड़ा सकता था! और उनके सामने बैठा हुआ यह जवान अजनबी जो राष्ट्र-संचालन को गुलदस्ते में ठीक से गुलाब सजाने जैसा ही काम समझता है, उस आंदोलन के चरित्र को, वह आंदोलन चलाने वाले पात्रों के चरित्र को कैसे समझेगा?

उन्होंने घड़ी देखी, प्रधानमंत्री को धन्यवाद दिया, उधर से भी धन्यवाद पाया और चलने को तैयार हो गए.

तब प्रधानमंत्री ने पूछा, ''और केतकी? केतकी कैसी है?''

केतकी उनकी भतीजी थी—वही जिसके मशविरे पर की गई उनके पिछले राजभवन की आंतरिक सज्जा की इतनी शोहरत हुई थी. उन्होंने कहा, ''स्टेट्स में... उसी जगह... असोशिएट प्रोफेसर...''

''वह लौटना न चाहेगी? संस्कृति के क्षेत्र में... यहां कितना कुछ करने को है! उसे अपनी रुचि के... वह अपनी रुचि की किसी भी परियोजना में अपने को लगा सकती है...''

वाक्य पूरा हो गया था पर प्रधानमंत्री की आवाज उसके अधूरेपन का आभास दे रही थी. उन्होंने प्रधानमंत्री को दोबारा धन्यवाद दिया, कहा, ''मैं उसे खबर कर दूंगा.''

दरवाजे के पास खड़ी मुस्कराहट की प्रतिमा से अगाध शांति की ठंडी किरणें फूट रही थीं. उन्होंने फैसला नहीं किया, बस उन्हें यकीन था कि वे दोबारा इस कमरे में नहीं आएंगे. ■

जाने-माने साहित्यकार श्रीलाल शुक्ल ने अपने शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास का यह अंश सर्वप्रथम प्रकाशित करने का श्रेय इंडिया टुडे को दिया. हम उनके आभारी हैं. इसका शीर्षक उपन्यास का नहीं, बस इसी अंश का है.

● **मंजूर एहतेशाम**

● चित्र: गोपी गजवानी

गुबार-से फैले अंतहीन समय का वास्तविक माप क्या यही तो नहीं?

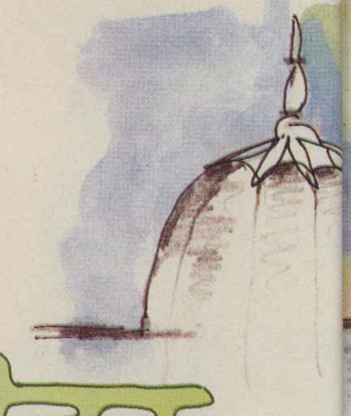

साढ़े तीन मिनट सिर्फ!

बरसात के दिन थे और तब बरसात का एक अलग ही मिज़ाज हुआ करता था. दिमाग में पंद्रह जून मानसून की डेडलाइन तय थी और शायद बादल भी उन दिनों वादे के पाबंद और ईमानदार हुआ करते थे. या अगर कभी कुछ दिन की ऊंच-नीच हो भी जाए तो उसके लिए न तो बादलों से शिकवा होता था, न दिमाग में बनी डेडलाइन के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता था. बरसात तब अपरलेक लेविल और लोवरलेक लेविल की मार्फत नल की टोंटी अथवा पानी के घड़े से नहीं जुड़ी थी, न ही मौसम की जानकारी, पूर्वानुमान सहित, शाम की खबरों और दैनिक जीवन का अभिन्न हिस्सा बनी थी. बरसात आती—गरमी से झुलसाई जमीन और पेड़-पौधों को राहत देने और देखते ही देखते पहाड़, मैदान, खपरैलें, दीवारें हरी हो जातीं और चौतरफ जलथल ही जलथल हो जाता. दिनों और हफ्तों सूरज के दीदार न होते और शहर एक बहुत बड़े गुसलखाने में बदल जाता, जहां हर चीज नहाती और गुस्ले-सेहत लेती रहती. शहर की पगडंडीनुमा सड़कें और हथेली-सी गहरी नालियां बरसात के हल्के झलों में ही पानी में डूब जातीं और जब पानी थोड़ा जम कर गिरता तो घरों से लेकर दुकानें और कारखाने सब बरसात के रहम पर होते. बड़े घर के पास से बहने वाला खुला गंदा नाला पछाड़ें खाता, बेकाबू हो जाता और क्योंकि शहर का यह इलाका नशेब में था, इसलिए बहते पानी के ताव में रास्ते का जो कुछ समेट में आता, सब बह जाता—थोड़ी दूर बहती पातरा की ओर. वैसे, समेट में आने को घूरे के कचरे और पीठों पर जमी लकड़ी की थप्पियों और टालों के अलावा कुछ था नहीं क्योंकि आसपास लकड़ी के कारखानों के अलावा कछवाड़े थे या खुले मैदान. सबसे आखिर में, बिलकुल पातरा के किनारे बड़े अब्बा का पीठा था और उस समय भाईजान वहां शहर की पहली आधुनिक डेरी खोलने का प्रयोग कर रहे थे. वहां कई दर्जन पंजाब की भैंसें पली थीं.

पानी जब भी जम के गिरता और इकट्ठा होकर मंझधार की शक्ल में पातरा की ओर बहना शुरू होता, सारे पीठेवाले अपनी-अपनी लकड़ी की देखरेख और हिफाजत में लग जाते. एक आपसी सहमति के अंतर्गत किसी पीठे की लकड़ी बहकर दूसरी जगह चली जाए तो ईमानदारी से उसकी खबर मालिक को कर दी जाती थी और लकड़ी लौटा दी जाती थी. पानी गिरते में लोग हाथठेले लिये, अपनी-अपनी लकड़ी पहचान कर इकट्ठा करवाते फिरते थे. सड़कें सुनसान, आवक-जावक और काम-धंधा बंद, एकदम छुट्टी का माहौल हो जाता था. उस

माहौल में कुछ कामकाज होता भी तो अंदाज पिकनिक का होता. बड़े घर के पिछवाड़े जहां कुछ साल पहले तक चटन-पुलाव बनाया जाता था और वह इमलियों वाला मरा कब्रिस्तान, जहां चोर-पुलिस खेला जाता था, सब एकदम इस तरह कच हरा हो जाता जैसे सैकड़ों लोगों ने मिलकर उसे ढेर सारे हरे रंग से रातोरात पोत दिया हो. छोटे गड्ढों में इकट्ठा होकर पानी यूं फैल जाता जैसे बड़ी-सी तलैया हो. इस तलैया में होते-तैरते हुए लकड़ी के शहतीर, जिन्हें खेल में किश्ती की तरह इस्तेमाल किया जाता और जब कभी कोई किश्ती पलट जाती तो सवारियों को कीचड़-पानी से निकाला जाता. सूखे पेड़-पौधों और झाड़ियों की बेरंग खाल के नीचे हरियाली आंखें फाड़े जैसे मानसून की पहली बारिश का इंतजार करती रहती. छोटे तालाब का निकास, 'चादर', यादगार शाहजहानी पार्क के बगल में गिरकर पातरा की शक्ल में बहना शुरू होता, और इस बहाव की आवाज चौबीस घंटे हवा के रुख के साथ घटती-बढ़ती कानों में यूं पहुंचती रहती जैसे केतली में पानी खदक रहा हो. घर की छत-खपरैलें आए दिन परेशान करतीं और 'टपके' सुधारने वाले छवैय्यों को छतों पर चढ़ाया जाता. मौसम की सीलन चलते-फिरते लोगों के शरीर और दिमाग तक उतर कर सबको आलस और आरामतलबी में डाल जाती. देखते-ही-देखते शहर के इर्द-गिर्द नदियां 'पूर' आने की खबरें मिलने लगतीं, जिसका मतलब सड़क के रास्ते न कोई शहर के अंदर आ सकता था, न बाहर जा सकता था. दुनिया एक हरे-भरे कमख्वाबी जज़ीरे में सीमित हो जाती जिसका अपना विशिष्ट भूगोल—पहाड़, घाटी, नाले, ताल-तलैये—होते और होते वहां के आदिवासी—छुट्टी में उत्सव मनाते, गोटें करते.

मानसून की पहली बारिश तो नहीं मगर उससे कुछ पहले गिरे पानी से जुड़ी एक और अविस्मरणीय याद बीर-बहोटियों की थी. उन सुर्ख, मखमली कीड़ों के बारे में कहा जाता था कि वे जन्नत में पैदा होते हैं और अल्लाह की रहमत की तरह आसमान से बरसते हैं. लोग उन्हें संभालकर रखते और कुछ बीमारियों में दवा के बतौर इस्तेमाल करते.

उन बीर-बहोटियों की तरह वक्त का वह टुकड़ा और उसमें देखा या जिया भी, सब कुछ लगता है जन्नत में ही बना और आसमान से बरसा था.

> **व**ह आठवीं क्लास में था. सुबह से तेज बारिश हो रही होती तो स्कूल की छुट्टी हो जाती... मगर उसके दिमाग में यह पुख्ता बैठा दिया गया था कि स्कूल में पढ़ना जीने की एक व्यावहारिक मजबूरी है...

वह आठवीं क्लास में था. वैसे, सुबह से ही अगर तेज बारिश हो रही होती तो स्कूल की छुट्टी हो जाती थी. उस दिन पानी तब गिरना शुरू हुआ जब बच्चे स्कूल पहुंच चुके थे. आनन-फानन ऐसा मूसलाधार पानी गिरना शुरू हो गया जो लगता था सब कुछ उलट-पलट कर रख देगा. स्कूल के मैदान, बरामदे, हद यह कि क्लासरूम्ज के खिड़की-दरवाजे तक उलांघकर हर जगह पानी फैल गया था. तेज हवा बारिश से बोझिल दरख्तों के तनों और शाखों को मनमाने ढंग से खींच-तान रही थी. बच्चे, क्योंकि स्कूल पहुंच चुके थे और उतनी तेज बारिश में वापसी संभव नहीं थी, इसलिए सब मजबूरन क्लासों में बैठे रहे थे. पढ़ाई के बजाय दिन भर तरह-तरह के खेल होते रहे थे जिनमें टीचर्स भी शामिल हो गई थीं. सब लड़के-लड़कियों ने चुटकले सुनाए थे. जो गा सकते थे, उनसे गाने सुने गए थे, और बिलकुल आखिर में तान जाकर फिल्मी गीतों की अंताक्षरी पर टूटी थी.

शाम साढ़े तीन बजे, स्कूल छूटने के समय तक, तेज हवा ने बादलों को तितर-बितर कर दिया था और पानी गिरना बंद हो गया था. फिर भी आसमान में काले बादलों के पीछे सूरज खोया हुआ था और लग रहा था पानी, किसी भी पल, फिर से गिरना शुरू हो सकता है. शहर का चक्कर लगाती हुई, सवा चार बजे तक स्कूल बस घर पहुंचाती थी. घर इस दौरान बदल चुका था. कच्ची खपरैलों वाला आधा हिस्सा ढहाकर वहां पुख्ता कमरे बना दिए गए थे. अमरूद और अनार और आंगन का बड़ा पटिया इस तब्दीली के शिकार हो चुके थे. आपा शादी होकर, ससुराल जा चुकी थीं और भाई मियां की शादी के नतीजे भाभी घर में आ चुकी थीं. अम्मा के सिर और अब्बा की दाढ़ी में जहां-तहां सफेदी झांकने लगी थी.

अब्बा के आदेशानुसार घर पहुंच कर पहला काम स्कूल का यूनीफॉर्म—नेकर-कमीज—बदल कर घर का पहनावा कमीज-पाजामा पहनना और मस्जिद में जाकर असिर की नमाज पढ़ना होता था. घर और स्कूल की दुनिया में दरअसल, जमीन-आसमान का अंतर था. स्कूल

में लड़के-लड़कियां एक साथ पढ़ते थे और अधिकांश टीचर्स भी महिलाएं थीं, जबकि खानदान में कम उम्र की लड़कियां तक परदा करती थीं. स्कूल में शिक्षा का माध्यम इंग्लिश था जबकि खानदान में अंग्रेजी जानने वाले बहुत गिनती के लोग थे. अंग्रेजी स्कूल में दाखिला—उनकी बुनियादी मर्जी के खिलाफ और औलाद की खातिर, अब्बा का दीन और दुनिया के बीच अपने ढंग से सरहद खोजने की कोशिश में—एक समझौता था. शुरू-शुरू में इन दो दुनियाओं के बीच झूलना उसे मुश्किल भी नहीं लगा था, लेकिन समय बीतने के साथ-साथ कभी-कभी यह फासला उसे बेहद हास्यास्पद लगने लगता था. होता यह था कि स्कूल से लौटकर कमीज-पाजामा पहने, सिर पे टोपी लगाए वह घर से निकलता था, मगर मौका मिलते ही मलमल की टोपी तह करके कमीज की जेब में रख लेता था. घुटे सिर के मुकाबले तो यह बहुत बेहतर था. सन् 1857 की बगावत या जंगे-आजादी के सौ साल से ज्यादा गुजर जाने के बाद भी अंग्रेजियत के प्रतीकों से बुजुर्गों की नफरत उतनी ही शदीद थी. घृणा और मोह के बीच परीक्षाओं से गुजरता वर्तमान अपनी सूरत-शक्ल ले रहा था.

बरसात की उस शाम टहलता, जब वह बड़े घर पहुंचा था तो उसका दिमाग देखने के साथ ही साथ चीजों के बारे में सवालिया ढंग से सोचने और फिर उन सवालों के जवाब खोजने योग्य होने लगा था. वहां तक पहुंचते-पहुंचते काफी काट-छांट, तोड़-जोड़ और बनाव-बिगाड़ के बाद किसी-न-किसी अर्थ में उसकी बुनियादों के ऊपर किसी बनावट की शक्ल आकार लेती नजर आने लगी थी. स्कूल जाने के नतीजे जो परिवर्तन उसके व्यक्तित्व में बहुत सहजता के साथ आए थे उनसे अंदाजा हुआ था कि दुनिया घर, बड़े घर, मुहल्ले, दामखेड़े या खानदान और उससे संबंधित गिनती के लोगों और रिश्तेदारों से बड़ी थी. कितनी बड़ी, यह तय कर पाना तो संभव नहीं था, लेकिन बड़ी थी, बेशक! छोटे तालाब, बड़े तालाब, दोनों से बड़ी थी.

अपने स्वभाव से एकांतप्रिय होने के कारण वह स्कूल में भी कम ही लोगों से घुलता-मिलता था. यह घुलना-मिलना लड़कों की हद तक तो फिर भी गनीमत था, खासकर विवेक से दोस्ती पक्की होने लगी थी लेकिन लड़कियों से वह हमेशा एक विशेष दूरी बनाए रखता. कोई उलझन नहीं थी, कुछ लड़कियां उससे बात करना भी चाहती थीं लेकिन खुद की इच्छा के बावजूद वह उनसे मेल-मिलाप को बढ़ावा नहीं देना चाहता था. उस उम्र में भी, नाम को ही सही, ज्यादातर लड़कों ने अपनी-अपनी प्रेमिकाएं छांटी हुई थीं, सिवाए ज़मीर अहमद खान के. स्कूल में उसका काम सिर्फ पढ़ना और अच्छे नंबर लाना तय था.

क्लास में विभिन्न विषय पढ़ाए जाते थे. अलग-अलग पीरियड में अलग-अलग टीचर्स क्लास में आतीं और अपना-अपना विषय पढ़ाने और हंसने या नाराज होने के बाद विदा हो जातीं. एक सवाल उसे परेशान करता रहता: हिस्ट्री और अलजेब्रा का आपस में क्या संबंध हो सकता है? ज्यॉमेट्री और सोशल स्टडीज क्योंकर तर्कसंगत हो सकते हैं, खुद अलजेब्रा ज्यॉमेट्री की आपस में क्या रिश्तेदारी संभव थी? शिक्षा के नाम पर कुछ गिनती के विषय चुनने और पढ़ाने के पीछे कोई सोची-समझी योजना थी या नहीं? पढ़ाने वालों के मन में न तो इन सवालों का महत्व जागता था, न वह यह समझाने की कोशिश करते थे कि शिक्षा के तनावर दरख्त की शाखों के बीच कोई या क्या रिश्ता होता है.

स्कूल में यह था, तो घर पर तो स्कूल भेजने से पहले ही यह ख्याल दिमाग में पुख्ता बैठा दिया गया था कि स्कूल में पढ़ना जीने की एक व्यावहारिक मजबूरी थी, जिसका असली और दीन की शिक्षा से कुछ लेना-देना नहीं था. वहां जो पढ़ाया जाए, पढ़ और सीख लो मगर उसे असलियत से गड़बड़ाने की गलती हरगिज मत करो. उन हालात में शिक्षा दरअसल विभिन्न विषयों को, बिना सच माने पढ़ने और याद करने का नाम हो गया था. याद इसलिए रखना कि हर माह क्लास टेस्ट में जो नंबर मिलते थे, वही समझदारी या नालायकी का इकलौता पैमाना थे. कहा गया 'सात समंदर'—मान लिया; 'सात महाद्वीप'—माने लेते हैं! आसमान और जमीन भी तो, मजहब में बताया गया है, सात-सात हैं. इस 'सात' के हिंदसे में ही कोई खूबी होगी! वैसे भी उलझावे में पड़ने के बजाय व्यस्त रहना, पढ़कर समझने की कोशिश करना, न समझ आए तो रट लेना और हर महीने टेस्ट में अच्छे नंबर लाना कहीं आसान काम था.

समय के मुसलसल और क्रूर बहाव में एक महत्वपूर्ण पड़ाव, दिमाग में एक जमी हुई बिंदु थी बरसात की वह शाम, जब बड़े घर में अमरूद के चार बड़े दरख्तों और बीच सेहन में फैली लंबी-चौड़ी क्यारी और गमलों के रास्ते वह कहीं पहुंचना चाहता था: किसी ऐसी जगह जहां से अतीत और वर्तमान ही नहीं, अपने से खुद को अलग करके भविष्य को भी देखा जा सके. ताजा हरियाली, गीली जमीन, खपरैलों पर धीरे-धीरे सूखती पहली बरसात की नमी. बचपन के खेल-तमाशे, अब्बास भाई के डार्करूम और बाहर के कमरे के सिनेमा की प्राचीन-सी याद और उनसे जुड़े चेहरे, जो बाकी दुनिया के साथ-साथ बहुत तेजी से बदल गए थे.

भाभीजान सफेद चिकिन का घेरदार कुर्ता, चुनी हुई हरी ओढ़नी, हरे मशरू का चूड़ीदार पाजामा पहने, कलाइयों में पड़ी बेगिनती सुर्ख कांच की चूड़ियां, नाक में चमकती हीरे की लौंग, चेहरे पर फैली संजीदा मुस्कान, दालान में चौकी पर बड़ा-सा पानदान खोले बैठी हैं. बावर्चीखाने से निकलकर आंगन में फैलता धुआं बता रहा है कि खाना पकानेवाली बुआ आ चुकी हैं. भाभीजान ज़मीर अहमद खान से कुछ पूछ रही हैं, मगर इससे पहले कि वह उनके सवाल का जवाब दे, एक नामानूस, खनकती आवाज कानों में बिखर जाती हैं, "स—ला—मा—लै—कुम!" लगता है कानों में उतरने से पहले वह आवाज गूंज कर उस पल मौजूद हर चीज को बहुत आहिस्ता से छूती है: दरख्त, उनके पत्ते, पौधे, गमले, दालान के खंभे, खपरैलें, आसमान में बेमकसद भागते बादल, सेहन में चकराता धुआं. समझ नहीं आता वह आवाज खुद उसके भीतर गूंजते रहने के बाद बाहर आई है या बाहर से उसके कानों के जरिये भीतर उतरी है. एकदम ख्याल आता है कि वह कमीज-पाजामा पहने है और कमीज की ऊपरी जेब में तह की हुई टोपी रखी है. एक शर्मिंदगी का एहसास दिल में जन्म लेने लगता है. वह आवाज किसी लड़की की है, इतना बिना सोचे ही समझ में आ गया है और उसके साथ ही एक स्वाभाविक झेंप ने उसे घेर लिया है.

"इन्हें पहचानती हो?" भाभीजान 'स—ला—मा—लै—कुम' से पूछती हैं: खुद उसने अभी तक नजरें उठा कर देखने की हिम्मत नहीं की है.

"यकीनन!" आवाज हंसते हुए कहती है, "कोई चचा या मामू होंगे." और एक खनकदार हंसी अनार के दानों-सी माहौल में बिखर जाती है. वह नजरें उठाकर देखता है और देखता ही रह जाता है...

उसे विश्वास था, उस एक पल जब उसकी नजरें सामने खड़ी चश्मा लगाई लड़की से मिली थीं, जो उम्र में खुद उससे यकीनन खासी बड़ी थी, तो हवा का एक झोंका चला था और पेड़-पौधे सब सिहर गए थे. अमरूद की एक डाल ने झूमकर दूसरी डाल से कहा था, "सलामालैकम!" पेड़-पौधों की पत्तियां शाखों

बरसात की उस शाम एक पल जब उसकी नजरें सामने खड़ी लड़की से मिली थीं, जो उम्र में उससे खासी बड़ी थी, तो हवा का एक झोंका चला था और पेड़-पौधे सब सिहर गए थे, पत्तियां कसमसा उठी थीं...

CRAYONS

और टहनियों पर कसमसाई थीं, फिर बेचैन होकर अपने तलुवों पर उचक कर उसकी ओर देखा था और तरन्नुम के साथ, एक-आवाज होकर गुनगुनाई थीं—सलामालैकुम. धुआं सेहन में लहरा कर नाचा था और सलामालैकुम कहते हुए एकदम छंट गया था. बादल, एक पल को आसमान में रुके थे, दालान में, जहां भाभीजान और उस अजनबी लड़की के बीच वह शरमाया खड़ा था, झांक कर देखा था और बुदबुदाए थे—सलामालैकुम! और उसी एक लम्हे और पल, ज़मीर अहमद खान को लगा था, जो कुछ भी वह उन क्षणों में जी रहा है वह दरअसल इस दुनिया का नहीं, जन्नत का हिस्सा है जो बरसात के साथ आसमानों से बरसा है! मजे की बात यह कि उम्र बीतने के साथ-साथ इस सोच में उसकी आस्था बढ़ती गई थी!

क्या नाम दिया जा सकता था ऐसे रिश्ते को जिसने कुछ सोचने और तय करने की मोहलत ही नहीं दी? 'हजार जान से आशिक' मुहावरे में तो कहा जा सकता था, लेकिन क्या यह यकीन के साथ कहा जा सकता है कि वह इश्क था, जिसमें ज़मीर अहमद खान को जमीन-आसमान 'सलामालैकुम' करते सुनाई दिए थे? इश्क नहीं, वह शायद एक तरह की दीवानगी थी जिसमें उसने आपा खो दिया था. तो इश्क खुद क्या एक तरह की दीवानगी का नाम नहीं? आशिक क्या होशमंदी का हलफ़ उठाने के बाद हुआ जाता है?

बाद में पता चला था पाकिस्तान से आई उस अजनबी लड़की का अंदाजा दुरुस्त था और वह सचमुच रिश्ते में उसका मामा लगता था. बारह-तेरह साल के मामा और सत्रह-अट्ठारह साल की भानजी. भानजी ने कहा था इतने कम-उम्र मामा कुछ जैब नहीं देते, क्यों न वह उसे अपना छोटा भाई समझे. उसका कोई छोटा भाई है भी नहीं. वह फौरन मान गया था और उन दोनों के बीच दोस्ती हो गई थी. वह उसे 'अक्का' कहकर बुलाएगा, जो उसका एक मराठीभाषी सहपाठी अपनी बड़ी बहन को बुलाता था, यह भी तय हो गया था. सचमुच, दुनिया में अक्का जैसा कोई नहीं था, उसकी आस्था मजबूत होती गई थी. अन्य लड़कियां न तो ठीक से बात करना जानती थीं, न उन्हें अच्छे कपड़े पहनने का सलीका था. अक्का पवित्रता का दूसरा नाम था और उसके चेहरे पर वैसा कुछ था जैसा सुबह की रोशनी या कुछ खास चांदनी रातों में होता है.

उसे मालूम था कि अक्का की मंगनी कमाल मियां के साथ होने वाली थी. जहां, एक ओर, उसे इस बात की खुशी थी, वहीं इस बात का गुस्सा भी कि जब भी कमाल मियां उसके साथ होते, अक्का का खुद ज़मीर अहमद खान के प्रति रवैया कुछ बदल-सा जाता. इस बदलाव को लेकर वह न केवल उदास होता, आए दिन अक्का से रूठता-मनता भी रहता. पिकनिक और तफरीह के न जाने कितने प्रोग्राम उसके इस रूठने की नजर हुए थे. जब भी वह अक्का और उसके मंगेतर को आपस में इस तरह व्यस्त देखता कि लगता वह दोनों उसके होने को भूल गए हैं, एक नकाबपोश उसके दिल के अंधेरे से दस्तक देता हुआ बाहर आता और जीती-जागती दुनिया से उसका रिश्ता तोड़ देता. फिर जितनी देर यह नकाबपोश हमलावर आजाद रहता, कत्लो-ग़ारतगीरी का बाजार गरम रहता. दिल की गहराइयों से लूटमार शुरू करता, राह में हर पड़ाव पर अपनी चंगेज़ी के निशानात छोड़ता यह लुटेरा जब तक आजाद रहता, वह खुद को उसके रहमो-करम पर पाता. अक्का पूछती, कमाल मियां सवाल करते, बाकी साथी हमदर्दी जताते मगर उन सबकी नजरों से ओझल, वह एक ऐसी दुनिया में गुम रहता जो एक शम्अ की तरह रोशन तो थी, मगर यह रोशनी महज एक इत्तिफाक थी: दरअसल यह शम्अ परवाने को जलाने की मंशा से रोशन हुई थी!

अक्का मंगनी के बाद, शादी से पहले कई बार भारत आई थीं और कई बार शादी के बाद भी! उसकी और कमाल मियां की शादी तब संपन्न हुई जब सन् 65 की जंग के बाद हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बीच हालात थोड़े सामान्य हो पाए, लेकिन खुद ज़मीर अहमद खान की स्मृति में सुरक्षित अक्का का संबंध सन् 65 से पहले के ज़माने से है, जिसे अपने मन में उसने एक सहज-सा शीर्षक दिया हुआ है: 78 आर.पी.एम. (रेव्योलूशंस पर मिनिट) का ज़माना! ऐसा नहीं कि संगीत या रिकार्ड्स का उसके जीवन में अलग से कुछ महत्व हो, मगर क्योंकि घर में भाई मियां का खरीदा हुआ रेडियोग्राम था, इसलिए रेडियो के साथ-साथ रिकॉर्ड्स से भी सरोकार पैदा हो गया था. पक्का नहीं, लोकप्रिय संगीत—तलत, लता मुकेश इत्यादि, या बहुत हुआ तो बस, बेगम अख्तर. तब एल.पी. (33 1/3 आर.पी.एम.) ई.पी (45 आर.पी.एम.) का ज्यादा चलन नहीं था. और कैसेट्स की तो कल्पना तक नहीं थी. लगभग दस इंच डायमीटर के 78 आर.पी.एम. के रिकॉर्ड आम थे, जिन पर हरेक तरफ साढ़े तीन मिनिट का गीत या संगीत रिकॉर्ड होता था. अक्का को भी भारतीय फिल्म संगीत बहुत

अच्छा लगता था और खुद ज़मीर अहमद खान के लिए उसके साथ संगीत सुनते समय बिताना या अक्का को नए, अपनी पसंद के रिकॉर्ड भेंट करना एक आदर्श काम लगता था.

कुछ गाने तब ऐसे प्रभावित करते थे कि उनको सुनते हुए उदासी के 'सायक्लॉन' वजूद को भीतर से तहस-नहस करते महसूस होने लगते. आम तौर पर जो रिकॉर्ड वह अक्का को भेंट करता था वह खुद के लिए भी खरीद लेता था. फिर अपने ख़त में अक्का को लिखता था कि मैं इस तारीख़ को इंडियन स्टैंडर्ड टाइम के अनुसार इतने बजे यह रिकॉर्ड बजाकर सुनूंगाः तुम भी उस वक्त कराची में वही रिकॉर्ड सुनना! और यह एहसास एक अजीब राहत पहुंचाता था कि जिस समय अपने घर में बैठा वह जो रिकॉर्ड सुन रहा है, कहीं बहुत दूर अक्का भी वही सुन रही होगी.

"पता है," अक्का से अंतिम भेंट पर उसने कहा था, "तुम्हारे चक्कर में मेरी तो परिभाषाएं ही गड़बड़ा गई थीं! यह लगने लगा था कि बिना चश्मा लगाए कोई लड़की खूबसूरत ही नहीं हो सकती."

"इसीलिए तुमने शादी राहत से की, जो चश्मा नहीं लगाती!" अक्का ने हंस कर कहा था. अक्का और राहत के आपसी संबंध बहुत प्यार-मुहब्बत के थे.

"मैं अपनी बेवकूफी बता रहा था!" उसने चिढ़ कर कहा था, "शादी खूबसूरती-बदसूरती देखकर कौन नालायक करता है, वह तो बस हो जाती है!"

"यार! तुम ऐसे सूखे तो नहीं थे," अक्का ने कुछ अचरज और कुछ व्यंग्य से कहा था, "खासे रोमेंटिक और दिलचस्प हुआ करते थे."

"शादी के बाद ऐसे हो गए!" राहत ने मौके का फायदा उठाते हुए जोड़ा था, "घर वालों की समझ और स्टैंडर्ड का भी तो कुछ असर पड़ता है, कुछ ख्याल रखना पड़ता है."

शादी के बाद वह कराची चली गई और वहीं बस गई. बरसात के बादलों को देखकर, मोर-नाच की तरह उसका जो ख्याल जिंदगी का हिस्सा बन गया था, आज भी पराये तकिए पर देखा ख्वाब-सा लगता.

"मेरी बेटियां खासी समझदार हैं!" जुम्ला-जुम्ला बात के उलझते जाल से बचने की खातिर उसने राहत से कहा था, "और तुम फिक्र क्यों करती हो, अल्लाह ने चाहा तो इस गैस के तुफ़ैल तुम्हें भी जल्द ही चश्मा लग जाएगा!"

आज, पता नहीं अक्का उसके बारे में कितनी बाखबर हैं और कितनी अनजान! शादी के बाद कमाल मियां भी कराची चले गए और वहीं बस गए. बरसात के बादलों को देखकर, मोर-नाच की तरह अक्का का जो ख्याल जिंदगी का हिस्सा बन गया था—उसका आना, फिल्में और तफरीहें, एक अनजान मुल्क पाकिस्तान में बसे कुछ रिश्तेदारों के किस्से-कहानी, शेर-शायरी, सुकून-बेचैनी—हैं तो आज भी कहीं लेकिन सब परायी आंखों से, परायी नींद में, किसी पराये तकिए पर सिर रखकर देखे हुए ख्वाब-सेः इस यकीन के साथ कि वक्त के उस हरे कमख्वाबी जजीरे के दीदार अब जीवन में फिर कभी न हो सकेंगे.

सोचकर अचरज होता है कि 78 आर.पी.एम. के रिकॉर्ड में, जिसकी अवधि सिर्फ साढ़े तीन मिनट होती थी, उसके जीवन की शताब्दियां कैसे समा गईं? या फिर, कहीं सोच के जमीन-आसमान पर गुबार-से फैले अंतहीन समय का वास्तविक माप यहीं तो नहीं? साढ़े-तीन मिनट, सिर्फ! ■

म्युज़िक टुडे

की प्रस्तुति

गुरूवाणी

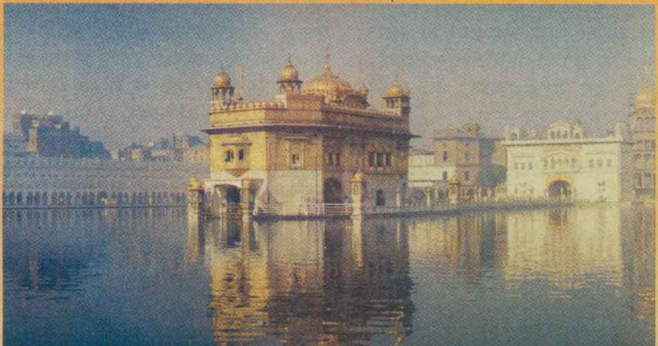

स्वर्ण मंदिर के हर मंदिर साहिब में गूंजने वाली हज़ूरी रागियों का गाया शबद कीर्तन

चार ऑडियो कैसेटों का सिरीज

कैसेट 1 नं॰ D 94005 — **भाई गुरमेज सिंह रागी**
कैसेट 2 नं॰ D 94006 — **भाई हरि सिंह रागी**
कैसेट 3 नं॰ D 94007 — **भाई निर्मल सिंह खालसा**
कैसेट 4 नं॰ D 94008 — **भाई रविंदर सिंह रागी**

अपने चहेतों को उपहार देने के लिए चार कैसेटों का खूबसूरत उपहार पैक भी पाइये.

कृप्या ध्यान दें : कीमत प्रति कैसेट 55 रु. (सभी करों सहित). डिलिवरी के लिए अतिरिक्त 15 रु. भेजें. कैसेट कम से कम चार की संख्या में ऑर्डर कर सकते है। पेशकश/दरें केवल भारत में लागू. कैसेट रजिस्टर्ड पोस्ट/कूरियर से भेजे जायेंगे. डिलिवरी के लिए 4-6 हफ्ते का समय दें. चैक/डिमांड ड्राफ्ट म्यूज़िक टुडे को देय हो. कृप्या संपर्क करें : MUSIC TODAY, P.O. BOX 29, NEW DELHI-110001. कैसेट नं॰ सहित अपना ऑर्डर, शुल्क, तथा अपने नाम और पते के साथ भेजें, या अपने पास के कैसेट विक्रेता से संपर्क करें।

MUSIC TODAY

Satish Sud Graphics

Run your finger over the Obsession switch

The immaculate, virgin surface is smooth as silk. It's also flame-retarding and stabilized against ultraviolet rays.

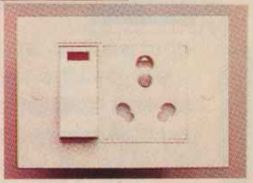

Probe a little to arouse your designer sense

Obsession's modular system allows you to make your own combinations of switches, sockets, dimmers and accessories. What's more, dimensions of the 300 W and 750 W dimmers correspond to those of the switch and socket modules, respectively. Yes, Obsession is open to space-saving and cost-effective planning.

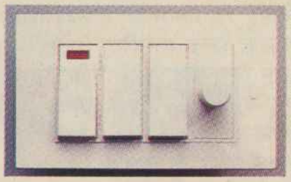

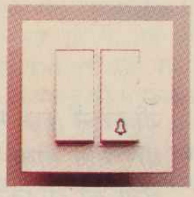

And for the engineer in you

Obsession is approved by ISI, and incorporates heavy duty, snap-fit claws on the plates. This ensures better locking and extra durability. And to show that it cares for you, Obsession provides safety shutters on sockets, shielded live parts and extruded brass terminals.

With a 25-year guarantee, Obsession proves its loyalty

Against any manufacturing defect, there's a promise of free replacement of any Obsession item (except electronic dimmers.) For 25 long years, Obsession is more than willing to satisfy you... [Provided your wife doesn't catch you eyeing at the pretty lady!]

Gentlemen, the 25-year guarantee is limited only to our switches.

[Eye the pretty lady at your own risk]

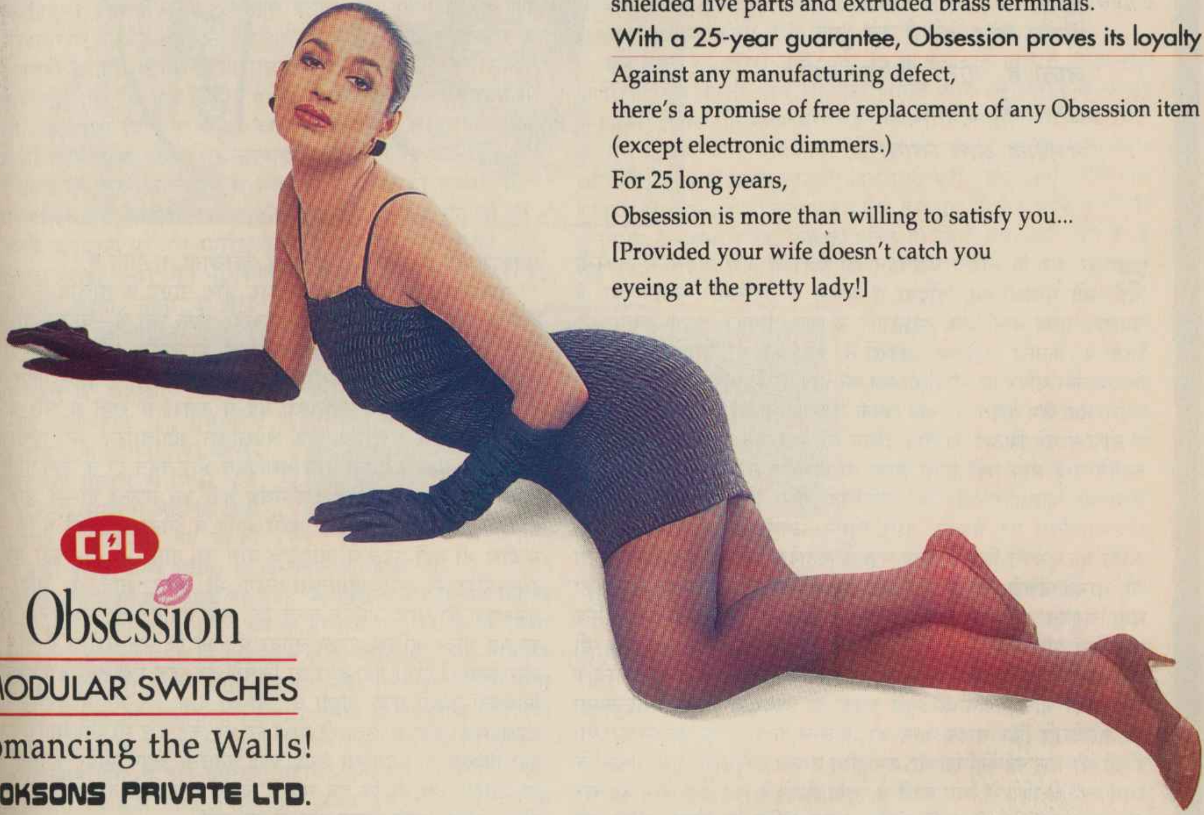

CPL

Obsession

MODULAR SWITCHES

Romancing the Walls!

CHOKSONS PRIVATE LTD.

Post Box 8943, Powai, Bombay-400 072.■Tel: 832 2691, 832 8520, 832 9347, 834 9121, 838 1898.■Telex: 011-79195 CPL IN.
■Fax: 91-22-836 3476.■Show Room: 206 0846,208 4539.■Bangalore Branch Office Tel: 223 9772.

Distributors: ■**Bombay**-Vyapti Marketing, 206 4659, 208 9968.■**Delhi**-Karan Trading Co., 371 3235, 42 4647.■**Madras**-General Electricals, 41 0240.
■**Kerala**-Espeeyan Associates, 23117, 20 608.■**Udipi (D.K.)**-Kumar Agencies, 57 4118, 24 500.■**Hyderabad**-Lightwell Electricals, 66 4803, 66 2924.
■**Calcutta**-Techno Electric Corpn., 25 2076, 251 3137■**Lucknow**-Alaknanda Electricals, 23 5447, 23 7313.■**Ahmedabad**-Anmol Lights, 38 1037, 332224.
■**Surat**-Jhaveri Electric Corpn., 24 551, 26 268.■**Bhavnagar**-Velani Enterprises, 26 470.■**Pune**-Jyoti Electric & Trading Co., 32 4324, 32 3562.
■**Aurangabad**-Satya Electricals, 24 991, 20 591.■Also available throughout Karnataka, Rajasthan, M.P. and Goa. Dealership enquiries from North India solicited.

HEADQUARTERS

कुछ भी एक बार नहीं

● अशोक वाजपेयी
● चित्रः हरिपाल त्यागी

जीवन में कुछ भी सिर्फ एक बार नहीं होता—जन्म और मृत्यु को छोड़कर. याद करना फिर से जीना है. स्मृति पुनर्जीवन है. हम याद करते हैं क्योंकि फिर से जीना चाहते हैं. जिस दिन हम याद करना छोड़ देते हैं या छूट जाता है, जीना शिथिल होने लगता है, हमारा अंत नजदीक आने लगता है.

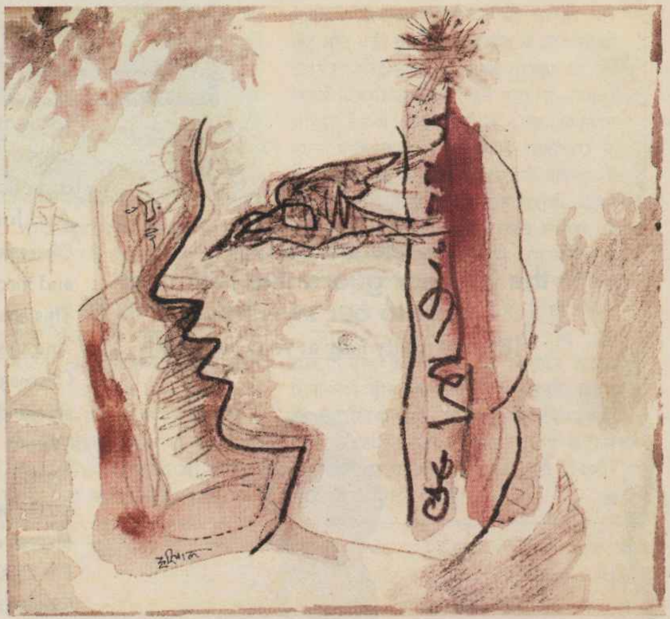

हमारे घर के सामने कठचंदन का पेड़ था और बगल में बकौली यानी मौलश्री का. दिदिया ने आंगन में हरसिंगार लगाया था. वे चुपचाप सुबह कभी कुछ हरसिंगार के फूल बीनकर अपने देवता को, जिन्हें वे ''कागज का देवता'' कहती हैं, चढ़ा देती थीं. हमारे घर के पास ही एक जैन मंदिर था—दिगंबर पंथ का. अकसर मुहल्ले के जैनी नंगे पांव उसमें जाते हम देखते थे—खुद उसके अंदर जाना बहुत कम हुआ. मंदिर के ठीक सामने मिठाई की तीन दुकानें थीं. हम उनसे मिठाई नहीं लेते थे क्योंकि उन्हें साफ नहीं माना जाता था हालांकि सागर विश्वविद्यालय के संस्थापक कुलपति डॉ. सर हरिसिंह गौर की एक युवा नातिन मोटरसाइकिल पर चढ़कर, दूसरे-तीसरे, उनमें से एक से मुंगौड़े लेने आती थी. हमारी मिठाई ऊपर गंज के महादेव मिठया के यहां से आती थी. सामने बख्शी जी का बहुत बड़ा मकान था जिसमें उनका उतना ही बड़ा संयुक्त परिवार ठसाठस भरा रहता था: उनकी स्त्रियां बल्कि लड़कियां भी कभी बाहर नहीं आती थीं. लंबे दालान में पुरुष ही लगातार बाहर बैठे होते थे—कब थोड़ी देर को नहाने, खाने और सोने के लिए अंदर जाते थे पता ही नहीं चलता था. अंदर जाते भी थे तो लगता था जल्दी ही फिर बाहर आने को. दालान के अंत पर एक मंदिर था: निजी भी और सार्वजनिक भी. हम लोग उसका इस्तेमाल पूजा-अर्चना के लिए नहीं खेलकूद के लिए करते थे. लुका-छिपी के कई खेल और कई बार की गप मुमकिन ही नहीं होती, अगर मंदिर न होता. मंदिर की देवमूर्तियां हमें टुकुर-टुकुर ताकती रहती होंगी या शायद उन्हें अपने अनंत की क्रीड़ा से इसकी फुरसत ही नहीं होती होगी. लड़कपन से ही यह धारणा मेरे मन में गहरे बस गई कि धर्म या मंदिर हमें खेलने का अवकाश देते हैं—अगर न दें तो वे जेलखाना हो जाते हैं.

गोपालगंज के बिलकुल छोर पर और सागर के तालाब के किनारे वृंदावन बाग एक बड़ा मंदिर था. चारों तरफ खेत थे—बड़ा ऊंचा भव्य प्रवेश द्वार था. बहुत बड़ा आंगन. बंदरों का उत्पात भी काफी होता था वहां. काफी संपत्ति और जमीन थी इस मंदिर के पास. उसके महंत और अन्य पदाधिकारी कुछ रहस्यमय बंद-से कमरों में रहते थे और कभी-कभार ही दीख पड़ते थे. यह अपेक्षाकृत औपचारिक और जनाकीर्ण मंदिर था—वहां के देवता बेहद सुसज्जित और बहुत दूर के जान पड़ते थे. उनसे किसी तरह का खिलंदरा संबंध नहीं बन सकता था—वे आदर के ही पात्र हो सकते थे. अकसर फूलों आदि में इतना दबे रहते थे कि ठीक से दीख भी नहीं पड़ते थे. मंदिर के पास एक हाथी भी था—वहां अकसर इधर-उधर से आए साधुनुमा लोग भी नजर आते थे, मंदिर का धर्मशाला की तरह उपयोग करते हुए. मुझे वृंदावन बाग के बजाय खुरई का वह मंदिर अधिक अच्छा लगता था, जो कि एक सरोवर के बीच था और जिसका पानी गंदा-हरा था जिससे तब-जब मछलियां बाहर छप से निकलती-डूबती नजर आती थीं. यों तो प्रायः हर घर में कहीं-न-कहीं छोटा-मोटा देवाला होता ही था. फिर भी, कई बार सोचता था कि देवता कुछ विचित्र या बेढब-सी जगह क्यों चुनते हैं अपने मंदिर के लिए. तब यह समझ कम थी कि इन सब में बेचारे देवताओं का कोई हाथ नहीं होता, बल्कि अपने देवता होने में भी नहीं.

गोपालगंज यों तो कोई पारंपरिक मुहल्ला नहीं था—उसमें ज्यादातर कचहरी और यूनीवर्सिटी में काम करने वाले अफसर और बाबू ही रहते थे—कुछ वकील-डॉक्टर भी. फिर भी, वहां मंदिरों-देवालों की खासी

संख्या थी. हमारे पास ही गोविंद शास्त्री का मंदिर था जिसके पास ही वे सपरिवार रहते थे. उनके सामने भी एक मढ़िया थी. पीछे कंपनी बाग था जो हमारे खेलकूद के अलावा देउसकर मास्टर की शाखा लगाने में भी इस्तेमाल होता था. हम उसमें नहीं जाते थे क्योंकि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के महात्मा गांधी की हत्या में हाथ होने को लेकर हम उसके विरुद्ध थे. यों तो हमारी मंडली सभ्य और अहिंसक मानी जाती है पर एकाध बार शाखा पर हम लोगों ने मामूली-सा पथराव किया था. शाखा जिस बड़े कुएं के पास लगती थी उसी के पास, हालांकि बाग की कानूनी सरहद से बाहर, एक मढ़िया थी, शायद शिव की. हो सकता है बजरंग बली की हो. उस पर एक इमली का पेड़ छाया रहता था. अंधेरे में या शायद गर्मियों की बेहद चिलचिलाती दोपहर में कभी-कभार मुहल्ले के समलैंगिक लड़कों के लिए वह शरण्य बनती थी.

नाना का घर हमारे घर के ठीक सामने था. मेरा पढ़ने-रहने का काम वहीं होता था. उसके पीछे कुछ दूर पर बड़ी-सी बावड़ी थी जिसे चोपरा कहते थे और जिसके किनारे भी एकाधिक मंदिर थे. अधिक पुराना लगता देवी का मंदिर चमारों की बस्ती में था जहां प्रायः रोज शाम चमार मिलकर भगतें गाते थे. मुहल्ले के सवर्ण लोग प्रायः दिन में, ब्याह वगैरह और देवी से संबंधित त्यौहारों पर वहां पूजा आदि के लिए जाते थे. ब्याह के बाद रश्मि के साथ मैं भी वहां गया था. वह अंतिम दर्शन ही है, अब तक.

नाना पहले सरकारी अफसर थेः गांधी टोपी लगाने वाले डिप्टी कलेक्टर. चूंकि उन्होंने रायपुर में मजिस्ट्रेट की हैसियत से स्वविवेक से तब के स्वतंत्रता सेनानी रविशंकर शुक्ल को हिरासत से रिहा करने के आदेश दिए थे, ब्रिटिश सरकार ने उन्हें बतौर सजा पदावनत कर दिया था. रिटायरमेंट के बाद उन्होंने वकालत करना शुरू किया. अफसर की तरह उनकी ख्याति यह थी कि वे मुलजिम पर कानून के तहत जुर्माना करते थे और फिर वह अगर गरीब हो तो अपनी जेब से वह जुर्माना भर देते थे. उन्हें ताश का जुआ खेलने का बड़ा शौक था, इतना कि जब वे रेलवे मजिस्ट्रेट थे तो स्टेशन पर रेलगाड़ी उनके ताश का खेल खत्म होने और उनके उस पर सवार होने के लिए कई घंटे लेट हो सकती थी. वे बहुत धार्मिक और विनोदी थे. रामचरितमानस का अखंड पाठ भी करते थे. उनके अनुकरण पर दस-ग्यारह बरस की उमर में ऐसा अखंड पाठ, बिना कुछ ज्यादा समझे, मैंने भी किया था. अकसर अखंडता में समझ की बाधा नहीं होती. नाना के यहां मिरजापुर के एक पंडित आते थे और रामचरितमानस पर आधारित कथा कहते थे. व्याख्या, शब्दों के कई-कई अर्थ होने की संभावना और कविता के अतिपाठ का पहला संस्कार उन्हें सुनकर ही मिला. कुछ यह बात भी समझ में आई कि शब्द और शब्द के बीच निरे अर्थ का ही संबंध नहीं रहता बल्कि ध्वनि, रचाव-तनाव आदि का भी.

लड़कपन से ही यह धारणा मेरे मन में गहरे बस गई कि धर्म या मंदिर हमें खेलने का अवकाश देते हैं—अगर न दें तो वे जेलखाना हो जाते हैं.

काका, पिता को हम काका ही कहते थे, गुस्सैल और तुनुक-मिजाज थे. एक बार वे दफ्तर जाने को घर के दरवाजे पर खड़े थे कि किसी राहगीर ने उनसे पूछ लिया कि कितना बजा है. जाहिर है, उनके हाथ पर घड़ी बंधी रही होगी. दफ्तर जाने के वक्त उनका पारा खासा गरम होता था. जोर से बोले कि इस शहर में पिछले चुनाव में राजाराम आढ़तिया खड़े हुए थे जिन्होंने वायदा किया था कि अगर वे जीत गए तो शहर में घंटाघर बनवा देंगे. वे हार गए सो, घंटाघर नहीं बना. राहगीर उनका मुंह ताकता रह गया होगा क्योंकि यह अजब उत्तर देकर वे कार में बैठकर, बिना उस बेचारे को समय बताए, दफ्तर चले गए.

काका के घनिष्ठ मित्र रामेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव ऊपर गंज में रहते थे. पहले वे म्युनिसिपल स्कूल में मास्टर थे. बाद में काका की मदद से विश्वविद्यालय में अध्यापक हो गए थे. काका उन्हें मास्टर कहकर ही पुकारते थे. दोनों के बीच, हर तीसरे-चौथे, जो स्थायी-सा मजाक चलता था वह यह था कि उनके घर आने पर काका पूछते थे कि क्यों मास्टर, चाय तो घर से पीकर ही चले होंगे, जिसका उत्तर मास्टर साहब यह कहकर देते थे कि नहीं, सोचा कि जब आ ही रहें हैं तो परमानंद के यहां ही चाय पिएंगे.

इकतीस जनवरी, 1948 अभी तक याद है. महात्मा गांधी की हत्या का मातम पूरे मुहल्ले में छाया हुआ था. शायद ही कोई घर रहा होगा जिसमें चूल्हा जला हो. दुख इतना निजी था कि जैसे हर घर में किसी निजी सदस्य की मृत्यु हो गई हो. वह इतना सार्वजनिक भी था कि लोग और औरतें एक-दूसरे से मिलने पर सुबुक उठते थे. हमारे यहां तब रेडियो नहीं था. ऊपर गंज में रहने वाले तहसीलदार मिश्र जी के यहां था जहां हम और मुहल्ले के कई लोग घंटों तक आंसू बहाते और रोते-सिसकते शवयात्रा का आंखों देखा हाल सुनते रहे थे. ऐसे सकल सर्वव्यापी दुख की भागीदारी उसके बाद फिर कभी नहीं हुई. वह ऐसा दुर्लभ दुख था जिसने किसी को कुछ छिपाने या दबाने की मोहलत नहीं छोड़ी थी—उसमें सब साथ थे और कोई भी अकेला नहीं था.

लड़कपन में कहानी लिखने की कोशिश भी की थी. पहली कहानी झलकन बाबू पर थी जो कचहरी में मुलाजिम थे और जिनके खिलाफ सरकार ने कुछ कार्रवाई शुरू की थी. वे उसके विरुद्ध अपने बचाव में कानूनी सलाह लेने नाना के पास आते थे. नाना का और अपना खासा समय वे खर्च करते थे और उनके चेहरे पर परेशानी का स्थायी भाव भी बना रहता था. फीस वगैरह वे खास नहीं देते होंगे पर रोज ही आ जाते थे और उन्हें चाय भी पिलाना पड़ती थी. गठिया वात से लगभग आजीवन पीड़ित नानी प्रायः झल्लाकर कहती थीं कि वह नासपीटा झलकन आ गया होगा तभी इतनी लंबी बातचीत चल रही है!

हम अपने सब पुरखे नहीं, कुछ ही को याद कर पाते हैं. तीन-चार पुश्तों से पीछे के तो नाम भी नहीं जानते और जो जानते हैं वे भी ज्यादातर इसलिए कि कुछ पारंपरिक संस्कारों में कम से कम तीन पुश्तों के नाम बताना जरूरी हो जाता है. चाहें तो हम अपनी वंशावली जान सकते हैं पर उसमें अकसर हमारी दिलचस्पी नहीं होती. किसी तीर्थस्थान का कोई पंडा बता दे तो कुतूहलवश भले हम सुन लें. हम अपने पुरखे भी चुनते ही हैं—कम से कम उन्हें तो जरूर ही जिन्हें हम याद रखते हैं. वे सब पुरुष ही होते हैं—उनमें मां और आजी को छोड़ दें तो उसके पहले के कोई नाम याद नहीं आते. अकसर किसी को भी याद नहीं होते. पुरखों में भी स्त्रियां अनामिका ही रही आती हैं. वे कभी रही होंगी पर हम तक आते-आते वे किसी की भी याद से ओझल हो जाती हैं. शायद उनके भाग्य में एक बार से अधिक मरना लिखा होता है.

गोपालगंज पहला और आखिरी मुहल्ला था जिसमें रहना हुआ. उसमें पड़ोस का अर्थ थाः सिर्फ एक-दूसरे से सटे हुए घर ही नहीं थे, लोग और परिवार भी थे. बाद में तो दिल्ली, रायपुर, महासमुंद, भोपाल, सीधी, अंबिकापुर आदि शहरों में रहना किसी मुहल्ले में रहना नहीं हुआ और न ही किसी सार्थक ढंग से पड़ोस में ही. गोपालगंज को छूटे और मुहल्ले-पड़ोस को छूटे अब तो पैंतीस बरस होने आए.

एक सिंधी किराने की दुकान हमारे ठीक बगल में थी. बंटवारे के बाद सागर आए सिंधियों का एक बड़ा कैंप सरकारी स्कूल के पास वाले मैदान में था जहां वे बरसों रहे. एक दिन रात को उस कैंप में आग लगी थी और सब कुछ स्वाहा हो गया था. लेकिन हम बच्चों को पता अगली सुबह को ही चला क्योंकि शोरगुल चीख-पुकार के बावजूद नींद नहीं खुली और किसी ने जगाया नहीं. हालांकि हमारा पड़ोसी सिंधी ईमानदार और सदाशय था और उसने कभी हमसे या किसी और से बेईमानी की हो

ऐसा याद नहीं आता, पर आम तौर पर सिंधियों को धंधे-व्यापार में विश्वसनीय नहीं माना जाता था. सरकारी स्कूल के पास की दुकान का किशन सिंधी चाट-खोंचा, पिपरमिंट और टॉफी आदि काफी उधार दे देता था. वसूली में बहुत सख्त नहीं था और उसने पैसा बचाकर अपने छोटे भाई को पढ़ाने और कुछ बेहतर रोजगार पाने के लिए काफी जतन किया था. नाना की वकील-जेब से चुराए गए रुपये अगर किताबों में खर्च न हो जाएं तो किशन की उधारी चुकाने में ही काम आते थे.

खरे परिवार का मकान बड़ा था और वह नीचे गंज के करीब-करीब बीच में था. उसका विकलांग लड़का—नाम शायद तरुण था— दोस्तों में था. मुहल्ले की लड़कैंहा राजनीति में उसकी सक्रिय भूमिका रहती थी. उसके घर में पुराना फर्नीचर था और वह घिसटकर चलता था. हम लोग मुहल्ले में बाद में आए थे और किराये के मकानों में रहते थे जबकि उसका अपना मकान था. मुहल्ले के लड़कों पर वर्चस्व जमाने की उसकी इच्छा और उसमें सफलता आज याद करने पर थोड़ी अजीब लगती है और यह खयाल भी आता है कि वर्चस्व की इच्छा का विकलांगता से भी कोई रिश्ता जरूर होता है. पर तब हमें उसमें उज्र की कोई बात नहीं नजर आती थी.

कचहरी यानी कलेक्टरेट गोपालगंज से एकदम लगी हुई थी. बचपन में उसके पास की डीसी की घटिया यानी डिप्टी कमिश्नर की घटिया कुछ बड़ी-सी लगती थी. कचहरी में जब किसी के तबादले या रिटायरमेंट पर विदाई की पार्टी होती थी तो उसमें शामिल बाबू और छोटे अफसर लोग गोपालगंज में अपने घर शाम को रुमाल में मगद के लड्डू और केले बांधकर लाते थे. हमें उसी से अंदाज होता था कि आज कचहरी में कुछ हुआ. कचहरी के परिसर में ही सर्किट हाउस था, जहां एक बार काका के साथ तब गया था जब वहां अपने राष्ट्रपति बनने के दसेक दिनों पहले डॉ. राजेंद्र प्रसाद सागर विश्वविद्यालय का दीक्षांत भाषण देने के सिलसिले में आकर ठहरे हुए थे. काका पर उनकी देखभाल की जिम्मेदारी थी. हम जब पहुंचे तो वे बगीचे में एक कुरसी पर बैठे सुई-तागे से अपनी थोड़ी फटी-सी जैकेट को रफू कर रहे थे. बोले कि दीक्षांत समारोह में फटी जैकेट ठीक नहीं लगेगी.

कैंटोंनमेंट उन दिनों साफ-सुथरा और वीरान होता था. उसमें बड़े अहातों वाले बंगले थे जिनमें आला अफसर रहते थे. एक कलेक्टर का बेटा हमारे ही स्कूल में पढ़ता था और हम लोग साथ क्रिकेट खेलते थे. बल्कि हम लोगों ने एक क्लब बनाया था. कई बार हम उसके बंगले के अहाते में क्रिकेट का अभ्यास करने गए थे. पर उसने कभी अपना ड्राइंगरूम आदि हमें नहीं दिखाया था हालांकि हमारे नाना उसके पिता के सहकर्मी ही थे. काका की बात अलग थी: उनका खुद बहुत रोब था पर वे किसी का रोब नहीं मानते थे. निहायत मुंहफट थे और कब किससे क्या कह दें इसका भरोसा नहीं किया जा सकता था. यों धोबी या चमार-कहार से वे देर तक बतियाते रहते थे.

लाल स्कूल, जहां हम पढ़ते थे, सड़क के दोनों ओर था. वहां दशरथलाल असाटी हमारे अध्यापक थे. काफी अंधेरे-से कमरे में हमारी क्लासें लगती थीं. लाल स्कूल के बगल में ही गोपालगंज थाना था और उसके आगे सागर की सेंट्रल जेल. वहां के एक वार्डर का बेटा राधेश्याम हमारा सहपाठी था और हम कभी खेलने या गप लगाने जेल की तरफ जाते थे. वहां काफी बड़ा बाग भी था और एक मंदिर भी. उससे थोड़ा आगे जाने पर ईसाई मुहल्ला शुरू हो जाता था. जेल के लगभग सामने ही एमेनुएल ब्वॉएज स्कूल था. उसके भी आगे छोटी-सी पहाड़िया पर रमझिरिया का मंदिर था जहां गोवर्धन के दिन भारी मेला लगता था और उसी शाम गोपालगंज की असली बड़ी दीवाली होती थी. पास के पथरिया गांव से एक बड़ा-सा घाघरा पहने हुए एक ग्वालिन हर रोज गोपालगंज आती थी दूध-दही और शायद घी बेचने. रास्ते भर वह बात करते हुए निकलती थी. कहते हैं मुहल्ले में उसके कई घोषित-अघोषित चाहने वाले थे.

ठंड की रातों में करीब ग्यारह बजे एक मूंगफलीवाला लगभग नियमित रूप से अपना ठेला और उस पर जलती ढिबरी लेकर वापस आता था और लगभग वीरान सड़क पर चिल्लाता जाता था: 'काजू हो गओ मूंगफला.' तब तक मंदिर, देवता और लोग सो चुके होते थे सिवाय देवी के मंदिर से ढोलक की थाप पर सुनाई देती चमारों की भगतों के. अकसर तभी रमेशदत्त दुबे के साथ, एक और लंबी शाम गुजारकर, मैं घर आता था कुछ डरता हुआ कि दिदिया फिर देर से आने पर डांटेंगी.

कई बार नाम याद नहीं रहते: घटनाएं और छवियां याद आती हैं, पर नाम बहुत जोर लगाने पर भी याद नहीं आते. याद पहले जो हुआ उसे जस का तस दोबारा से पेश नहीं कर देती: कई बार वह अनजाने ही या शायद बहुत महीन चतुराई से कुछ-न-कुछ बदल देती है. हमें गीत की धुन याद रहती है पर सब शब्द नहीं और हम उस धुन में उसी वजन का कोई और शब्द रख देते हैं जो चुपके से अर्थ भी बदल देता होगा. पर हमें पता नहीं चलता. या शायद कहीं हममें कुछ सजग होता है जो जानता है कि कुछ बदल रहा है पर ऊपर से हमें न तो इसकी खबर होती है और न ही हम इसे स्वीकार करते हैं. जीवन भर नहीं बदलता, स्मृति भी बदलती है. जीवन की दिशा, गति और रूप अकेले नहीं बदलते, स्मृति भी बदलती जाती है. जैसे हम समय और लय चुनते हैं, अंततः हम अपनी स्मृति भी चुनते हैं.

मुहल्ले की छोटी मसजिद आनंदीलाल दुबे के बड़े मकान के सामने थी. मुहल्ले में यों मुसलमान बहुत नहीं थे पर इतने तो थे कि जब 63-64 में जबलपुर-सागर में दंगे हुए तो उनकी भभक गोपालगंज तक पहुंचे. कुछ मुसलमानों को कुछ दिनों तक काका ने हमारे घर पनाह दी थी. कई हिंदू उग्रवादी—हालांकि तब यह शब्द प्रचलित नहीं हुआ था— उनकी तलाश में हमारे घर के आसपास चक्कर लगाते रहे थे. पर "पंडित जी" के डर के कारण कुछ कर नहीं पाए थे.

हमारे घर जब-तब मुसलमान मेहमान आते थे. उन्हें जिन प्यालों-तश्तरियों में चाय-नाश्ता दिया जाता था वे अलग रखे होते थे. उसी तरह जैसे कि वे ग्लास भी जिनमें हम ताकत बढ़ाने के लिए दूध में कच्चा अंडा घोलकर जब-तब पीते थे.

जीवन की दिशा, गति और रूप अकेले नहीं बदलते, स्मृति भी बदलती जाती है. जैसे हम समय और लय चुनते हैं, अंततः हम अपनी स्मृति भी चुनते हैं.

उस्मान चाचा हमारे घर के दरज़ी थे और उनकी दुकान पास ही के तिगड्डे पर थी. ग्यारहवीं क्लास तक हम लोग निकर ही पहनते थे क्योंकि पैंट पहनने की इजाजत नहीं थी. उस्मान चाचा जब आते थे तब उन्हें उसी अलग से रखे प्याले में चाय दी जाती थी. मैंने यह सोचकर कि अगर वे हमसे अलग हैं तो उन्हें चाचा कहने की क्या जरूरत है, एक बार उन्हें सिर्फ उस्मान कहकर संबोधित कर दिया. उनके सामने तो दिदिया कुछ नहीं बोलीं. लेकिन उनके जाते ही मुझ पर मेरी बदतमीजी को लेकर बरस पड़ीं. मैंने इतना छोटा होकर उन्हें उनके नाम से बुलाने की जुर्रत कैसे की, यह उनकी समझ में नहीं आया. उन्होंने मुझे गरमियों की भरी दोपहरी में उस्मान चाचा से माफी मांगने उनकी दुकान भेजा. कहा कि उसके बाद ही मुझे उस दिन का खाना मिलेगा. मैं कड़ी धूप में एक पेड़ के नीचे उस्मान चाचा की दुकान में अकेले होने का इंतजार करता काफी देर तक खड़ा रहा क्योंकि वे घिरे हुए थे और मुझे सबके सामने माफी मांगने में मुहल्ले के एक संभ्रांत परिवार से होने के कारण संकोच हो रहा था. उस्मान चाचा ने मेरे माफी मांगने पर कहा कि अरे, यह कोई माफी की बात नहीं

है बेटे, मुझे तो कुछ बुरा नहीं लगा. शाम को वे फिर घर आए और उन्होंने दिदिया को उलाहना दिया कि इतने छोटे लड़के को उन्होंने भरी धूप में क्यों भेजा. इस पर दिदिया ने टका-सा जवाब दियाः घर का सबसे बड़ा बेटा है. उसे परिवार की मर्यादा रखनी चाहिए. उस्मान चाचा परिवार के सदस्य थे, भले ही उन्हें अलग प्याले में चाय दी जाती थी. घर में नौकरों के साथ भी खासा समानता का व्यवहार होता था. दिदिया अकसर उनसे अपने सुख-दुख की बातें कहती थीं. खाली वक्त में वे हम बच्चों के साथ समान स्तर पर खेल आदि खेलते थे और उन्हें वही खाना मिलता था जो हमें. बड़े होने के कारण उन्हें हमें डांटने आदि का पूरा खुला अधिकार था.

गाढ़े दिनों के लिए कुछ बचाकर रखने का जतन न तो काका ने कभी किया और न ही नाना ने. नाना की तो आत्मनिर्भरता की जिद असाधारण थी. वे जब तक बिलकुल अशक्त नहीं हो गए, जो कि अस्सी की आयु के बाद ही हुए, वे वकालत करते रहे. उनका स्वभाव विनोदी थाः अपने पर भी हंसना उन्हें आता था. एक बार किसी हितचिंतक ने उनसे कहा कि पांडे जी, अब तो आपको अपना एक मकान बना लेना चाहिए. नाना बोलेः पूरी तैयारी है, जमीन देख ली है और नक्शा भी बन ही गया समझो. हितचिंतक ने जब यह पूछा कि फिर देर किस बात की है, उन्होंने हंसकर कहा कि बस पैसे ही नहीं हैं. बुंदेलखंडी की एक प्रसिद्ध कहावत थी कि गुड़ होतो, गुलगुला बनौते, लेते कनक उधार, अकेलो तेलई नैंया. नाना नब्बे वर्ष से अधिक की आयु प्राप्त कर बिना घर बनाए ही मरे. अपना मकान न होने का उन्हें कोई दुख था ऐसा याद नहीं पड़ता. उन्होंने कभी किसी से कुछ नहीं लिया. लगभग अंतिम क्षण तक वे दूसरों को ही कुछ देने की कुव्वत रखते थे. उनकी मृत्यु निपट अकेले भोपाल के एक अस्पताल में उस दिन हुई जिस दिन वहां प्रधानमंत्री भारत भवन का उद्घाटन कर रही थीं. ट्रैफिक नियंत्रण के कारण बड़े मामा भी अस्पताल बहुत देर से पहुंच पाए. मुझ तक यह खबर जान-बूझकर थोड़ी देर से पहुंचाई गई थी क्योंकि उद्घाटन समारोह का मैं मुख्य कर्ताधर्ता था. रश्मि और मैं कार्यक्रम समाप्त होने के बाद बहुत तकलीफ और मुश्किल से सीधे श्मशान की ओर भागे थे. तब तक वहां दादा—हम नाना को दादा ही कहते थे—की चिता को, काफी प्रतीक्षा करने के बाद, अग्नि दी जा चुकी थी.

दादा ब्रिटिश काल में सुराजियों से सहानुभूति रखते थे लेकिन उन्हें अंग्रेज अफसरों की न्याय-बुद्धि पर भरोसा भी था. जब वे होशंगाबाद में एसएलआर (सुपरिंटेंडेंट ऑफ लैंड रिकार्ड्स) थे तो उनका डिप्टी कमिश्नर एक अंग्रेज ग्रीनफील्ड था. हुआ यह कि किसी पटवारी को किसी अफसर ने कुछ साधारण-से आरोपों के आधार पर बरखास्त कर दिया. बरखास्तगी के आदेश के विरुद्ध पैंतालीस दिनों के भीतर अपील करने का नियम था. पटवारी ने मियाद के बाहर अपील दायर की लेकिन देरी का कोई कारण नहीं बताया. दादा ने अपील का गुण-दोष के आधार पर विश्लेषण कर अपने नोट में यह लिखा कि हालांकि पटवारी की बरखास्तगी साधारण-से आरोपों के आधार पर किया जाना गैरकानूनी है, उसे कोई राहत नहीं दी जा सकती क्योंकि अपील मियाद बाहर है. इस पर ग्रीनफ़ील्ड ने लिखाः अमुक को गैरकानूनी तौर पर बरखास्त किया गया है, मैं उसे गैरकानूनी तौर पर बहाल करता हूं.

दादा कट्टर कान्यकुब्ज थे और इसका उन्हें बहुत अभिमान भी था. हम लोग बीस बिसवा के कान्यकुब्ज थे (पता नहीं अब कितने बिस्वे की मान्यता बची है)—दादा अठारह तक नीचे आने को तैयार थे. पर किसी निकट के संबंधी का विवाह-संबंध अठारह से कम बिस्वे वाले परिवार में होने से वे ब्याह में शामिल ही नहीं हुए थे. वही दादा, इस घटना के कुछ बरसों बाद, एक जैन युवती से मेरे ब्याह में उत्साहपूर्वक शामिल हुए थे और बारात के अगुआ था. अपनी युवजनोचित क्रांतिकारिता में हम बुजुर्गों की गहरी उदारता अकसर नजरंदाज क ते हैं. उन्हें बखूबी पता था कि मैं अकसर उनकी जेब से रुपये चुरा लेता था. फिर भी, वे कचहरी से लौटकर वैसे ही कोट टांगते थे. कई बार लगता है कि जो स्वाभिमान आज पास में है, वह दादा की जेब से चुराया हुआ ही है.

काका के पास पहले साइकिल थी जिस पर आगे बैठकर एकाध बार मुझे भी कटरा बाजार जाने का मौका मिला था. फिर उन्होंने एक भारी-भरकम-सी मोटरसाइकिल खरीदी जिससे उनका एक भयानक एक्सीडेंट हुआ था और वे मरते-मरते बचे थे. लहूलुहान जब वे घर लौटे थे तो उनके जूते-मोजे उतारने में, खून से भीगे होने के कारण, मुझे देर लग रही थी जिस पर उन्होंने डांटकर मुझे लात मारकर अलग कर दिया था. वे कई दिनों तक अस्पताल में भरती रहे थे. बाद में उन्होंने एक सैकेंड हैंड कार खरीदी जो हमारे घर के सामने ही पार्क्ड रहती थी. थोड़े दिनों बाद उसमें अकसर धक्का लगाना पड़ता था. काका इतने दबंग थे कि किसी भी राहगीर से धक्का लगाने को बिना किसी हिचक के कह सकते थे. मैं यूनिवर्सिटी उनके साथ सुबह कार में ही जाता था हालांकि लौटता बस से था क्योंकि काका लौटते हुए इधर-उधर रुकते हुए देर से घर वापस पहुंचते थे. मैं तब कहा करता था कि बेबस जाता हूं और बेकार आता हूं. अंतिम वर्षों में उन्होंने एक नई एंबेसेडर खरीदी थी. दो-तीन दिनों, मेरे आइ.ए.एस. में आ जाने के बाद, उन्होंने उसी पर मुझे ड्राइविंग सिखाने की कोशिश भी की. तीसरे ही दिन सागर के परकोटे में मैंने उसे भेड़ दिया—वे बोले कि रहने दो, इस कार को बख्शो, तुम अपनी कार पर ही ड्राइविंग सीखना.

अपने बाबा रामेश्वर वाजपेयी को मैंने शायद कभी नहीं देखाः बहुत

Sound

साऊंड स्केप्स

संगीत का एक

हिन्दुस्तानी संगीत के चार दिग्गज
का एक अभूतपूर्व खज़ाना
के लिए रचा गया है जब आप

M93027

हरिप्रसाद चौरसिया

*"मेरी इस संगीत रचना में
जल की चंचल लीलाओं की
छवियां पेश की गई हैं —
कभी कांतिमय,
कभी उत्ताल तरंगों वाली,
और कभी बरसते मेघों की तरह
लबालब और छलकती हुई."*

बांसुरी, संतूर और गिटार की स्वर-लहरियों के माध्यम से
जल के विभिन्न रुपों की संगीतमय प्रस्तुति, जिसमें जोहड़ में ठहरे
जल की शांति भी है, तेज बहती लहरों की गति भी
और ऊंचाई से गिरते झरने का जोश भी.

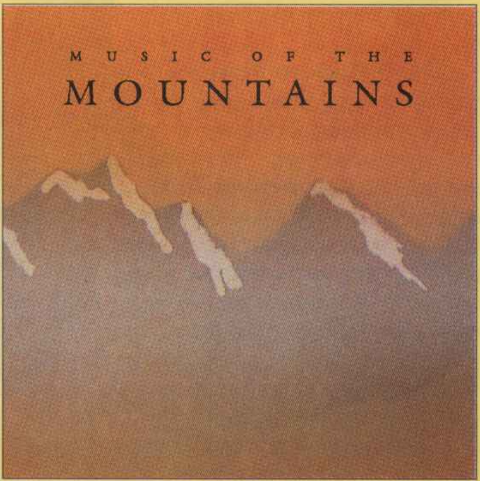

M93028

शिव कुमार शर्मा

*"मेरे संगीत में पहाड़ों के,
हर तरह के मूड चित्रित हैं —
भोर की लालिमा,
दोपहर की जीवंतता और
शाम के गहराते साए,
जिनमें अपनी-अपनी तरह
की चाहत है."*

संतूर रबाब और गिटार की स्वर लहरियों की
कूची से रंगी ऊंची पहाड़ी चोटियाँ
जो दूरी के बावजूद रोमानी है; और हवाऐं
जिनके हर झोंके में गीत-संगीत की महक है.

MUSIC TODAY

कृपया ध्यान दें : प्रति कैसेट कीमत : 55 रु./प्रति कॉम्पेक्ट डिस्क कीमत 395 रु. (सभी करों सहित). कैसेट कम से कम चार की संख्या में और कॉम्पेक्ट डिस्क से भेजे जाएंगे. डिलीवरी के लिए 4-6 हफ्ते का समय दें. चैक/डिमांड ड्राफ्ट म्यूज़िक टुडे को देय हों. कृपया संपर्क करें : MUSIC TODAY, P.O. BOX-29,

Scapes

संगीत के नज़ारे

अनूठा अनुभव

कलाकारों की संगीत कलाकृतियों
जिसे खा़स तौर पर ऐसे अवसरों
लोकप्रिय संगीत सुनना चाहते हैं

M93029

भास्कर चंदावरकर

*"इस संगीत में सागर के
कई मूड और रुप हैं —
फ़िरोज़ी से मूंगिया होते
चले आने वाले रंग;
अतीत की मीठी याद दिलाने
वाली धुनें; और चट्टानों से
टकराती हुई उत्ताल तरंगें...."*

गरजता, उफनता सागर; ज्वार-भाटे के रुप में अठखेलियां करती हुई लहरें; और रहस्यमयी अथाह गहराईयां — विभिन्न वाद्यों के इंद्रधनुष से निकलती संगीत की अनोखी कलाकृति.

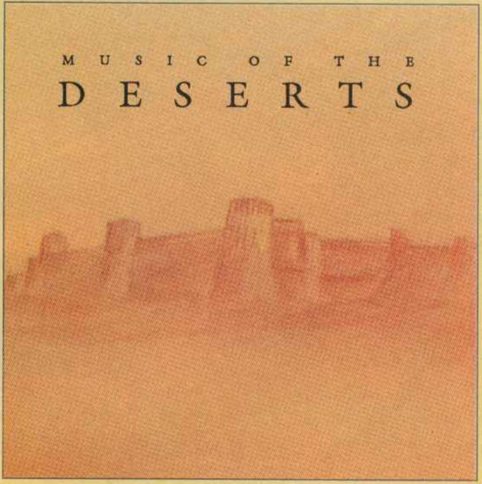

M93030

ज़ाकिर हुसैन

*"अपनी इन रचनाओं में मैंने
संगीत की लोकप्रिय परंपराओं का
प्रयोग करते हुए श्रोता को रेगिस्तान की
लय, ध्वनियों और मीठी धुनों के
उस संसार में ले जाने का
प्रयास किया है जिसका मैंने
वहां स्वयं अनुभव किया."*

लरजते हुऐ रेतीले अंधड़, बढ़ते हुऐ कारवां और बंजारा गीतों की गूंज, यही सब है जो सारंगी, बाँसुरी और रबाब की धुनों और तबले की जोरदार थापों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है.

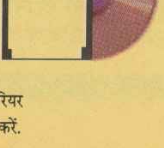

कैसेट और कॉम्पेक्ट डिस्क

किसी भी संख्या में आर्डर कर सकते हैं डिलीवरी के लिए अतिरिक्त 15 रु. भेजें. पेशकश/दरें भारत में लागू हैं. कैसेट/कॉम्पेक्ट डिस्क रजिस्टर्ड पोस्ट/कुरियर NEW DELHI - 110 001. कैसेट के नं० सहित अपना आर्डर, शुल्क तथा अपने नाम और पते के साथ भेजें. या अपे पास के कैसेट विक्रेता से सम्पर्क करें.

Satish Sud Graphics/HIN.

बचपन में देखा हो तो याद नहीं. वे होश में सागर नहीं आए. अलबत्ता उनकी चिट्ठियां याद हैं. पोस्टकार्ड पर पते में बाबा काका के नाम के आगे 'येम ये येलयेल बी' लगाना नहीं भूलते थे. उन्होंने मेरा नाम परिमल से बदलकर अशोक किया था यह मुझे काफी बाद में मालूम हुआ. वे किसान थे और राजापुर गढ़ेवा जिला उन्नाव में ही आजीवन रहे. वेदांत के पंडित भी थे. निराला जी के गांव गढ़ाकोला के नजदीक ही यह गांव है. काका बताते थे कि जब निराला महिषादल से अपने पैतृक गांव लौटे तो वहां कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति नहीं था. उन्होंने आसपास की जानकारी ली तो बाबा का पता चला. एक दिन निराला उनसे मिलने गढ़ेवा उनके घर पहुंचे. वहां बताया गया कि वे अपने बेटे परमानंद के साथ मवेशी चराने नहर के किनारे गए हैं. दोपहर थी. काका ने एक बार बताया था कि उन्होंने दूर से एक ऊंचे-पूरे आदमी को एक बड़ी लाठी हाथ में लिये उनकी ओर आते देखा. वे कुछ घबरा-से गए. निराला जी ने पास आकर अपना परिचय दिया. बाद में वे काका के बड़े भाई आनंदमोहन वाजपेयी के घनिष्ठ हुए. उनकी पहली पत्नी की मृत्यु पर निराला जी ने अपनी थोड़ी अलंकृत-सी हस्तलिपि में एक बेहद मार्मिक पत्र लिखा था जो बचपन में मैंने काका के पास देखा था. दुर्भाग्य से वह खो गया.

बहुत बरसों बाद और उनकी मृत्यु के कुछ दिनों पहले इलाहाबाद में निराला जी को पहली, और आखिरी बार देखने का मौका मिला. काका और मैं इलाहाबाद अपनी बड़ी बहन दिद्दा, आनंदमोहन जी की बड़ी बेटी के ब्याह के सिलसिले में फलदान लेकर गए थे. परिवार दारागंज का ही था. निराला जी पास ही की एक गली में रहते थे. हम लोग उनसे मिलने गए. वे बिना कुछ विशेष बताए काका को पहचान गए और शुद्ध बैसवाड़ी में अविरल बोलने लगे, कुछ इस तरह मानो कि उनके मित्र आनंदमोहन अभी भी जीवित हों जबकि उन्हें मरे बीस बरस हो चुके थे. वे उनके गणित और अंग्रेजी में निष्णात होने का बहुत देर तक बखान करते रहे. बोले कि जो बीजगणित नहीं जानता वह कविता लिख ही नहीं सकता और यह बात आनंदमोहन को पता थी बल्कि है. फिर उन्होंने कुछ विचित्र-सी अंग्रेजी में शेक्सपीयर आदि के बारे में कुछ कहना शुरू किया जो देर तक चलता रहा. हम लोग उन्हें शाम के समारोह में आने का न्यौता देकर विदा हुए. शाम को वे आए: चुपचाप बिना किसी से कुछ बोले या अब हमें भी पहचाने लगभग डेढ़ घंटे बैठे रहे. निराला बूढ़े थे—बीमार और निढाल भी. उनकी आंख बहुत गहरी, तेज और भेदने वाली थी. उनमें तेज था, शक्ति भी: अगर करुणा थी तो कम से कम उस शाम के अंधेरे में मैं देख नहीं पाया. कुछ ही महीनों बाद निराला जी के देहांत का समाचार दोपहर को जब आकाशवाणी पर आया तो मैं सागर में घर पर ही था. दालान में मेज पर काका दोपहर का खाना खा रहे थे. मैंने उनसे जाकर बताया तो बिना कुछ बोले उन्होंने एक मिनिट मेरी ओर देखा और फिर जोर से सामने की थाली को फेंक दिया. वह आंगन में जा गिरी और उसकी झनझनाहट छा-सी गई. अपने कमरे में जाकर काका थोड़ी देर वैसे ही भूखे-दुखी लेटे रहे और फिर कार उठाकर पता नहीं कहां चले गए. दफ्तर से फोन आया तो पता चला कि काफी देर बाद तक वे वापस नहीं पहुंचे थे.

काका दबंग, गुस्सैल पर बेहद मददगार थे. यों तो वे विश्वविद्यालय में डिप्टी रजिस्ट्रार जैसे साधारण-से पद पर थे पर प्रोफेसर तक उनसे, बिना उनके लिए पान ले जाए, मिलने नहीं जाते थे. दफ्तर से लौटने के बाद वे कुरता-धोती पहनकर हमारे घर के सामने की पटियों पर कुरसी डालकर बैठ जाते थे और मुहल्लेवालों से उनके हालचाल पूछा करते थे. इस पूछताछ से ही मुहल्ले के कई लड़कों को बाद में फ्रीशिप, नौकरियां आदि मिल जाती थीं. वे किसी की भी मदद करने को तैयार रहते थे पर किसी का उपकार निजी तौर पर लेने को कतई नहीं. अब समझ में आता है कि यह हेकड़ी उन्हें अपने किसान के बेटे होने और बिना किसी की मदद से आगे बढ़ने के अनुभव से मिली थी. अकसर वे जिनकी मदद करते थे उनमें से कई उनके खिलाफ भी हो जाते थे. यों तो मेरी जीवन भर उनसे बहुत कम बात हुई—मैं उनसे लगातार डरता ही रहा. पर एक बार उन्होंने कहा था कि तुम जिसका भला करो उसकी आंखों में आंखें डालकर देखो तो तुम वह तारीख बता सकते हो जब वह तुम्हारी पीठ में छुरा भोंकने की कोशिश करेगा—पर वह क्या करता है यह उसका मामला है, तुम्हें जो करना है तुम करो.

आइ.ए.एस. की सफलता सूची में मेरा नाम तो आ गया था पर बहुत दिनों तक नियुक्तिपत्र नहीं आया जबकि वरीयता क्रम में मुझसे काफी नीचे और अकरादि क्रम में भी पीछे एक सज्जन का, जो उन दिनों किसी और सेवा में सागर में ही पदस्थ थे, नियुक्तिपत्र आ गया था. चिंता हुई. पृष्ठभूमि यह थी कि कुछ वामपंथी मित्रों की सोहबत के कारण पुलिस रिपोर्ट शायद कुछ गड़बड़ थी. काका ने तय किया कि मैं दिल्ली जाकर पता करूं. उन्होंने एकाध अधिकारियों के नाम पत्र भी दिए. मुझे छोड़ने स्टेशन आए. जब गाड़ी छूटने को हुई तो बोले कि सबसे मिलकर स्थिति स्पष्ट कर देना पर इस मामले में राष्ट्रपति के नाम दया-याचिका आखिरी उपाय के रूप में दी जाती है, वह मत करना: तुम्हें नौकरी, भले ही आइ.ए.एस की, किसी की दया से, भले ही वह राष्ट्रपति की दया ही क्यों न हो, मिले यह बात मैं जिंदगी भर बरदाश्त नहीं कर पाऊंगा. सौभाग्य से दिल्ली जाकर कुछ करना नहीं पड़ा क्योंकि उसी दिन दोपहर बाद नियुक्तिपत्र पहुंच चुका था.

शायद उनकी मृत्यु के इक्कीस सालों बाद भी बरकरार उनका डर आज भी दूसरों की दया से बचाए रखता है. ■

कहानियां

• अमरकांत • भीष्म साहनी • निर्मल वर्मा
• रामकुमार • शिवानी • रमेशचंद्र शाह
• गोविंद मिश्र • विजयमोहन सिंह
• मैत्रेयी पुष्पा • स्वयं प्रकाश • ममता कालिया
• प्रियंवद • संजीव

राजनैतिक रोटियां सेंकना आसान नहीं. इसमें दूरदृष्टि के साथ सतर्कता भी जरूरी है. कब, कहां और कैसे आग लगाई जाए और कैसे बिना दामन झुलसाए रोटियां सेंकी जाए यह नौसिखुओं के बस का काम नहीं.

जनशत्रु

• अमरकांत • चित्र: अमिताभ दास

सूरज डूब गया है. एक गुमसुम शाम! आकाश सफेद हल्के-पतले बादलों की परत से ढका हुआ, जैसे किसी बड़े कमरे की छत पर चूनाकली कर दी गई हो. महंत बाबू—महंत प्रसाद बदवलिया—रामदे में आकर कुर्सी पर बैठकर सामने लॉन में माली को काम करते हुए देखने लगे. रेशमी कुर्ता, धोती, दोनों हाथों की अंगुलियों में सोने और कुछ बेशकीमती पत्थरों की खूबसूरत अंगूठियां, बड़ी-बड़ी आंखें, लंबा, स्वस्थ और कुछ थुलथुल शरीर. दरअसल अपनी साठ वर्ष की उम्र से वह कम ही लगते थे. सहसा बैठकखाने में फोन की घंटी बजने पर वह चौंक कर उठे और तेजी से अंदर चले गए.

फोन पर जो सूचना दी गई थी, उससे वह उत्तेजित हो गए, "क्या बकवास है, ठीक-ठीक बताओ..."

आगे जो कुछ बताया गया, उससे वह गुस्से में आ गए और फोन पर ही न मालूम क्या-क्या कह गए. लेकिन अंत में उनका स्वर धीमा पड़ गया और चेहरे पर चिंता का साया नजर आने लगा. "अभी आता हूं," कहकर फोन रखने के बाद वह तेजी से घर के अंदर चले गए.

बड़ा शोर था कि महंत बाबू इस बार—और पहली बार—बड़े जोर-शोर के साथ संसदीय चुनाव में खड़े होने की तैयारी कर रहे हैं. जब से—यानी दो वर्ष पहले—उन्होंने अपनी एक अलग पार्टी का गठन किया है, उनकी सभाओं, रैलियों, भाषणों और अखबारी प्रचार की धूम मची हुई है. समस्या बस यही थी कि जिस निर्वाचन क्षेत्र से वह खड़े होने वाले हैं, वह बहुत ही पिछड़ा और गरीब इलाका है, जहां के लोग अभूतपूर्व एकता का प्रदर्शन करते हुए पिछले दो बार से एक ऐसे गरीब और फिसड्डी आदमी को जिताते रहे हैं, जो बड़े से बड़े आंधी-तूफान में और रात-विरात उनके लिए मरने-कटने को तैयार रहता है. इस गढ़ को लेना आसा नहीं है, लेकिन महंत बाबू को विश्वास है कि कई हलकों से अप्रत्याशित सहयोग मिलने की वजह से वह सफल होकर रहेंगे.

एक सफल, प्रभावशाली, होशियार और दबंग शख्सियत के रूप में उनकी प्रतिष्ठा इधर बहुत बढ़ गई है. लेकिन बहुत कम लोगों को पता होगा कि एक विशेष मामले में वह एक युग प्रवर्तक व्यक्ति भी हैं. हमारे यहां हर विषय पर शोध करने का प्रचलन नहीं है, अन्यथा यह बहुत पहले सिद्ध कर दिया गया होता कि छोटी-छोटी सोसाइटी और छोटी-छोटी संस्था के आधुनिक और ऐतिहासिक महत्व को समझने वाले वह पहले व्यक्ति हैं. ऐसे छोटे-छोटे संगठनों का अस्तित्व तो पहले भी किसी-न-किसी रूप में रहा था, पर उन्हें युगानुकूल परिभाषा, रूप-रंग, महत्ता, आधुनिकता, व्यावहारिकता और उपयोगिता से लैस कोई भी नहीं कर पाया था. सबसे पहले महंत बाबू ने ही यह कार्य किया और आज जो लोग इस तरह के काम कर रहे हैं उन्हें शायद नहीं मालूम कि वे महंत बाबू के कितने ऋणी हैं!

करीब पैंतीस वर्ष पहले वह एक बहुत ही मामूली व्यक्ति थे और गांव में रहकर अपनी टूटी-फूटी जमींदारी की देख-रेख कर रहे थे. पर इस तरह के काम में बड़ी मेहनत और पैसे की जरूरत थी और अब उसमें वह मजा नहीं रह गया था, जो जमींदारी उन्मूलन के पहले उनके स्वर्गीय पिता के जमाने में रहा था. पच्चीस वर्ष की उम्र थी उनकी और वह बी.ए. कर चुके थे. उन्हें अकसर दो पुछंटे की धोती, कुर्ता और फ्लेक्स जूते में और हाथ में एक छोटे, चिकने डंडे के साथ गांव का चक्कर लगाते हुए देखा जा सकता था. वह किसी भी शिक्षित व्यक्ति को देखकर रुक जाते और झट उसे घर आने का निमंत्रण दे देते, "आइए न कभी, कोई ढंग की बातचीत हो, कोई सोसाइटी-वोसाइटी बने." कॉलेज-यूनिवर्सिटी में पढ़ने वाले गांव के लड़के जब छुट्टियों में आते तो उनसे भी वह यही

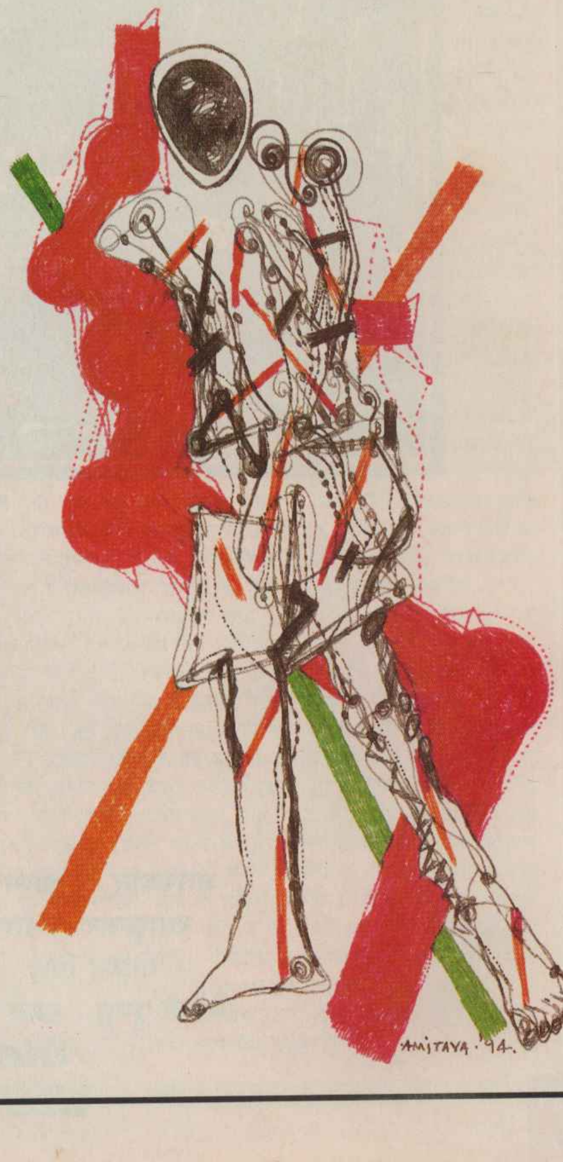

रसोईघर के दो उपकरण ले आइए आंखें बंद करके !

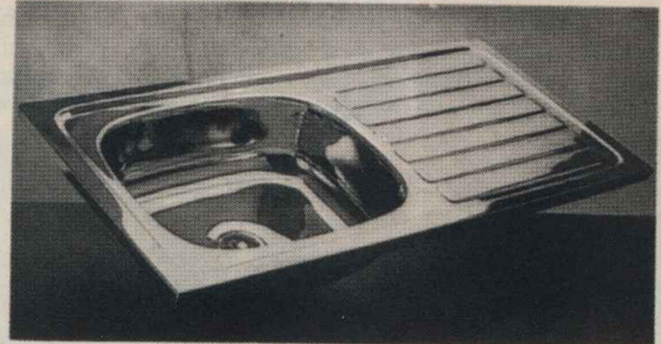

डायमंड®

स्टेनलेस स्टील सिंक और स्टोव

आपका रसोईघर. जहां आप पूरी सूझबूझ से एक-एक चीज़ चुनचुनकर सजाती हैं. फिर वो इसकी वॉल यूनिट हो या ओवन. लेकिन दो चीज़ें ऐसी हैं जिन्हें आप आंखें बंद करके अपने रसोईघर में ला सकती हैं. एक आपका स्टोव और दूसरा आपकी रसोई का सिंक... डायमंड स्टोव और डायमंड सिंक. आपके रसोईघर का आकार या साइज़ कैसा भी हो, आपके रसोईघर से ये मॉडल पूरी तरह मेल खाएं, खूबसूरती बढ़ाएं !

सेलम स्टेनलेस से बने डायमंड स्टोव और सिंक आवाज़ या खरौंच से पूरी तरह बेअसर हैं. अलग-अलग आकार और साइज़ में उपलब्ध डायमंड के हर मॉडल जीवाणुओं से पूरी सुरक्षा दिलाएं. साबुन और पानी से मिनटों में साफ हो जाएं. ऐसी जगमग चमक आए, जो कभी न पड़े फीकी... सदा खिली रहे ऐसी खूबसूरती !

तभी तो जब बात स्टोव और सिंक पसंद करने की आए तो सवाल रहे एक ही. वो ये कि कौन सा डायमंड मॉडल आपकी रसोईघर में सजाएं... जो इसकी खूबसूरती में चार-चांद लगाए !

फ़िनिक्स एप्लायेंसेस प्रा. लि.
४०५, आशीर्वाद बिल्डिंग, आयरन मार्केट,
अहमदाबाद स्ट्रीट, कर्नाक बंदर,
बम्बई-४०० ००९.
फोन : ३७६५२६७/३७६८९६४.

ADVERTS

कहते. सभी चकित होकर उनकी ओर देखते और अविश्वसनीय ढंग से मुस्कराकर आने का वायदा करते. महंत बाबू की दूरदर्शिता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि उन दिनों शहर या गांव में कोई भी छोटी-छोटी सोसाइटी के आधुनिक एवं ऐतिहासिक महत्व को समझ नहीं पाता था.

शायद महंत बाबू ही वह पहले व्यक्ति हैं, जिसने सबसे पहले महसूस किया कि देश एक संक्रमण काल से गुजर रहा है. उन्होंने अत्यंत धीमी गति से बहने वाली परिवर्तन की उस हवा के स्पर्श का अत्यंत संवेदनशीलता से अनुभव कर लिया, जो आगामी कुछ ही वर्षों में आंधी-तूफान का रूप धारण कर लेगी. हां, महंत बाबू उसी समय फौरन ताड़ गए कि सभी राजनैतिक पार्टियों के क्रांतिकारी विचार सदा के लिए निष्क्रिय भाषणों, प्रवचनों और नारों का रूप धारण करने की प्रक्रिया में हैं और सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कल्याण का हर काम परिश्रम व कुरबानी के ठोस रचनात्मक तरीकों से अलग हटकर खूब पैसा खर्च करके कागज पर, कागजी आंकड़ों की मदद से सिद्ध किया जाने वाला है.

यह विचार सूझते ही महंत बाबू की हालत किसी उच्च प्रतिभासंपन्न कल्पनाशील कवि अथवा विचारक की हो गई. उनके दिमाग में मौलिक विचारों की फुलझड़ियां छूटने लगीं और उन्होंने कई अद्‌भुत एवं महत्वपूर्ण निष्कर्ष भी निकाल लिये. पहला तो यह कि हर राजनैतिक पार्टी बहुत जल्दी जेबी संगठन का रूप धारण कर लेगी. और हर पार्टी में और उसके बाहर भी ऐसे लोगों की बाढ़ आ जाएगी, जो मौका मिलते ही बेहद दबंग जेबी समर्थकों की मदद से जब चाहे जेबी गुट या जेबी पार्टी बना लेंगे. उन्होंने यह भी सूंघ लिया कि शिक्षा और गरीबी तो वास्तव में टस से मस न होगी, पर उससे संबंधित हर काम पैसे से और पैसे के लिए कागज पर संपन्न होता जाएगा. और यह भी उन्होंने समझ लिया कि आने वाले समय में पार्टी, संस्था और उसकी विचारधारा की भी जरूरत नहीं होगी क्योंकि हर व्यक्ति पार्टी और विचारधारा से ऊपर उठकर स्वयं मूर्तिमान पार्टी, संस्था और विचारधारा बन जाएगा. फिर वह जो भी करेगा वह अनुकरणीय आदर्श बन जाएगा और जो भी बोलेगा, उसे विचारधारा समझ लिया जाएगा.

वह बहुत खुश हुए थे और इन्हीं मौलिक निष्कर्षों से प्रभावित होकर उन्होंने लघु सोसाइटी और लघु संघठन के जेबी रूपांतरण की परिभाषा निश्चित की थी. उन्हें अब किंचित् भी संदेह नहीं रहा कि भविष्य में राजनैतिक पार्टियों को भी इन जेबी संस्थाओं की बेहद जरूरत होगी. और दोनों का साथ चोली और दामन की तरह होगा. इसी से देश के चतुर्मुखी विकास का संतोष भी प्राप्त होगा और हर व्यक्ति धनी और संपन्न भी बनता जाएगा. और तभी उन्होंने 'रचनात्मक कार्य परिषद' नाम से एक ऐसी जेबी संस्था का गठन किया, जिसका उद्देश्य रचनात्मक कार्यों द्वारा देश का उत्थान करना था. वह आधुनिक परिभाषा की सबसे पहली सोसाइटी थी जिसने अपने चार सच्चे, ईमानदार और उत्साही सदस्यों की मदद से पक्के कुएं और पक्के तालाब बनवाने का बीड़ा उठाया था. एक कुआं बनने पर एक बड़ा भव्य उद्‌घाटन समारोह हुआ, फिर तो एक ही वर्ष के भीतर ही सारा काम संपन्न हो गया, जिसके बारे में अखबारों में प्रशंसात्मक रिपोर्ट भी छपी. वह एक जेबी संस्था की आदर्श, आधुनिक और कागजी कार्यशैली थी जिसमें अजीब आकर्षण और नवीनता थी. इसके बाद तो उन्होंने सड़क-निर्माण, वृक्षारोपण, शिक्षा, साहित्य, कला, नाटक कुछ भी न छोड़ा. और यह ईश्वर ही जानता है कि आज उनकी जेब में कितनी संस्थाएं और व्यक्ति हैं. इन संस्थाओं के जलसे बड़े सफल होते थे, जिनमें खूब पैसे खर्च किए जाते, लंबे-लंबे भाषण होते, बढ़िया खाना-पीना होता और जश्न मनाया जाता जैसे शादी-विवाह का दुर्लभ अवसर हो.

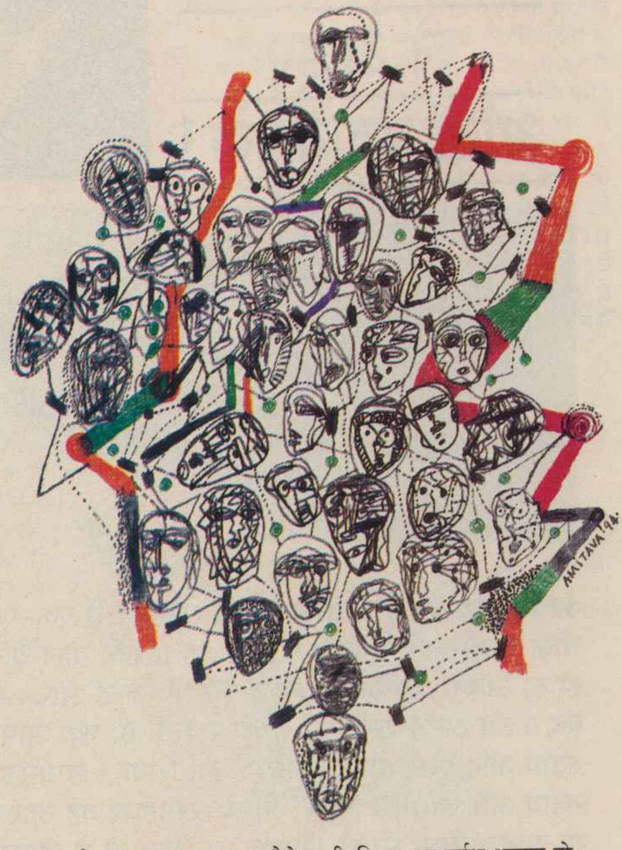

भीड़ उत्तेजित थी. उसने एक युवक को पकड़ रखा था. महंत बाबू ने वहां पहुंचते ही पूछा, "कौन है यह?" जबाव मिला कि यह आदमी कई महीने से मुहल्ले में तनाव पैदा करने के लिए ढेले फेंकता रहा. आज रंगे हाथों पकड़ा गया.

•••

फोन की सूचना के अनुसार जब महंत बाबू पहुंचे तो शाम का धुंधलका गहरा हो गया था. हवा न चलने की वजह से उमस बहुत बढ़ गई थी. पास में बहने वाले गंदे नाले और जगह-जगह इकट्ठे कूड़ों के अंबार से बड़ी सड़ी हुई दुर्गंध निकलकर चारों ओर फैल रही थी. वह अपनी कार सड़क के किनारे खड़ी करके उस भीड़ की ओर बढ़ गए, जो उस बड़े पुराने मुहल्ले की गली के मुहाने पर इकट्ठी थी. वहां तक पहुंचने में उन्हें काफी मेहनत करनी पड़ी, क्योंकि सड़क जगह-जगह पर कटी थी. और पग-पग पर ऊबड़-खाबड़ जमीन, गड्ढे और बड़े-बड़े ईंट-पत्थर को लांघना आसान नहीं था.

मैले-कुचैले वस्त्रों में साधारण लोगों की उस भीड़ को देखकर मुहल्ले की वास्तविक परिस्थितियों का अंदाजा हो जाता था. पर भीड़ के अजीब तेवर थे, जैसे किसी तलवार की धार. लोग बेहद उत्तेजित थे और एक समुद्र की तरह तरंगित हो रहे थे. भीड़ के आगे करीब एक पैंतीस वर्ष के नौजवान को दो

पफ़ का एक और चमत्कार !

कॉम्पैक्ट डबल डोर
230 लीटर

गोदरेज 230 लीटर डबल डोर. अनोखा 'टू-इन-वन'' रेफ्रिजरेटर. आकार, ठीक आपकी ज़रूरत अनुसार.

मिनी कोल्ड स्टोरेज

ज़्यादा बड़े 65 लीटर डीप फ्रीज़र के लिए अलग से दरवाज़ा. फ्रीज़र का तापक्रम इतना कम रहता है कि खाद्य पदार्थ कहीं ज़्यादा दिनों तक सुरक्षित रखे जा सकते हैं. इतना ही नहीं, चाहें तो फ्रीज़र में का एक रैक हटाइए और ज़रूरत मुताबिक जगह बना लीजिए.

और 'एक में अनेक' रेफ्रिजरेटर

नीचे का दरवाज़ा खोलिए और सामने पाइए 'एक में अनेक' 165 लीटर रेफ्रिजरेटर कम्पार्टमेंट. ज़रूरत मुताबिक शेल्फों को ऊपर-नीचे सरकाइए और मनपसंद डिज़ाइन का रेफ्रिजरेटर तैयार. इस में है एक अनोखा साइकलिक डिफ्रॉस्ट जिसके साथ है पानी अपने आप निकल जाने की सुविधा.

'गिव एण्ड टेक' ऑफ़र

चुने हुए विक्रेताओं से विशेष 'अदला-बदली' ऑफ़र का लाभ लेकर अपने पुराने रेफ्रिजरेटर के बदले कॉम्पैक्ट 230 ली. डबल डोर ले जाइए. शान बढ़ाइए.

Godrej® COLD GOLD Puf सहित

सुखमय जीवन. यही हमारा वचन.

HTA.2027R.95

लोगों ने पकड़ रखा था, जो एक खाकी पैंट और चेकदार अधबांही कमीज पहने हुआ था. उसकी आंखें छोटी-छोटी थीं. उसकी दोनों बांहें पीछे करके बांध दी गई थीं. उसका चेहरा लटक आया था और उस पर लाल-लाल दाग उभर आए थे, जिससे स्पष्ट था कि उस पर मार भी पड़ चुकी है.

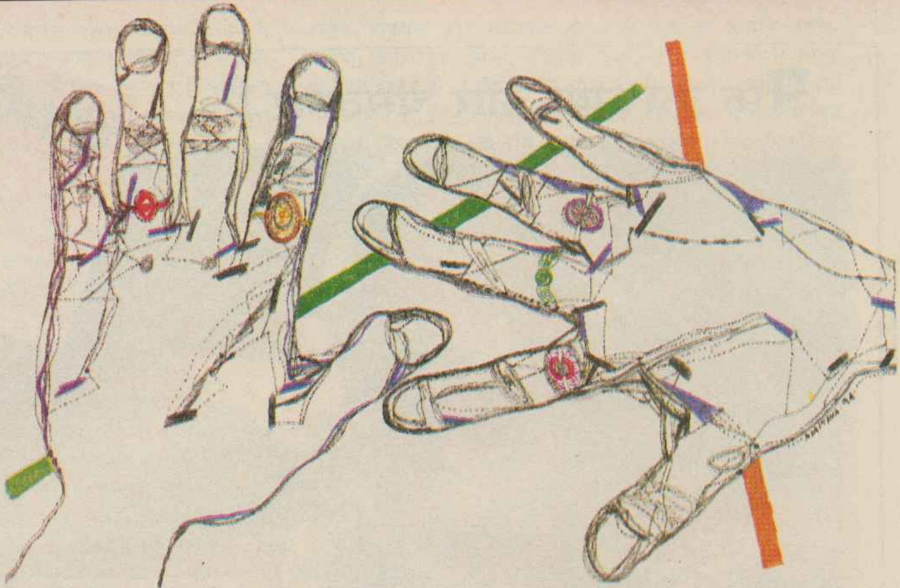

महंत बाबू ने बड़ी ही नरमी से पूछा, "अरे भाई, क्या बात है? क्या हो गया? मैं तो किसी दूसरी जगह जा रहा था कि यह भीड़ देखकर रुक गया. कौन है यह?"

एक काले, अधेड़ व्यक्ति ने, जो मटमैले पाजामा-कमीज में था, आगे बढ़कर उत्तर दिया, "साहब, इसने बड़ा जुल्म किया है. हम तो इसे कच्चा ही चबा जाते, फिर सोचा कि इसे पुलिस के ही सुपुर्द कर दें. पुलिस को ही देने जा रहे हैं इसे."

"यहां भी इसकी अच्छी पूजा हो गई है. पुलिस अलग से बताएगी," किसी ने भीड़ में से चिल्लाकर कहा.

"मारो साले को..." भीड़ में से कई आवाजें उठीं.

"चुप रहिए....मैं सहूलियत से पूछताछ कर रहा हूं, फिर इस तरह बात करने का क्या मतलब है?" महंत बाबू सहसा बेहद उत्तेजित होकर बोले, लेकिन फौरन ही पहले जैसी नरमी पर भी लौट आए, "भाई मेरे, जब मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या हुआ तो आपकी मदद ही करना चाहता हूं. नहीं तो, मैं तो अपने काम से कहीं जा रहा था. आप मुझे ठीक से बताएंगे तो मैं आपको हर परेशानी से बचाऊंगा. आप तो मुझे जानते ही होंगे..."

"आपको कौन नहीं जानता हुजूर," उस अधेड़ व्यक्ति ने मुस्कराकर कहा, "देखिए साहब, यह गरीब लोगों का मुहल्ला है और यहां हर जाति और धर्म के लोग न मालूम कब से प्रेम और शांति से रहते हैं. आज भी मुहल्ले में कोई झगड़ा-झंझट होता है तो हम अपने में ही मिल-जुलकर सुलझा लेते हैं, न बाहर जाते हैं और न किसी बाहरी आदमी को बुलाते ही हैं. इधर पिछले छह महीने से इस मुहल्ले में अजीब-अजीब बातें हो रही हैं. हम बहुत दिनों से ताक में थे कि कौन आदमी है जो यह सब कर रहा है और आज मालूम हुआ कि इसके पीछे कौन है..."

"कौन आदमी है? क्या बात हुई, बताइए भी तो."

"बताता हूं साहब जी. यह आदमी कई महीनों से मुहल्ले के घरों में खुद या दूसरों से ढेले फेंक-फेंकवा रहा है. पहले-पहले करीब एक महीने तक बारह-एक बजे मुसलमानों के घरों में ईंट-पत्थर फेंके गए, इससे मुहल्ले में आपस में बड़ी उत्तेजना फैली. लोगों को किसी तरह समझाया गया. कुछ दिनों बाद हिंदुओं के घर में ढेले आने लगे. सारा मुहल्ला इकट्ठा हो गया. लोग इधर-उधर दौड़े, पर कोई नहीं मिला. पहले से ही प्रोग्राम बनाकर यह सब किया जा रहा था. अब अलग-अलग जातियों को चुना गया. आपस में, एक-दूसरे पर लोगों को शक-शुबहा पनपने लगा. गनीमत की बात यह थी बाबू जी कि हममें से जो समझदार थे, वे जल्दी ही समझ गए कि कुछ ऐसे लोग हैं जो हमारी एकता और आपसी मुहब्बत से चिढ़े हुए हैं और हमें तोड़ना चाहते हैं..."

महंत बाबू ने लोगों से कहा, "इसे मेरे पास लाइए. मैं जनता का प्रतिनिधि हूं. मेरा भी फर्ज बनता है इसे कड़ा दंड दूं." उस आदमी की मुश्कें खोलकर लाया गया. उन्होंने उसके कूल्हे पर एक लात जमाई कि वह भाग खड़ा हुआ...

"यह कैसे कह सकते हैं आप? हो सकता है कि मुहल्ले के लोग ही यह सब कर रहे हों..." महंत बाबू ने कुछ रूखाई से पूछा.

"यह नहीं हो सकता. यह आदमी तो आज रंगे हाथ पकड़ा गया है. हम ताक में तो थे ही. आज इस बेवकूफ ने पता नहीं क्यों शाम को ही ढेले फेंकवाने शुरू कर दिए. चारों ओर ढेले गिरने लगे. कई लोग चोट खा गए. सारा मुहल्ला दौड़ पड़ा. इस मुहल्ले के बीच में एक बड़ा पुराना खंडहर है. वहां कोई जाता नहीं है. ये लोग इसी खंडहर में इकट्ठे होकर काम करते थे. मुहल्ले में बड़ा हल्ला मचा. लोग चारों ओर दौड़ने लगे, उसी समय किसी ने तीन आदमियों को खंडहर से निकलकर भागते हुए देख लिया. उन्होंने ललकारा. दो तो भाग निकले, यही आदमी ठोकर खाकर गिर पड़ा और पकड़ा गया..."

"इसने अपनी गलती कबूली?" महंत बाबू ने ऐसे पूछा जैसे गुस्से में हों.

"नहीं बताता बाबू जी... मार खा चुका है, अब पुलिसवाले ही इससे उगलवाएंगे."

"काफी पैसा मिला है इसे...." किसी ने भीड़ के बीच में से चिल्लाकर कहा.

"अभी मेरे हवाले कर दिया जाए तो इसका सारा भूत झाड़ दूंगा..." पहलवान किस्म का एक गोल मुंह वाला व्यक्ति चिल्लाया.

"अरे तुम लोग चुप रहो," उस अधेड़ व्यक्ति ने पीछे मुड़कर भीड़ को मना किया, फिर महंत बाबू की तरफ मुखातिब होकर बोला," हम इसे भीड़ को नहीं देना चाहते, कुछ हो-हवा गया तो बेकार में मुहल्ले पर दोष लगेगा..."

महंत बाबू चेहरा लटकाकर कुछ देर तक सोचते रहे. फिर गंभीरतापूर्वक बोले, "आप बहुत ठीक कह रहे हैं. मैं तो बहुत खुश हूं आप लोगों पर. आप लोगों के लिए तो मैं खुद हमेशा चिंतित रहता हूं कि किस

तरह यहां की गरीबी, अशिक्षा, गंदगी दूर हो, यहां के नौजवानों को कैसे रोजगार मिले. यहां के लोगों का कष्ट देखकर मेरा दिल रोता है. यहां कितनी गंदगी है चारों ओर! नालियां कैसी हैं, सड़कें कैसी हैं. खैर, ईश्वर कभी आप लोगों की सेवा करने का मौका देंगे तो आप देखिएगा कि यह अदना-सा आपका सेवक क्या-क्या करता है आप लोगों के लिए. नहीं, ले जाइए इसे. मैं होता तो खुद इसे भीड़ के हवाले कर देता या खुद इसकी चमड़ी उधेड़ देता. बड़ा जुल्म किया है इसने. जनता के असली दुश्मन हैं ये लोग. बड़े खतरनाक. नहीं-नहीं, ले जाइए इस हरामजादे को..'' उत्तेजित स्वर में बोलने के बाद वह चुप हो गए, सिर झुकाकर कुछ सोचने लगे, फिर बेहद धीमी और मीठी आवाज में बोले, ''पर एक बात है. इंसानियत का सवाल उठता है यहां. आप सब लोग अच्छे इंसान हैं. अच्छे इंसान का काम है कि गलती कोई भी करे, उसे एक बार तो क्षमा कर ही दें. ठीक से सोच लीजिए, क्या इसे एक बार माफ नहीं कर सकते? सिर्फ एक बार...''

''नहीं-नहीं,'' भीड़ में से क्रोध में कई आवाजें उठीं, ''इसे जिंदा दफन कर दो...'' ''यह बदअमनी फैलाने आया था, इसे वाजिब सजा मिलनी चाहिए...''

महंत बाबू भीड़ को तिरछी आंखों से देखकर इस तरह हंसने लगे जैसे उन्होंने मजाक कर दिया था. फिर मीठी आवाज में कहने लगे, ''अरे, तो मैं कहां कहता हूं इसे सजा न दी जाए. मैं तो आपका मन टटोल रहा था कि कहीं आप भीतर से कमजोर तो नहीं हैं? सच बात तो यह है कि आप लोग इसे माफ भी कर देते तो मैं कतई नहीं मानता, इसे जहन्नुम में भेजवा कर ही दम लेता. नहीं, ले जाइए इसे अभी, पर...'' कुछ देर वह रुके, ''एक अनुरोध है आपसे. इसे ले जाने के पहले कुछ देर के लिए मेरे सामने लाइए. मैं यहीं, आपके सामने इसे पचास जूते लगाना चाहता हूं, इसके बाद आप ले जाइएगा. मैं जनता का प्रतिनिधि हूं और मेरा भी फर्ज बनता है कि इसे कोई कड़ा दंड दूं...''

''अरे, आप जाने दीजिए बाबू जी,'' अधेड़ आदमी ने कहा, ''हम इसके लिए काफी हैं....''

''आप मेरी बात को मजाक न समझिए...'' महंत बाबू ने तैश में आकर कहा, ''मैं इसे पच्चास जूते अभी लगाऊंगा. मेरे रहते इसकी हिम्मत कैसे हुई?''

महंत बाबू के बार-बार आग्रह करने पर लोगों में उस व्यक्ति की मुश्कें खोल दी और उनके सामने लाकर खड़ा कर दिया. उसके सामने आते ही महंत बाबू उस पर जोर-जोर से चिल्लाने लगे, ''क्यों बे, तू कौन है? तेरा क्या नाम है? तू कहां से आया है..., बोल कमीने...'' वह हांफने लगे.

उस अपराधी ने अजीब तरह से चौकन्ना होकर उनकी ओर देखा, गोया किसी संभावित प्रहार से बचने की तैयारी कर रहा हो. उसकी आंखों में एक अद्भुत चमक भी आई. इतने में ही महंत बाबू ने घूम कर उसके कूल्हे पर जोर की लात जमाई, जिससे वह आगे लुढ़क गया. वह एक और लात जमाने जा रहे थे कि वह व्यक्ति इस तरह उठकर भाग चला, जैसे सौ मीटर की दौड़ में दौड़ने वाला झुका हुआ खिलाड़ी सिगनल मिलने पर तेजी से दौड़ पड़ता है. बड़ा फुर्तीबाज था वह. वह बड़ी तेजी से तीर की तरह सड़क की दूसरी ओर स्थित एक अन्य गली की ओर भाग चला.

''बता देता हूं, रुक जा. मैं तुझे पाताल से भी पकड़ मंगवाऊंगा...'' इतना कहते हुए महंत बाबू उसकी ओर भागे. किसी बूढ़े घोड़े की दुलकी चाल से वह दौड़ रहे थे. पहले तो लोग कुछ समझ ही न सके और भकुआकर देखने लगे. इसके बाद भीड़ में से कई लोग दौड़ पड़े. बड़ी हल्ला मचा. महंत बाबू खुद ''पकड़ो-पकड़ो...'' चिल्ला रहे थे.
लेकिन अब तक काफी देर हो चुकी थी. हल्का अंधेरा भी उतर आया था और उसी में वह व्यक्ति पता नहीं किधर लुप्त हो गया. ■

बजाज मिक्सोमैटिक खरीदने के
कई छोटे कारण

और एक
बड़ा कारण

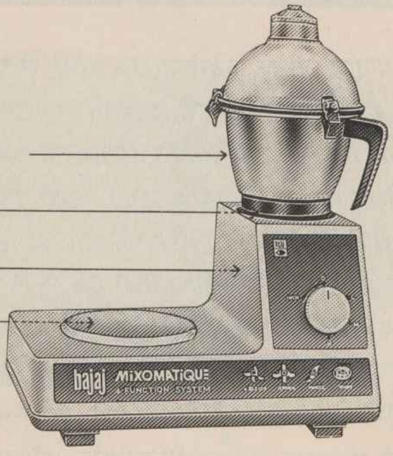

• सैलम स्टेनलेस स्टील जार
• सुविधाजनक
कॉर्ड-वाइंडर.
• 20,000 आर.पी.एम. की
शक्तिशाली मोटर.
• बेहतर स्थिरता के लिए
चौड़ा तला.

2 साल की गारंटी

मजबूत मशीन पिसाई महीन

bajaj

बजाज भरोसे का दूसरा नाम

जब आप बजाज मिक्सोमैटिक खरीदते
हैं, तब आपको सिर्फ़ एक मिक्सर ही नहीं
मिलता, आपको मिलता है
भरोसा — अनमोल क्वालिटी का, और
विश्वास देशभर में फैली हुई सेवाओं का,
जो सिर्फ़ बजाज ही आपको दे सकते हैं!

LINTAS BE MIXO 136 154 HI

अब बाई की रोज की खिट-खिट से छुट्टी. ताज्जुब होता है, कि मैंने इसके बिना इतने दिन बिताए कैसे ?

विद्या किनी
गृहिणी

मैं तो इसमें रेशमी कपड़ों से लेकर डेनिम और चद्दरें तक धो डालती हूं. और सब बिलकुल साफ़ धुलते हैं.

मोनिका दलवी
गृहिणी

भारत के घर-घर की पसंद. एक बेजोड़ लीडर. जिसे ८,००,००० से ज़्यादा परिवार अपना चुके हैं. हर एक वीडियोकॉन मॉडल में है विश्व की अग्रणी जापानी पलसेटर टेक्नोलॉजी. V-NA-811 टेक्नो-क्लीन भारत की पहली, माइक्रो कम्प्यूटर नियंत्रित, प्रोग्राम की सुविधा युक्त तथा हल्के स्पर्शवाले कन्ट्रोल्स से चलनेवाली पूर्णतः ऑटोमैटिक वॉशिंग मशीन. V-NA-400 T भारत की सबसे बड़ी सेमी-ऑटोमैटिक वॉशिंग मशीन. हर बार की धुलाई में २२ कपड़े धोने की क्षमता. ३-तरह की धुलाई के विकल्प. और एक विशेष सेलेक्टर तथा धुलाई पूरी होने पर संकेत देनेवाला बज़र. नयी V-NA-250 DX सुपर-वाश बाजार में उपलब्ध सबसे शक्तिशाली ३ किलो-सेमी ऑटोमैटिक वॉशिंग मशीन है. इसमें बज़र तथा रैट मेश है और कैस्टर व्हील भी लगे हैं. V-NA-200 T भारत की पसंदीदा सुडौल मशीन. एक बार की धुलाई में १२ कपड़े धो सकती है. और V-NA-200 E है सबसे किफायती ३ किलो सेमी-ऑटोमैटिक वॉशिंग मशीन. यह मिनटों में कपड़े धोए, खंगाले और सुखाए हर दिन १००० से ज़्यादा लोग अपने घर लाते हैं एक वीडियोकॉन वॉशिंग मशीन. आप भी आज ऐसा ही कीजिए, ताकि कल आप भी, दुनिया को सुना सकें इसकी खूबियों की कहानी.

सच ! कितनी क्वालिटी की मशीन है. मुझे एक दिन की भी तकलीफ नहीं दी. कहीं नज़र ना लगे !

सीमा चॅटर्जी
गृहिणी

यह धोए, खंगाले और सुखाए भी... मेरा पूरा हाथ बंटाए और मुझे आराम पहुंचाए.

डॉ. पद्मश्री
कार्डियोलॉजिस्ट

शुक्र है. न गरम पानी की ज़रूरत है न बहते पानी की बंदिश. अपनी सुविधानुसार कपड़े धो सकती हूं

ज्योती बजाज
ब्यूटीशियन

८,००,००० से भी ज़्यादा गृहिणियां अपनी वीडियोकॉन वॉशिंग मशीन की खूबियों का बखान करते हुए फूली नहीं समाएंगी. सुनिए. इनमें से ५ के विचार.

V-NA-400T

V-NA-200E

V-NA-811

V-NA-250DX

V-NA-200T

वीडियोकॉन

ली ड र है स ब का वी डि यो कॉं न आ प का

चेहरे

● भीष्म साहनी ● चित्र: हरिपाल त्यागी

अधर में लटका, और निराशा के बीच झूलता, अपने ही अंदर डूबता-उतरता आदमी... कैसी होगी उसकी कहानी?...

शंभुनाथ ने मेरे घर का दरवाजा खटखटाया और फिर बाहर आंगन में टहलने लगा. वही ढलवां कंधे, झुकी हुई गरदन, घुटनों को छूते हुए से लंबे बाजू, चेहरे पर तीन दिन की दाढ़ी. खिड़की के परदों के पीछे से मैंने उसे देखा, पर मन नहीं हुआ कि दरवाजा खोलूं. वितृष्णा-सी हुई. कुछ इसलिए कि आए दिन पहुंच जाता था. न काम, न धाम, आकर मुंह बाये बैठ जाता था. या फिर निरर्थक-सा छिटपुट वार्तालाप, "अब तो गरमी कुछ कम हो गई है"... "तुम सुबह घूमने जाते हो?" आदि आदि. पर मैं दरवाजा खोले बिना रह भी नहीं सकता था. उसे देखकर मेरे अंदर बेचैनी-सी उठने लगती. मन में तरह-तरह के सवाल भी उठने लगते. "यदि इस आदमी ने जीवन में कुछ किया-कराया होता तो मैं लपककर दरवाजा खोलता, भले ही यह कितना ही बड़ा बोर क्यों न होता. यदि इसने दो पैसे कमाए होते, यदि यह साफ-सुथरे कपड़े ही पहने होता, आत्मविश्वास के साथ उठता-बैठता, तब भी इसके प्रति मन में इज्जत का भाव उठता. पर यह तो जैसे अधर में लटका हुआ, आशा और निराशा के बीच झूलता हुआ-सा आदमी है, न इधर का, न उधर का, जो अपने अंदर ही डूबता-उतराता रहता है..." तरह-तरह के विचार मेरे मन को कचोटते और मैं दरवाजा खोल देता.

अब भी मैंने दरवाजा खोल दिया. वह अंदर आया, अपने धूल से अटे जूते पहने ही पहने और मैले से रूमाल के साथ गले और चेहरे का पसीना पोंछते हुए, सोफे पर आकर पसर गया.

मुझे फिर वितृष्णा हुई. यह आदमी रहन-सहन के सामान्य नियमों को भी भूल चुका है. अगर मैं इससे कुछ कहूं—जैसा मैंने इसे एक बार टोक दिया था—तो यह झट से उठ खड़ा होगा और माफियां मांगता हुआ बाहर जाने लगेगा.

"कहो, कैसे आना हुआ?" मैंने पूछा.

"यों ही..." उसने क्षीण-सी मुस्कराहट के साथ कहा और फिर चुप हो गया. न जाने अब यह चुप्पी कितनी देर तक बनी रहेगी, मैंने मन ही मन कहा.

"यह क्या उठा रखा है?" मैंने खाकी-से लिफाफे की ओर इशारा करते हुए पूछा जिसे उसने अपने सामने तिपाई पर रख छोड़ा था.

"बताता हूं. एक कहानी है. संपादक ने लौटा दी है पर मैं तुम्हारी राय लेना चाहता हूं."

मन में आया कहूं, मैं लौटाई हुई कहानियां नहीं पढ़ता. पर यह सोचकर कि इस बेढब आदमी के दिल को भी ठेस पहुंच सकती है, मैंने कहा, "ठीक है. यहीं रखा रहने दो. पढ़ लूंगा... पर तुमने तो कसम खाई थी कि अब कलम को हाथ नहीं लगाओगे."

"न ही लिखता तो बेहतर था. न तो संपादक ही लौटाता और न मुझे तुम्हारा मुंह जोहना पड़ता."

मुझे कोफ्त-सी हुई. यह आदमी बोर तो था पर मेरे पास कोई उम्मीद लेकर कभी नहीं आया था. वह मात्र इसलिए टपक पड़ता था कि उसे साहित्य में रस मिलता था. और मैं, एक अध्यापक के नाते, साहित्य से अपनी रोजी कमाता था. लोग मुझे साहित्य का पारखी भी मानते थे, हालांकि एक बात मेरी समझ में कभी नहीं आई कि अगर किसी की कलम नहीं चलती तो वह क्यों आए दिन फिर से कलम उठा लेता है. हम अध्यापक लोग तो ऐसा नहीं करते. एकाध बार कलम-आजमाई करने के बाद हम किनारा कर जाते हैं. फिर केवल दूसरों की रचनाएं पढ़ते हैं और मार्गदर्शन करते हैं. कलम चले तो चलाओ, नहीं चले तो छोड़ दो. तुम्हारे न लिखने से कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है. हजारों पुस्तकें पहले से पुस्तकालयों की धूल चाट रही हैं.

पर मैं चुप बना रहा. इस आदमी से जुड़ा बहुत कुछ था जो मेरी आंखों के सामने घूम गया और मैं चुप रहा. कौन जाने इसमें सचमुच रचनात्मक संवेदन पाया जाता हो? पर साहित्य सृजन से चिपटे रहना आत्मप्रवंचना भी तो हो सकता है, मन-छलावा. अपने को लेखक समझने का मोह, लेखक कहलवाने का मोह, लेखक के रूप में पहचाने जाने की ललक. उधर, लिखने बैठो तो लिख नहीं पाओ, कागज पर कागज काले करते जाओ और फाड़ते जाओ. कौन जाने?

तिपाई पर रखी उसकी कहानी को देखते हुए तरह-तरह के विचार मेरे मन में उठने लगे थे, जब वह सहसा उठ खड़ा हुआ.

"वक्त मिले तो इसे एक नजर देख जाना. और जो पसंद नहीं आए तो फाड़कर फेंक देना," एक क्षीण-सी मुस्कान के साथ उसने सिर झटक दिया और दरवाजे की ओर मुड़ गया.

मुझे हैरानी हुई. ऐसी कृपा तो उसने मुझ पर पहले कभी नहीं की थी कि इतनी जल्दी उठ जाए. और उसकी आवाज में भी मुझे कुछ नई-सी गूंज सुनाई दी थी जिसने मुझे अचंभे में डाल दिया था.

दो वर्ष पहले उसकी पत्नी उसे छोड़कर चली गई थी. उसके घर छोड़ जाने पर उसके आत्मसम्मान को गहरा धक्का लगा था. विशेषकर, जब वह अपने साथ अपने दोनों बच्चों को भी यह कहकर ले गई थी कि "मैं तुम्हारा साया भी अपने बच्चों पर नहीं पड़ने देना चाहती." और वह मुंह बाये मात्र देखता रह गया था. कितने ही दिन तक तो उसे इस बात पर विश्वास ही नहीं हो पाता था कि वह अपनी पत्नी की नजरों में इतना भी गिर सकता था, यहां तक कि उसकी पत्नी उसकी ओर से पीठ मोड़ लेगी और वह भी शादी के आठ वर्ष बाद जब बच्चे बड़े होने लगे थे.

शादी से पहले एक-दूसरे से मिलने पर शंभुनाथ ने साहित्य के प्रति अपनी गहरी रुचि की अनेक बार उससे चर्चा भी की थी, उसे कवियों के पद भी सुनाता रहा था और कई बार उत्कट भावनाओं के ज्वार में डूबते-उतराते हुए उसने यह भी कहा था कि मैं लेखक बनना चाहता हूं और साथ में भावावेश में यह भी जोड़ा था कि मेरे लेखन के लिए तुम मेरी प्रेरणा बनोगी. उस समय उसकी भावी पत्नी भी यह सुनकर उस पर रीझ-शीझ गई थी, और ब्याह से पहले ही वह ऐसे सपने भी देखने लगी थी जिनमें वह निखरे-निखरे व्यक्तित्व वाले एक सफल, कीर्तिप्राप्त लेखक के रूप में उसकी आंखों के सामने उभरता रहा था. कौन-सा तंतु कहां पर टूटता है, कौन जाने? इसका लेखा-जोखा कौन करे?

घर छोड़कर जाने के कुछ ही दिन पहले उसने शंभु की शिकायत करते

हम अध्यापक लोग एकाध बार कलम-आजमाई के बाद किनारा कर फिर केवल दूसरों की रचनाएं पढ़ते हैं, मार्ग-दर्शन करते हैं. कलम चले तो चलाओ, नहीं तो छोड़ दो.

हुए बौखलाकर मुझसे कहा था, ''यह लेखक कहां है जी, यह तो कुछ भी नहीं है. लिखने बैठता है तो कागज फाड़-फाड़कर फेंकता रहता है. दो वाक्य नहीं लिख पाता. अगर यह लिखे भी तो मैं मान लूं कि यह अपनी मनपसंद का ही सही, कोई काम तो कर रहा है. भले ही, यह और किसी का नहीं तो अपना तो कुछ संवार रहा है. पर यह लिखे तो?''

तब क्यों इसकी कलम नहीं चलती थी, मैं नहीं जानता. क्या इसलिए कि उसकी पत्नी अधिक व्यवहारकुशल थी, शंभु के प्रति उसकी अपेक्षाएं भिन्न थीं, वह दुनियावी बातों को लेकर अधिक सजग और सचेत थी जबकि शंभु अपने में खोया-सा रहता था, अपनी भावनाओं में डूबा-डूबा-सा. शायद इस कारण उसका आत्मविश्वास जम नहीं पा रहा था.

कुछ समय बाद एक दिन शाम को जब मैंने लिफाफा खोला और कहानी के पन्ने पलटने लगा तो मैंने पाया कि वह स्वीकारोक्ति की शैली

में लिखी गई थी, मूलतः अपनी पत्नी के साथ अपने संबंधों को लेकर, और समूचे विवरण में जगह-जगह साहित्य के प्रति उसके लगाव की चर्चा उठती रही थी.

शंभुनाथ की कहानी के कुछ अंश:

उस दिन व्याख्यान आरंभ होने से पहले हॉल खचाखच भरा था. तभी वह हॉल के अंदर आए थे और उन्हें देखते ही मैं पुलक-पुलक गया था. उन्होंने ही वह प्रहसन लिखा था जिसे पढ़ते हुए मैं लोटपोट होता रहा था. संयोजक ने उनके गले में फूलमाला डाली और वह चबूतरे पर एक ओर को बैठ गए. उनकी आंखों पर मोटे शीशों वाला चश्मा लगा था और सिर पर कामदार टोपी थी. उनके चेहरे से जैसे नूर टपक रहा था. उन्होंने अपने भाषण में क्या कहा, मैं कुछ भी समझ नहीं पाया. आठ-नौ साल का बालक क्या समझेगा? मुझे केवल उनका गोरा-गोरा चेहरा और मेरे दिल की उछाह भरी धड़कन ही याद है. जब वह बोलकर बैठे थे तो उनका चेहरा दमक रहा था और माथे पर पसीने की बूंदें छलक आई थीं.

केवल एक जाने-माने लेखक के प्रति ही मेरा ऐसा स्वभाव रहा हो, ऐसा नहीं था. मैं किसी भी गुणी व्यक्ति को विलक्षण मानने लगा था और ऐसे व्यक्ति को निहारते रहने की मेरी आदत-सी बन गई थी. कोई गोलियां खेलने में उस्ताद हो या गणित के सवाल निकालने में, मेरी नजर में एक विलक्षण जीव बन जाता था. वार्षिकोत्सव के समय एक भजनीक कभी-कभी दूर-पार से हमारे शहर में आया करते थे. सैकड़ों लोग उन्हें सुन पाने के लिए जुट जाया करते थे. जब वह सिर तनिक टेढ़ा किए हार्मोनियम पर उंगलियां चलाते हुए गाने लगते, ''आज रण में जा के, धूम मचा दे, बेटा!'' तो मैं नीचे बैठा, मंत्रमुग्ध-सा उन्हें निहारता रह जाता. बचपन में—और बाद में लड़कपन में भी—हर तीसरे दिन कोई-न-कोई व्यक्ति मेरा हीरो बन जाता. पर लेखक का और साहित्य का, उन दिनों भी, मेरे लिए विशेष आकर्षण था. बाद में कॉलेज का छात्र हो जाने पर मेरी आंखें उस अध्यापक के चेहरे पर लग जाती थीं जो हमें साहित्य पढ़ाता था. वह मुझे किसी यूनानी देवता जैसा सुंदर लगा करता था. वह भी गोरा-चिट्टा था, नाजुक गोरे-गोरे हाथ और घुंघराले बाल. कविता पढ़ाते समय उसके शब्दों से फूटकर निकलने वाली भावना, उछाह, आकाश की ऊंचाइयों में पंख फैलाए लार्क पक्षी की उन्मुक्त उड़ान की प्रेरणा का स्रोत, उसकी महत्वाकांक्षा—लगता अध्यापक महोदय कविता के पंखों पर बैठाए मुझे आकाश की ऊंचाइयों, बुलंदियों में ले गए हैं.

अतीत की कोई याद, कभी-कभी कैसे खिलकर सामने आ जाती है, एक झांकी-सी, अपने सभी रंगों, आकृतियों, नयन-नक्श के साथ और एक मूक-सी लय दिल के तारों पर बजने लगती है. और उन दिनों की महक में हम सांस लेने लगते हैं. फिर सहसा ही उस चित्र पर धुंध-सी छाने लगती है और आकृतियां धुंधलाने लगती हैं. केवल दिल के तारों पर अकुलाहट भरी धुन देर तक बजती रहती है...

अजीब बात है, मैं अपने अतीत में से क्या खोजने निकला हूं? जिसे मैं साहित्यिक वृत्ति समझ रहा हूं, वह वास्तव में कभी थी भी या नहीं? क्या वह मन छलावा ही था? मैं किन बीज-कोशों को ढूंढ़ रहा हूं जो जीवन में मेरी अधोगति का कारण बने? कौन जाने, कभी दूर बचपन में ऐसी वृत्ति रही भी हो, मेरे अंदर कसमसाती भी रही हो और फिर अंदर ही अंदर कुचली गई हो, या अब भी कहीं अधमरी पड़ी रह गई हो. संस्कारों, प्रवृत्तियों, अनुभवों की परत-दर-परत ढूंढ़ने पर भी भूमि के नीचे मुझे क्या मिलेगा? क्या आज भी मुझे अपने को आश्वस्त कर पाने के लिए अपनी सफाई देनी होगी, अपनी वकालत करनी होगी? क्या उस वकालत के लिए अतीत में से खोज-खोजकर प्रमाण निकालने होंगे? ऐसा सोचते हुए, कभी-कभी सहसा ही अंदर से आवाज आती है: इस चेष्टा से कुछ हाथ नहीं लगेगा. तुम जानना चाहते हो कि कौन-सी वह घटना थी जिसने तुम्हारी जिंदगी का कांटा बदल दिया था. घटना तो किसी प्रक्रिया के चरमबिंदु पर पहुंच जाने पर ही घटती है. जबकि कांटा तो बरसों पहले से ही बदल जाता है. उस घटना से मिलने वाला झटका तो एक बहाना होता है.

बचपन पार करते-न-करते मैं अपना आत्मविश्वास बहुत कुछ खो बैठा था, तबीयत का बालसुलभ अल्हड़पन भी बहुत कुछ जाता रहा था. दूसरों को अपने से बड़ा और अपने को छोटा समझने की वृत्ति जड़ जमा चुकी थी. बालसुलभ उत्साह तो अभी भी था, पर उसकी अभिव्यक्ति स्वतंत्र रूप से न होकर नक्काली में होती थी. किसी ने नाटक खेला तो मैंने भी देखा-देखी दोस्तों-यारों से कहा, चलो नाटक खेलें. कभी कोई युवक साइकिल पर सवार दूर पहाड़ की तलहटी तक जा पहुंचा, तो मैंने भी अपनी साइकिल उठा ली, और किसी मित्र को साथ लिये साइकिल सवारी पर निकल पड़ा. अंदर से यह नक्काली थी, पर बाहर से साथियों

के सामने, ये बड़े मौलिक सुझाव बनकर सामने आते थे.

कुछ ही वर्ष पहले तक मैं बड़ा निर्भीक, बड़ा साहसिक, मनमौजी हुआ करता था. घर से निकलता और जिस ओर मन आता, घूमता-फिरता था. भागते छकड़ों पर कूद कर चढ़ जाता, बारिश के दिन कपड़े उतार फेंकता और नंगे बदन पर बारिश के छींटों का मजा लेते हुए गली-गली और सड़क-सड़क भागता फिरता. मैं इतना बेपरवाह था कि हर तीसरे दिन रास्ता भटक जाता था और घरवाले मुझे ढूंढ़ते फिरते थे. मैं कभी अनाजमंडी में, तो कभी किसी बाग में, तो कभी कहीं बटेरों की लड़ाई देखता हुआ पाया जाता. क्या दिन थे!

वह सब कैसे खत्म हो गया और मैं एक भीरु स्वभाव, संकोची, अंतर्मुखी, सहमा-सहमा-सा व्यक्ति बनकर बड़ा होने लगा? क्या यह इस कारण था कि घर में मेरी तुलना जब परिवार के अन्य बच्चों से की जाती तो मैं किसी गिनती में नहीं आता था. मैं, सबसे छोटा, सबसे दुबला, देखने में न तीतर न बटेर. मेरी तुलना में अन्य सभी निश्छल, निष्कपट, दिल के साफ थे, जबकि मैं 'घुन्ना' था. अन्य सभी खुलकर हंसते-बोलते थे जबकि मैं अंदर ही अंदर कुढ़ने वाला लड़का था. बिसूरने लगा था. ऐसी स्थिति में मेरे अंदर विद्रोह की भावना जागने के बजाय, हीन भावना पैदा होने लगी थी. और हीन भावना के साथ-साथ अपराध भावना भी. यह टिप्पणी कि मैं घुन्ना हूं, साफ दिल लड़का नहीं हूं, मेरे अंदर कोई खोट है, मेरे दिल की गहराइयों में बैठ गई थी. और मैं इसे सच मान कर अंदर ही अंदर बेचैन रहने लगा था.

मेरी मानसिकता अजीब टेढ़े-मेढ़े भूमिगत रास्तों पर पड़ती जा रही थी. कभी कोई घर में या घर के बाहर मेरी तारीफ कर देता तो दिल ठिकाने पर आ जाता, दिल पर से कोई छाया-सी हट जाती, मैं हंसने-बोलने लगता, घर-बाहर के किस्से भी सुनाने लगता, तरह-तरह के करतब भी करने लगता, पर ऐसे अनमोल क्षण बहुत कम मिल पाते. फिर, कभी कोई अध्यापक या पिता जी का कोई मित्र, संबंधी मेरी ओर देखकर नकारात्मक टिप्पणी कर देता तो मैं कुछ देर तक खुली हवा में सांस लेते रहने के बाद फिर से अपने घुटन भरे आंतरिक माहौल में लौट जाता, जो निश्चय ही मेरे लिए बड़ा यातनापूर्ण हुआ करता था. मुझे अपना कद्द-बुत और भी बौना, और अपना व्यक्तित्व और भी ज्यादा नगण्य और तुच्छ जान पड़ने लगता.

इसी के साथ बाद में अपराध भावना पनपने लगी थी जो किसी विष-बेल की भांति मेरे स्वतंत्र विकास का गला घोंटने लगी थी और जो बाद में मेरे समूचे जीवन पर फैलती चली गई थी.

बचपन में हम यातनाएं तो भोग सकते हैं पर निष्पक्ष रूप से गुण-दोष का विश्लेषण नहीं कर सकते. उधर जिजीविषा, बलवती जिजीविषा पूरे वेग से हमें आगे की ओर धकेल रही होती है, उस झरने की भांति जो बड़ी-बड़ी चट्टानों के नीचे से भी अपना रास्ता बनाता हुआ बाहर निकल आता है. कुंठाएं भी अभी तक जड़ नहीं जमा चुकी होती हैं. दुनिया को देख पाने के लिए उत्सुकता और आग्रह भी बराबर बने रहते हैं और मन की प्रवृत्तियां भी कहीं-न-कहीं से प्रोत्साहन ग्रहण करती रहती हैं.

बचपन पार करते-करते मैं आत्मविश्वास बहुत कुछ खो बैठा था, पर बालसुलभ उत्साह तो अभी भी था. नक्काली में साइकिल सवारी पर निकल पड़ता...

तभी मैंने पाया कि मैं ज्यादा वक्त अकेला रहने लगा था. मुझे अकेलेपन में रहना अधिक संतोषजनक लगने लगा था. वहां मैं किसी के प्रति जवाबदेह नहीं था. तभी से, मैं ज्यादा वक्त अकेला रहने लगा था. और अकेला बैठे-बैठे मैं दिवास्वप्न भी देखने लगा था. तरह-तरह के उन दिवास्वप्नों में मैं हीरो के रूप में उभरने भी लगा था. दुनिया मेरे करतब देखती और अश-अश करती. उन दिवास्वप्नों में मेरा बौनापन, मेरी नगण्यता ढूंढ़े नहीं मिलती थी. इन दिवास्वप्नों की दुनिया मेरे अनुकूल थी, इनमें घंटों रमा रह सकता था. इनमें मैं बांहें फैलाए हवा में उड़ सकता था, लंबी से लंबी उड़ानें भर सकता था, अंतरिक्ष की ऊंचाइयां लांघ सकता था.

यह अपनी यथार्थ स्थिति से पलायन था. अपने से पलायन था. पहले कभी-कभी मैं बौखलाया हुआ अपने बंधन तोड़कर भाग निकलता था. या किसी से भिड़ जाता था. किसी को अपने नाखूनों से नोंच डालता था. पर अब, मैं निराले में सुरक्षित-सा बैठा दिवास्वप्नों में खो जाने लगा था, बाहर के सभी दरवाजे बंद किए हुए.

शायद यही मेरी जिंदगी का वह मोड़ था, जहां से मेरा रास्ता अलग हो गया था. यदि मैंने उस समय मन ही मन अपने छुटपन को, जहां से मैंने अलग रास्ता अपना लिया था, स्वीकार नहीं किया होता, यदि अपने बारे में नकारात्मक टिप्पणी सुनते हुए मेरा दिल बैठ नहीं जाता, सिर झटक देता, रोष से भर उठता, मन ही मन अपने को कचोटने-खाने के बजाय अपना आत्मसम्मान बनाए रखता, अपनी लीक पर बना रहता, अपने स्वभावानुसार मनमानी करता रहता, तो बच जाता. पर ऐसा नहीं हुआ. अपने को छोटा मान लेने के बाद, अगली सीढ़ी विनम्रता की थी, मैं मूरख, खल, कामी... भावना की सीढ़ी अपनी हीन भावना को विनम्रता मान लेना, एक दोष को गुण का दर्जा दे देना, इससे बड़ी आत्मप्रवंचना क्या होगी? और मैं उत्तरोत्तर विनम्र होता जा रहा था. भय, संकोच, आंतरिक अवसाद, भीरुता, सभी को विनम्रता ढके रहती थी. इतनी छोटी उम्र और इतना विनम्र—लोग मेरी तारीफ करने लगे थे और मुझे इसमें संतोष मिलने लगा था. ऐसी मानसिकता बरबस ही भक्तिभाव की ओर ले जाती है. और मैंने पाया कि मैं भक्तिरस के पद गुनगुनाने लगा था, "जां बैठा दे तित ही बैठूं, बेचे तो बिक जाऊं."

धीरे-धीरे मैं अपने लिए एक दर्शनशास्त्र गढ़ रहा था, जिसमें व्यवहार की दुनिया में माने जाने वाले सभी अवगुण, गुण बनकर उभर रहे थे. भय भी एक गुण बन गया था. मैंने अनेक तर्क ढूंढ़ रखे थे: भय हमें अहंकार से बचाए रखता है, भय हमें दुस्साहसिक कार्यों, जोखिमों से बचाए रखता है, दुष्कर्मों से भय में विश्वास रखने वाला व्यक्ति अपने कर्तव्य का पालन करता है, कोई नियम नहीं तोड़ता, अच्छा नागरिक बनता है, समतल जीवन बिताता है, अपने लिए तनाव पैदा नहीं करता, अपने लिए गुंझल पैदा नहीं करता. अपने दुश्मन नहीं बनाता. व्यसनों में नहीं पड़ता, उसकी सेहत भी अच्छी रहती है, आदि-आदि. पूरा का पूरा दर्शनशास्त्र मैंने अपने लिए गढ़ लिया था, जो पलायन की मानसिकता के सर्वथा अनुरूप था. और इसके फलस्वरूप मैं बहुत कुछ अपनी आंतरिक यातना से मुक्त हो गया था. और धीरे-धीरे एक 'भलामानुस' माना जाने लगा था.

इसी दौरान मैं साहित्य सृजन के प्रति उन्मुख हुआ था. ऐसा दिवास्वप्न देखने के कारण हुआ हो, अथवा अधिक समय निराले में बने रहने के कारण, अथवा किसी जन्मजात प्रवृत्ति के कारण, कहना कठिन है, पर यह सही है कि लाल जिल्द वाली एक कॉपी में मैं अपने उद्‌गार व्यक्त करने लगा था.

मेरे पिता को अनेक दोहे, पद और शेर कंठस्थ थे, और वह गाहे-बगाहे उन्हें बोलकर सुनाते भी थे, पर लेखन कार्य से उन्हें चिढ़ थी. उन्हें विश्वास था कि साहित्य सृजन करने वाला व्यक्ति अपनी जिंदगी बरबाद करता है. साहित्य सृजन को वह एक 'व्यसन' मानते थे और व्यसन से ग्रस्त व्यक्ति कर्मठ नहीं रहता, व्यवहारकुशल नहीं होता, किसी कल्पना लोक में भटकता फिरता है. 'झक्ख' मारता फिरता है.

शुरू-शुरू में, कॉलेज की शिक्षा पूरी कर चुकने पर जब मैं घर लौटकर कभी-कभी शाम के वक्त हाथ में कोई नॉवल ले बैठता तो वह

मुझे बड़े प्यार से समझाते, ''यह वक्त कमरे के अंदर बैठकर किताब पढ़ने का नहीं है. इससे आंखें खराब हो जाएंगी. यह वक्त खुली, ताजा हवा में घूमने का है...'' और मैं एक आज्ञाकारी पुत्र की भांति किताब छोड़कर घूमने निकल जाता था. पर मेरी रुचि के प्रति उनका संशय बराबर बना रहा. पढ़ाई के ही दिनों में एक बार अंग्रेजी का उपन्यास पढ़ रहा था जब वह कमरे में चले आए थे और मेरे हाथ में उपन्यास देखकर बरस पड़े थे, ''यह तुमने लेट कर पढ़ना कहां से सीखा है?... तकिया दोहरा करके सिर के नीचे रख लेते हो, यह क्या तरीका है? इतने बड़े अमीरजादे बन गए हो? दो दिन में तकिये की सीवन फट जाएगी. तकिया चौपट हो जाएगा, उसकी रुई निकल आएगी.'' फिर बाहर जाने से पहले, सहसा ही उन्हें ख्याल आया कि देखूं तो यह क्या पढ़ रहा है, और वह लौट आए और मेरे हाथ से पुस्तक लेकर उसके पन्ने पलटने लगे. ''(श्वेत वसना नारी) यह क्या किताब है?'' गुस्से से उनकी आंखें निकल आई थीं और उन्होंने मेरी ओर इस तरह देखा जैसे मुझे रंगे हाथों पकड़ लिया हो. ''तुम इस तरह की लचर किताबें पढ़ते हो?'' तब तक मैं खाट पर से उठ बैठा था, पर उनके गुस्से के बावजूद घबराया नहीं था.

''यह मेरे कोर्स की किताब है, पिता जी, इसमें मुझे परीक्षा देनी है.''

इस पर वह और गुर्राए, ''अगर कॉलेज में तुम्हें यही कुछ पढ़ाते हैं तो मैं तुम्हें कॉलेज से उठा लूंगा.'' और फिर, न जाने किस आवेश में उन्होंने किताब को खिड़की के बाहर फेंक दिया.

''पिता जी, यह मेरे कोर्स की किताब है, आप...'' और मैं भागता हुआ सीढ़ियों की ओर लपका कि किताब को गली में से उठा लाऊं.

डांट-डपट के बावजूद मेरी उत्सुकता मरी नहीं थी. मैंने लेट कर पढ़ना तो छोड़ दिया, पर नॉवल पढ़ना नहीं छोड़ा था. मेरे पिता को भी पुनः विचार करने का मौका मिला होगा क्योंकि वह कुछ दिन बाद मेरे लिए अंग्रेजी में लिखी दो शिक्षाप्रद पुस्तकें और एक और पुस्तक जिसका मैं नाम भूलता हूं, ले आए थे.

मैं लुके-छिपे कविता करने लगा था, पर पिता के रुख को देखते हुए कविताओं की अपनी कॉपी उनकी नजरों से छिपाए रखता था. मैं उसे अपने बिस्तर के नीचे छिपा देता था.

तभी एक दिन वह भी पकड़ी गई थी. तब मैं कॉलेज की पढ़ाई लगभग पूरी कर चुका था और परिणाम की प्रतीक्षा कर रहा था. वह स्वयं अपनी कोई डायरी ढूंढ़ रहे थे जब खाट के नीचे देखते हुए उन्हें यह लाल जिल्द वाली कॉपी नजर आ गई थी. उनकी अपनी डायरी पर भी लाल रंग की जिल्द चढ़ी थी.

''मिल गई डायरी... यह रही,'' वह चिल्लाए थे, पर जब खींच कर उन्होंने कॉपी को निकाला और उसके पन्ने पलटने लगे तो उनका पारा तेज होने लगा. उन्हीं दिनों मैं उनके व्यापारिक कार्यों में थोड़ा-बहुत हाथ बंटाने लगा था और उन्होंने अपने एक ब्रोकर को मुझे व्यापार के तौर-तरीके समझाने की ड्यूटी लगा रखी थी.

मेरे पिता घबरा उठे थे. यह लड़का अगर कविताएं करने लगा तो मेरा व्यापार तो चौपट हो जाएगा. उन्हें कविता से द्वेष नहीं था, पर उन्हें कवियों से चिढ़ थी. वे अपाहिज, नमकहराम, उचक्के होते हैं, न काम न धाम, निठल्ले बैठे तुकबंदी करते रहते हैं. कविता के तो वह प्रशंसक थे पर कविता लिखने वाले को दो कौड़ी का उचक्का समझते थे.

मेरी लाल कॉपी को वह रसोईघर में ले आए थे और मेरी मां व भाई-बहन की आंखों के सामने उसे जलते चूल्हे में झोंक दिया था. देखते ही देखते मेरे अरमान मेरी आंखों के सामने झुलसने लगे थे. रसोईघर में सभी चुप थे, सभी एक-दूसरे की ओर देखने लगे थे. केवल मां के मुंह से निकला था, ''यह क्या कर रहे हो जी? बच्चे की कॉपी जला रहे हो.'' और मां ने चूल्हे के अंदर हाथ डालकर बाहर खींचने की कोशिश की, पर कॉपी की लाल जिल्द का एक कोना स्याह पड़ चुका था. पन्ने मुड़ने लगे थे आग की लपटें उन्हें चाटने लगी थीं.

''कुछ तो सोचा करो जी, यह आपने क्या किया है? कोई ऐसे भी अपने बच्चों के साथ करता है,'' मां बोली थीं. मैं जड़वत् बैठा देखे जा रहा था. मुझे यों परेशान देखकर मेरी बहनों की आंखें भर आई थीं.

''मैंने जो कुछ किया है, इसी के भले के लिए किया है,'' पिता अपने आसन पर बैठते हुए बोले थे. तब तक कॉपी जल कर राख हो चुकी थी और चूल्हे की आग, जो पहले भड़क उठी थी, धीरे-धीरे धीमी पड़ती जा रही थी. मां व्याकुल हो उठी थीं. ''यह तुम आए दिन क्या करने लगे हो जी,'' कहते-कहते मां का गला भी रुंध गया था. ''बेटे की कॉपी जलाकर

उस पर रोटियां सेंकूं? कुछ तो सोचा करो. तुम क्यों इतने निठुर होते जा रहे हो?''

पिता चुप हो गए थे. उसके बाद वह कुछ नहीं बोले. कोई भी कुछ नहीं बोला, केवल मां ने इतना भर कहा, ''तुम्हारा बेटा अब बड़ा हो गया है. अपना घर-बार बसाने वाला हो गया है. यह क्या सोचेगा. इसके दिल को ठेस लगाते हो, बहुत बुरा करते हो.'' और मां दुपट्टे से अपनी आंखें पोंछती हुई, फिर से चूल्हे में ईंधन डालकर आग को चमकाने और रोटियां सेंकने लगी थीं.

इस घटना के कुछ ही समय बाद मुझे मेरे एक प्राध्यापक का पत्र मिला जिसमें उसने किसी सरकारी नौकरी की चर्चा की और लिखा कि उनसे कुछ सुयोग्य युवकों के नाम सुझाने को कहा गया है और यह भी लिखा था कि उन्होंने ऐसे चार-पांच नाम सुझाए हैं, ''जिनमें तुम्हारा भी नाम शामिल है.'' शेष पत्र में उस नौकरी के द्वारा मेरे सामने खुलने वाली संभावनाओं का जिक्र था और कहा था कि ''तुम फौरन ही उस कार्यालय के डायरेक्टर से मिलने अमुक नगर में पहुंच जाओ. ऐसे अवसर जीवन में कभी-कभी ही आते हैं.''

मेरे सामने संभावनाओं का द्वार नहीं, मुक्ति का द्वार खुल रहा था. घर से निकल जाऊं, मनचाही जिंदगी जिऊंगा. पर क्षण भर के लिए ही ऐसा उछाह मेरे अंदर उठा होगा. शीघ्र छोड़ने का मतलब होगा, पिता के व्यापार-कार्य में से निकल आना, अलग हो जाना. इसका मतलब होगा बड़ी उम्र में माता-पिता को छोड़ जाना. पिता की अपेक्षाओं को ठुकरा देना, अपने हित का सोचना, स्वार्थी होना. धीरे-धीरे यह दृष्टि मुझ पर हावी होने लगी थी. पर दूसरी प्रतिक्रिया उस समय होती जब मेरा मन दायित्वबोध से बोझिल होने लगता, जब वह इस दायित्वबोध से छुटकारा पाना चाहता था, और उस समय, मैं बैठा-बैठा दिवास्वप्न देखने लगता—अमुक नगर में मैंने नौकरी कर ली है. चमचमाते जूते, ऊपर बढ़िया कोट-पैंट-टाई, ताजा-ताजा शेव बनाए मैं दफ्तर को जा रहा हूं. सुबह की ताजा हवा मेरे बालों से खेल रही है. दफ्तर के बाहर खड़ा चपरासी सलाम ठोक कर दरवाजा खोलता है... हर ऐसे दिवास्वप्न में मैंने चमचमाते जूते पहन रखे होते, सफेद, उजली कमीज में नीले रंग की धारीदार नकटाई लगी होती, चेहरे पर से बढ़िया क्रीम की महक आ रही होती... बढ़िया कपड़े और चमचमाते बूट मेरे लिए सरकारी नौकरी के ही नहीं, व्यक्तिगत मुक्ति के पर्याय बन गए थे.

प्राध्यापक का वह पत्र भी पिता के हाथ लग गया था. मैं अभी दुविधा में था कि इसकी चर्चा उनसे करूं या नहीं करूं, करूं तो कैसे करूं और कब करूं, जब मेरे मेज पर पड़े उस पत्र पर उनकी नजर चली गई—वह उस दिन भी शायद अपना ही कोई कागज ढूंढ़ रहे थे—और पढ़ते समय उनका हाथ ठिठक गया था. वह खड़े-खड़े ही देर तक उसे पढ़ते रहे. लगता है, दो-तीन बार उसे पढ़ गए होंगे, जब वह फिर से कुछ सोचते हुए से खड़े रहे. पत्र को उन्होंने मेज पर रख दिया और चलने को हुए, फिर लौट आए, पत्र को उठाकर जेब में डाल लिया, पर दरवाजे तक पहुंचते-पहुंचते फिर लौट आए और पत्र को मेज पर रखकर उन्हीं कदमों कमरे से बाहर निकल गए.

उसके बाद सहसा ही पिता मेरे साथ अत्यधिक विनम्र हो उठे. शायद यह सोचकर कि मैं घर छोड़ जाऊंगा, और इससे भी अधिक असह्य संभावना, कि मैं उनको, व्यापार को छोड़ जाऊंगा, वह डर-से गए थे. ऐसी ही उनकी मनःस्थिति रही होगी क्योंकि वह उसी शाम मेरे कमरे में आए और मेरे बिस्तर की पाटी पर बैठ गए थे. ऐसा उन्होंने पहले कभी नहीं किया था, वह आते तो खड़े-खड़े ही कोई हुक्म सुना कर या डांट-डपटकर चले जाया करते थे. उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथ में लिया और बोले, ''बेटा, अगर तुम्हें अच्छी सरकारी नौकरी मिलती है तो मैं तुम्हें नहीं रोकूंगा. पर नौकरी करने से पहले सोच-समझ लो,'' कहते हुए वह तनिक ढीले पड़ गए और बड़ी अनौपचारिक आवाज में कहने लगे, ''पंजाबी में एक कवित्त है: उत्तम खेती, मध्यम व्यापार, निखिद्ध चाकरी! किसी की चाकरी करना सबसे बुरा. तुम्हें शायद मालूम नहीं, मैंने भी अपनी जिंदगी नौकरी से ही शुरू की थी. कमसरीट में दस रुपये महीना पगार पर मैं क्लर्क भरती हुआ था सोलह साल की उम्र में. सुबह सात बजे घर से जाता था. शाम सात बजे लौटता था. तीन महीने के अंदर-अंदर चेहरा पीला पड़ गया था. पर मैं तो गरीब घर का था. मुझे तो जो मिला, करना था. तुम्हें तो अच्छी नौकरी मिलेगी. पर मैं कहूंगा, अपना नफा-नुकसान सोच लो.'' कहने के बाद वह कुछ देर तक सिर झुकाए कुछ सोचते रहे, जिससे मुझे लगा कि वह अपने अतीत की स्मृतियों में खो गए हैं और शायद अपनी गरीबी के दिन याद कर रहे हैं, फिर वह चुपचाप उठ कर चले गए.

वह तो चले गए पर मेरा उत्साह बहुत ठंडा पड़ गया. दिवास्वप्न तक देखने का उत्साह नहीं रहा.

दूसरे दिन अचानक ही, वह अपना लेजर उठा लाए. उस लेजर में उनकी आमदनी के आंकड़े दर्ज रहते थे. ऐसा ही मेरा अनुमान था, क्योंकि वह लेजर, लोहे की आलमारी में रखा रहता था. पर उस दिन वह मेरे पास बैठकर लेजर के पन्ने पलटते हुए बताते रहे कि प्रति वर्ष किस-किस मद में उन्हें कितनी-कितनी आमदनी होती रही है. सुनकर मैं भी हैरान रह गया था कि व्यापार से इनकी इतनी अच्छी आमदनी हो जाती है. ''अगर मैं कमसरीट की नौकरी में लगा रहता तो आज भी वहीं पर बैठा होता. शायद क्लर्क से हेडक्लर्क बन गया होता, पर करता क्लर्की ही. अपना व्यापार, अपना ही होता है.''

पिता को इतना विनम्र मैंने पहले कभी नहीं देखा था. और मुझे विश्वास होने लगा था कि वह मेरे ही हित की सोच रहे हैं.

इसके बाद दो ही दिन बीते होंगे कि सरकारी दफ्तर से तार आ गया कि अमुक दिन सुबह ग्यारह बजे इंटरव्यू के लिए अमुक नगर में पहुंच जाओ. और वह तार पिता जी ने स्वयं ही पोस्टमैन से लिया था.

कोई और समय होता तो ऐसा तार पाकर मेरा उत्साह लौट आता. पर जैसी मनःस्थिति मेरी बन रही थी, उसमें इस तार के बारे में जानकर मात्र इतनी ही तसल्ली हुई कि कहीं पर मुझे भी इस योग्य समझा गया है कि मुझे इंटरव्यू के लिए बुलाया जाए. अंदर ही अंदर मैं धीरे-धीरे इसी नतीजे पर पहुंच रहा था कि मुझे उस नौकरी का ख्याल छोड़ देना चाहिए. पर वह तार पाने पर इतना प्रोत्साहन जरूर मिला कि मैं इंटरव्यू पर जाऊं और वहां इनकार करके घर लौट आऊं. इससे मेरा आत्मसम्मान बराबर बना रहेगा.

पर उस शाम जो कुछ हुआ, उसके बारे में आज भी सोचकर दिल बैठ-सा जाता है.

पिता जी मेरे कमरे में आए. विनम्रता के स्थान पर वह बेचैन थे, कुछ-कुछ चिढ़े हुए थे. काठ की पाटी पर बैठते ही बोले, ''क्यों मुझे परेशान करने पर तुला हुआ है? या मुझे इस उम्र में भी तुमसे किसी मदद की आशा नहीं करनी चाहिए? मैं कितने दिन और व्यापार कर पाऊंगा.'' और कहते हुए उन्होंने अपने सिर पर से पगड़ी उतार दी और बोले, ''इन सफेद बालों पर तो रहम कर. तुम्हें इतना ही ज्यादा सरकारी नौकरी का मोह हो गया है?''

मेरा दिल धक्क से रह गया था. पिता जी यह क्या कर रहे हैं? पिता जी से तो मैं डांट-फटकार की अपेक्षा किया करता था. मुझे लगा जैसे मन ही मन वह बहुत दुखी हैं. पर मैं उनको ढाढस बंधाने के लिए क्या करता? क्या कभी बेटा भी बाप को ढाढस बंधाता है? तभी मन ही मन मैंने प्रण कर लिया कि कभी कलम हाथ में नहीं लूंगा और पिता जी के व्यापार में तन-मन से जुट जाऊंगा.

यदि मेरे पिता अपने सफेद बालों का वास्ता नहीं डालते, अपना सिर झुकाकर, बार-बार भावावेश में यह नहीं कहते, ''इन सफेद बालों पर रहम कर'' तो शायद मैं इतना विचलित महसूस नहीं करता. शायद किसी दिन मेरी कलम भी चल निकलती. बरसों बाद मैंने जाना कि बच्चों से अपनी बात मनवाने के लिए मां-बाप तरह-तरह के नाटक

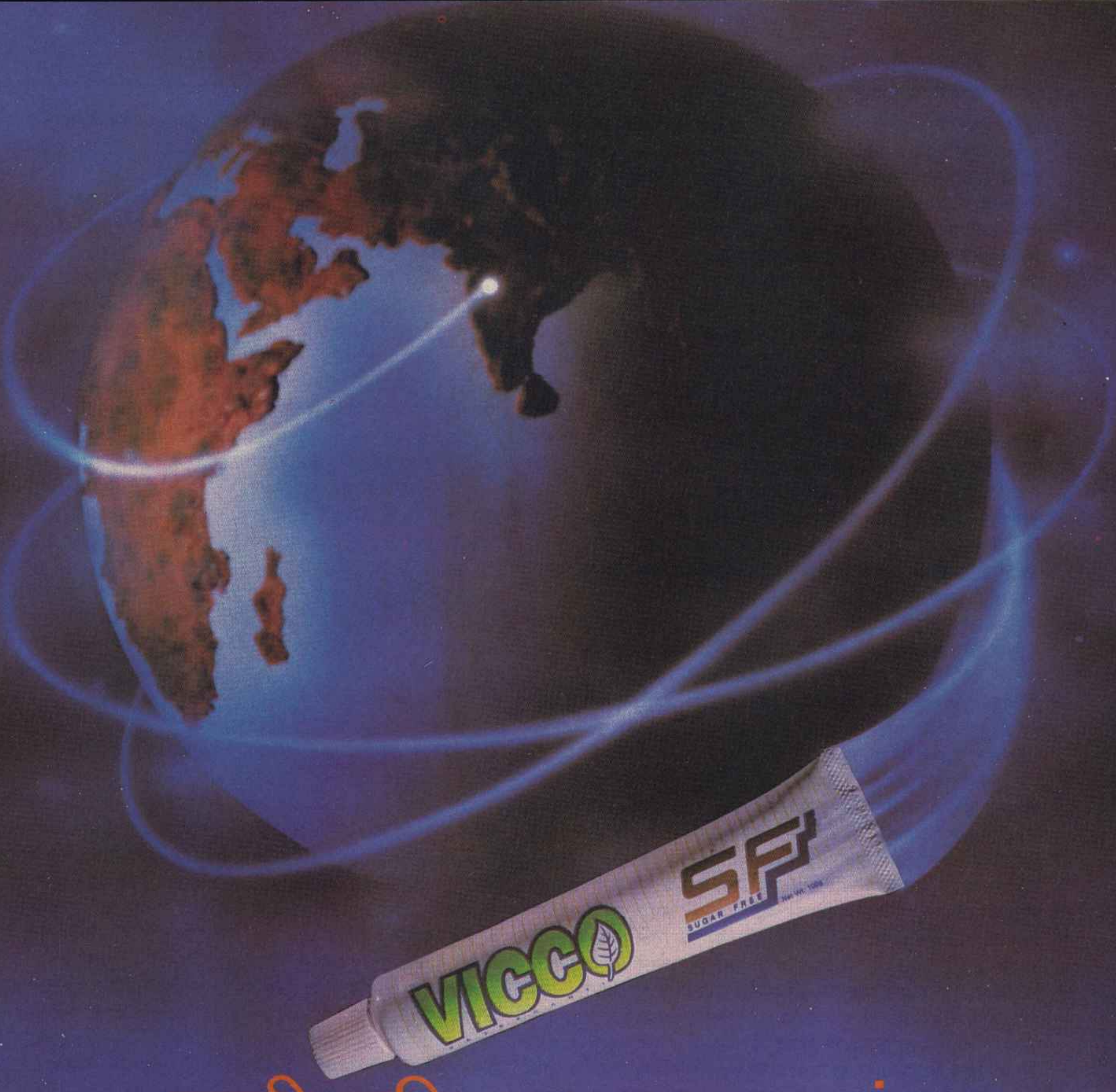

सारी दुनिया का मनपसंद

अब, भारतीयों का दिल जीतने आ गया शुगर-फ्री विको वज्रदंती-एस एफ.

हम लोगों की तरह कीटाणुओं को भी चीनी अच्छी लगती है. दरअसल वे चीनी पर पनपते और कुछ ऐसे एसिड छोड़ते हैं जिनसे दांत खराब होने लगते हैं. लेकिन विको वज्रदंती-एस एफ पूरी तरह से शुगर-फ्री है और इसीलिए वह दांतों और मसूड़ों की पूर्ण देखभाल करता है. दुनिया के कोने-कोने में हर चीज को सोच-समझकर खरीदनेवाले ग्राहकों की पहली पसंद है — विको वज्रदंती-एस एफ. अपनी सेहत का खयाल रखनेवाले, खासकर मधुमेह (डाइबीटीज़) से परेशान लोग इसे स्वास्थ के लिए अपनाते हैं. तो शाकाहारी लोगों को यह इसलिए पसंद है कि इसमें कोई भी प्राणिज पदार्थ नहीं होता. और 'बिना क्रूरता के सुंदरता' के उसूल को माननेवाले लोग भी इसीको चाहते हैं क्योंकि इसका परीक्षण प्राणियों पर नहीं किया जाता.

हालांकि इसमें चीनी या मिठास पैदा करनेवाला कोई और पदार्थ नहीं होता फिर भी इसका स्वाद लाजवाब है. जड़ी-बूटियों से निर्मित विको वज्रदंती-एस एफ उस आयुर्वैदिक फार्मूले से बनाया जाता है जो समय की कसौटी पर खरा उतरा है. यह आपके दांतों और मसूड़ों के साथ-साथ आपकी आम सेहत की भी देखभाल करता है.

पूरी तरह से शुगर - फ्री

विको
लै बो रे ट री ज़
दादर, बंबई-४०० ०१४, भारत.

Modern/SF/94HN

भी करते हैं. पिता के बाल जरूर सफेद हो गए थे, पर उनका स्वास्थ्य अच्छा था. नियमित रूप से सुबह घूमने जाते थे, मुंह पर रौनक रहती थी, फिर भी उन्होंने बुढ़ापे का वास्ता दे डाला था. यदि मैं उस वक्त घर से निकल जाता, उस नौकरी के लिए चुन लिया जाता तो भी उनके स्वास्थ्य को कोई आंच नहीं आती. वह फिर भी बराबर घूमने जाते और अच्छा भोजन करते. सफेद बाल रहते हुए भी उनकी दिनचर्या में कोई अंतर नहीं आता. बल्कि शायद बाद में वह मेरी इज्जत भी करने लगते. पर अब मैंने ठान ली थी कि तन-मन से अपने बूढ़े मां-बाप की सेवा करूंगा और उन्हीं की इच्छानुसार उनके व्यापार में हाथ बंटाऊंगा.

तभी से मेरे मस्तिष्क को उस रोग ने जकड़ लिया था जिसे अपराध भावना कहते हैं, जीवन में से सारा उत्साह सोख डालने वाला रोग, जीवन के सपनों-उमंगों का गला घोंटने वाली विषबेल. पर तब इसे मैं बड़ा स्वाभाविक गुण मानने लगा था, और अपने को एक कर्तव्यपरायण व्यक्ति, जो अपना फर्ज निभा रहा था.

शोभा का घर मेरे दफ्तर के रास्ते में पड़ता था. साइकिल पर अपने दफ्तर की ओर जाते हुए मैं कई बार छोटे रास्ते से जाया करता जहां एक जगह पर एक खुला मैदान पड़ता था और उस मैदान के किनारे सरकारी अफसरों के बंगलों की पांत थी. छोटे-छोटे बंगले, हरेक के बाहर छोटी-सी फुलवाड़ी, एक ही बनावट के बंगले, आंगन के पीछे बरामदा, बरामदे के दाएं-बाएं एक-एक कमरा, पीछे रिहायशी कमरे. उन्हीं में से एक बंगले में शोभा रहती थी.

मैदान पीछे छोड़ जाने के बाद मैं फिर से सड़कों के जाल में खो जाता था और टेढ़े-मेढ़े रास्तों से होता हुआ बड़े बाजार में जा पहुंचता था जहां मेरा व्यापारिक दफ्तर था.

आम तौर पर घर से निकलने में देर हो जाने पर ही मैं उस रास्ते से अपने दफ्तर जाता था. लेकिन फिर मैंने पाया कि रोज ही उस रास्ते से जाने लगा हूं. और यह भी कि एक बंगले के सामने से गुजरते हुए मेरे दिल में हल्की-सी धड़कन भी होने लगी थी. कुछ दिन के बाद मैंने पाया कि वक्त रहते भी मैं वही रास्ता चुनने लगा था. घर में से निकल कर साइकिल पर पहला पैडल मारने पर यह सवाल भी मन में उठने लगा था कि आज वह घर के आंगन में या बरामदे में टहल रही होगी या नहीं.

पहली बार जब मैंने उसे देखा तो उसके बाल खुले थे और वह हाथों में कोई किताब उठाए आंगन में ऊपर-नीचे टहल रही थी. गोरा, चौड़ा-सा चेहरा, लंबे बाल, सिर को तनिक टेढ़ा किए वह अपनी किताब के पन्नों में खोयी, एक ऊंची-सी झाड़ी के पीछे धीरे-धीरे टहल रही थी. उसका चेहरा मुझे कुछ पहचाना भी लगा था. मैं आगे बढ़ गया था. उसने मेरी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा था, केवल उसका चेहरा मुझे पहचाना-सा लगा था. इस पहले साक्षात् का मुझ पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा. वह मुझे किसी पुत्री पाठशाला की छात्रा-सी लगी थी. कंधों पर तौलिया फैलाए हुए थी, गीले बालों से अपने कुर्ते को बचाए रखने के लिए. और यह भी मुझे अटपटा-सा लगा था.

"आज मैंने तेरी एक सहेली को देखा था," मैंने एक दिन अपनी बहिन से कहा था. यह भी तीसरे-चौथे दिन बाद की बात थी जब मुझे दूसरी बार उसकी झलक मिली थी. तब भी उसके हाथ में किताब थी और वह आंगन की मुंडेर के साथ-साथ टहलती हुई उसे पढ़ रही थी.

पर उस दिन उसकी नजर ऐन उस वक्त मेरी ओर उठ गई थी जब मैं उसके घर के सामने से गुजर रहा था. ऐसा अनायास भी हो सकता था. जैसे मेरी उड़ती नजर साइकिल चलाते हुए दाएं-बाएं उठ जाती थी, वैसे ही आंगन में टहलती उस युवती की नजर भी, सड़क की ओर घूम सकती थी. "अरे हां, मैं समझी, शोभा होगी. सिविल लाइंस में रहती है, गोरी-चिट्टी? मंझले कद की? लंबे-लंबे बाल? वही होगी. तुम से कुछ कहती थी?" मेरी बहन ने इस भांति यह सवाल पूछा था मानो किसी राह जाते व्यक्ति के बारे में पूछ रही हो, और मैंने भी उसके प्रति दिलचस्पी दिखाना सही नहीं समझा, और बात वहीं खत्म हो गई.

बात मुंह से निकल जाने के बाद उसे देख पाने का आग्रह भी मेरे मन में शिथिल पड़ गया था. मन में बनती हुई गांठ अपने आप ही खुल-सी गई थी और मैं सामान्य-सा महसूस करने लगा था. पर मैंने मैदान के रास्ते अपने दफ्तर को जाना नहीं छोड़ा. तभी एक दिन आंखों-आंखों में ही कुछ घट गया था और मेरे सामने सारा परिदृश्य ही बदल गया था.

उस रोज मैं उसके घर के सामने पहुंचा ही था कि वह बरामदे में आ गई थी. उसने साड़ी पहन रखी थी, गहरे हरे रंग की दक्षिणी चलन की साड़ी जिस पर लाल बॉर्डर लहरा रहा था. बरामदे के खंभे पर एक हाथ रखे वह सड़क की ओर ही देखे जा रही थी.

तब वह मुझे कमनीयता और सौंदर्य की प्रतिमूर्ति लगी थी. धुला-धुला, स्वच्छ, निर्मल व्यक्तित्व, निखरा-निखरा. तब, उसी क्षण, उस चेहरे की एक छाप-सी मेरे मन पर पड़ गई और मुझे लगा जैसे कोई चमत्कार-सा हो गया है. उस चेहरे की छवि एक अमिट छाप मेरे मस्तिष्क पर छोड़ गई. बरसों बाद भी जब कभी शोभा मुझे याद आती तो उसकी वही छवि मेरी आंखों के सामने प्रकट हो जाती. जैसे उस छवि ने उसके चेहरे पर से उठकर अपना अलग अस्तित्व ग्रहण कर लिया हो, अपने में पूर्ण, अपने में स्वतंत्र, जिसकी छाप मेरे अंतस्थल में उतर चुकी थी. होंठों पर हल्की-सी मुस्कान, आंखों में पहचान की हल्की-सी चमक, और स्वच्छ, निर्मल आकृति... और मुझे लगा था जैसे जन्म-जन्मांतर के बाद मैंने किसी को ढूंढ़—पा लिया हो.

यह सब क्षण भर में हो गया था, क्योंकि दूसरे ही क्षण मैं पैडल मारता आगे निकल चुका था. उस साक्षात् ने मुझे उत्तेजित करने के बजाय शांत कर दिया था. मैं सराबोर-सा महसूस करने लगा था.

यों जीवन में ऐसा अकसर नहीं होता. जितनी देर प्रेम बना रहे, प्रेमिका के रूप की पहली छवि बनी रहती है. प्रेम कुम्हलाने लगे तो यह छवि भी फीकी पड़ने लगती है और यदि प्रेम मृतप्राय हो जाए तो छवि बिलकुल ही आंखों से ओझल हो जाती है और भूले-भटके कभी आंखों के सामने आ भी जाए तो भाग्य के कटु व्यंग्य का सा आभास होने लगता है. पर मेरे साथ ऐसा नहीं हुआ, शोभा के रूप की लावण्यमयी छवि जीवन के दुखद, संकटपूर्ण क्षणों में भी वैसी की वैसी बनी रही.

यह साक्षात् ही नहीं, यह अनुभव भी अपने में विचित्र रहा था. बरसों पर बरस बीते, जिंदगी के धक्के-थपेड़े पड़े, क्या से क्या हो गया, पर जब भी मेरी आंखें उसे देखतीं, उसका पहला रूप ही मेरी आंखों के सामने प्रकट होता. इस अनुभव का विश्लेषण मैं नहीं कर सकता. यह एक अनुभव था और उसने मेरी मानसिकता को बदल दिया था. चेहरे की वह छवि, पत्नी के चेहरे के साथ एकाकार नहीं हुई, घुल-मिल नहीं पाई. वह सदा अलग बनी रही. और मेरी स्थिति की यही विडंबना भी थी.

पिता जी मेरे कमरे में आए. बोले, "क्या इस उम्र में तुमसे मदद की आशा नहीं करनी चाहिए? अब मैं कितने दिन व्यापार कर पाऊंगा." और उन्होंने पगड़ी उतार दी...

जो कुछ मैं सुना रहा हूं उसमें शायद असामान्य कुछ भी नहीं. प्रेम जब दिल का दरवाजा खटखटाता है तो किसी ऐसी ही रूपसी को साथ लिये होता है जिसका रूप साधारण होते हुए भी किसी दैवी आभा से मंडित होता है. प्रकृति का यही सबसे बड़ा चमत्कार है. और सबसे बड़ा वरदान भी. ऐसी ही आभा भगवान की सृष्टि पर भी छिटकी रहती है. ऐसे ही देवी स्वर पक्षियों के कंठ से भी फूटते हैं, और बच्चों की हंसी में से भी. इन्हीं को देखते-सुनते हुए, इन्हीं की प्रेरणा में मनुष्य अपनी जिंदगी जी जाता है. वह व्यक्ति निश्चय ही बड़ा बदनसीब होगा जो इस

अनुभव से वंचित रह गया हो. उस दिन मैं हवा में उड़ता हुआ, किन्हीं पंखों पर सवार दफ्तर पहुंचा था.

व्यापार का दायित्व अपने ऊपर लेने के बाद मैं नियमित रूप से बाज़ार जाने लगा था, बल्कि कुछ ही समय बाद मैंने बड़े बाज़ार में अपना दफ्तर भी खोल लिया था. सुबह नौ बजे ही, नमूनों का बैग उठाए मैं बाजार में पहुंच जाता था और एक दुकान से दूसरी दुकान, 'ऑर्डर' प्राप्त करने की कोशिश करता. कॉलेज में तालीम पाने वाले हर युवक की अपनी अकड़ होती है, एक प्रकार का स्वाभिमान, पर अब मैं दुकानदारों के सामने, छोटे-छोटे टटपूंजिया दूकानदारों के सामने भी ऑर्डर प्राप्त कर पाने के लिए घिघियाने लगा था. कोई भी दुकानदार यह पसंद नहीं करता कि जिस समय ग्राहक दुकान पर आ रहे हों उस समय कमीशन एजेंट नमूनों का बैग खोल कर उनके सामने बैठ जाए. इसलिए या तो सुबह-सवेरे के वक्त जब दुकानें खुलती हैं, या बाद दोपहर को वह नमूने देखना पसंद करता है.

कई बार, गरमी के दिनों में दुकानदार अपनी दुकान के अंदर ही सो रहा होता. या अपने किसी काम से बाहर गया होता, पर मैं चुपचाप, इस इंतजार में दुकान के चबूतरे पर बैठा रहता कि कब वह नींद से जागेगा और मेरे नमूने देखेगा. कई बार जाग जाने पर जब दुकानदार की नजर मुझ पर पड़ती तो वह बौखला उठता, जैसे कोई अपशकुन हो गया हो, "क्या है बाबू, सारा दिन गरदन पर सवार रहते हो, तुम्हारा कोई बेला-वक्त नहीं है."

पर कभी, जब वह अच्छे मूड में जागता तो मुझे देखकर मुस्करा भी देता, स्वयं ठंडे जल का गिलास पीने लगता तो मुझसे भी पूछ लेता. पर अकसर दुकानदारों का रवैया कमीशन एजेंट के प्रति अवहेलना का होता है, ऐसा ही मेरे प्रति भी था.

मैं सब तरह के कड़वे घूंट पी जाता. यहां तक कि मेरे अंदर इस बात का एहसास ही मरने लगा था, कि मेरे साथ बेरुखी हो रही है कि दुकानदार बददिमाग आदमी है. यदि मुझे ऑर्डर मिल जाता तो मुझे सारी बेरुखी भूल जाती, मेरी सारी थकान दूर हो जाती और मैं भागता हुआ घर पहुंचता, पिता को यह बताने के लिए कि मुझे कितने ऑर्डर मिले हैं.

कुछ धंधे बने ही मनुष्य का अपमान करने के लिए हैं, उसे तिरस्कृत करने के लिए, उसकी हेठी करने के लिए. मेरे अंदर वह उन्स ही मरता जा रहा था जो हेठी होने पर तड़प उठता है. व्यापार के प्रति ऐसे उत्साह को मैं रुग्ण उत्साह का नाम ही दूंगा. इस प्रकार के उत्साह के कारण उन कटु अनुभवों को भी यह समझकर स्वीकार कर लेता कि जिस कार्यभार को मैंने अपने ऊपर लिया है, यह उसका नैसर्गिक अंग है, कि बाजार में दलालों, एजेंटों के साथ ऐसा ही व्यवहार होता है, कि मैं एक एजेंट ही हूं, और मुझे एजेंट के भाग्य को स्वीकारना होगा, मैं अपने पिता का बोझ हल्का कर रहा हूं. मैंने जो वचन दिया था, उसे निभा रहा हूं.

कभी-कभी मुझे बाजार में काम करने वाले और अन्य दलालों से ईर्ष्या होती. चिकना-चुपड़ा, पतली-पतली मूंछों वाला बृजलाल नमूनों की पोटली बगल में दबाए, चहकता हुआ दुकान के चबूतरे पर चढ़ता, पान चबाता हुआ, दुकानदारों के साथ बतियाता, सुरती की चुटकी मुंह में डालता, ऑर्डर का काम मिनटों में कर लेता, और इसी तरह बाजार के किस्से सुनाता हुआ किस चीज का भाव गिरा है और चढ़ा है, दुकान पर से उतर जाता. वह बतिया सकता था जबकि मेरे मुंह पर ताला चढ़ा रहता था, मैं बड़ी शराफत से बात करता था और बदले में जूते खाता था, जबकि वह गप्पें हांकता हुआ, हंसता-बतियाता, ऑर्डर ले जाता था. वास्तव में मैं भीरु स्वभाव, अपराध भावना से ग्रस्त निपट अकेला और अंतर्मुखी वृत्ति का व्यक्ति बनता जा रहा था. दुखी होता तो भी अंदर ही अंदर और जो कभी गुदगुदी उठती तो भी अंदर ही अंदर. इसी काम को मैं स्वाभाविक ढंग से अपना काम समझकर कर सकता था, बिना विचलित हुए अथवा कुंठित महसूस किए. लेकिन मेरी मानसिकता में तरह-तरह की गांठें पड़ती जा रही थीं. आत्म-प्रवंचना बुरी तरह से मुझे अपनी दबोच में लिये हुए थी.

एक दिन बाजार के काम से मैं जल्दी ही निबट गया. केवल एक दुकानदार से मिलना बाकी रह गया था और वह दुकान पर नहीं था. मुझे उसका इंतजार करना था. तभी मुझे चाय पीने की तलब हुई. नजदीक ही गली के मुहाने पर एक सस्ता-सा ढाबा था, मैला, गंदा-सा, नाली के ऊपर ही उसने अपनी अंगीठी टिका रखी थी, उस पर रखी चाय की केतली में से सारा वक्त भाप निकलती रहती. उस दिन या तो बाजार से मिलने वाले निष्ठुर व्यवहार के कारण रहा हो या देर तक इंतजार करते रहने की थकान के कारण, मैं बरबस उसी ओर चल पड़ा था. शायद कहीं, आत्मानुकंपा का रस लेने वाला मेरा मन अंदर ही अंदर यह मानने लगा था कि मेरे जैसा व्यक्ति ऐसी चाय का ही अधिकारी रह गया है. एक ओर आत्मानुकंपा, दूसरी ओर अपराध भावना से पैदा होने वाली विनम्रता, मैं कदम बढ़ाता उस ढाबे तक जा पहुंचा था.

गली के सिरे पर मटमैले रंग का प्याला हाथ में लिये, मैं उस कड़क

चाय की चुस्कियां ले ही रहा था, जब मेरी नजर नजदीक ही पटरी पर बिछी किताबों पर पड़ी. पुरानी किताबें बेचने वाला कोई कबाड़ी गली के मुहाने के पास ही, पटरी पर फटी-पुरानी किताबें सजाए बैठा था. इनमें पुराने किस्से भी थे, हीर-रांझा की दास्तान भी थी, कुछेक अंग्रेजी के जासूसी और दीगर उपन्यास भी थे. चाय पी चुकने पर मैं निष्प्रयोजन ही उस पटरी पर जा खड़ा हुआ था, पर दूसरे ही क्षण, किसी भावावेश में पैरों के बल बैठ गया था और उन चिथड़ा किताबों के पन्ने पलटने लगा था.

तभी सहसा मेरे बदन में बिजली दौड़ गई. मेरे हाथ में वह किताब थी जिस पर मेरा नाम लिखा था, "दिस बुक बिलांग्स टू..." आगे मेरा नाम था. यही वह पाठ्य पुस्तक थी जिसे मेरे हाथ से छीनकर पिता जी ने गुस्से से खिड़की के बाहर फेंक दिया था, "श्वेत वसना नारी" बावजूद इसके कि मैं चिल्लाता रहा था कि वह मेरे पाठ्यक्रम की पुस्तक है और इसमें मुझे इम्तहान देना है. बाद में भागता हुआ नीचे गली में गया था, पर वह पुस्तक मुझे नहीं मिली थी. पुस्तक हाथ में लेते ही मेरा जी भर आया था. उसकी जिल्द उखड़ गई होगी, क्योंकि गहरे नीले रंग की जिल्द उस पर नहीं थी. पर पुस्तक के अंदर जगह-जगह मेरे हाथ के बने निशान थे, कहीं पंक्तियों के नीचे लगी लीकें, कहीं हाशिये पर बने चिह्न. मैंने मूल्य पूछा तो वह चार आने में उसे दे रहा था. मैंने जेब में से चार आने निकाले भी, मैं उठकर खड़ा भी हो गया, पर फिर न जाने किस भावावेश में मैंने पुस्तक वापस फेंक दी, और पंजाबी का यह "अखाण" बुदबुदाता हुआ: "छोड़िया गिरां, ते फिर की लैणा नां" (एक बार गांव छोड़ दिया तो फिर उसका नाम बार-बार लेने की क्या तुक) मैं वहां से हट गया.

इस छोटी-सी घटना को मुझे जल्दी ही भूल जाना चाहिए था, पर कहीं यह मेरे मानसपटल पर अपनी खरोंच छोड़ गई, कहीं अंदर ही अंदर मुझे बेचैन कर गई. एक बेचैनी वह होती है जो आग की लपट की तरह बल खाती हुई अंदर से उठती है और तुम्हें अपना रास्ता बदलने पर मजबूर कर जाती है. एक और प्रकार की बेचैनी वह होती है जिससे तुम्हारे हाथ-पांव पहले से भी ज्यादा ठंडे पड़ जाते हैं और मन पहले से भी ज्यादा जड़ हो जाता है.

शोभा के प्यार ने मुझे सैकड़ों बंधनों से एक झटके में ही जैसे मुक्त कर दिया था. मेरे लिए दुनिया फिर से रंगीन हो उठी थी. शोभा को निहारते रहना मेरे लिए सबसे बड़ा वरदान बन गया था. वह कुछ कह रही होती तो मैं उसके चेहरे के बदलते भावों, उसके होंठों पर थिरकती, ओझल होती मुस्कान को देखता रहता, कई बार उसकी बातों की ओर मेरा ध्यान ही नहीं जाता था. मैं सौंदर्य का उपासक बना घूम रहा था, जो एक गुण न होकर एक रोग-सा बनता जा रहा था जिसे मैं अपने अंदर पाल रहा था पर यही आकर्षण एक दिन मेरे लिए अभिशाप बन जाएगा, इसकी मुझे आशा नहीं थी.

वह मेरे प्रति आश्वस्त थी, ऐसा मैं कह सकता हूं, विशेष रूप से जब मैंने अपनी साहित्यिक महत्वाकांक्षा की चर्चा की थी. आज भी मैं उसके चेहरे का भाव देख सकता हूं. उसका चेहरा खिल उठा था, वह मुस्कराई थी और बड़ी खुश नजर आई थी. और उसे आश्वस्त पाकर मुझे लगा था जैसे मेरी सारी ग्रंथियां खुल-खुलकर गिर रही हैं, जो बचपन से मेरे अंदर कसती जा रही थीं. उसकी प्रतिक्रिया देखकर मेरा दिल बल्लियों उछलने लगा था, और मुझे लगा था जैसे मैं उड़ सकता हूं, वैसे ही जैसे अपने दिवास्वप्नों में उड़ा करता था—दोनों हाथ फैलाए, आकाश के अनंत विस्तार में तैरता हुआ-सा, क्षितिज तक पहुंच पाने की क्षमता जैसे मेरे अंदर जाग उठी थी.

मुझे बहुत-सी कविताएं और पद कंठस्थ थे. मैं उसे शेर सुनाता. वह कभी-कभी कहती, "इसका अर्थ समझाओ." मैं समझाता, कभी शेर गूढ़ होता तो उसके माथे पर उसकी भृकुटि सिकुड़-सी जाती. जब वह समझ लेती तो उसकी पेशानी साफ हो जाती और उसका चेहरा खिल उठता. उन दिनों मैं खुलने लगा था. उसे अपने जोखिम भरे कारनामे सुनाता. अनेक किस्से तो ऐसे होते जो मेरे कारनामे न होकर मेरे किसी दोस्त अथवा संबंधी के कारनामे होते जिन्हें मैं अपने कहकर सुना रहा होता. और सुनाते-सुनाते मुझे लगने लगता जैसे वह कारनामा मैं भी कर सकता था.

एक बार, एक बाग में घूमते हुए उसने मुझसे कहा था, "मैं एक छोटे से बंगले में रहना चाहती हूं जिसके आसपास छोटी-सी फुलवाड़ी हो, हरी-हरी घास हो, जहां बहती हवा सारा वक्त मेरे बालों के साथ खेलती रहे." अचानक ही उस वक्त बाग में हवा बहने लगी थी, जिससे उसके बालों में हल्के-से कुंडल बन गए थे और एकाध लट उसके माथे पर झूलने लगी थी.

मैंने भी चहककर कहा था: "तथास्तु!" जिसे सुन कर उसने पूछा था, "क्या मतलब?" और मैंने बड़े उत्साह से कहा था,

"ऐसा ही होगा!" और मैंने उसे बांहों में भर कर उसकी झूलती लट को चूम लिया था.

शादी से पहले, जैसा मैंने कहा, मैं महसूस करने लगा था कि मेरे बंधन टूट रहे हैं, मैं आजाद हो रहा हूं, मुझमें फिर से भरपूर आत्मविश्वास जाग रहा है, मैं उसे हंसाता, किस्से सुनाता, शेर और कविता सुनाता—हालांकि उन्हें सुनाते हुए मुझे कभी-कभी लगता कि मैं कोई स्वांग रच रहा हूं. सहसा ही मुझे लगने लगता जैसे मैं किसी अन्य व्यक्ति की नक्काली कर रहा हूं. जैसे मैंने किसी दूसरे आदमी का अंदाज अपना लिया है, कि मेरा अपना कोई अंदाज नहीं है. एक ही व्यक्ति, कैसे अलग-अलग लोगों की भूमिकाएं ओढ़ लेता है. मौलिक व्यवहार तो किसी ऐसे व्यक्ति का ही होगा, जो अंदर से जुड़ा हो, जिसमें भरपूर आत्मविश्वास हो, जो दुनिया को अपनी नजर से देखे और अपने ही रास्ते पर बढ़ता जाए.

"तुम भी कविता कहते हो?" एक अवसाद भरी कविता सुनाने पर उसने मुझसे सहसा ही पूछ लिया था.

"नहीं, मैं कविता नहीं कहता." "हाय, क्यों नहीं कहते? कहा करो ना, तुम्हारे मुंह से कविता सुनना बड़ा अच्छा लगता है."

जितना गहरा प्यार हो, प्रेमी अपनी प्रेयसी को उतना ही अधिक अवसाद भरा गीत सुनाता है. यह शायद प्रेयसी के दिल को छू पाने के लिए उसके दिल में अपने लिए, सद्भावना जगाने के लिए.

कुछ था जो हमारी शादी के पहले दिन ही हमारे बीच टूट गया था, उसी दिन जब शोभा ने हमारे घर में कदम रखा था. हमारे घर की ड्योढ़ी को लांघते हुए ही वह प्रक्रिया शुरू हो गई थी. संभवतः वह ड्योढ़ी ही इसका कारण बनी थी. जैसे कोई पथिक, लंबा सफर तय करने के बाद अपने गंतव्य तक पहुंचे और पाए कि वह स्वच्छ, पानी की झील न होकर, मात्र एक ताल-तलैया पर जा पहुंचा है, वैसा ही कुछ भास शोभा को हुआ होगा. ड्योढ़ी के एक कोने में हरी घास का ढेर लगा था. पिता जी को घर में गाय-भैंस रखने का शौक था, और यह चारे का ढेर उस भैंस के लिए था, जो घर के बाहर, दरवाजे से थोड़ा हट कर बंधी थी. ड्योढ़ी टेढ़ी-सी थी, उसका कोई भी भुज कोण सीधा नहीं था और भुज भी तीन थे. घास के ढेर के निकट ही एक फटीचर-सी साइकिल रखी थी, जिस पर बैठकर घर का मुंशी किराया उगाहने जाया करता था. ड्योढ़ी में से ही ऊपर की मंजिल को तंग-सी, टेढ़ी-मेढ़ी सीढ़ियां चली गई थीं. शोभा के अपने घर में जिसे वह उस दिन छोड़ आयी थी, ऐसी सीढ़ियां

शादी से पहले, जैसा मैंने कहा, मैं महसूस करने लगा था कि मेरे बंधन टूट रहे हैं, मैं उसे हंसाता, किस्से सुनाता, शेर और कविता सुनाता.

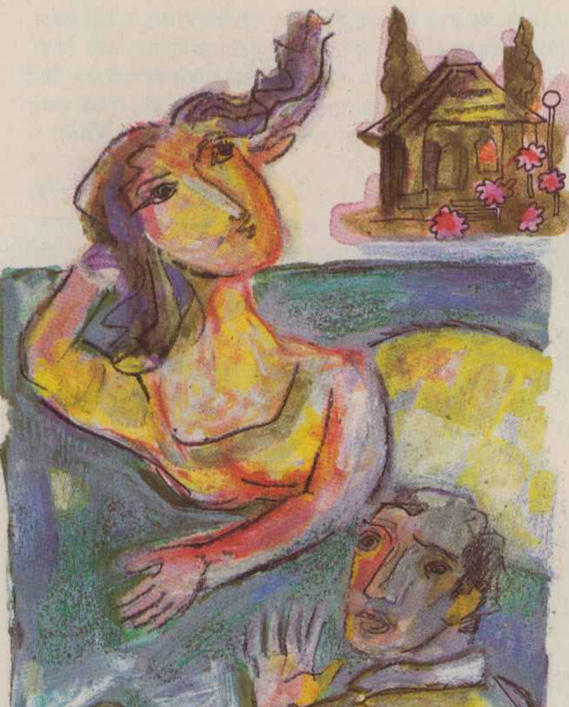

नहीं थीं, बल्कि सीढ़ियां थीं ही नहीं. वह घर भी नहीं था, छोटा सा बंगला था जिसके बाहर एक हरा-भरा, फूलों की क्यारियों से सजा आंगन था, इकहरा सा बंगला. शोभा के घर में भी साइकिल थी जिस पर शोभा के पिता कचहरी जाया करते थे, पर चमचमाती साइकिल, जिसे अर्दली हर दिन प्रातः साफ किया करता था. ऐसी फटीचर साइकिल नहीं थी, जैसी हमारे घर की ड्योढ़ी में रखी थी.

ड्योढ़ी में से ही घर के अंदर उस अंधेरे आंगन में भी प्रवेश करते थे जिसके दाएं-बाएं छोटे-बड़े कमरे थे और ऊपर खुला जंगला था. वह खुला जंगला भी विघटन की उस प्रक्रिया में अपना योगदान देने वाला था, शोभा के मन पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाने वाला था क्योंकि इस जंगले पर ही खड़े-खड़े, शादी के कुछ वर्ष बाद शोभा ने मेरे पिता को मुझ पर चिल्लाते सुना था, जिसे सुनकर उसका मन टूट गया था.

"तू बैठा किताबें बांचता रहेगा तो काम कौन करेगा? इसी तरह चलता रहा तो एक दिन भूखों मरेगा. तेरी सब एजेंसियां छिन जाएंगी, नालायक!"

तब भी शोभा को धक्का लगा था. उस समय वह निचली मंजिल के एक कमरे में बैठी थी. वह कुछ ही देर पहले अपने मायके से लौटी थी. पिता जी को मालूम नहीं था कि वह लौट आई है और नीचे वाले कमरे में बैठी सुन रही है. जिस लहजे में पिता जी बोल रहे थे, उससे मुझे भी धक्का लगा था, और मेरा दिल बैठ-सा गया था और बरबस मुझे वह दिन याद आ गया था जब अपने सफेद बालों का वास्ता डालकर उन्होंने मुझे घर पर बने रहने का आग्रह किया था.

पर यह हमारी शादी के कुछ वर्षों बाद की बात है जब शोभा और मैं मां-बाप बन चुके थे और दूसरे बच्चे की राह देख रहे थे.

शादी के शीघ्र ही बाद शोभा उखड़ी रहने लगी थी. उसे यह देखकर भी अचंभा होता कि नीचे दफ्तर में बैठे पिता जी जब कभी मुझे पुकारते तो मैं जहां भी होता, भागता हुआ उनके पास जा पहुंचता, "आया पिता जी!" कहता हुआ. इस पर कभी तो शोभा हंस देती, कभी हैरान-सी मेरे चेहरे की ओर देखने लगती. उसे यह आज्ञाकारिता बड़ी अटपटी-सी लगती थी.

"तुम इतनी उतावली में क्यों भाग खड़े होते हो? अब भी तुम छोटे बच्चे हो क्या? कल हमारी बेटी बड़ी हो जाएगी तो तुम उसके सामने भी "आया पिता जी" कहते हुए भागकर सीढ़ियां उतरने लगोगे?" कहते हुए शोभा हंस दी थी. पर मुझे अपनी इस आज्ञाकारिता में कुछ भी अटपटा नजर नहीं आया था.

घर का चलन ही ऐसा था कि घर के बाहर जाने पर, भले ही पत्नी के साथ टहलने के लिए बाहर जाना हो, घर वालों से कह कर जाना होता था. एक बार तो पिता जी हम दोनों को रास्ते में से लौटा लाए थे क्योंकि शाम का अंधेरा बढ़ रहा था और घर में भोजन का समय हो चला था. तब मैं बिना कुछ बोले, बिना कुछ कहे पिता जी के पीछे हो लिया था. शोभा कुछ देर तक सड़क के किनारे खड़ी रही थी, फिर चुपचाप हमारे पीछे-पीछे आने लगी थी. "तुम इतना तो कह सकते थे कि पिता जी, आप चलिए, हम शीघ्र ही लौट आएंगे."

इस पर मैंने इतना ही कहा था, "छोटी सी तो बात है, इस छोटी सी बात को लेकर मैं उनके साथ क्या तकरार करूं. वे हमारा भला चेतते हैं, तभी कहते हैं..."

तब शोभा के मन में चिढ़-सी उठी थी, वह फिर से सड़क पर रुक गई थी, मानो कह रही हो, तुम्हें अपने बाप की दुम बनकर जाना है तो जाओ, मैं नहीं जाऊंगी.

इतना ही नहीं, अनेक ऐसे प्रसंग भी आए थे जब पिता जी ने अथवा मां ने शोभा को सुनाते हुए कहा था, व्यंग्य बाण छोड़े थे. और शोभा निराले में झल्ला उठी थी, तब भी मैंने शोभा को सहनशीलता का उपदेश देते हुए समझाया था, "मैं इस उम्र में उनसे उम्मीद नहीं कर सकता कि, उनका स्वभाव बदल जाएगा. तुम्हें ही अधिक सहनशील बने रहना होगा." सुनते हुए शोभा की आंखें फैल गई थीं और वह सुन्न-सी खड़ी रह गई थी.

तभी, कुछ ही समय बाद उसने दृढ़ता से यह प्रस्ताव रखा था कि हम कहीं अलग चल कर रहें, अलग से अपनी गृहस्थी चलाएं, अपने बच्चों को अपने ढंग से पालें. तब भी, मेरा उत्तर सुन कर उसकी आंखें फैल गई थीं और वह मेरी ओर देखती रह गई थी.

"इस उम्र में क्या हम उन्हें छोड़ जाएं? हम ही तो उनका एकमात्र सहारा हैं. बड़ी उम्र में स्वभाव में चिड़चिड़ापन तो आ ही जाता है, यह उनका दोष नहीं..."

उस दिन मुझे लगा था जैसे मैं शोभा की आंखों से गिर गया हूं. पहले वह मुझे जरूरत से ज्यादा विनम्र स्वभाव और विनयशील व्यक्ति कहा करती थी, पर उस दिन से वह मुझे दबा-कुचला, डरपोक और मरियल इंसान समझने लगी थी. इससे पहले वह जिसे मेरी सादगी और भलमनसाहत समझती आई थी, वही अब उसे मेरी यतामत और मेरा लिजलिजापन नजर आने लगा था. एक झीना-सा परदा मानो शोभा की आंखों के सामने से गिर गया हो और उसने मुझे मेरे असली रूप में देख लिया हो. यह आदमी मेरे हित में कभी भी मेरे साथ खड़ा नहीं होगा,

कभी भी मेरा अवलंब नहीं बनेगा, यह अपने बाप का ही मुंह जोहता रहेगा. जो अपनी इज्जत नहीं करता वह मेरी इज्जत क्या करेगा. उस दिन मेरे प्रति रहा सहा आदरभाव भी शोभा की आंखों में से झरकर गिर गया था.

तभी हम दोनों के बीच एक विचित्र-सा संबंध पनपने लगा था. शोभा की आकृति अब भी मेरी नजर में उतनी ही आकर्षक थी जितनी पहले हुआ करती थी, बल्कि मानसिक तनाव के कारण एक हल्का पीलापन-सा उसके चेहरे पर आ गया था, जिससे उसके चेहरे की लुनाई और भी ज्यादा आकर्षक लगने लगी थी, और आंखें कुछ-कुछ अंतर्मुखी-सी लगने लगी थीं, जबकि मेरे अंदर शोभा को लेकर अपराध भावना-सी पनपने लगी, एक प्रकार का सहमा-सहमा डर-सा जो बहुत कुछ वैसा ही था जैसा पहले पिता जी को लेकर मन में जड़ जमाने लगा था. उसकी आंखों में मेरे प्रति अवहेलना-सी उतर आई थी जबकि मेरा रवैया उसके प्रति मूक आग्रह का-सा होता जा रहा था.

यही मेरे जीवन की विडंबना बनती जा रही थी. एक ओर जहां मैं उसकी कमनीयता पर मुग्ध था, दूसरी ओर वह उत्तरोत्तर मुझसे दूर होती जा रही थी. कभी-कभी जब वह घर लौटती, हाथ में साग-सब्जी का थैला उठाए, और घर का फाटक लांघ रही होती तो मुझे सबसे पहले उसकी कमनीयता, उसके स्निग्ध सौंदर्य का ही भास होता, उसके निखरे-निखरे मातृत्व का, सखा रूप का, अपनत्व का. उसकी पोशाक भी, मुझे लगता, उसके व्यक्तित्व के अनुरूप उसे फब रही है. घर के अंदर कदम रखते ही जैसे उसके व्यक्तित्व की आभा घर भर में फैल जाती. उन दिनों भी जब वह अपने को बलि का बकरा मानने लगी थी उसे एक कमरे से दूसरे कमरे में जाते देखता तो मेरी आंखें बंधी की बंधी रह जाती थीं. उसकी चाल में मुझे लय का भास मिलता.

पर अब, वह जब कभी अपनी किसी इच्छा या ललक की चर्चा करती, और मैं पहले के से अंदाज में "तथास्तु!" कहता तो वह वितृष्णा से मुंह फेर लेती. हम दोनों के बीच का हास्य-विनोद उत्तरोत्तर छिछला पड़ता जा रहा था. हास्य-विनोद का स्थान उलाहनों ने ले लिया था, शिकवा-शिकायत ने.

अपराध भावना भी अनेक रूपों में अपने को व्यक्त करती है. कभी तो मैं अपने में डूब-सा जाता गुमसुम हो जाता, और अंदर ही अंदर घुलने लगता. कभी-कभी बुरी तरह से खीझ उठता, "तुम चाहती हो कि जिस तरह के घर में तुम्हारा बचपन बीता है, वैसा ही घर अब भी तुम्हें रहने को मिले?" कभी बड़े फलसफाना अंदाज में उसकी मन:स्थिति का विश्लेषण करने लगता, "हर व्यवसाय के लोगों के अपने तौर-तरीके होते हैं, अपना-अपना रहन-सहन का ढंग होता है. प्रत्येक व्यवसाय का आदमी अपने-अपने मूल्यों के चौखटे में बंद होता है. उसमें से निकल पाना उसके लिए आसान नहीं होता. तुम भी नहीं निकल सकती हो. तुम्हारे पिता सरकारी अफसर हैं, मेरे पिता व्यापारी हैं. तुम्हें अपने रहन-सहन का ढंग ही एकमात्र सही ढंग लगता है. तुम्हारा मन उसी की जकड़न में है."

उन दिनों मैं अकसर सोचा करता, ऐसा क्योंकर हुआ कि किसी का भी अहित न चेतते हुए मैं अपने प्रियजनों के लिए क्लेश का कारण बना. पर वास्तव में किसी के अहित का न चेतना एक बात है, पर किसी समस्या का समाधान ढूंढ़ना बिलकुल दूसरी बात. स्वभावगत भीरुता ने मेरी उस दृष्टि को ही कुंठित कर दिया है जो सही और गलत के बीच न्याय और अन्यास के बीच भेद कर सकती है और दृढ़ता से न्याय का पक्ष ले सकती है. किसी का अहित न चेतना एक गुण माना जा सकता है, पर इसका कोई अर्थ नहीं रह जाता यदि उसके अनुरूप आचरण नहीं किया जाता.

शोभा को इस बात का भी भास मिलने लगा था कि मेरी साहित्यिक रुचि भी वास्तव में एक तरह का पलायन ही है. जब भी मैं अपने व्यावहारिक जीवन की किसी समस्या से जूझ नहीं सकता, तो उससे पलायन कर किताबों की दुनिया में जा छिपता हूं. हर विकट स्थिति से आंख चुराकर, साहित्य के लिहाफ से मुंह-सिर ढांपकर पड़ जाता हूं. और शोभा ने मेरे इस भयावह चरित्र दोष को जान लिया था. उसे इस बात का भी भास मिलने लगा था कि मेरी अन्य रुचियां भी वास्तव में एक तरह का पलायन ही हैं. एक बार शोभा ने बड़ी सहज, समतल आवाज में कहा था, "तुमने मुझसे कभी प्रेम नहीं किया. तुमने कभी किसी से भी प्रेम नहीं किया. तुम जानते ही नहीं प्रेम किसे कहते हैं." और मुझे अवाक्-सा सुनते हुए बोली, "यदि तुमने मुझसे प्रेम किया होता तो तुम मुझे सुखी रखने के उपाय भी सोचते. मैं तुम्हारे मौन प्रेम का क्या करूं?"

कभी-कभी हमारे बीच तू-तू मैं-मैं होने लगती. उसकी फटकार सुनकर कभी-कभी मैं तिलमिला उठता. मैं भी बुरा-भला बकने लगता. अपने बाल नोंचता, अपनी किस्मत का रोना रोता.... पर शांत हो जाने पर, फिर भी उसी का निखरा-निखरा चेहरा आंखों के सामने उभरने लगता. और कभी-कभी उसके चेहरे पर वैसा ही भाव नजर आने लगता जैसा उस दिन दिखाई दिया था जब वह अपने घर के बरामदे में, एक हाथ खंभे पर रखे, मेरी ओर देखते हुए खड़ी थी, और उसके होठों पर हल्की-सी मुस्कान और आंखों में पहचान की हल्की-सी चमक आ गई थी.

हमारी गृहस्थी का 'छकड़ा' ऐसे ही हिचकोले खाता चला जा रहा था, और मुझे लगने लगा था कि ऐसे ही चलता भी रहेगा, जब सहसा ही एक दिन उसने मुझे छोड़ जाने का फैसला सुना दिया था. "मैं जा रही हूं. मेरे बच्चे भी मेरे साथ जाएंगे. मैं नहीं चाहती कि इन पर कभी तुम्हारा साया भी पड़े" और मैं सुन्न-सा खड़ा सुनता रह गया था.

"बहुत देख लिया. अब मैं और सहन नहीं कर सकती. जिंदगी के बचे-खुचे साल में घिसट-घिसटकर जीना नहीं चाहती."

इससे पहले वह अकसर कहा करती थी, "तुम्हारे अंदर कुछ था जो कुचला जा चुका है. वह रग जिसमें मनुष्य के प्राण बसते हैं, जिंदगी जीने की इच्छा धड़कती है." फिर सहसा आवेश में आकर चिल्ला कर कहती, "मेरी किस्मत फूट गई जो मैं एक अधमरे आदमी के साथ बंध गई... जो आदमी अपनी घरवाली का कुछ नहीं संवार सका, वह अपने बच्चों का क्या संवारेगा."

सूरज की किरणें ढल रही थीं जब उसने घर छोड़ा था. शोभा ने एक कंधे से थैला लटका रखा था, दूसरे कंधे के सहारे उसने बिटिया को उठा रखा था. दाएं हाथ में सूटकेस उठाए हुए थी, और चार साल का हमारा बेटा, मां के पीछे-पीछे सिर झुकाए चला जा रहा था. बेटे का सिर उस वक्त मुझे बड़ा रुखड़ा-रुखड़ा लगा था और उसकी पीली-सी गरदन पर पसीने की परत आ गई थी. बेटी जो बहुत छोटी थी, अपना अंगूठा मुंह में लिये हुए थी और उसकी दूसरी बांह मां की पीठ पर झूल रही थी. बेटा, बाहर जाते हुए भी मुड़-मुड़कर पीछे की ओर देख रहा था. बाद में यही चित्र मेरे दिल को बहुत दिनों तक छीलता रहा था. मैं खिड़की से थोड़ा हटकर अंधेरे में खड़ा था. मुझे लगा था जैसे बेटे की आंखें अंधेरे में मुझे ढूंढ़ रही हैं. सारे माहौल में अवसाद-सा घुल गया था. और वे तीनों मुझे बहुत अकेले-से लगे थे.

जाने से पहले शोभा ने अपने बाल ठीक तरह से नहीं काढ़े थे. ढीला-सा जूड़ा बनाया था, पर माथे पर बिंदी उसने फिर भी लगा रखी थी. लगता था हड़बड़ी में तैयार हुई है, शायद इसलिए कि कहीं उसके संकल्प में शिथिलता नहीं आ जाए. दहलीज के पास पहुंच कर वह मेरी ओर मुड़ी थी, "मैं जा रही हूं. बच्चों को भी ले जा रही हूं. अब तुम आजाद हो, जो मन आए, करो."

उसकी ओर देखते हुए पहली बार मुझे लगा था जैसे उसकी आंखें कांच की बनी हों, जैसे उनमें तनिक भी भावना नहीं रह गई हो, भावनाशून्य आंखें. उनमें परायापन झलक रहा था. भावनाशून्य, तिरस्कार भरी आंखें.

वह चली जा रही थी, मेरे आत्मसम्मान को पैरों तले रौंदती हुई.

BPL

THE EMPEROR

गौरवशाली शक्तिशाली वैभवशाली

ऐसा रोमांचक टेलीविजन अब तक न देखा होगा. न सुना होगा. अधिक असली, आँखों पर जोर न डालने वाली पिक्चर के लिए नवीनतम, इंपोर्टेड 53 सेमी ***फ्लैट ऐंड फुल स्क्वेयर ट्यूब (F & FST)*** *से बना. वास्तविक और गुंजन भरी आवाज के लिए* ***सुपर वूफर स्टीरियो सराउंड (SWSS)*** *सिस्टम.* ***यूनिफाइड रिमोट*** *जो बी पी एल का कोई भी वी सी आर चला सके. साथ में पहली बार वाली अनेक खूबियां. बीपीएल एफ एच आर. पिक्चर, आवाज और डिजाइन का उत्कृष्ट संगम.*

BPL FHR
COLOUR TELEVISION

KAMERAD-NEWS/BPL 324-93 HIN

उसकी आंखों में इतनी दूरी मैंने पहले कभी नहीं देखी थी. उसके सौंदर्य की झलक तो अंग-अंग में अब भी थी—छरहरा बदन, अंग चालन में वही लय का भास, संभली हुई, दृढ़ निश्चय वाली स्त्री, पर बड़ी परायी-सी लग रही थी. उस दिन हमारे बीच कोई झगड़ा नहीं हुआ था. वह बड़े इत्मीनान से बाहर निकल गई थी, और यही बात मुझे बाद में सालती भी रही थी कि शोभा ने मुझे अपने जीवन में से मक्खन में से बाल की तरह निकाल फेंका है.

उसके चले जाने पर, एक ओर तो मैं गहरे में तिरस्कृत महसूस कर रहा था कि शोभा मेरे मुंह पर जोर से तमाचा मार कर चली गई है, दूसरी ओर मेरा पलायनप्रेमी स्वभाव राहत की सांस भी लेने लगा था कि चलो, चली गई, रोज की चिख-चिख तो खत्म हुई, एक बोझ तो कंधों पर से उतरा.

मैं शून्य में ताकते हुए, निरुद्ध-सा, उसके कदमों की आहट सुनता रहा, सीढ़ियां उतरने की, गली का दरवाजा खोलने की, छोटी बच्ची के तुतलाकर बोलने की. फिर मैं मन ही मन उन्हें सड़क पर जाते देखता रहा मुझे लगा जैसे बेटा अब भी मुड़-मुड़कर अपने घर की ओर, ऊपर वाली खिड़की की ओर देख रहा है. और उसकी चाल धीमी पड़ गई है, पर मां के बुलाने पर वह फिर कदम बढ़ाता मां के निकट जा पहुंचा है. और सड़क पर धूल उड़ने लगी थी. फिर वे सड़क का मोड़ मुड़ गए थे ओर मेरी आंखों के सामने अंधेरा-सा छा गया था.

यदि शोभा के यों चले जाने से मेरे अहं पर चाबुक-सी लगती और मैं तिलमिला उठता, तो मैं चिल्लाता हुआ शोभा के पीछे भागता, उसकी बांहों में से बच्ची को छीन लेता, उसे बुरा-भला कहते हुए उसे घर के अंदर खींच लाता... तुम मुझे बेइज्जत नहीं कर सकती. तुम्हारा जहां मन आए, जाओ, जहन्नुम में जाओ, पर मैं बच्चों को नहीं जाने दूंगा. पर ऐसा कुछ नहीं हुआ, बल्कि मेरा मन उत्तरोत्तर जड़ होता गया.

खिड़की पर से हट कर मैं सीधे रसोईघर में चला गया था और अपने लिए चाय का प्याला बनाने लगा था. उस समय मेरे अर्द्धचेतन मन ने इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया कि शोभा रसोईघर को साफ-सुथरा करके छोड़ गई थी, कि दूधदानी में मेरी चाय के लिए दूध रखा था और चीनी और चाय का डिब्बा अपनी-अपनी जगह पर थे.

चाय पीने के बाद मैं बड़े कमरे में लौट आया था और कुर्सी पर अधलेटा-सा बैठ गया था. कुर्सी पर बैठा ही बैठा मैं मुस्करा दिया था, एक ऐसे आदमी की मुस्कान, जो स्वयं डूबता हुआ भी अपने को डूबता देख सकता है. जो अपनी स्थिति के अंदर रहते हुए भी, छिटककर उससे अलग हो सकता है और जिसे अपनी स्थिति की विडंबना नजर आने लगती है. यह मानसिकता उन दिनों की देन थी जब मैं दिवास्वप्न देखा करता था. बचपन से ही मैं इस रोग से पीड़ित रहा हूं. जैसे कछुआ दुश्मन का सामना न कर पाने पर अपने खोल में सिमट जाता है और सुरक्षित महसूस करने लगता है, मैं भी आंखें बंद करके दिवास्वप्न देखने लगता, दुनिया से कट जाता, अपने दायित्वों से, अपने जीवन के यथार्थ से, आसपास के लोगों से. तब मेरा दुर्बल मन उड़ानें भरता, जहां मन करता उड़ता-फिरता, ऐसे अलौकिक प्रदेश में जा पहुंचता जहां चारों ओर अरुण छटा फैली होती, जहां हवाएं मुझे आलिंगन में भर लेती थीं, जहां मैं उन्मुक्त, स्वच्छंद, मनचाही उड़ानें भरता था. तभी से, वास्तविकता पर से मेरी पकड़ शिथिल पड़ने लगी थी...

कुर्सी पर अधलेटे या तो मुझे झपकी आ गई थी या मैं दिवास्वप्न देखने लगा था, कि शोभा की आकृति मेरे सामने आ गई थी और मैं मुग्ध-सा उसके रूप लावण्य को निहारता जा रहा था और फिर से अपार आनंद का अनुभव कर रहा था.

एक झटके से ही मेरी आंख खुल गई थी. यह मेरी रुग्ण मानसिकता का ही प्रभाव रहा होगा कि उस विकट स्थिति में भी मैं सब कुछ भूलकर उसके सौंदर्य का रस ले सकता था.

मेरी कहानी यहां पर समाप्त नहीं हो जाती. कोई भी कहानी एक बिंदु तक पहुंच कर समाप्त नहीं होती, बिंदु तो यात्रा के पड़ाव के समान होता है. यात्रा तो जिंदगी के आखिरी दिन तक चलती रहती है.

दिन पर दिन बीतने लगे. मेरी मन:स्थिति मुझे पागलपन के नाके तक ले आई थी. कभी मैं अपने को यह कहकर ढाढस बंधाता कि दुनिया में तुम ऐसे अकेले आदमी नहीं हो जिसकी पत्नी उसे छोड़ गई है. हर आए दिन बीसियों घरों में विवाह संबंध टूट रहे हैं. पर शोभा के यों चले जाने से मैं अपनी नजर में गिर गया था. अब तक मेरा व्यक्तित्व दो बैसाखियों के सहारे खड़ा था. एक शोभा के प्रति प्रेम भाव, दूसरे अपनी साहित्यिक रुचि में विश्वास. इन दोनों के रहते मेरा अस्तित्व मेरी नजर में बना हुआ था. ये मेरी मानसिक स्थिरता के अवलंब रहे थे. यों अपनी जर्जर संकल्पशक्ति, लिजलिजी विनम्रता और पलायनप्रिय स्वभाव के कारण दुखी भी रहता था, पर इन सबके बावजूद मैं अपनी नजर में गिरा नहीं था. मैं फिर भी समझे बैठा था कि शोभा मेरी भावनाओं की कद्र करेगी, मैंने कभी उसका अहित नहीं चाहा था, इस कारण वह मुझसे जुड़ी रहेगी. पर वह यों मुझे झटककर छोड़ जाएगी और मुझे अपनी ही नजर में दो कौड़ी का निकृष्ट जीव बना देगी, इस सदमे को सह पाना मेरे लिए असंभव हो रहा था.

यों, घर के लोगों, विशेषकर, परिवार की स्त्रियों की पैनी नजर से मैंने इस घटना को बड़ी चतुराई से छिपा लिया था, यह कहकर कि कुछ दिन के लिए, बच्चों को हवाबदली के लिए बाहर ले गई है, मैं कुछ समय बाद उसे लिवा लाऊंगा. इस तरह सब लोगों के मुंह बंद हो गए थे.

पर कभी न कभी तो बात खुल ही जाती, क्योंकि शोभा शहर छोड़ कर नहीं गई थी, वह उसी शहर के दूसरे सिरे पर, जान-पहचान की किसी स्त्री के साथ—जो स्वयं अपना घर-बार छोड़ आई थी—अपने बच्चों को लेकर रहने लगी थी. उसी महिला की मदद से उसे एक स्कूल में नौकरी भी मिल गई थी और उसी में शोभा ने अपने बेटे को भी दाखिल करवा दिया था. और छोटी बच्ची को उसी महिला की बूढ़ी मां की देख-रेख में घर पर ही छोड़ जाती थी.

ये सब विवरण, धीरे-धीरे, एक-एक करके हवा में उड़ते पुर्जों की भांति मैंने पकड़े थे और उन्हें जोड़-जोड़कर उसकी वास्तविक स्थिति के बारे में जानकारी हासिल की थी.

ऐसा नहीं भी होता यदि मैं अंदर ही अंदर बेचैन नहीं हो गया होता. शुरू-शुरू में तो, लगभग हफ्ता भर, मैं मुंह बाये आराम कुर्सी पर ही बैठा रहा था. हर बार, बैठे-बैठे दिवास्वप्न देखने लगता, पर देखते हुए ही सहसा मुझे चाबुक-सी पड़ती और मैं बिफरकर उठ बैठता. दिवास्वप्न वही आदमी देखता रह सकता है जिसका घर चल रहा हो, जो परजीवी हो, आत्मानुकंपा का रस लेने वाला, निरंतर अपने में खोया रहने वाला. मैं अभी पूरी तरह मरा नहीं था, शोभा के शब्दों में अधमरा ही था.

बहुत देख लिया, अब और नहीं सहन कर सकती. जिंदगी के बचे-खुचे साल घिसटकर जीना नहीं चाहती," और शोभा घर छोड़कर चल दी.

मैं उसकी खोज में तो नहीं निकला, पर मैं उसकी टोह जरूर लेने लगा था. कभी उसकी किसी सहेली का दरवाजा जा खटखटाता, कभी बच्चों के किसी स्कूल के बाहर जा खड़ा होता कि मुमकिन है शोभा ने बच्चे को इस स्कूल में डाल रखा हो. तभी एक दिन मैंने उन्हें देख ही लिया, पर देखा भी ऐसी स्थिति में कि कुछेक क्षण इधर से उधर हो जाते तो मैं जीवन भर अपना सिर धुनता रहता. उसी दिन मुझे इस बात की टोह मिली थी कि वह अमुक स्कूल में पढ़ाने लगी है और बेटा भी वहीं पर दाखिल कर लिया गया है.

स्कूल में अढ़ाई बजे छुट्टी होती थी और मैं वक्त से पहले ही, स्कूल के फाटक के निकट, जहां स्कूल के खेल-मैदान को रास्ता जाता था, एक टूटी हुई दीवार के पीछे खड़ा हो गया था.

मुझे ज्यादा इंतजार नहीं करना पड़ा. कुछ ही देर बाद, छुट्टी की घंटी बजते ही, ढेरों बच्चे फाटक के बाहर निकलने लगे थे, और भागते हुए सीधे सड़क की ओर जाने लगे थे, जहां सड़क के दोनों तरफ बस स्टैंड थे. पीठ पर थैले लटकाए, वे अपनी-अपनी बस पर चढ़ पाने के लिए, भागते हुए एक या दूसरे बस-स्टैंड की ओर जा रहे थे. खचाखच भरी बसें दोनों ओर से आ-जा रही थीं. बस-स्टॉप पर बस रुकती, कुछ लड़के लपककर चढ़ जाते, कुछ चढ़ ही रहे होते कि बस सरकने लगती. बच्चे बसों पर चढ़ने के अभ्यस्त हो गए जान पड़ते थे क्योंकि ज्यों ही बस चलने लगती, बच्चा हत्थी छोड़ देता था.

तभी मुझे जैसे बिजली छू गई. शोभा स्कूल के फाटक से निकलकर तेजी से सड़क की ओर बढ़ती आ रही थी. सदा की भांति सुव्यवस्थित, संयत, पर कुछ-कुछ हड़बड़ी में, उसके दाएं हाथ में बेटे का हाथ था. दोनों तेजी से सड़क की ओर बढ़ते जा रहे थे.

मैं दीवार के पीछे से निकल आया और उनके पीछे हो लिया. मैंने मन ही मन ठान ली थी कि मैं उसी बस-स्टॉप पर जाकर खड़ा हो जाऊंगा जिस स्टॉप से वे बस में चढ़ेंगे. उनसे मिलूंगा या नहीं मिलूंगा, उस दिन मिलूंगा, या बाद में मिलूंगा इसका फैसला मैंने नहीं किया था. मेरा मुख्य उद्देश्य उस घर को देखना था जहां वे रहते थे.

शोभा सड़क की ओर बढ़ती जा रही थी. पीछे-पीछे बेटा दौड़ता आ रहा था. वे सड़क-पार के बस स्टॉप की ओर बढ़ रहे थे. तभी बहुत से बच्चे एक साथ-शायद उन्होंने दूर से आती बस को देख लिया था—भागते हुए सड़क पार करने लगे थे.

''शोभा!'' मेरे मुंह से निकल गया था. उस समय शोभा सड़क के बीचोबीच जा पहुंची थी. उसने मेरी आवाज नहीं सुनी.

मेरी आवाज शोभा ने तो नहीं सुनी पर बेटे ने सुन ली थी. और तब वह सड़क के बीचोबीच पहुंच चुका था. आवाज सुनकर वह ठिठक गया था और घूमकर पीछे की ओर देखने लगा था, तभी एक ओर से दहाड़ती हुई बस आ रही थी. शोभा सड़क के दूसरे छोर तक जा पहुंची थी और इधर मैं सड़क के किनारे खड़ा था. शोभा अभी स्थिति को समझने की कोशिश ही कर रही थी कि मैं भाग खड़ा हुआ, और सड़क के बीचोबीच डोलते बच्चे तक पहुंच गया था और बच्चे को बांह से पकड़कर अपनी ओर खींच लिया था. तब तक शोभा भागती हुई सड़क के बीचोबीच आ गई थी. उधर ब्रेक लगने की आवाज भी सुनाई दी.

शोभा ने तब भी शायद मुझे नहीं देखा था. पर मेरी नजर क्षण भर के लिए उसके चेहरे पर पड़ गई थी. डर के मारे फैली हुई आंखें, किसी अप्रत्याशित आतंक का सामना करता जर्द पीला चेहरा, चेहरे पर घबराहट और तनाव, उसके चेहरे का भाव मैं बयान नहीं कर सकता.

मेरी सांस फूल रही थी, जब बच्चे को बांहों में भींचे मैंने सड़क पार की थी और फिर, उसके सिर पर हाथ फेरते हुए, उसकी मां के हवाले कर दिया था. शोभा के चेहरे का तनाव अभी भी पहले जैसा ही बना था. शायद मन ही मन वह बच्चे को दोष दे रही थी कि वह सड़क लांघते हुए, मुड़-मुड़कर पीछे क्यों देखने लगा था, मन ही मन मुझे भी दोष दे रही होगी कि मैं एक अपशकुन की तरह उसकी जिंदगी में फिर से क्यों पहुंच गया हूं. पर बेटा बच गया था, और मेरे हाथों बचा था और बेटा अभी भी सिर उठाए, उद्भ्रांत-सा मेरी ओर देखे जा रहा था, यह भी शोभा की नजर से बचा नहीं रह गया होगा.

मैं घर लौट आया. हमारे बीच कोई बात नहीं हुई. ''कैसी हो, शोभा?'' मैंने बुद-बुदाकर इतना भर पूछा था. ''देख रहे हो!'' कुछ क्षण बाद, उखड़ी सांस में उसका जवाब आया था. और उसने बच्चे का हाथ पकड़कर पीठ फेर ली थी और अपने बस-स्टॉप की ओर बढ़ने लगी थी.

मैं बहुत विचलित रहने लगा हूं. शोभा का चेहरा अब भी बार-बार आंखों के सामने घूमता है, पर उस चेहरे पर न तो पहले वाला सौम्य, स्निग्ध भाव रह गया था, न ही वह भाव जो उस दिन देखने को मिला था जब वह घर छोड़ गई थी, अलंघ्य दूरियों और परायेपन का भाव, और कांच जैसी भावनाशून्य आंखें. अब जब भी उसका चेहरा सामने आता तो तनाव भरा, भौंहें तनी हुई, जिंदगी से जूझने वाला, निपट अकेले व्यक्ति का चेहरा....

●●●

शंभुनाथ की कहानी यहीं पर आकर खत्म हो जाती है. मैं इस लंबी दास्तान को जैसे-तैसे पढ़ गया हूं. वह भी लगभग तीन महीने बाद जब वह इसे छोड़ गया था. संपादक को निश्चय ही यह बिखरी-बिखरी, अधूरी-सी कहानी लगी होगी कि उसने इसे लौटा दिया है. अलग-अलग स्थितियों में शोभा के चेहरे की छवि लेखक संभवतः प्रतीक के रूप में दिखाना चाहता है, किसी मानसिकता को दिखाने के लिए. पर मानसिकता उसकी अपनी या शोभा की?

शंभु ने कहा था कि अगर कहानी अच्छी नहीं लगे तो मैं उसे फाड़कर फेंक दूं. पर फाड़कर फेंकने को मेरा मन नहीं माना. यह कहानी भले ही न बन पाई हो पर उसमें कहीं-कहीं पर सच्चा दर्द छिपा है, कहीं-कहीं पर दिल की छटपटाहट भी. फाड़कर फेंक देने का मतलब होगा, उसे भी नकार देना. मैं यह पांडुलिपि शंभु को ही लौटा दूंगा और अपनी प्रतिक्रिया भी उसे साफ-साफ बता दूंगा.

मैं यह निश्चय कर ही पाया था कि खिड़की के बाहर नजर जाने पर मैं अवाक्-सा बाहर की ओर देखता रह गया हूं. सड़क पर शंभुनाथ चला जा रहा है. और वह अकेला नहीं है. शंभू ने अपने बेटे को कंधों पर उठा रखा है, और उसकी पत्नी शोभा, बनी-संवरी बेटी का हाथ अपने हाथ में लिये साथ-साथ चली जा रही है. कंधों पर बैठा बेटा कुछ बतिया रहा है और शोभा मुस्कराती हुई उसकी बातें सुने जा रही है. ■

टर्मिनल

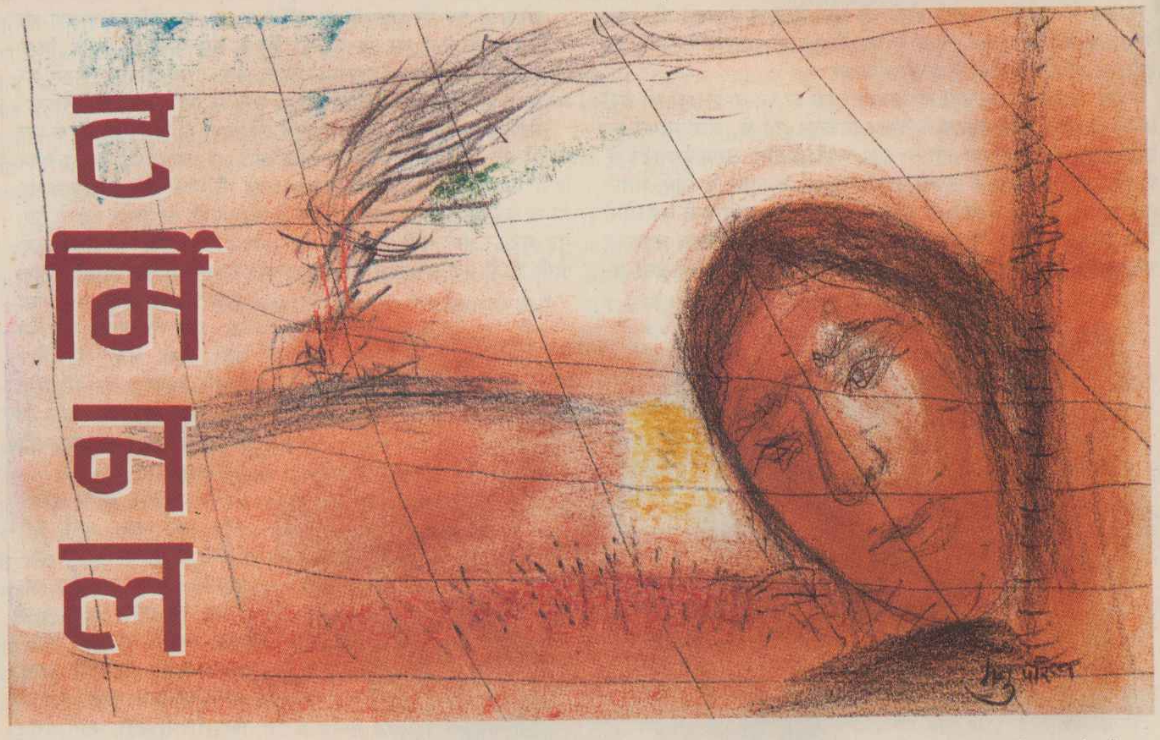

• निर्मल वर्मा
• चित्रः मनु पारेख

भविष्य को शायद आसानी से अनदेखा नहीं किया जा सकता है. लेकिन भविष्य को लेकर आशंकित मन वर्तमान में मानो टर्मिनल पर खड़ा होता है.

कहती कुछ नहीं थी, लेकिन उसे पता चल जाता था, वह अब उसके पास नहीं है. कहीं और चली गई है. वह उसका कंधा हिलाता, ''क्या तुम नाराज हो गई हो?'' वह हिलती जाती, जैसे मोम की गुड़िया हो. ऐसे नहीं, जब वे प्रेम करते थे. तब भी उसकी देह निढाल हो जाती थी, उसके साथ कुछ भी कर सकते थे, लेकिन तब वह उसमें मिल जाती थी. वह सिसकी भी लेती थी तो लगता था वह किसी तीसरी देह से बाहर आई है, पीड़ा और सुख से लिथड़ी हुई, जहां वर्तमान असीम था, जिस पर भविष्य की छाया भी नहीं फटकती थी. यहीं से शायद अपशगुन का कांटा उगने लगता था—भविष्य को क्या इतनी आसानी से अनदेखा किया जा सकता है? ''हमें पता चलाना चाहिए'', वह पूछती थी, ''वह कहां जाता है?'' वह उसे अपने में ढांप लेता. उसे लगता, वह क्या अंधेरे में देखती है, जो उसे नहीं दिखाई देता? ''तुम कहते हो, कुछ भी नहीं है. कुछ भी नहीं है, तो क्या वह कुछ भी नहीं होगा?'' वह गुस्से में उसे धकेल देती. छुओ, तो पत्थर-सी, नाराज, तपती-सी. ''हमेशा तुम्हारी हथेलियां तपती-सी जान पड़ती हैं'', वह कहता. लेकिन वह न हिलती, न डुलती, सिर मोड़े रहती. नहीं, अब कुछ नहीं होगा, उसे मालूम पड़ जाता. इन सात महीनों में उसने उसके मन के अनेक मौसम देखे थे, लेकिन सबसे सर्दीला और ठिठुरने वाला मौसम वह होता, जब वह उसका हाथ पकड़े बैठा रहता और वह कहीं और चली जाती.

दूसरे दिन जब वे दोबारा मिलते तो कुछ ऐसा लगता जैसे आंधी-पानी के बाद कोई नया दिन निकला हो. होस्टल के बाहर निकलते ही उसका चेहरा दमकने लगता. वह अपने बंधे बालों से स्कार्फ उतार देती और वे उसके कंधे पर बिखर जाते. शहर के उस हिस्से में, जहां नदी मुड़ती थी और सूरज डूबता था, उनका अपना एक बेंच एम्बेकमेंट पर खाली पड़ा रहता था. सामने एक स्केटिंग रिंक था, जहां से संगीत का उन्मादी स्वर और भागते हुए बच्चों की उज्ज्वल चीखें एक साथ सुनाई देती थीं. घर लौटने से पहले वे वहीं कुछ देर के लिए बैठ जाते थे. पिछले दिन के बीहड़ मौसम के बाद वही एक सूखी, साफ-सुथरी थांह होती थी, जहां आधी छूटी बात को नए सिरे से पकड़ा जा सकता था.

लेकिन वह चुप थी. वह उन औरतों को देख रही थी, जो अपनी-अपनी प्रैम में बच्चों को ढक-लपेटकर एक-दूसरे से बतियाते हुए सैर कर रही थीं. कभी-कभी कोई आदमी आराम से पाइप पीता हुआ उनके सामने से निकल जाता. पाइप का नीला धुंआ डूबती रोशनी में सांप-सा लहराता हुआ उड़ता जाता और जब वह बहुत दूर निकल जाता तो लड़की उसे देखकर मुस्कराने लगती, और उसके हाथ में एक छोटी-सी सिहरन दौड़ जाती, जैसे जो ठीक है वह उन बतियाती औरतों, प्रैम में सो रहे बच्चों और पाइप पीते हुए आदमी के साथ उनके सामने से निकल गया है. ''यह कोई बीमारी है?'' उसने लड़के की ओर देखा.

''कैसी बीमारी?''

''यही कि भरोसा आता है और पास से निकल जाता है?''

''हां, है तो'', उसने हंसकर कहा, ''पता चलाना चाहिए यह क्या है, कि तुम बार-बार संदेह करने लगती हो. संदेह का कोई इलाज है?''

''मां-बाप होते, तो उनके पास जाकर पूछ सकती थी. वे मना भी करते, कि तुमसे न मिलूं तो भी तसल्ली रहती कि उनका फैसला मेरे साथ है. फैसला ना में भी हो, तो अपने हां के सिरहाने रहता है—अब तो कुछ भी नहीं है.''

''नहीं है, तो इतना सालता क्यों है, सताता क्यों है, भींचता क्यों है? आखिर वह है क्या?''

''भरोसे की बात नहीं'', उसने अपने दिल के गोमड़ में झांककर कहा, ''हमें कहीं-न-कहीं से पता चलाना होगा कि यह ठीक है, जो हमारे साथ हो रहा है?''

''कौन बताएगा यह?'' वह झींककर उससे पूछता, ''किसके पास जाओगी यह पता चलाने?''

वह अपना मुंह उसके पास ले आती, उसके बिना शेव किए गालों पर उसे रख देती, "मुझे मालूम है, कहां जाना है. मेरे साथ चलोगे?"

"फिर वही पागलपन?" वह सिर मोड़ता, तो उसके अचकचाए होंठ उसके गालों पर सिहरते हुए एक गीला-सा धब्बा छोड़ जाते, "मैं कहीं नहीं जाऊंगा", वह अपनी रुआंसी ज़िद की रौ में अपने को दोहराने लगता जैसे मोटर का पहिया दलदल में फंस जाता है और एक ही जगह घूमता रहता है, "मुझे कहीं नहीं जाना है."

"क्यों नहीं जाना है?"

"मैं तुमसे पहले भी कह चुका हूं. लेकिन तुम कुछ भी नहीं सुनती."

"क्या कह चुके हो, एक बार और कहो, मैं सुनती नहीं, तो याद कैसे रखूंगी?"

"मुझे ऐसी चीजों में कोई विश्वास नहीं है. तुम्हारा बहुत हठ है तो अकेली चली जाओ. बस!"

इस 'बस' के आगे उसका बस नहीं चलता था, लेकिन वह डिगती नहीं थी, सिर्फ थोड़ा-सा पीछे हट जाती थी. "तुम्हें किस पर विश्वास है?"

मन में आया उससे कहे, किसी पर नहीं. जब तुमसे मिला था तो सोचा भी नहीं था कि जो तुम्हारे और मेरे बीच हुआ है वह कोई दुर्घटना है, जिसके लिए किसी गवाह की जरूरत पड़ेगी. तुम्हें मालूम नहीं, जो मेरा है वह सब कुछ तुममें जज्ब हो जाता है. शहर के अंधेरे में सिर्फ अपनी धुकधुकी ही तुम्हारी देह में टिमटिमाती जान पड़ती है—इसके परे कुछ भी दिखाई नहीं देता. तुम्हें होस्टल में छोड़कर जब मैं अपने कमरे में लौटता हूं तो मुझे अपना साथ भी भारी पड़ता है. जल्दी से जल्दी कपड़े उतार कर अपने से छुटकारा पाने की इच्छा होती है. अपने को तब तक भूले रहने की इच्छा होती है, जब तक अगले दिन तुम दोबारा मुझे अपने होने की याद नहीं दिलाती...क्या यह कोई पाप है जिसे किसी दूसरे के सामने धोना होगा?

लेकिन वह कहता नहीं था. कुछ भी कहने का मतलब होता लड़की के संदेहों को नाम देना, उन्हें पाप के घेरे में लाना, जिससे भयभीत होकर वह कुछ भी कर सकती थी. जैसे नींद में चलता हुआ आदमी छत की छोर पर जाकर स्वयं तो आखिरी लम्हे में मुड़ जाता है, लेकिन अगर कोई दूसरा उसे चेतावनी दे तो वह डर कर नीचे नहीं कूद जाएगा इसका कोई भरोसा नहीं. इसलिए ऐसे लम्हों में वह उसके सामने चुप रहता था. लेकिन अपने साथ बोलता रहता था जैसे अब का बोला हुआ वह कभी भविष्य में जरूर सुन सकेगी. यही तो वह चाहती थी कि जो भविष्य में सुनाई देगा उसे अभी सुन सके. यह उसे अपशगुन जान पड़ता था, एक काले जादू-सा, जिसे वह भुला देना चाहता था...

ऐसे लम्हों में वह उसके सामने चुप रहता था. लेकिन अपने साथ बोलता रहता था जैसे अब का बोला हुआ वह कभी भविष्य में जरूर सुन सकेगी. यही तो वह चाहती थी कि जो भविष्य में सुनाई देगा उसे अभी सुन सके. यह उसे अपशगुन जान पड़ता...

"अकेली?" लड़की ने फफकती आंखों से उसे देखा, "ठीक है मैं अकेली जाऊंगी. तुम्हें मेरे साथ आने की जरूरत नहीं."

वह बेंच से खड़ी हो जाती है अपने बालों पर स्कार्फ बांध लेती है. अपने कपड़े झाड़ती है, बेंच को देखती है कि वहां कुछ छूट तो नहीं गया—सिवा उसके जो वहां बैठा था. उसे उसकी परवाह नहीं. वह अब एम्बेकमेंट से उतर सड़क पर आ जाती है. वह अब चलने लगती है. वह पीछे मुड़कर भी नहीं देखती जहां नदी का पानी अंधेरे में छिप गया है और इस पर सिर्फ शहर की रोशनियां चमक रही हैं.

वह कुछ क्षणों तक जड़-सा बैठा रहता है, फिर भड़भड़ाया हुआ उसके पीछे भागने लगता है. उसका हाथ पकड़ता है जो हल्के-से बुखार में तपता रहता है. उसे डर था कि वह झिटककर अलग कर देगी. वह ऐसा नहीं करती लेकिन उसे पकड़ती भी नहीं. उसका हाथ एक गरम लेकिन निर्जीव दस्ताने की तरह उसके हाथ में पड़ा रहता है. उन्हें सड़क पर न औरतें दिखाई देती हैं, न बच्चे, न दुकानें, न शराबघर. सब कुछ किसी अंधेरी सुरंग से गुजरते जाते हैं, शहर के एक सिरे से दूसरे तक और जब वे बाहर आते हैं, तो होस्टल की इमारत दिखाई देती है, जहां हर मंजिल पर अब भी रोशनियां जल रही हैं. वह वहीं तीसरी मंजिल के एक कमरे में रहती थी. दिन का समय होता तो वह उसके गुस्से को लांघता हुआ भी उसके साथ हो लेता, लेकिन रात की उस निष्क्रिय घड़ी में सिर्फ होस्टल के पोर्च तक जाकर ही लौटा जा सकता था, वहीं अपने को रोक सकता था. वह भी रुक जाती है. "अब तुम जाओ", उसने बिना उसकी ओर देखे कहा, जैसे रात से बात कर रही हो.

"कल तो मिलेंगे..."

"यह तो तुम पर है."

"मुझ पर कैसे?" उसे खुशी हुई कि अंधेरे पोर्च में वह उसका चेहरा नहीं देख सकती.

"फिर मेरे साथ आओगे?" इस बार लड़की के स्वर में अनुनय नहीं, निर्णय था—ठंडा, कठोर, अविचलित, जिसे टाला नहीं जा सकता था.

"कहां चलना होगा?"

"इसकी चिंता मत करो..." लड़की का स्वर थोड़ा-सा पिघला, फिर उमड़-सा आया, "म्यूज़ियम के ट्राम स्टैंड पर आ जाना, हम साथ चलेंगे. हम उनके यहां कभी भी जा सकते हैं, लेकिन शाम को जाना बेहतर होगा, तब बहुत कम लोग आते हैं और उन्हें भी कोई हड़बड़ी नहीं रहेगी....अच्छा, बस मैं चलती हूं", वह जल्दी में थी कि कहीं वह फिर अपनी ज़िद में न अड़ जाए. लेकिन जब वह दरवाजा खोलकर लिफ्ट तक चली गई और बटन दबाया, तब उसने पीछे देखा, वहीं पोर्च के अंधेरे में: वह फिर लौटी, दरवाजा खोलकर फिर उसके पास आई, देखती रही, जहां उसका चेहरा था, आंखें थीं. "सब ठीक होगा", उसने अपने दोनों हाथों से उसके चेहरे को सहलाया, "तुम चिंता मत करना," वह मुस्करायी, "सोने से पहले किसी के बारे में कुछ न सोचना, सिवा मेरे!" अचानक नीचे लिफ्ट के आने की आवाज सुनाई दी, और वह फिर मुड़ गई, दरवाजा खुलते-खुलते भीतर चली गई. तीसरी मंजिल के कमरे में जहां वह रहती थी, वहां अब भी अंधेरा था.

●●●

वह अपने घर की ओर मुड़ गया. उसका घर पुराने शहर में था, जहां पुल पार करके जाना होता था. वह पुल भी बहुत पुराना था. कहते हैं, उसे एक सम्राट ने हजारों अंडों की ज़रदी को मिट्टी-रेता में घोलकर बनवाया था... तभी वह तीन सौ साल से वैसा ही था, जैसा पहले दिन, जब उस पर साम्राज्ञी पहली बार अपनी घोड़ागाड़ी में बैठकर गुजरी थीं. एक बार जब वह अपने होस्टल से निकलकर उसके साथ उसके घर जा रही थी, तो उसने उसे बताया कि चांदनी रात में जब शहर में सन्नाटा हो और नदी शांत हो, तो उस पुल पर गाड़ी के पहियों की आवाज सुनाई देती है. विवाह से पहले सम्राट ने, जब वह युवराज थे, रानी से यह कहने की जगह कि मैं तुमसे प्रेम करता हूं, यह कहा था कि अब तक मैंने सारे पुल अकेले में पार किए हैं, मेरी बहुत इच्छा है कि अब जो पुल बनें उन पर मैं तुम्हारे साथ चलकर अपनी जिंदगी गुजार सकूं. जानते हो, साम्राज्ञी ने क्या कहा? उसने कहा, पुल से रास्ता तो पार हो सकता है, उस पर घर नहीं बन सकते...पता नहीं, वह क्या कहना चाहती थी? बरसों बाद वह उसी पुल से नदी में कूद गई थी जो अब भी वैसे ही बहती थी, जैसी हमेशा से.

●●●

दूसरे दिन जब वह ट्राम स्टैंड पर पहुंची तो वह पहले से ही वहां खड़ा था. वह ठंड में ठिठुर रहा है. हालांकि सर्दियां अभी काफी दूर थीं. यह तय करना भी मुश्किल था कि वह ठंड से ही ठिठुर रहा है, क्योंकि छाती के ऊपर, गले के आसपास, चेहरे को छूती-सी लपटें लग रही थीं, जबकि

गर्मियां बीत चुकी थीं. सूरज भी बादलों में छिपा था सुबह की बारिश में सिर्फ ट्राम की पटरियां चमक रही थीं. पिछली रात की बातों से दोनों ही कुछ इतने संकुचित थे कि जब ट्राम आई तो दोनों को जैसे छुटकारा-सा मिला और वे जल्दी-जल्दी बिना एक-दूसरे से कुछ कहे भीतर चले आए.

भीतर बहुत कम लोग थे और वे भी सिकुड़े-से बैठे थे, अपनी-अपनी भीगी बरसातियों के भीतर. उन्होंने अपने पैर कुछ ऊपर उठा रखे थे ताकि उस दलदली कीचड़ से बच सकें, जो पिछले यात्रियों के बूट-जूते पीछे छोड़ गए थे. वे एक-दूसरे को न देखकर बाहर देखने लगे, किंतु बाहर कुछ भी दिखाई नहीं देता था. ट्राम की खिड़कियों पर इतनी धूल और गर्द जमा थी कि वे फुटपाथ के पेड़, बिजली के लैंपपोस्ट और सड़क पर चलते हुए लोग किसी पुरानी फिल्म पर फिसलते हुए धब्बे जैसे दिखाई देते थे. हर स्टैंड पर कुछ यात्री उतर जाते थे. ट्राम कंडक्टर जब रस्सी खींच कर घंटी बजाता था, तो ऊंघती हुई ट्राम हिचकोला खाकर फिर सरकने लगती थी.

टिकट कडंक्टर के आने पर लड़की ने जल्दी से अपना बैग खोला और दो टिकट ले लिये. जब वह चला गया, तो भी उसने बैग बंद नहीं किया, उसमें से एक ब्रश निकाला और अपने बालों को संवारने लगी. शीशे में अपना चेहरा देखा, पहले आदतन, फिर जब वह सचमुच दिखाई दिया, तो कुछ उत्सुकता से, जैसे वहां वह लड़का भी है जो आईने में न होकर कहीं बाहर बैठा था, लेकिन जिसका अक्स उसकी ओर ताक रहा था, वह मुस्कराने लगी, तो लड़का भी मुस्कराने लगा, शीशे में एक दूसरे की छाया पर और जब उसने आईने को छोड़कर लड़के को देखा जहां वह अपने अक्स को छोड़कर असल में बैठा था, तो वह मुस्करा नहीं रहा था. वह चुप बैठा था. उसने घबराकर उसका हाथ लिया, मुट्ठी में भींच लिया, कस लिया, और जब लड़के ने सी-सी करते, कराहते हुए अपना हाथ खींचा, तो उस पर नाखून के निशान खिंच गए, खून की बुंदकियां ऊपर निकल आईं. लड़की ने जल्दी से रुमाल निकालकर उन्हें पोंछ दिया...दोनों हंसने लगे, पिछली रात को धकेलकर एक-दूसरे से सटकर बैठ गए. लड़की ने अपना सिर उसके कंधे पर टिका लिया और आंखें मूंद लीं.

वह खिड़की के बाहर देखने लगा, लड़की की गरम सांसें उसके गालों को सहलाने लगीं. कुछ भी नहीं होगा, उसने सोचा, हम जाएंगे और शाम होने तक लौट आएंगे. उसकी जेब में 'मैजिक फ्लूट' के दो टिकट थे, जो उसने बहुत दिन पहले एडवांस में लिये थे. वह उसे आश्चर्य में डालना चाहता था. यह वही ओपेरा था, जो ठीक आज के दिन सात महीने पहले उन्होंने देखा था, जब वे एक-दूसरे को जानते भी नहीं थे. अब तो लगता है, जैसे यह कभी बहुत पहले हुआ था. वह बहुत जल्दी पहुंच गया था ताकि टिकट आसानी से मिल सके. लेकिन जब वह पहुंचा तो बुकिंग ऑफिस की खिड़की बंद हो चुकी थी और क्यू छंटने लगी थी. वह अजीब निराशा में खड़ा रहा. वह इस दिन की बहुत दिनों से प्रतीक्षा कर रहा था और अब विश्वास नहीं हो रहा था कि वह सूखा का सूखा खाली हाथ घर लौट जाएगा. उसे अपनी टाई और काला सूट भी कुछ हास्यास्पद-से जान पड़ रहे थे, जो वह खास उन दिनों पहनता था जब किसी ओपेरा या कन्सर्ट में जाना होता था. वह खिसियाना-सा होकर थियेटर के बाहर लगे बोर्ड पर आने वाले दिनों का प्रोग्राम देखने लगा ताकि लोग यह न समझें कि वह वहां यूं ही खड़ा है. तभी उसे अपने पीछे एक हल्की-सी आवाज सुनाई दी, "क्या आपको टिकट चाहिए, मेरे पास एक एक्स्ट्रा है..." उसने पीछे मुड़कर देखा तो वह खड़ी थी, अपनी लंबी काली पोशाक में जिसमें वह काफी लंबी और उम्र में छोटी जान पड़ रही थी जबकि आने वाले दिनों में, जब वह उसे जानने लगा था, वह क़द में छोटी और उम्र में बड़ी दिखाई देती थी. उसने अपनी मुट्ठी खोल दी जिसमें न जाने वे दो टिकट कब से तुड़-मुड़े पड़े थे, उसकी हथेली की रेखाओं पर एक दूसरे से चिपके हुए, जिन्हें एक-दूसरे से अलग करने में भी काफी समय लगा था और जब वे भीतर एक दूसरे के साथ बैठे, तो उसे पैसों का खयाल आया था, जिन्हें वह उसे देना भूल गया था और जब उसे याद आया, तब तक काफी देर हो चुकी थी.

वह हथेली अब उसके हाथ में थी—गरम और नरम, हल्के-से बुखार में तपती हुई. और तब उसने ट्राम की खिड़की से बाहर बारिश में भीगे धुंधले शहर को देखते हुए सोचा कि वह जो कुछ करती है, कहीं इस बुखार से तो बाहर नहीं आता, जहां होने वाली चीजों की आहट पहले से ही अपनी नाड़ी के स्पंदन, अपने खून के बहाव, अपनी नसों की फड़कन में सुनाई देने लगती है? बाद के दिनों में, जब वे एक दूसरे की देहों को पढ़ने लगे, उसने एक दिन पूछा कि "वह दूसरा टिकट किसके लिए था, जो उस शाम उसने मोत्सार्ट के ओपेरा के लिए खरीदा था?" "तुम्हारे लिए", वह हंसने लगी. "नहीं, सच बताओ, किसके इंतजार में तुम खड़ी थीं?" वह चुप रही, कुछ भी नहीं बोली, हंसी भी नहीं, "कुछ भी नहीं...मैं तुम्हें इसलिए नहीं बताना चाहती कि तुम मेरा विश्वास नहीं करोगे." वह विचलित-सा हो गया, "नहीं विश्वास की बात नहीं है", उसने कहा, "तुम मुझे बताना नहीं चाहतीं कि तुम किसकी प्रतीक्षा कर रही थीं..." "तुम्हारी," उसने कहा. "लेकिन मैं तो तुम्हें जानता भी नहीं था." "इसीलिए मैं तुम्हें बताना नहीं चाहती थी. मेरे

साथ ऐसा कई बार होता है. मुझे पता चल जाता है कि कुछ होने वाला है, जैसे कोई दूर से सिग्नल देता हो. वह सिर्फ एक बार दिखाई देता है, और मुझे लगता है, वह कुछ कह रहा है और मुझे उसके लिए तैयार रहना चाहिए. उस दिन मैं जब टिकट लेने गई, तो क्यू में मैं सबसे आगे थी. जब खिड़की से आवाज आई—कितने? तो मैंने कहा—दो. और जब मैं टिकट लेकर क्यू से बाहर आई, तो कुछ समझ में नहीं आया कि यह दूसरा टिकट मैंने क्यों लिया है, और तब मुझे तुम दिखाई दिए."

वह टर्मिनल था. ट्राम इसके आगे नहीं जाती थी. पीछे मुड़कर उसी दिशा में लौट जाती थी, जहां शहर था, जो दोपहर की दूधिया धुंध में डूबा था. ट्राम से नीचे उतरे, तो कुछ देर तक पता नहीं चला, वे कहां हैं...वह सिर्फ लड़की का पीछा कर सकता था, जो तेज कदमों से आगे-आगे जा रही थी. कुछ दूर जाने के बाद जब वह मेन रोड छोड़कर गली में मुड़ी तो उसे लगा, वह यहां पहले भी आ चुकी है.

वह एक संकरी गली थी. दोनों तरफ के मकान एक-दूसरे पर झुके जान

पड़ते थे, जिसके बीच आकाश अच्छे दिनों में कभी नीला और उजला रहा होगा, लेकिन अब सिर्फ मैली चादर-सा ढंका था, मकानों के धुंए और धुंध में लिपटा हुआ. हर मोड़ पर वह रुक जाती, पीछे मुड़कर देखने लगती और जब वह उसके पास पहुंच जाता तो फिर चलने लगती. बीच-बीच में कुछ पुराने मकानों को ढहा दिया गया था. और उनकी उधड़ी ईंटें और लोहे की छड़ें और गारे-मिट्टी के ढेर मुर्दों के कंकालों-से दिखाई देते थे. वह जिस तरह मलबे के ढूहों से अपने को बचाती हुई सधे कदमों से चली जा रही थी, लगता था वह शहर के किसी अनजाने हिस्से में नहीं, अपने घर की तरफ जा रही है. लेकिन तभी उसके पैर कुछ अनिश्चित-से हो आए. वह एक दरवाजे के आगे कुछ संशय में खड़ी हो गई और जब वह पास आ गया, तो वह उसकी ओर कुछ ऐसी निगाहों से देखने लगी जिसमें कुछ पाने का प्रलोभन कुछ खोने के आतंक में घुला था, लेकिन संशय का वह क्षण उगा ही था कि उसने उसे पैरों तले कुचल डाला और धीरे से दरवाजा खटखटाया,

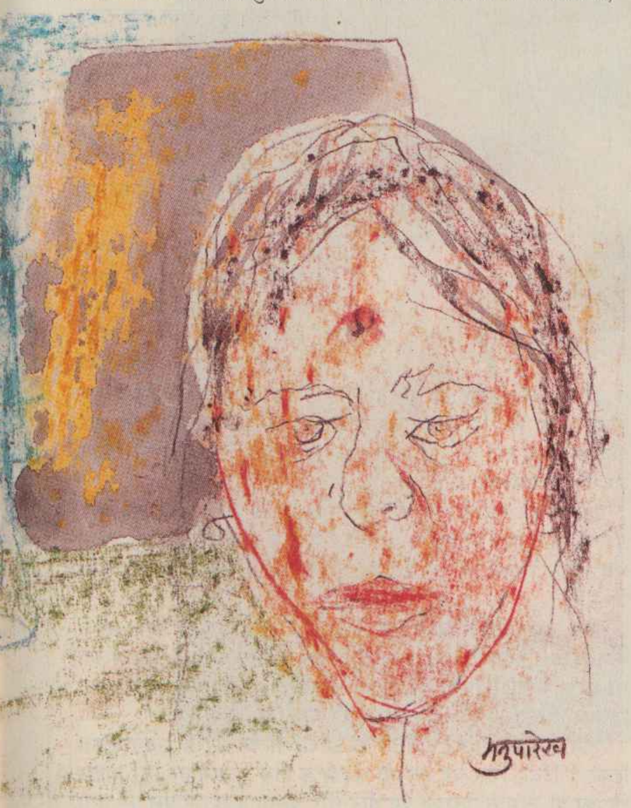

लेकिन खुलने की प्रतीक्षा नहीं की. एक हाथ से उसका हाथ पकड़ा और लगभग घसीटते हुए उसे दरवाजे से सटा दिया—वह अपने आप खुलने लगा, एक अजीब-सी तीखी रिरियाहट में चीखता हुआ, पता नहीं वह कितनी देर तक इसी तरह चीखता रहता, अगर वह उसे फटाक से बंद न कर देती.

घर से पहले उसे घर की गंध दिखाई दी, जैसे वह हर जगह हो, चारों कोनों से उनकी ओर लपकती हुई, कुछ वैसी ही कसैली, गुनगुनी और बासी, जो संदूक में रखे दीमक लगे कपड़ों या जुओं से भरे अनधुले बालों से आती है, लेकिन वह बुरी नहीं थी; उसमें एक बियाबान-सा बुलावा था, भीतर आने वाले को बाहर की रोशनी और छलना से बचाता हुआ, सब तरफ से काट कर अपनी तरफ बुलाता हुआ. लड़की बेताब इशारे से उसे भीतर न बुलाती, तो शायद वह यह भी भूल जाता कि वे यहां किसलिए आए थे.

क्या उसे मालूम था? यह नहीं मालूम था कि उसकी चाहना का रास्ता इतनी टेढ़ी-मेढ़ी गलियों से होता हुआ उसे यहां ले आएगा. आंगन के परे टाट के परदे लगे थे, जिन पर एक मद्धिम-सी रोशनी पड़ रही थी. बीच में आबनूस जैसी काली एक चौकी रखी थी, जिसके दोनों सिरों पर दो मोमबत्तियां जल रही थीं. "पास आओ," दूर से आवाज आई, वह पास आया, तो चौकी के पीछे एक लंबा, सफेद चेहरा दिखाई दिया, कंधे पर दोनों तरफ गिरते हुए बालों के बीच उठा हुआ, उसकी ओर उठा हुआ, जहां वह खड़ा था और लड़की कहीं न थी.

औरत ने जैसे उसके डर को भांप लिया, सिर हिलाया, "वह अभी आती है, तुम बैठो! यहां नहीं", वह मुस्कराई, "यहां मेरे पास..." चौकी के बाईं तरफ जो लाल मखमली कुशन रखा था, वह अपने आगे कर दिया. और वह बैठ गया, तो उसे उसी आवाज की नीची सतह पर दूसरी आवाज सुनाई दी, "तुम वैसे नहीं दिखते जैसा मैंने सोचा था." वह सिर झुकाए बैठा रहा.

"क्या यहां आते हुए डर लगता था?"

उसने सिर उठाया, मोमबत्तियों के आलोक में स्त्री का चेहरा संगमरमर की प्रतिमा-सा दिखाई देता था.

"मुझे मालूम नहीं था," उसने कहा.

"यह अच्छा हुआ कि तुम आ गए," उसका स्वर बहुत कोमल-सा हो आया, "जानते हो, सबसे पहली लंबी यात्रा कहां से शुरू होती है? जब तुम पहला कदम लेते हो!" वह पहली बार हंसी थी, बिना कोई आवाज किए—न स्नेही, न सूखी. सब कुछ जानती हुई और कुछ न छिपाती हुई—"मेरी तरफ देखो," उसने कहा और जब उसने साहस बटोरकर सीधी आंखें औरत पर टिका दीं, तो उसे लगा, शायद ही उसने अपने जीवन में इतना अधिक जिया हुआ संतप्त और सुंदर चेहरा देखा हो. वह कुछ और आगे झुक आया ताकि वह स्त्री के चेहरे का दूसरा हिस्सा देख सके, जो मोमबत्तियों के आलोक के पीछे अंधेरे में छिपा था—और तब उसे सहसा लड़की दिखाई दी, जैसे वह अचानक दीवार पर फड़फड़ाती मोमबत्तियों की छाया से निकलकर बाहर आई हो और चुपचाप चौकी के दूसरी ओर लगे कुशन पर बैठ गई हो. उसे देखते ही खुशी का बवंडर उसके भीतर उठने लगा. वह अपने को नहीं दबा सका और उसे कुछ कहने के लिए आगे झुका ही था कि उसे अपने पर हल्का-सा स्पर्श महसूस हुआ. औरत ने अपना हाथ उसके सिर पर रखा था, शांत और ठंडा, मृत्यु की तरह; एक काले ढक्कन की तरह उसके भीतर को ढकता हुआ.

"क्या तुम इस लड़के को चाहती हो?" औरत की आंखें लड़की पर टिक गईं. लड़की ने हां में सिर हिलाया. औरत की आंखें अब लड़के पर उठीं. "और तुम?" वह कुछ देर प्रतीक्षा करती रही, फिर फूत्कार-सी उन पर उठी. हां कहे या ना, वह किससे पूछ रही है, और तभी उसे लगा, चौकी के नीचे से लड़की का हाथ चोरों की तरह उसके हाथ के पास चला आया है, एक अजीब अकुलाहट में फुसलाता हुआ उसकी अंगुलियों को चींप रहा है, मना रहा है कि उसे कुछ कहना चाहिए. हां या ना के बीच कोई क्या चाह सकता है, जो कहा जा सके? "जी हां," उसने कहा.

"क्या नाम है तुम्हारा?"

"नाम?" वह उसे जबान पर लाया ही था कि औरत ने उसे उड़ते हुए पतंगे की तरह पकड़कर अपने हाथ में ले लिया—पांच अंगूठियों के कारागृह में, जो उसकी अंगुलियों पर चमचमा रही थीं. और तब उसकी देह में एक झुरझुरी-सी फैलने लगी. कुछ देर पहले जो हाथ उसे अपने सिर पर मृत्यु का स्पर्श जान पड़ा था, वह अंगूठी का हीरा था, जो उसकी बिचली अंगुली पर बैठा हुआ हंस रहा था. उसी हाथ से स्त्री ने जब कागज के दो टुकड़ों पर उनके नाम लिखे, तो लड़की का नाम नहीं पूछा था, जो शायद उसे पहले से ही मालूम था. दोनों नामों को पुड़ियों में मोड़ दिया, मुट्ठी में दबाकर हिलाया और फिर उन्हें करीने से चौकी पर रख दिया... कुछ देर दोनों नाम कागज के भीतर बंद रहे, फिर वही हाथ उन्हें एक-एक करके मोमबत्ती की लौ के पास लाया—और वे धीरे-धीरे खुलने लगे. अंगूठियों के बीच लौ की लपलपाती जिह्वा के नीच दो झुलसे हुए कागज के कंकाल, जिन पर उन दो नामों के अक्षर चमक रहे थे. वह कुछ देर उन्हें घूरती रही, फिर अचानक ताली बजाई, और दोनों हथेलियां जले हुए पुर्जों से काली पड़ गईं और उनकी राख धीरे-धीरे उसकी अंगुलियों के बीच से नीचे झरने लगी... औरत

ने सिर हिलाया जैसे उसने कुछ देखा हो, जो कहीं नियति से भी परे हो, जन्म से पहले का अंधड़, जब वे दोनों कहीं न थे और वह अकेली थी. उसने सिर हिलाया, गहरी निराशा में, एक बार, दो बार, तीन बार—एक पागल-सा पेंडुलम जो किसी धागे की धुरी पर हिलता जा रहा था, एक मिरगी के मरीज की तरह, जिसे रोकने के लिए लड़की ने चौकी पर रखे उसके हाथों पर अपना सिर रख दिया—और तब स्त्री ने आंखें खोल दीं, वैसी ही शांत और निश्चल, जैसी वे हमेशा से थीं.

वह लड़की के झूलते बालों को अपने सफेद और संगमरमरी हाथों से सहला रही थी. "पगली, तुम्हें तो खुश होना चाहिए...तुम बड़ी विपत्ति से बच गईं. और यह भी...जो तुम्हारे साथ आया है."

लड़की ने चौकी से सिर उठाया, और अपनी उथली, अबूझी आंखों से उसे देखा, "कैसी विपत्ति? क्या हम साथ नहीं रहेंगे?"

स्त्री चुप बैठी रही. पहली बार उसके उदासीन और निस्संग चेहरे पर क्लेश की कालिमा आई थी, जैसे वह उसे रोकना चाहती थी जो दीवार की छायाओं से उतरकर सिर पर आ खड़ा हुआ था. "मैं कह नहीं सकती, सिर्फ दिखा सकती हूं—देखोगी?"

लड़की का हाथ चौकी के नीचे उसके हाथ में थमा, थोड़ा-सा कांपा, फिर स्थिर हो गया...शायद यह क्षण था, जब उन्हें चले जाना चाहिए था क्योंकि उसके परे उनके प्रेम का भविष्य नहीं, उसे पाने का प्रलोभन छिपा था. शायद स्त्री भी यही चाहती थी, किंतु यह उनसे कह नहीं सकती थी, न उनकी आकांक्षा को रोक सकती थी. वह उन्हें जिस प्रदेश में ले आई थी, वहां उसका कोई दखल नहीं था. वहां वह स्वयं उसकी दर्शक थी, जो वह उन्हें दिखाना चाहती थी.

लड़की को लगा जिस हाथ पर उसने सिर टिकाया था, वह धीरे-धीरे नीचे से सरककर बाहर आ गया है. औरत का हाथ अब चौकी पर था, वह अब कुहनी पर टिका हुआ, सांप के फन की तरह खुल गया था जिस पर अंगूठी का नीला नग चमचमा रहा था. वह उसे धीरे से वहां ले आई जहां लड़की की आंख थी, मछली की आंख की तरह स्थिर, जो पानी के नीचे से ऊपर के सूरज को देखती है, हीरे पर बिछी हुई, "क्या तुम यही देखना चाहती थीं?"

उसके बाद जो हुआ, वह लड़के को बहुत याद करने पर भी याद नहीं आता. उसे लड़की की चीख सुनाई दी थी, चाकू की धार-सी महीन और चमकीली. मोमबत्तियां एकबारगी फड़फड़ा कर बुझ गईं और वह छाया जो अब तक दीवार पर डोल रही थी, अब वहां आकर बैठ गई थी जहां स्त्री की देह थी. फिर कुछ भी दिखाई नहीं दिया, सिवा उस चीख के, जो अब भी अंधेरे में कौंध रही थी. "अब बताओ, जो देखा है उसके बाद भी?"

वह अपने को नहीं रोक सका, इच्छा हुई कि लपककर स्त्री का गला घोंट दे—इसके बजाय उसने लड़की का हाथ पकड़कर पास खींच लिया, "चलो, यहां से चलो." इस बार लड़की ने कोई विरोध नहीं किया, वह उसके साथ घिसटती गई जैसे काठ की बनी हो, किंतु जब वे टाट के परदों से बाहर आए तो वह रुक गई, उसके पांव दरवाजे की देहरी पर ठिठक गए. उसने लड़के को अपने पास खींचा और उसके मुंह पर अपना मुंह रख दिया, पागलों-सी उसे चूमने लगी—एक-एक चुंबन मुंह के अंधेरे खोखल में जबरन और दांतों के बीच बहते हुए भीतर के अतल कुएं में डूबने लगे.

●●●

यह सिर्फ संयोग ही रहा होगा कि वे लौटते हुए उसी ट्राम में बैठे थे जिसमें वे आए थे. टिकट कंडक्टर उन्हें देखकर मुस्करा दिया. वह उन्हें देखते ही पहचान गया कि ये वे ही हैं जो दोपहर को उसके शहर के अंतिम टर्मिनल पर उतरे थे.

सब कुछ वैसा ही था. वे उसी सीट पर बैठ गए थे, जो उनके जाने के बाद शायद खाली पड़ी रही होगी. अंतर था, तो इतना ही कि वे अब कुछ अलग-अलग बैठे थे और बाहर दोपहर की दूधिया धुंध के बजाय शाम की उजली धूप निकल आई थी, बारिश के बाद की धूप जिसमें शहर की छतें और बुर्जियां चमक रही थीं. कोई नहीं कह सकता कि वे किसी पुराने घर के अंधेरे और मोमबत्तियों की छायाओं से निकल कर आ रहे हैं.

होस्टल के आने से पहले स्टेशन पर लड़की ने पहली बार उसे देखा, धीरे से उसके हाथ को छुआ, उसके हाथ में ट्राम का टिकट दे दिया, "तुम अब मुझसे मिलने की कोशिश मत करना. भूल जाना, यह सब हुआ था..."

जब उसका स्टेशन आया, तो वह अपना स्कार्फ, अपना बैग, अपना टिकट लेकर उतर गई...वह काफी दूर तक ट्राम की लाइन के साथ चलती गई और फिर ईंटों वाली एक इमारत में चली गई, जो उसका होस्टल था, जिसकी तीसरी मंजिल के कमरे में वह रहती थी.

ट्राम जब अपने दूसरे टर्मिनल पर ठहरी, तो कंडक्टर को उसने अपना टिकट दे दिया, जिस पर अब भी लड़की के हाथ का पसीना और बुखार चिपका था. ट्राम से उतरकर वह धीरे-धीरे चलता हुआ उस पुल पर चला आया, जिसे हर शाम होस्टल से लौटते समय घर जाने के लिए पार करना पड़ता था. वह बहुत पुराना पुल था और उसके नीचे नदी पर डूबते सूरज की सुर्खी फैली थी...अचानक उसका हाथ जेब में गया, जहां ओपेरा के दो टिकट रखे थे. उन्हें छूते हुए उसे लगा कि वह कोई दूसरा समय था, जहां वह पहली बार लड़की से मिला था. वह चलने लगा और जब पुल के अंतिम छोर पर पहुंच गया, तो फिर खड़ा हो गया. पुल के नीचे शांत नदी को बहता देखता रहा, जिसका एक हिस्सा अंधेरे में छिप गया था दूसरा अब भी धूप में चमक रहा था. और तब उसे धूप और अंधेरे के झिलमिले पर एक चेहरा दिखाई दिया पानी के भीतर से ऊपर देखता हुआ, उसकी ओर, जहां वह खड़ा था, और तब उसे देखते हुए वह निश्चय नहीं कर सका कि वह साम्राज्ञी का चेहरा है, जो तीन सौ साल पहले पुल के इसी छोर से नदी में डूबी थी या उस स्त्री का जिसे मोमबत्तियों के बीच उसने तीन घंटे पहले देखा था, जो उन्हें नीचे से उबारकर ऊपर ले आई थी. ■

RANGOLI

गये सुबह की नई कहानी

कृष्ण : गहराता नीला आसमान। कुछ कहना चाहता है। रात है सवेरा भी। अंधकार के बाद आलोक भी। रंगोली के ४७ रंगों में से एक। हल्के से गहरे तक।

शानदार मैट एक्रिलिक इमल्शन । स्थायी आकर्षण । अनन्त प्रेरणा ।

BERGER PAINTS

Shape/B/R-3

किस
तरह
रोजाना
के
नीरस
काम...

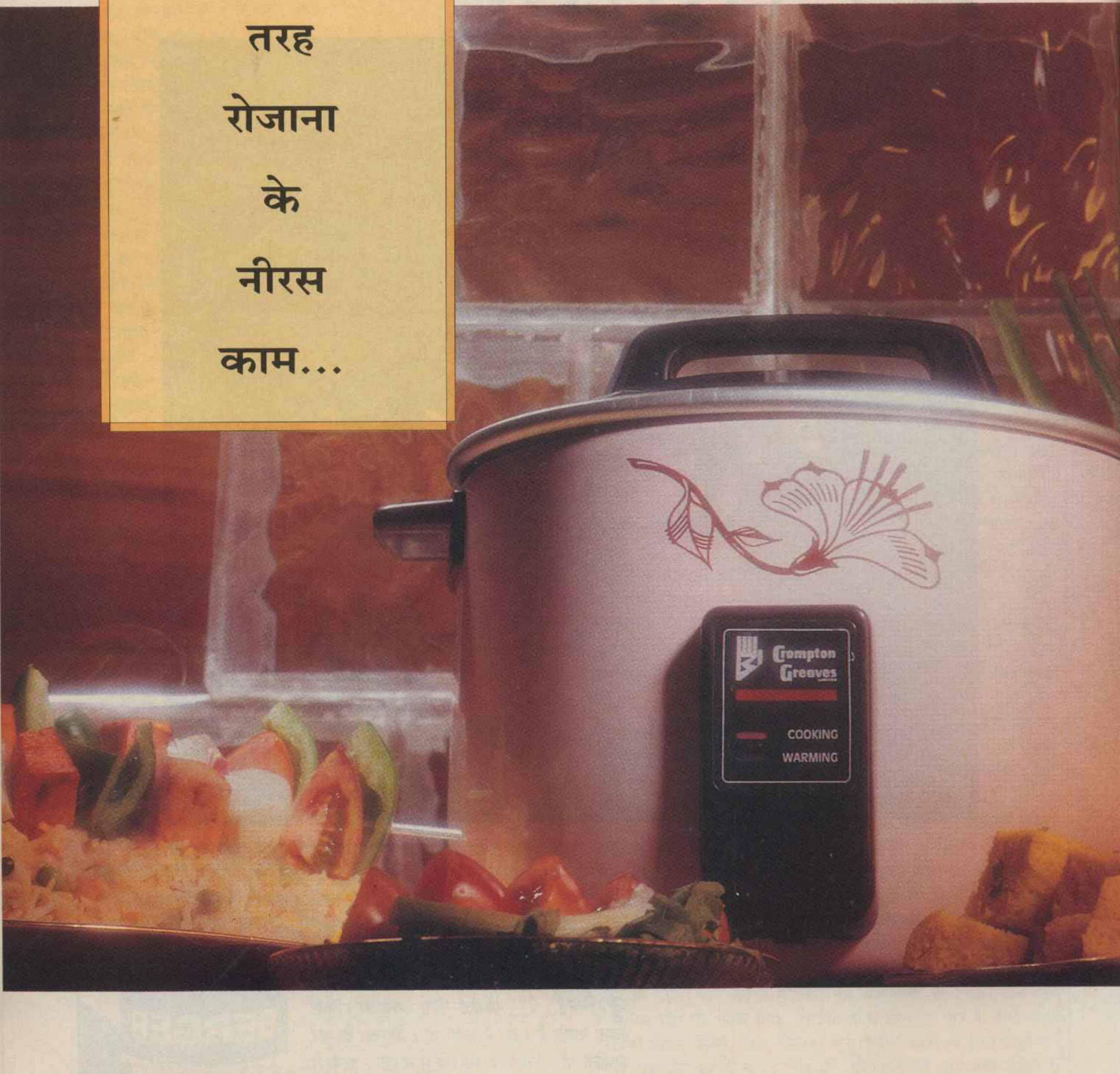

The Thapar Group
क्रॉम्प्टन ग्रीव्ज लिमिटेड
फ़ैन्स एण्ड ऍप्लायंसिस डिविज़न, कांजुर मार्ग, भांडुप, बंबई 400 042. फ़ोनः 5784129/5782451/5784211. फ़ॅक्सः 5783468.

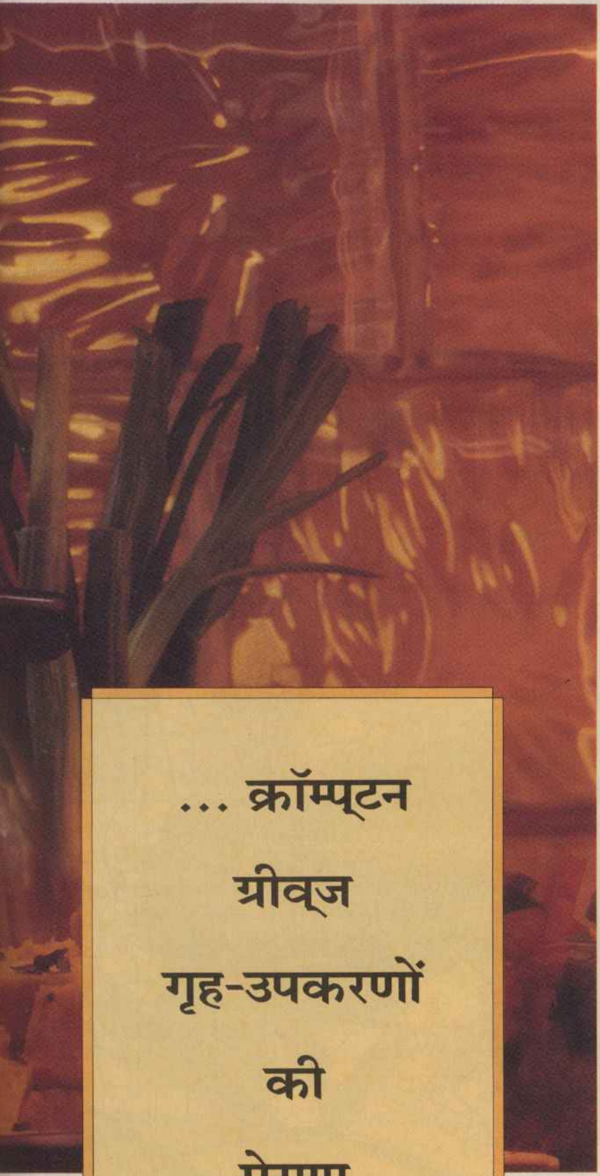

... क्रॉम्प्टन

ग्रीव्ज

गृह-उपकरणों

की

प्रेरणा

बने!

क्रॉम्प्टन ग्रीव्ज पेश करते हैं उच्च क्वालिटी उपकरणों की रेंज, रोजाना के नीरस कामों में से हरएक को पूरी चुस्ती से निपटाने के लिए.

क्रॉम्प्टन ग्रीव्ज ऑटोमॅटिक इलेक्ट्रिक कुकरः सब से आधुनिक तकनीक से बना यह सूप, पुलाव, पुडिंग, दाल, ढोकला, इडली जैसे स्वादिष्ट व्यंजन स्टीम कर सकता है या उबाल व पका सकता है. यह अपनेआप वार्मिंग मोड पर आ जाता है और बिजली की कम लागत में घंटों गरम रखता है. है भी पूरी तरह सुरक्षित.

क्रॉम्प्टन ग्रीव्ज मिक्सर ग्राइंडरः ग्राइंडिंग के कठिन-से-कठिन काम आसानी से करने के लिए हैवी-ड्यूटी मोटर वाला. साथ अनोखा कॉर्ड स्टोरेज प्रबंध.

क्रॉम्प्टन ग्रीव्ज ओवन टोस्टर ग्रिलरः ऑटोमॅटिक कंट्रोल और 50° सें. से 300° सें. तक रेंज वाला थर्मोस्टैट, जिससे आपको नॉब घुमाते ही तीन-तीन फायदे मिलते हैं. दो सुविधाजनक साइजों में — 16 लिटर व 29 लिटर.

क्रॉम्प्टन ग्रीव्ज पॉप-अप टोस्टरः अलग तरह का टोस्टर. इलेक्ट्रॉनिक टाइमर जो ब्राउनिंग के स्तरों को कंट्रोल करता है. साथ ही अनोखा ढक्कन, हीटिंग चेंबर को धूल या कीड़ों के प्रवेश से होने वाले नुकसान से बचाए.

सचमुच एक शानदार रेंज - फूड प्रोसेसर्स, मिनी ग्राइंडर, सैंडविच टोस्टर, कॉफ़ी टी मेकर. और भी कितना कुछ.

क्रॉम्प्टन ग्रीव्ज ऍप्लायंसिस आपकी जीवन-शैली में रौनक लाने के लिए हैं.

क्रॉम्प्टन ग्रीव्ज
लिमिटेड

ऍ प्ला यं सि स

चा हा आ प ने, ब ना ए ह म ने.

ULKA-18309-HIN

शिलालेख

• रामकुमार • चित्रः रामकुमार

मानसपटल पर शिलालेख की तरह खुदी पुरानी स्मृतियों को जगाने का प्रयास प्रायः असफल ही रहता है. उन्हें एक बार दफनाने के बाद उनसे संबंध जुड़ नहीं पाते.

होटल में पूछने पर ही उसे पता चल गया था कि सिविल लाइंस वहां से आधा किलोमीटर से अधिक दूरी पर नहीं है. टैक्सी लेने के बदले उसने पैदल ही जाने का निश्चय किया जिससे रास्ते में वह अपने मन की उथलपुथल को स्थिर कर सके. हवा ठंडी थी जिससे धूप में चलना उसे अच्छा लगा. किसी नए शहर में पहुंचकर पैदल ही उसके बारे में जानकारी हो सकती है, यह अनुभव भी उसके लिए नया नहीं था. और उसका विशेष आकर्षण भी नहीं था. बेला से इतने वर्षों बाद भेंट करने के विचार से ही उसका मन डूबने-सा लगा, लेकिन भेंट करना भी उसे बहुत आवश्यक जान पड़ता था.

सिविल लाइंस के इलाके में बहुत शांति थी. बंगलों के चारों ओर फैले बाग और ऊंचे-ऊंचे पुराने पेड़ और झाड़ियां. उसने अनुमान लगाया कि वे अंग्रेजों के समय में बने हुए बंगले थे जहां अब तक बदलते हुए समय की कोई छाप नहीं पड़ी थी. एक फाटक पर पी. रोहतगी के नाम की प्लेट देखकर वह ठिठक गया. बेला यहीं रहती है—वह कुछ देर तक फाटक के बाहर ही ठिठका रहा. उसकी सांस तेजी से चलने लगी. एक बार मन हुआ कि यहीं से वापस लौट जाए तो किसी को पता तक नहीं चलेगा कि वह फाटक तक आकर लौट गया.

लेकिन भीतर तो उसे जाना ही था. वह फाटक खोलकर बंगले के आगे बाग के किनारे बनी लाल बजरी की सड़क पर आ गया, जो सीधी बंगले के बरामदे तक पहुंचती थी. कहीं कोई माली, नौकर दिखाई नहीं दिया. बरामदे में घूमकर बंद दरवाजे के बाहर लगी घंटी उसने बजा दी. घर के भीतर फैली निस्तब्धता बाहर भी थी. दरवाजे पर लगे शीशे में उसे बेला आती दिखाई दी और उसकी सांस बहुत तेजी से चलने लगी. दरवाजा खोलकर कुछ देर तक वह उसकी ओर ही देखती रही. उसे लगा जैसे उसने पहचान तो लिया लेकिन अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था. बेला का चेहरा ठीक वैसा ही था जैसा ग्यारह वर्ष पूर्व उसने अंतिम बार देखा था. वही आंखों में डूबी गहराई, उतने ही घने काले बालों की चमक, चेहरे पर छाया भोलापन... या यह केवल उसका भ्रम ही था, शायद भीतर सब कुछ बदल गया था. क्या वह कभी यह सब जान सकेगा?

"पहचाना नहीं?" उसने हंसकर स्थिति को संभालने की कोशिश की. बेला चुप रही, दरवाजा छोड़कर उसके भीतर आने के लिए रास्ता बना दिया. उसके भीतर आने पर उसने दरवाजा बंद कर दिया.

कमरे के भीतर पहुंचकर उसे लगा जैसे वह एक दूसरी ही दुनिया में आ गया हो जहां से बाहर निकलने की राह उसे मालूम न हो. कमरे की दीवारें, आलमारियां, मेज, कुर्सी सब उससे कोई प्रश्न पूछ रहे हों जो यहां आने से पूर्व सड़कों पर चलते अपरिचित चेहरों पर भी उसने देखे थे.

"अचानक कैसे आ गए?" बेला का धीमा स्वर सुनकर वह चौंक गया, मानो किसी अपरिचित की आवाज पहली बार सुन रहा हो. बेला का स्वर तो वह भली-भांति पहचानता था. यह इतना बदल कैसे गया?

"इधर किसी काम से आना पड़ा, सोचा कि तुमसे भी मिलता चलूं," उसने अपने स्वर को स्वाभाविक बनाने की चेष्टा की.

"कॉफी पिओगे?" बिना उसके उत्तर की प्रतीक्षा किए वह भीतर चली गई. वह चुपचाप बैठा कमरे की दीवारों को सूनी दृष्टि से ताकता रहा लेकिन दृष्टि कहीं भी टिक नहीं सकी. एक धुंधलका-सा छाया रहा, एक मनहूस-सी निस्तब्धता बाहर-भीतर फैली रही. उसे लगा जैसे यह उसकी परीक्षा की घड़ी हो. कुछ देर बाद बेला ने उसकी कुर्सी के पास रखी तिपाई पर कॉफी का प्याला रख दिया और एक कुर्सी खाली छोड़कर दूसरी पर बैठ गई.

"तुम नहीं पिओगी?" उसने पूछा.

"नहीं, मैं कॉफी नहीं पीती.. मेरी चाय आ रही है," उसके शांत, स्थिर स्वर में कोई झिझक नहीं थी.

उसकी आंखों के सामने कुइंसवे का कॉफी हाउस अनायास ही घूम गया जहां शाम को वे प्रायः मिला करते थे. उनके बैठने का स्थान भी निश्चित था जहां कभीकभार ही कोई दूसरा बैठा दिखाई देता था. उस अंधेरे कोने को कोई पसंद नहीं करता था. लेकिन एक झटके के साथ ही उसने अपने आपको उन स्मृतियों से तोड़ लिया. "कैसे हो? कहां हो आजकल?" बेला ने उदासीन भाव से पूछा. वह बेला से इसी तरह के प्रश्न की उम्मीद कर रहा था. प्रश्न के बोझ से दबी खिसियाहट को कम करने के लिए उसने हंसने की चेष्टा की. इस तरह के प्रश्नों के उत्तर में कोई दिलचस्पी नहीं होती जो केवल चुप्पी को तोड़ने के लिए ही पूछे जाते हैं. बेला का चेहरा सामने होते हुए भी एक घने कोहरे की परतों के पीछे छिप गया था जिसे शायद अब वह कभी देख नहीं सकेगा.

अचानक ही उसकी इच्छा हुई कि बेला का हाथ पकड़कर मीलों दूर उसे वहां ले जाए जहां 11 वर्ष पूर्व वे एक दूसरे से अलग हुए थे. वह पूछना चाहता था कि इन 11 वर्षों का अंतराल कैसे और क्यों उनके बीच रेगिस्तान बनकर फैल गया. कैसे यह सब संभव हुआ. वर्षों से उसके मन में इस तरह के प्रश्न उठते रहे हैं और खाली चट्टानी दीवार से टकराकर उसके पास लौट आते हैं. लेकिन वह यह भी जानता था कि कुछ भी पूछने का उसे थोड़ा-सा भी अधिकार नहीं है. यदि उसे दरवाजे पर देखकर बेला दरवाजा बंद भी कर देती, तब भी उसे कोई चोट नहीं पहुंचती.

"मिस्टर रोहतगी शायद ऑफिस गए हुए हैं?"

बेला ने कोई उत्तर नहीं दिया, शायद उसने सुना ही नहीं. वह सिर झुकाए चाय का प्याला हाथ में थामे अपने आप में ही खोयी हुई थी. अचानक ही बेला के चेहरे पर नजर पड़ते ही उसे ऐसा जान पड़ा जैसे लहरों के उतार-चढ़ाव की परछाइयां उसके भीतर उठते बवंडर को समझने की कोशिश कर रही हैं. उसने अनुमान लगाया मानो वर्षों पुरानी दबी हुई स्मृतियां उसके आ जाने से एक बार फिर जीवित हो उठने की चेष्टा कर रही हों. या यह केवल उसका भ्रम ही था. इस प्रकार के अनगिनत भ्रमों का जाल वह एक अरसे से बुनता आ रहा है. उसने एक बार फिर कमरे में छायी चुप्पी को मिटाने की कोशिश की, "तुम्हारा बंगला बहुत सुंदर है बेला. कितना सन्नाटा है यहां. बच्चे स्कूल गए हैं?"

वह पूछना चाहता था कि इन 11 वर्षों का अंतराल कैसे और क्यों उनके बीच रेगिस्तान बनकर फैल गया. कैसे यह सब संभव हुआ. वर्षों से उसके मन में इस तरह के प्रश्न उठते रहे हैं और खाली चट्टानी दीवार से टकराकर उसके पास लौट आते हैं.

"नहीं..." बेला ने भी अपने दायरे में से बाहर आने की कोशिश की, "बच्चा नहीं है..." उसके स्वर में एक बर्फीला-सा आक्रोश भरा था. उसे यह प्रश्न नहीं पूछना चाहिए था. इतनी स्वतंत्रता लेने का उसे कोई अधिकार नहीं. बड़ी कठिनाई से कॉफी का अंतिम घूंट पीकर प्याला उसने तिपाई पर रख दिया. रूखे स्वर में लिपटा बेला का उत्तर सुनकर वह एकबारगी फिर अपने आप में सिमट गया और कुछ देर तक बेला की ओर देखने का साहस नहीं कर सका मानो वह स्वयं ही सबसे बड़ा दोषी हो. अचानक बेला के विषय में कुछ भी जानने की उसकी सारी जिज्ञासा पल भर में समाप्त हो गई. इस बीच बेला की यात्रा कहां से शुरू होकर कहां आ पहुंची, इसका भी महत्व नहीं रहा. शेष रह गया केवल एक ठहराव, एक सूनी, अर्थहीन निस्तब्धता, जो दिखाई नहीं देती.

"बेला, क्या मेरी बात सुन रही हो?" उसने अचानक ही अपने स्वर को तेज बनाकर पूछा. उनके बीच रखी खाली कुर्सी कहीं गायब हो गई. वह बेला के बहुत करीब आ गया. "लेकिन सुनकर भी तुम शायद कुछ भी समझ नहीं पाओगी. तुम्हें जरूरत भी नहीं है. लेकिन मैं..." आगे वह स्वयं भी नहीं जानता था कि वह क्या कहना चाहता है.

उसे लग रहा था जैसे वर्षों का रुका हुआ प्रवाह सब सीमाओं को तोड़ बड़े वेग से पूरी स्वतंत्रता के साथ दूर-दूर तक फैल जाना चाहता हो. लेकिन बेला क्या यह सब देख पाएगी, इस कोलाहल को सुन सकेगी, उसे संदेह था. संदेह के जालों से वह बाहर आने की कोशिश कर रहा था.

कुछ देर बाद उसने बेला के चेहरे को देखकर अनुमान लगाया कि वह वापस अपने घेरे में लौट आई है. उसके चेहरे पर एक स्वाभाविक-सी मुस्कराहट थी लेकिन बाहर कुछ भी प्रकट करने की असमर्थता को लांघना शायद संभव नहीं था.

शाम को बेला और रोहतगी उसके होटल में आए. यही प्रोग्राम रोहतगी से फोन पर तय हुआ था. रोहतगी पर एक दृष्टि डालते ही वह आश्चर्यचकित रह गया. लंबा कद, निखरा हुआ रंग, छरहरा बदन, चेहरे पर बिखरी हुई उत्साह और हंसी की एक झलक. उससे कम से कम दस वर्ष छोटा दिखाई देता था. भीतर-बाहर जैसे सब कुछ स्पष्ट था. उसके दिमाग में रोहतगी का एक दूसरा ही चित्र बना हुआ था.

रोहतगी ने मिलते ही मुस्कराते हुए अत्यंत आत्मीयता के साथ उससे हाथ मिलाया मानो वर्षों की जान-पहचान हो, "आपके बारे में मैंने बहुत कुछ सुन रखा है इसलिए आपको कुछ भी कहने की जरूरत नहीं है. आपसे मिलने की मेरी बहुत इच्छा थी, खासकर जब हमें पता चला कि आप हमेशा के लिए लौट आए हैं." क्षण भर के लिए बेला पर एक दृष्टि डालकर वह फिर बोला, "मैंने आपका पता मालूम करने की भी कोशिश की लेकिन सफलता नहीं मिली." रोहतगी ने कुछ ही समय में आपसी संबंधों को सामान्य और स्वाभाविक बनाने की कोशिश की. उसे यह सब बहुत विचित्र-सा लगा. बेला के चेहरे पर गंभीरता और उदासीनता की जो छाया सुबह उसने देखी थी, वह उसी प्रकार बनी रही. उसने सोचा कि शायद स्थायी रूप से यह छाप पड़ गई हो, जिसके विषय में वह कुछ नहीं जानता.

शहर से दूर एकांत में बने इस होटल में रोहतगी जिद करके उन दोनों को ले आया था, जो कुछ वर्ष पूर्व तक किसी नवाब का महल था जिसके एक हिस्से को नवाब ने आर्थिक कठिनाइयों के कारण एक छोटे-से होटल और रेस्तरां में बदल दिया था. दूरी के कारण अधिक लोग यहां नहीं आते थे. शाम के झुटपुटे में उस समय वहां पूर्ण रूप से निस्तब्धता छायी हुई थी. वे बाहर बाग में आरामकुर्सियों पर बैठे चाय पी रहे थे. सामने झाड़ियों के पार लंबी-चौड़ी झील थी जिसके पार शहर की रोशनियां टिमटिमा रही थीं.

कुछ देर के लिए वह पिछले वर्षों में की गई अनगिनत यात्राओं की भूलभुलैया में खो गया जब इस प्रकार की अनेक संध्या में वह किसी नए शहर के होटल के किसी एकांत कोने में सामने के दृश्य को देखता हुआ वापस अपने ही घर और परिचित चेहरों के बीच लौट आता था. एक अजनबी शहर, अपरिचित दृश्य...

"कैसी लगी आपको यह जगह?" रोहतगी ने उत्साह से पूछा.

"बहुत सुंदर है... मैंने तो सोचा भी नहीं था."

"कोई बाहर से आता है तो मैं उसे यहीं ले आता हूं," रोहतगी का इतनी जल्दी इस प्रकार की आत्मीयता का प्रदर्शन उसे कुछ अस्वाभाविक-सा जान पड़ रहा था. मन में कहीं संदेह भी हो रहा था कि कहीं तहों के भीतर कुछ छिपा हुआ है जो प्रकट रूप से दिखाई नहीं देता. बेला की लंबी चुप्पी और उदासीनता उसकी आशंका की पुष्टि कर रही थी.

"आपको यहां आए कितना अरसा हुआ?" बातचीत को आगे बढ़ाने के विचार से उसने रोहतगी की ओर देखते हुए पूछा.

"लगभग तीन साल हो गए," रोहतगी ने तुरंत ही उत्तर दिया, "हम लोगों को यहां बहुत अच्छा लगता है. बड़े शहरों जैसी भीड़भाड़ और शोर नहीं है. बारिश में यह झील और फैल जाती है जिससे दूसरा सिरा दिखाई नहीं देता. इससे पहले हम मद्रास में थे. वहां पांच साल रहे लेकिन अजनबी ही बने रहे. मौसम भी ठीक नहीं था और ऊपर से पानी का अकाल था."

इस बार बेला पर उड़ती-सी निगाह डाली तो फिर वहीं जमी रही. वह उसी की ओर देख रही थी और बाद में भी देखती रही मानो कोई चुनौती दे रही हो, कोई प्रश्न पूछ रही हो. रोहतगी की उपस्थिति को वह शायद भूल ही गई थी. वह भी भूल गया जिससे अधिक परेशान नहीं हुआ.

"आप अचानक बहुत खामोश हो गए हैं..." रोहतगी इस प्रकार की स्थितियों से अपरिचित था और उसके लिए उनका कोई महत्व भी नहीं था.

उसने रोहतगी की बात सुनी नहीं. वह झील के पार डूबते सूरज को काटते बादल के एक टुकड़े को देख रहा था. "देखा आपने?"

"क्या है?" रोहतगी ने पूछा.

उसने देखा कि बेला भी उसकी दृष्टि का पीछा करती हुई बादल के टुकड़े पर निगाह जमाए हुए थी. बेला को इसका एहसास हो गया, उसने ऐसा ही महसूस किया.

"कुछ नहीं..." उसने रोहतगी की ओर देखते हुए कहा, "ऐसे बेमतलब के प्रश्न मैं कई बार पूछ बैठता हूं जिनका कोई सिर-पैर नहीं होता. बेला मेरे इस सनकीपन को जानती है. लेकिन आपसे पहली ही बार मिला हूं न. धीरे-धीरे आप भी जान जाएंगे."

बेला के सामने मेज पर प्याले में पड़ी चाय ठंडी होती रही जिसकी ओर उसका ध्यान नहीं गया. वह आश्चर्य में चुपचाप प्याले की ओर देखता रहा. उसे अचानक याद आया कि बेला उबलती चाय या कॉफी ही पीती थी, जरा भी कम गरम हुई तो वेटर से दोबारा गरम करने को कहती थी. उसकी इस आदत का उसने कई बार मजाक भी उड़ाया था.

लेकिन बीच के इस अंतराल में कितने परिवर्तन हुए, कितने उतार-चढ़ाव आए जिसका हिसाब-किताब उसने पहले कभी नहीं लगाया लेकिन अब इच्छा हो रही थी कि एक डायग्राम बनाकर उन सबको स्पष्ट रूप से अंकित कर दे जिससे संदेह होने की कहीं कोई संभावना न रह जाए. एक दिन था—कितना पुराना या जैसे कल ही की बात हो—जब वह बेला के बहुत करीब आ गया था. हाथ बढ़ाते ही सदा के लिए उसका हाथ थाम सकता था. लेकिन बीच में एक दीवार थी, उसकी ही बनाई हुई. दीवार के इस ओर लहरों की भांति उमड़ते हुए उसके अपने स्वप्न थे जो किसी भी बंधन में कम-से-कम उस समय बंधना नहीं चाहते थे, फैली हुई एक पूरी दुनिया थी जिसे देखने की उत्सुकता उस समय उसके लिए अत्यंत महत्वपूर्ण थी. उस चौराहे पर अकस्मात् ही पहुंच जाने पर जो निर्णय उसने स्वयं लिया या परिस्थितियों ने उसे मजबूर किया, उसके सही-गलत होने के बारे में उसने कभी नहीं सोचा लेकिन जिसे प्राप्त करके जो उसे खो देना पड़ा, वह घाव समय बीतने के साथ-साथ सूखने की अपेक्षा और भी गहरा होता गया.

उस शाम को अचानक ही उसे ऐसा जान पड़ा जैसे जिस क्षण वह बेला से अलग हुआ था, वही क्षण फिर वापस लौट आया है. बीच की यात्रा में पार किया हुआ रास्ता जैसे अंधकार में खोया हुआ एक रास्ता था जिसकी लंबाई-चौड़ाई मापी नहीं जा सकती. अपनी चाय के प्याले में बेला की छाया देखकर वह रोहतगी के अस्तित्व को भूल गया.

"आपने तो बहुत दूर-दूर का सफर कर डाला. कितने भाग्यशाली हैं आप," रोहतगी कौतूहल से उसकी ओर देख रहा था, "कितने लोगों को ऐसा अवसर मिलता है."

रोहतगी का स्वर सुनकर उसे वास्तविक स्थिति का एहसास हुआ. इस विषय की चर्चा से ही उसे खीझ होने लगती थी. कुछ कहने के लिए जब कभी वह मजबूर हो जाता तो बहुत उखड़े स्वर में संक्षेप में ही कुछ कहकर इस विषय को बंद करने की चेष्टा किया करता था.

"मालूम पड़ा था कि तुम ब्राजील भी गए थे," अंधेरे में से आता हुआ बेला का स्वर सुनकर दोनों ही चौंक पड़े, "बचपन में भूगोल की एक पुस्तक में रियो डि जनेरो की एक तस्वीर देखी थी जिसके नीचे लिखा था—दुनिया की सबसे सुंदर बंदरगाह."

वह आश्चर्य से सोच रहा था कि रियो के बारे में जानने की कितनी उत्सुकता बेला को होगी. उसे शायद केवल अपनी बात कहनी थी, जो सहसा उसे याद आ गई. पता नहीं, बेला ने कैसे यह चर्चा छेड़ दी. एक टूरिस्ट गाइड की भांति उसने रटे हुए कुछ वाक्य दोहरा दिए जिन्हें रोहतगी बहुत ध्यान से सुनता रहा. बेला का चेहरा स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं दे रहा था. सामने झील के जल को देखकर उसे रियो का समुद्र याद आ गया जिसे अपने होटल के कमरे की खिड़की से वह देखा करता था.

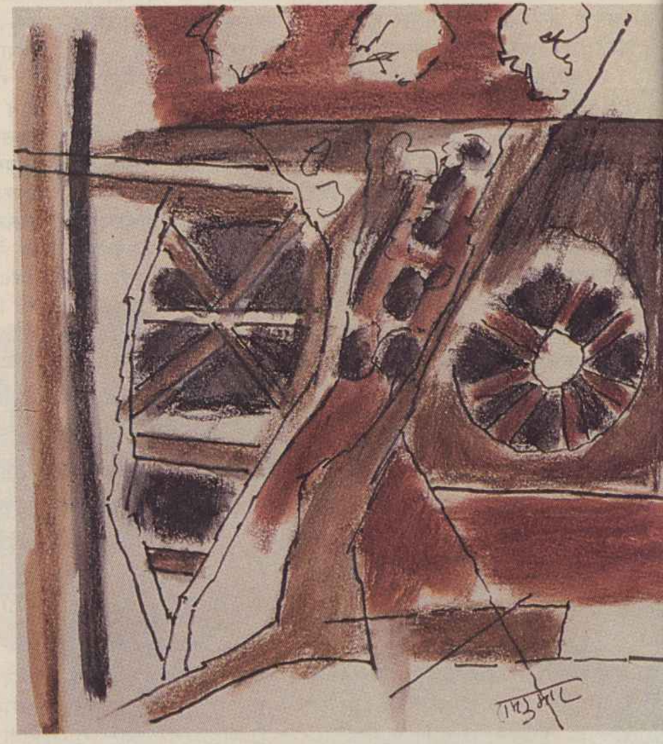

शायद बेला को याद न हो लेकिन उसके जाने से पूर्व एक बार उसने रियो का जिक्र उससे किया था.

शाम बीतने के साथ अचानक हवा तेज चलने लगी. झील के पार शहर के ऊपर बादल जमा हो गए थे जिससे अंधकार के विस्तार में शहर की टिमटिमाती रोशनियों को देखकर आकाश में तारों का भ्रम होने लगता था. वह सिगरेट पीता रहा, एक के बाद एक. पिछले कुछ वर्षों में उसकी सिगरेट की मात्रा बहुत बढ़ गई थी.

रोहतगी अपने ऑफिस के संबंध में एक टेलीफोन करने के लिए होटल के भीतर चला गया जिससे वे दोनों अकेले रह गए. या फोन का बहाना बनाकर वह उन दोनों को अकेले ही छोड़ देना चाहता था.

वह मेज पर कोहनियां टिकाकर आगे की ओर झुक गया जिससे बेला की समीपता को महसूस कर सके. बातचीत को स्वाभाविक बनाने के उद्देश्य से बोला, "रोहतगी साहब बहुत लाइवली आदमी हैं. उनसे मिलकर बहुत जल्दी ही आत्मीयता महसूस होने लगती है."

बेला के चेहरे पर बर्फीली छाया जमी रही, " बहुत सिगरेट पीने लगे हो?" उसने पूछा.

वह हंसने लगा, "नहीं, ज्यादा नहीं. नए शहर में शायद वक्त काटने के लिए कुछ ज्यादा पीने लगता हूं."

बेला को अपनी ही ओर देखते हुए उसकी घबराहट बढ़ गई, यद्यपि उसे याद आया कि इस प्रकार टकटकी लगाकर देखते हुए भी बेला की

दृष्टि कुछ और ही तलाश करती हुई किसी अदृश्य प्रदेश में खो जाती है.

वह सहज भाव में बोला, ''यहां आकर मुझे ऐसा लग रहा है बेला जैसे मैं ठीक उसी बिंदु पर वापस लौट आया हूं जिसे 11 वर्ष पहले छोड़कर अपने लिए एक नई जिंदगी की तलाश में निकल गया था. लेकिन अब...'' क्षण भर तक रुककर वह फिर बोला, ''अब फिर नए सिरे से आरंभ करने की शक्ति मुझमें नहीं बची है.''

बेला के चेहरे पर छायी उदासीनता की छाया धीरे-धीरे धुंधली होती गई. अपने सामने मेज पर कोहनियां टिकाए उसकी ओर देखते हुए बेला ने पूछा, ''तुम वापस क्यों लौट आए? यहां तो सब सोचते थे कि इतना अरसा बाहर रहकर अब तुम कभी वापस नहीं लौटोगे. कोई नहीं लौटता. फिर... तुमने ऐसा क्यों किया?''

''इसका उत्तर मेरे पास नहीं है बेला. मैंने भी इसका सही-सही कारण जानने की बहुत कोशिश की लेकिन कहीं कोई छोटा-सा सुराग भी नहीं मिला. शायद था भी नहीं.'' कई बार इसी विषय में अकेले में बैठकर सोचने की उसकी आदत पड़ गई थी जिससे बेला को उत्तर देना उसे अत्यंत सहज जान पड़ा.

''और तुम्हारी पत्नी?'' बेला ने झिझकते हुए पूछा, ''पता चला था कि तुमने किसी अमरीकन लड़की से विवाह कर लिया है.''

वह जानता था कि बेला यह प्रश्न पूछेगी, दूसरों ने भी पूछा था. ''हां, विवाह तो किया था लेकिन दो साल बाद ही हम अलग हो गए. हमारी एक लड़की भी है जो अपनी मां के साथ रहती है.'' फिर सिगरेट का एक कश खींचकर बोला, ''मैं शायद विवाहित जिंदगी के उपयुक्त नहीं हूं. यह बात मुझे विवाह के बाद पता चली.'' उसने हंसने की कोशिश की जिसमें वह सफल भी हुआ, ''लेकिन छोड़ो इस किस्से को. रोहतगी हमें इस तरह बातचीत करते देखेंगे तो न जाने क्या सोचें. अच्छा बेला, यह बताओ, तुम बच्चों के स्कूल में कैसे पढ़ाने लगीं. तुम्हें तो इससे बहुत चिढ़ थी न?''

बेला ने कहा, ''यह साधारण बच्चों का स्कूल नहीं, विकलांग बच्चों का स्कूल है. मैं वहीं पढ़ाती हूं विकलांग बच्चों को.''

वह तनिक चौंक-सा गया, ''अच्छा...मैं नहीं जानता था. लेकिन...''

बेला ने तटस्थ भाव से कहा, ''मेरा बच्चा भी मेंटली रिटार्डिड था...''

वह सन्न-सा रह गया. आगे कुछ भी पूछने का साहस उसे नहीं हुआ.

''दो साल तक मैं उसके साथ जीवित रही लेकिन लाख कोशिशों के बावजूद उसे बचा नहीं सकी. अब सोचती हूं कि मैं उसे बचाकर कितनी बड़ी गलती करती. वह मुझे सारी जिंदगी कोसता रहता. उसकी आंखों की भाषा मैं पढ़ नहीं सकी लेकिन अब लगता है जैसे वह स्वयं ही उस स्थिति में जिंदा नहीं रहना चाहता था.'' उसका गला रुंधने लगा था और पर्स में से रुमाल निकालकर वह आंखें पोंछ रही थी.

''आइ एम सॉरी'' कहकर वह चुप हो गया. इस तरह की अप्रत्याशित घटना की उसने कल्पना भी नहीं की थी.

रोहतगी के वापस आने पर बोझिल वातावरण कुछ हल्का हो गया. उन दोनों को गंभीर मुद्रा में चुप बैठे देखकर वह हंसकर बोला, ''आप दोनों के बीच तो पुरानी स्मृतियों के अनगिनत तार हैं जिन्हें केवल आप दोनों ही आपस में बांट सकते हैं. मैं तो बेला से जब कभी पूछता हूं तो वह टाल देती है.''

बेला ने खीझ भरे स्वर में कहा, ''मैं इन्हें अपने बच्चे के बारे में बता रही थी.''

रोहतगी बोला, ''लेकिन आज शाम को वह सब बताने की क्या जरूरत थी. फिर कभी बता देतीं.''

बेला ने कहा, ''नहीं, जरूरत थी जिससे...'' आगे वह वाक्य पूरा नहीं कर सकी.

रोहतगी ने उसी विषय में मिलती-जुलती एक और बात कही, ''इनके मन में न जाने कैसे यह बात बैठ गई है कि उसके दोषी हम दोनों ही हैं, और ये मुझसे भी ज्यादा. मैंने ही नहीं, डॉक्टर ने भी इन्हें बहुत समझाया लेकिन ये मानतीं ही नहीं.'' बेला के टोकने से पूर्व ही वे अपनी बात पूरी कर लेना चाहता था, ''इनकी धारणा है कि इनका दूसरा बच्चा भी वैसा ही होगा. इसी कारण से...''

बेला क्रोध और खीझ भरे स्वर में बोली, ''इन्हें क्यों अपनी समस्याओं में उलझाते हो. फिर ये कर भी क्या सकते हैं...''

फिर एक निस्तब्धता ने तीनों को अपने घेरे में बांध लिया जहां एक दूसरे से अलग वे अपने निश्चित दायरों में खड़े हो गए. वह सामने झाड़ियों के पार शहर की टिमटिमाती रोशनियों की ओर देखता रहा. कितने शहरों की इससे मिलती-जुलती रोशनियों को उसने देखा था— स्पष्ट रूप से कुछ याद नहीं.

कुछ देर बाद वह रेस्तरां के भीतर बाथरूम में चला गया यद्यपि उसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी. बड़े से लाउंज में सजावट नवाब के महल की तरह ही थी. बड़े-बड़े झाड़-फानूस, अंग्रेजों के वक्त के भारी-भरकम सोफे, आरामकुर्सियां, सुंदर पुराने कालीन—एक कोने में नए ढंग का बना हुआ बार जहां ऊंचे स्टूल रखे थे. वह उदासीन दृष्टि से सब देखता रहा जहां किसी एक बिंदु पर उसकी दृष्टि ठहर नहीं सकी. बार-बार बेला के बच्चे की बात सोचकर उसका मन डूबता रहा. उस घटना का शायद उस पर स्थायी प्रभाव पड़ा है. क्षण भर के लिए अपनी बच्ची का चेहरा भी आंखों के सामने घूम गया. अपना घाव तो वह किसी प्रकार सहन कर लेगा लेकिन बच्ची का अपने पिता की उपस्थिति और प्यार से वंचित रह जाना, इसका ध्यान आते ही वह बौखला-सा उठता था. उसे अपने साथ लाने की कोशिश में उसने कोई कसर नहीं उठा रखी थी लेकिन सफल नहीं हो सका.

लौटा तो उसे लगा जैसे वातावरण की गंभीरता हल्की पड़ गई थी. रोहतगी कहने लगा, ''बेला से पता चला कि आप जल्दी ही वापस लौटे जा रहे हैं. कुछ दिन क्या और नहीं रुक सकते?''

''मुझे कुछ जरूरी काम निबटाने हैं...'' उसने आश्चर्य से बेला की ओर देखा. उससे पूछे बिना बेला ने उसके लौटने का प्रोग्राम भी स्वयं ही तय कर दिया. यह भी उसकी पुरानी आदतों में से एक थी. ''आप लोगों का कभी उस तरफ आना हो तो मेरे घर में ही रुकिए. आपको असुविधा नहीं होगी. काफी बड़ा घर है जहां मैं अकेला ही रहता हूं.''

उसने पैंट की जेब से चेन लगी घड़ी निकालकर समय देखा. अचानक रोहतगी की नजर घड़ी की चमक और बनावट पर ठिठक गई जिससे वह चुप नहीं रह सका, ''यह आपकी जेब घड़ी बहुत अजीब-सी जान पड़ रही है. शायद बाहर फिर से जेब घड़ी का फैशन शुरू हुआ है.''

उसने घड़ी को मेज पर रोहतगी के सामने रखते हुए कहा, ''नहीं, ऐसी बात तो नहीं है. यह तो जर्मनी में घड़ियों की एक फैक्टरी में गया था जहां मुझे यह बहुत पसंद आई. फैक्टरी के मालिक ने मुझे यह भेंट कर दी.''

रोहतगी ने उसे उलट-पलटकर देखा, आंखों के पास लाकर चमकती सुइयों का निरीक्षण किया. पीछे घड़ी की सारी मशीन शीशे में से दिखाई दे रही थी. उसने बेला की ओर घड़ी खिसकाते हुए कहा, ''देखो बेला, ऐसी घड़ी नहीं देखी होगी. इसे तो यहां के अजायबघर में रखना चाहिए.'' बेला ने उस पर एक उड़ती-सी निगाह डाली, उसे छुआ नहीं, ''बहुत अच्छी है.'' रोहतगी का उत्साह कुछ कम हो गया. घड़ी उसके

फिर एक निस्तब्धता ने तीनों को अपने घेरे में बांध लिया जहां एक दूसरे से अलग वे अपने निश्चित दायरों में खड़े हो गए. वह सामने झाड़ियों के पार शहर की टिमटिमाती रोशनियों की ओर देखता रहा...

हाथ में थमाते हुए कहा, "संभाल कर रखिए इसे..."

क्षण भर की दुविधा के बाद घड़ी रोहतगी की ओर बढ़ाते हुए वह बोला, "आप रखिए इसे मिस्टर रोहतगी. मैं तो इससे ऊब चुका हूं."

"नहीं, नहीं..." रोहतगी ने आश्चर्य से कहा, "मैंने तो इस तरह की घड़ी यहां देखी नहीं थी, इसी से दिलचस्पी हो गई. इतनी कीमती घड़ी..."

उसने हंसते हुए कहा, "मैंने आपके विवाह पर कोई उपहार नहीं दिया. वही समझकर ले लीजिए."

रोहतगी ने कनखियों से ललचाई दृष्टि से घड़ी की ओर देखा और दबे स्वर में कहा, "सच, प्रशंसा करने का मेरा यह मतलब तो नहीं था..."

"आप इनकार करेंगे तो मुझे बुरा लगेगा. फिर भेंट वापस नहीं लौटाई जाती," वह बोला.

रोहतगी ने बेला की ओर देखा, "क्यों बेला?"

बेला चुप थी मानो इस किस्से से उसका कोई लेना-देना नहीं था.

"बेला से क्यों पूछ रहे हैं. यह घड़ी तो मैं आपको मित्र के नाते दे रहा हूं," उसने मुस्कराते हुए कहा.

इस अप्रत्याशित घटना से रोहतगी का चेहरा उत्साह से चमकने लगा. उसे यह भी पता नहीं चला कि बेला एक बहुत बर्फीली दृष्टि से उसकी ओर ताक रही थी.

वे गर्मियों के बीच के दिन थे. चिलचिलाती जून की धूप और तेज चलती लू में भीगी पृथ्वी और मटियाले रंग का आकाश और धीरे-धीरे रेंगता समय. दिन में कनाट प्लेस के गलियारों में सन्नाटा छाया रहता. दुकानदार खाली दुकानों के आगे बरामदे में खड़े होकर गप्पें हांकते हुए गरमी और तापमान की चर्चा किया करते. बीच में फैले बाग में सेमल के सुर्ख गुलाबी फूल सूरज की तेज रोशनी में चमकते रहते और लू के किसी तेज झोंके से कुछ फूल नीचे गिर पड़ते जिन्हें शाम को खेलते हुए बच्चे अपने पैरों से रौंद डालते और झुलसी हुई घास गुलाबी हो जाती. बीती हुई सर्दियां एक स्वप्न-सी जान पड़तीं.

कुइंसवे के कॉफी हाउस में उसी परिचित कोने में बैठी बेला उसकी प्रतीक्षा कर रही थी. बीस मिनट का विलंब हो गया था. गरम कॉफी का प्याला वैसा ही भरा रहा. आंखों में बुझी हुई आग का धुंआ जैसे भर गया था. अब तक उसके विदेश जाने की योजनाओं में वह उत्साह से उसका साथ देती रही थी मानो वह स्वयं भी उस यात्रा की एक यात्री हो. लेकिन आज अचानक मेहनत से बनाया हुआ बांध एकदम टूट-सा गया था जिसके प्रवाह को उसने रोकने की कोई भी कोशिश नहीं की. ऊपर से वह बहुत शांत और स्थिर दिखाई दे रही थी जैसे अकेली ही कॉफी पीने आई हो.

"बेला..."

उसने चौंककर पीछे देखा लेकिन कोई नहीं था. कॉफी हाउस खचाखच भरा था. यूनिवर्सिटी बंद हो जाने के बाद काफी छात्र वक्त काटने के लिए बैठे हुए थे. कुछ उसके परिचित भी थे. वे जानते थे कि वह किसका इंतजार कर रही है जिससे कोई उसके पास आकर बाधा नहीं डालना चाहता था. बेला मेज पर रखे प्याले में कोई अदृश्य छाया खोजती रही. अचानक उसे अपने सामने खड़े देखकर भी वह मूर्ति की भांति ही बैठी रही मानो वह कोई अपरिचित हो.

"मुझे देर हो गई बेला. क्या काफी देर से बैठी हो. आइ एम सॉरी... थॉमस कुक में इतनी भीड़ थी कि मैं बिना ट्रैवलर चेक लिये ही लौट आया. दोपहर में ले लूंगा." कंधे से बैग उतारकर मेज के नीचे रख दिया और रुमाल से चेहरे का पसीना पोंछते हुए बेला के सामने वाली कुर्सी पर बैठ गया. चेहरे पर थकान थी लेकिन आंखों में उत्साह की ऐसी चमक थी जिसे कोई अनजाना व्यक्ति भी आसानी से देख सकता था. उसने बेला के सामने रखा कॉफी से भरा प्याला देखा लेकिन कुछ कहा नहीं. और दिन होता तो हंसकर कारण पूछता. लेकिन आज नहीं. बेला का चेहरा देखकर उसका मन डूबने-सा लगा. उसका सारा उत्साह क्षण भर में ठंडा पड़ गया. अपने ऊपर कुछ ग्लानि भी होने लगी.

वेटर के आने पर उसने एक गरम और एक ठंडी कॉफी और चिकन सैंडविचिज लाने का ऑर्डर दिया. कभी-कभी कॉफी के साथ सैंडविच मंगाने की भी उनकी पुरानी आदत थी, जो हंसी का कारण बन जाती थी. वर्षों के परिचय के दौरान इस तरह की कई आदतें पड़ गई थीं.

उसने सिगरेट सुलगाते हुए कहा, "इन दिनों कभी-कभी मुझे लगता है कि मैं एक गलत कदम तो नहीं उठा रहा जिस पर बाद में मुझे पछताना पड़े" वह धीमे स्वर में मानो अपने आप में ही कहने लगा.

"गलती? कैसी गलती..." बेला ने उदासीन भाव से पूछा.

"यही, मेरा अचानक इस तरह सब कुछ छोड़कर चले जाना..."

बेला ने उसके चेहरे को ध्यान से देखा. "इस वक्त इस फिजूल के सवाल को उठाने का क्या फायदा?" उसके स्वर में कुछ खीझ भरी थी.

चार्टर्ड एकाउंटेंसी की परीक्षा के तुरंत बाद उसके पिता के एक मित्र ने उसे सुझाव दिया कि यदि वह चाहे तो डेढ़-दो वर्षों के लिए अमरीका के कुछ शहरों में उनके दफ्तर की शाखाओं में एकाउंट्स को चेक करने के लिए वे उसे भेजने की व्यवस्था कर सकते हैं. उन्हें एक विश्वासपात्र और योग्य व्यक्ति की आवश्यकता थी. इस प्रस्ताव को सुनकर उसके उत्साह की सीमा नहीं रही. बेला को यह समाचार सुनाया तो वह भी बहुत उत्साहित जान पड़ी. लेकिन उत्साह की पहली लहर के बाद वास्तविकता के दूसरे पहलू भी दिखाई देने लगे.

वह सोचता था कि डेढ़-दो साल की तो बात है, और यदि कोई आवश्यकता पड़ी तो बीच में छोड़कर भी तो आ सकता है. किसी अमरीकन यूनिवर्सिटी में पढ़ने का वजीफा मिल जाता, तब भी तो वह बिना किसी हिचक के चला जाता. ये बातें कई बार पहले वह बेला के सामने भी कर चुका है. कभी वह उत्साह दिखाती, कभी चुप रह जाती और कभी यह सोचकर खीझ जाती कि वह अपनी सफाई देने के लिए ये बातें कर रहा है.

"आज बहुत गरमी है..." उसने रुमाल से फिर पसीना पोंछा, "बाहर हवा का नामोनिशान नहीं."

बेला उसी की ओर देखती रही. सुना कुछ नहीं. सुनने की उसे जरूरत भी नहीं थी. "तुम इसी तरह बैठे रहो. किसी मूर्तिकार की भांति मैं तुम्हारे चेहरे के भावों, चेहरे का नक्शा, पीछे छिपी हड्डियों की बनावट, नसों का ताना-बाना, सब ठीक से याद कर लेना चाहती हूं जिससे तुम्हारी अनुपस्थिति में वह जब चाहे तब मेरी आंखों के सामने स्पष्ट रूप से अंकित होकर आ जाए..." फिर हंसने लगी, "क्यों?"

"क्या बातें कर रही हो बेला..." वह आश्चर्य से बोला. फिर कुछ देर तक ठहरकर मानो अपने आप से ही कहने लगा, "तुम शायद मेरी स्थिति का अनुमान नहीं लगा सकतीं. पिछले कई दिनों से मेरे भीतर जो अंतर्द्वंद्व एक तूफान-सा उठाए हुए है उससे बाहर निकलने का कोई रास्ता मुझे दिखाई नहीं देता. जो कदम मैंने उठाया है उसमें मेरा ही स्वार्थ भरा हुआ है इस बात को मैं भलीभांति जानता हूं."

बेला ने बीच में ही टोक दिया, "इन सब बातों को आज दोहराने का कोई फायदा नहीं." फिर हंसते हुए बोली, "तुम बिना किसी विडंबना के जाओ जिससे इस मौके का पूरा फायदा उठा सको. यहां की समस्याएं यहीं रहने दो."

बाहर गर्मियों की धूप तेज होती जा रही थी लेकिन कॉफी हाउस के अंधेरे में उसका पता नहीं चलता था. पिछले साल गर्मियों के यही लंबे-लंबे दिन बेला ने सप्रू हाउस लाइब्रेरी में बैठकर पीएचडी की थीसिस लिखने में काटे थे. वह भी चार्टर्ड एकाउंटेंसी की ट्रेनिंग से अवकाश मिलने पर वहां आ जाता था और दोनों कभी-कभी धूप से बचने के लिए पेड़ों की छाया में चलते हुए त्रिवेणी के खाली रेस्तरां में कॉफी पी लेते थे और कॉलेज की स्मृतियों को दोहराने लगते थे या गरमी की चर्चा करते थे.

उसने बेला के उदासीनता से भरे चेहरे पर डरते हुए एक दृष्टि डाली लेकिन दिखाई कुछ भी नहीं दिया, न ही कुछ जान सका. उसके मन की बात जानने को वह उत्सुक था, लेकिन घबराकर उसे यह भी

मेरा प्यार
शालीमार
शालीमार
नारियल तेल
एक परम्परा - एक नाम !
शालीमार केमिकल वर्क्स लिमिटेड कलकत्ता 700 027
Shalimar's COCONUT OIL
TSPL/SCW/N 594H

ध्यान आया कि आज उसे बहुत से जरूरी काम निबटाने हैं और जल्दी ही उसे बेला से विदा ले लेनी चाहिए.

तीन दिन पूर्व ही कॉफी हाउस के इसी कोने में बेला ने कहा था, ''इस परिच्छेद के आखिरी पन्ने को इन दिनों हम भर रहे हैं. तुम्हारे जाने पर यह समाप्त हो जाएगा.'' वह बाहर छाये अंधकार को देख रही थी, ''वही हम दोनों के लिए बेहतर होगा. व्यर्थ में इस भार को ढोते रहने का फायदा नहीं. फिर संभव होगा तो नए सिरे से शुरुआत कर सकते हैं जिसमें इस अतीत की परछाईं तक दिखाई नहीं देगी.''

वह चुपचाप बेला की ओर देखता रहा. कुछ भी कहने का साहस नहीं हुआ.

''इस बीच क्या होता है, तुम्हारे साथ भी और मेरे साथ भी, कौन जान सकता है,'' उसका स्वर और भी धीमा हो गया था.

वह विरोध करना चाहता था लेकिन उसके मुंह से एक भी शब्द नहीं निकल सका. कॉफी हाउस में इक्के-दुक्के लोग ही रह गए थे, बाकी एक-एक करके शाम के अंधेरे में खो गए थे. वक्त बीतता गया और वे दोनों अपने में खोये रहे. ''बहुत चुप हो बेला...'' उसने रुमाल से पसीना पोंछते हुए कहा. बेला ने मुस्कराने की असफल चेष्टा की, ''आज कुछ भी कहने की इच्छा नहीं हो रही,'' उसका स्वर भारी हो गया था, ''जब बिना कुछ कहे सब कुछ प्रकट हो जाता है तो मौन रह जाना ही ठीक है जिससे दूसरे की उलझन... शायद कम हो जाती है.''

उसने हंसी में टाल देना चाहा. इच्छा हो रही थी कि इसी प्रकार कॉफी हाउस की कुर्सी पर बेला के सामने बैठा रहे और बीतते समय को रेलगाड़ी की खिड़की में से देखता जाए. कुछ देर तक वह बिना हिले-डुले बैठा भी रहा लेकिन मन ही मन वह जानता भी था कि उसे एक दूसरी ही दिशा में भागना पड़ेगा.

बालों की एक उलझी हुई लट पंखे की हवा में बेला के माथे पर झूलने लगी थी जिस पर उसकी दृष्टि बार-बार ठिठक जाती थी. बेला का गुमसुम-सा चेहरा, उसकी सूखी आंखें उसके सामने थीं जो उसे देर तक याद रहेंगी. अचानक उसे लगा जैसे बीच में ही एक ही रास्ते पर चलते हुए बेला को यात्रा में अकेले छोड़ देना क्या उसके लिए बहुत बड़ा अन्याय नहीं है. यद्यपि इस यात्रा में भविष्य की अनिश्चितता, कहीं पहुंच पाने के उद्देश्य का धुंधलापन, कभी उस विषय पर एक-दूसरे के विचार जानने की आवश्यकता सदा बनी रही लेकिन कभी ऐसा अवसर ही नहीं आया. प्रकट रूप से कभी कुछ नहीं कहा गया लेकिन मन में कहीं इस बीज की जड़ें मजबूत बनती गई थीं. लेकिन शीघ्र ही यह दुविधा एक लहर की भांति किनारे से टकराकर शांत हो गई और वह इस मझधार से एक बार फिर ऊपर आ गया. बाद में जब कभी इस विषय में वह सोचता तो यही लगता था कि तब भी वह वही करता जो उसने किया था.

लेकिन आज बेला चुप थी. उसकी मौन आंखों की भाषा से वह परिचित नहीं था. ऐसे बेला कम बोलने वाले व्यक्तियों में नहीं थी. जो मन में होता और जो नहीं भी होता था, वह तुरंत शब्दों में व्यक्त कर देती थी. ''मैं कई दिनों से तुमसे एक बात पूछना चाह रही थी,'' बेला जैसे अपने भूलभुलैया के जाल से बाहर निकल आई थी.

उसने उत्सुकता से बेला की ओर देखा, ''कौन-सी बात बेला?'' उसे थोड़ा भय भी लग रहा था.

''तुम्हारे भीतर...मुझे लगता है जैसे तुम्हारे आसपास बेचैनी की एक छाया सदा मंडराती रहती है जिससे कहीं भी...'' उसे अपनी बात पूरी करने के लिए उपयुक्त शब्द नहीं मिल रहे थे.

उसने चैन की सांस ली. उसे आशंका थी कि कहीं कोई नई स्थिति सामने न आ जाए, ''अच्छा...मुझे तो कभी ऐसा एहसास नहीं हुआ.''

''और शायद यही बेचैनी तुम्हें इस नए एडवेंचर की ओर घसीटे लिये जा रही है...'' बेला गंभीर स्वर में कह रही थी, ''कभी-कभी यह बात सोचकर मेरा मन घबरा उठता है. मुझे तुम्हारी चिंता होने लगती है.''

उसने आगे झुककर बेला का हाथ थाम लिया और उसके चेहरे के बहुत करीब आकर बहुत धीमे स्वर में बोला, ''आज इस तरह की बातें मत करो बेला. फिर किसी और दिन. आज हम लोगों की यह मुलाकात देर तक मन में छायी रहेगी. इसे शांत झील की भांति शांत ही रहने दो...'' वह उसकी आंखों में अनगिनत प्रश्नों के चिह्न देख रहा था जैसे सिमिट्री में कब्रों के ऊपर उठते हुए सलीब हों.

बेला अचानक हंसने लगी और उसने अपना हाथ उसके स्पर्श से अलग कर दिया, ''तुम डर गए? लेकिन मैं चाहूं तो भी इस शांत झील में एक छोटा-सा बुलबुला तक नहीं उठा सकती क्योंकि मेरा भार एक ज़ीरो बन गया है जो इस झील की सतह में पड़ा है, ऊपर नहीं उठेगा.''

वह अपनी कुर्सी का सिरहाना लगाकर पीछे की ओर खिसक गया जिससे बेला उससे बहुत दूर हो गई. एक भयानक-सी रिक्तता उसके मन में उभर आई. उसका सारा उत्साह क्षण भर में विलीन हो गया जैसे उसकी आधारशिला बहुत कमजोर थी. उसकी सचाई जानने का उसके पास समय नहीं था और शायद वह जानना भी नहीं चाहता था.

''डरो नहीं...'' क्षण भर की चुप्पी के बाद बेला ने कहा, ''ठीक भी है. इस तरह का अवसर जिस किसी को भी मिलता, तो वह वही करता जो तुम कर रहे हो. शायद मैं स्वयं भी...''

वह जून की दोपहर, कॉफी हाउस का वही अंधेरा कोना जहां एक छोटी मेज के आमने-सामने केवल दो कुर्सियां रहती थीं और बाहर लू में उड़ती धूल... कई बार वह दिन उसकी आंखों के सामने फिल्म के दृश्य

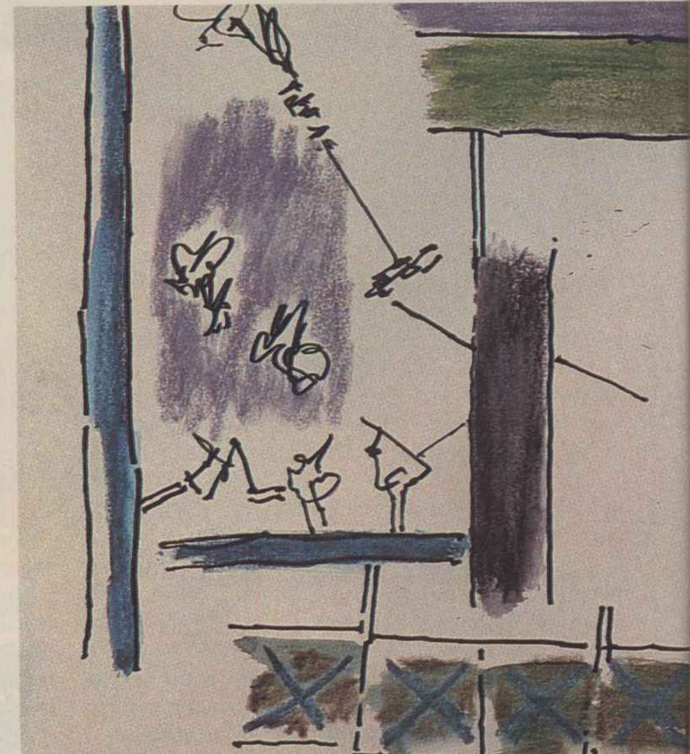

की भांति घूम जाता था जिसकी स्मृति समय बीतने के साथ धुंधली नहीं पड़ी. वह यह भी जानता था कि वहां फिर वापस नहीं लौटा जा सकता.

रोहतगी अपने ऑफिस जाने से पूर्व उसके होटल में उससे मिलने आया था. उसे थोड़ी घबराहट भी हुई. वह शायद अकेले में उससे कुछ कहना चाहता हो जो बेला के सामने नहीं कहा जा सकता. "आपको क्या तीन चार-दिनों की छुट्टी मिल सकती है?" उसने रोहतगी की ओर देखते हुए पूछा. रात को उसने एक दूसरा ही प्रोग्राम बनाया था.

"क्यों...?"

"ऐसे ही पूछा था. सुना है कि पास ही शिलालेख नाम की एक जगह है घने जंगलों के बीच, जहां पास ही नर्मदा बहती है. वहां कोई जाता नहीं. एक फॉरेस्ट रेस्ट हाउस है. होटल में यह सूचना मुझे मिली थी." होटल के मैनेजर ने रेस्ट हाउस की बुकिंग की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी. बेला से भेंट करने के पूर्व तीन-चार दिन के लिए किसी एकांत स्थान में जाने का विचार अचानक ही उसके मन में आया था.

रोहतगी का चेहरा उत्साह से चमक उठा, "मैंने भी शिलालेख के बारे में सुना है कि बहुत शांत और सुंदर जगह है. कई बार बेला से चलने का आग्रह किया लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया. अब आप कहेंगे तो शायद मान जाए..."

दोनों ने लगभग एक साथ ही बेला की ओर देखा लेकिन अंधेरा होने के कारण कोई जान नहीं सका कि उनके प्रस्ताव की उस पर क्या प्रतिक्रिया हुई. बेला ने कहा, "अब चलना चाहिए. काफी देर हो गई है."

अचानक उसे लगा जैसे बीच में ही एक ही रास्ते पर चलते हुए बेला को यात्रा में अकेले छोड़ देना क्या उसके लिए बहुत बड़ा अन्याय नहीं है. लेकिन शीघ्र ही यह दुविधा एक लहर की भांति किनारे से टकराकर शांत हो गई.

जिद करके उन दोनों को रात्रि का भोजन कराने के लिए वह अपने होटल में ही ले गया यद्यपि उसका मन बिलकुल अकेले रहने के लिए उतावला था. उस लंबी शाम का बोझ अचानक ही उसे इतना भारी महसूस होने लगा था जिसे एकांत में वह हल्का कर लेना चाहता था.

"आप शायद नहीं जानते कि एक काली गहरी परछाईं बेला के साथ चिपकी हुई है. हमारी शादी के बाद वह ठीक हम दोनों के बीच एक दीवार बनकर खड़ी हो गई जो आज तक खड़ी है जिसे मैं कभी तोड़ नहीं सका और तोड़ भी नहीं सकता. लेकिन आप," क्षण भर तक चुप रहने के बाद रोहतगी ने फिर कहना शुरू किया, "आप उसे मिटा सकते हैं, या कम-से-कम उसके बोझ को हल्का कर सकते हैं," रोहतगी ने अपनी बात तेजी से पूरी कर दी.

उसे कुछ भी समझ में नहीं आया. आश्चर्य के साथ भय और आशंका ने उसे घेर लिया. "क्या कह रहे हैं मिस्टर रोहतगी. जरा साफ-साफ कहिए जिससे मैं इस स्थिति को समझ सकूं."

रोहतगी भी अपनी बात को पूरी करने की जल्दी में था, "पिछले सात साल हम लोगों ने जिस तरह जिए हैं, उसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते. मैं अपनी बात नहीं, बेला की बात कर रहा हूं. ऐसी स्थिति में वे अधिक देर तक जीवित नहीं रह सकेंगी. आप ही हमारी मदद कर सकते हैं." उसका स्वर कुछ रुंधा हुआ-सा हो गया था. कोशिश करने पर वह फिर कहने लगा, "बेला ने अपने भीतर कितनी ही भ्रांतियां पाल रखी हैं जिनका पूरा हिसाब-किताब मैं नहीं जानता. उन्हें दूर करने के मैंने कितने ही निष्फल प्रयास किए. मुझे लगता है जैसे मेरी बातों में उन्हें मेरे अपने स्वार्थ की गंध आती है जिसके कारण उनकी सचाई का वह पूरा विश्वास नहीं कर पाती." फिर उसने सख्ती से एक निगाह उसके चेहरे पर डाली और बोला, "आपकी बात दूसरी है. फिर आपका भी तो कुछ फर्ज बन जाता है. आपको भी अपनी जिम्मेदारी का कुछ एहसास होना चाहिए."

'अपनी जिम्मेदारी' की बात सुनकर वह आश्चर्य में पड़ गया. यह तो उसने कभी नहीं सोचा. वह बर्फ की सिल की भांति चुपचाप खड़ा रहा. वैसी ही डगमगाहट, जैसी उस दिन थी जब जाने से पूर्व अंतिम बार वह बेला से मिला था.

"आप अकेले ही बेला के साथ दो-तीन दिन के लिए शिलालेख चले जाइए. मैं अपने दफ्तर में किसी जरूरी काम का बहाना बना दूंगा," रोहतगी के स्वर में हिचकिचाहट-सी थी, "मेरे ख्याल में आपके साथ अकेले यात्रा करने में बेला को बहुत मदद मिलेगी. जिस काल्पनिक मकड़ी के जाले में वह अपने आपको जकड़ा हुआ महसूस करती हैं, उससे पूर्ण रूप से न भी सही, लेकिन कुछ हद तक उससे छुटकारा पा सकेंगी."

रोहतगी का यह नया प्रस्ताव सुनकर उसके लिए तुरंत कुछ भी कहना असंभव-सा हो गया. यह साधारण-सी स्थिति ऐसा अविश्वसनीय मोड़ ले लेगी, इसकी कल्पना तक उसने न की थी. यह सच है कि शिलालेख जाने में बेला के साथ अधिक समय बिताने का उसे अवसर मिलेगा, यह वह जानता था. लेकिन अब अकेले बेला के साथ तीन-चार दिन बांटना...उसकी प्रतिक्रिया को वह स्वयं ही नहीं जान पाया.

"आप इनकार नहीं कीजिए. आप नहीं जानते कि इसका कितना बड़ा महत्व मेरे लिए है."

"क्या आपने बेला से पूछ लिया है? हो सकता है कि आपके बिना वह जाने को तैयार ही न हो."

"मैं पहले आपकी राय जान लेना चाहता था. आने से कुछ देर पूर्व मैं बहाना बना दूंगा कि ऑफिस से मेरे पास एक जरूरी मीटिंग का फोन आया है जिससे मैं नहीं जा सकूंगा. फिर यदि अकेले जाने पर बेला ने इनकार कर दिया तब तो मजबूरी होगी. फिर आप अकेले ही जा सकते हैं. लेकिन वह बाद की बात है. उसके बारे में अभी सोचना व्यर्थ है," रोहतगी बोला.

धीरे-धीरे स्थिति उसके सामने स्पष्ट होती गई. उत्साह और उदासीनता के बीच फंसकर उसे अपनी अजीब-सी स्थिति पर खीझ भी होने लगी लेकिन उससे बाहर निकलने की उसने विशेष चष्टा नहीं की.

रोहतगी ने जब बेला के सामने झिझकते हुए उसके अकेले ही शिलालेख जाने की बात कही तो न ही उसने उसका विरोध किया, न ही सहमति दी. अत्यंत उदासीनता भरी मुद्रा में उसने रोहतगी की बात सुनी और फिर रास्ते के लिए बनाए चिकन सैंडविच, फल, कॉफी से भरी थर्मस आदि टोकरी में तरतीब से लगाने लगी. रोहतगी असमंजस में उसकी ओर देखता रहा लेकिन समझ में अधिक नहीं आया. कितनी ही इस तरह की बातें उसकी समझ में नहीं आती थीं.

शिलालेख के रेस्टहाउस के सामने घास और क्यारियों का एक छोटा-सा बाग था जिसके एक छोर से नर्मदा का शांत और स्निग्ध जल दिखाई देता रहता था, लेकिन उसका स्वर सुनाई नहीं देता था. दूर-दूर तक फैले बालू के चमकते कणों के बीच नर्मदा की नीली जलधारा सोयी हुई जान पड़ती थी. वह दृश्य देखते ही उसने सहसा महसूस किया जैसे उस एक ही क्षण में अपनी सब विडंबनाओं से उसने मुक्ति पा ली हो. उसके भीतर का सारा कोलाहल उस वातावरण में अपनी सीमा को पार करके शांत हो गया जिसके आगे कुछ देखने या पाने की लालसा समाप्त हो गई. लेकिन बेला... उसकी उपस्थिति का एहसास होने पर लगा जैसे वह फिर वापस लौट आया हो.

बाग के एक कोने में लगे पेड़ की छाया में उसने चौकीदार से मेज और दो आरामकुर्सियां रखने के लिए कहा और स्वयं कार में से बीयर की बोतलें निकालकर घास पर रख दीं. हवा तेज थी और ऊपर खुला आकाश था और चारों ओर फैला था सांय-सांय करता एक सन्नाटा.

उसने अपने भीतर एक अजीब-सा उत्साह महसूस किया मानो इतने लंबे अरसे से जिन घुमावों में वह भटक रहा था, वहां अचानक ही उसे एक राह मिल गई जो उसे कहीं-न-कहीं तो ले ही जाएगी.

बेला अपने कमरे में मुंह-हाथ धोने और कपड़े बदलने चली गई थी. रास्ते में दोनों के बीच यात्रा में मिले दो अपरिचितों की भांति औपचारिकता से भरी हुई कुछ उखड़ी-सी बातें हुई थीं जिनका कोई मतलब नहीं होता. इस अंधेरी सुरंग में से क्या वह बेला के साथ बाहर निकल सकेगा? उसे मन ही मन हंसी भी आई. रोहतगी द्वारा रचित इस नाटक में नायक का रोल खेलने की क्या उसमें सामर्थ्य है? अपने लिए सहारे की खोज में भटकता व्यक्ति दूसरे को कैसे रास्ता दिखा सकेगा? इस तरह की शंकाएं उसके मन में उठने लगी थीं. फिर भी स्थिति को देखते हुए ऊपर उठने की वह कोशिश करने लगा.

बेला को कमरे से निकलते देखकर अचानक ही उत्साह की एक लहर उसके मन में उठी. मुंह-हाथ धोने के बाद बेला ने आसमानी रंग की सूती धोती पहनी थी जिस पर जरी का छोटा-सा बॉर्डर दूर से ही चमक रहा था. यात्रा की थकान का एक भी चिह्न उसके चेहरे पर दिखाई नहीं दिया. उसकी ओर आते-आते वह झाड़ियों की ओर मुड़ गई और फूलों का गुच्छा तोड़ लिया. बेला ने फूलों को मेज पर रख दिया, "इन फूलों को देखकर तुम्हें कोई पुरानी बात याद आती है?"

उसने फूलों को सूंघा, "नहीं, कुछ भी याद नहीं आता." उसने आश्चर्य से बेला की ओर देखा.

बेला पास रखी कुर्सी को खिसकाकर बैठ गई, "तुम भूल चुके हो शायद. यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी के पास ऐसे ही फूलों की झाड़ियां थीं. मैं इन्हें हाथ से मसलकर इनकी खुशबू सूंघा करती थी जो देर तक उंगलियों पर चिपकी रहती थी. तुम देखो..."

उसने फूल को दबाकर सूंघा और अपना हाथ बेला की ओर बढ़ा दिया, "देखो, अब भी आती है."

बेला ने उत्तर नहीं दिया, सामने देखती हुई कहने लगी, "कुछ लोग नर्मदा को गंगा से भी ज्यादा पवित्र मानते हैं. कितना अजीब-सा लगता है यह बहता हुआ जल, जिसकी यात्रा कभी खत्म नहीं होती."

वह हंसकर बोला, "क्यों? समुद्र में मिलकर नदी की यात्रा क्या समाप्त नहीं हो जाती?" उसे लग रहा था जैसे शिलालेख में आते ही बेला कुछ बदल-सी गई है. चेहरे का रंग, बातें करने का ढंग, आंखों में छिपी रोशनी, सब की कायापलट-सी गई हो.

उसने बीयर की एक बोतल खोली और मेज पर रखे दो गिलासों में उड़ेल दी. उसे आशंका थी कि कहीं बेला मना न कर दे लेकिन उसका ध्यान कहीं और था. "कभी सोचा नहीं था कि शिलालेख इतना सुंदर होगा." उसने कहा और ठंडी बीयर का एक लंबा-सा घूंट पीकर एक सिगरेट सुलगा ली. वह पांव फैलाए बालू के तट के पार घने जंगलों की ओर देखते हुए यात्रा की थकान दूर करने की कोशिश करने लगा. उस निस्तब्धता में अपने आपको समेट लेने की इच्छा होने लगी. 'नहीं, सब का अंत नहीं होता. कुछ ऐसे ही अंतहीन अवस्था में भटकते रहते हैं,' वह सोचता रहा.

बेला ने अचानक हंसी का ठहाका लगाया जिससे वह चौंककर सीधा बैठ गया. "कहां खो गए थे? कितनी देर से मैं देख रही हूं और तुम्हें पता तक नहीं चला. जान पड़ता है, यहां से बहुत दूर अतीत के किसी कोने में खो गए थे."

वह हंसने लगा, " मैं तो ठोस वर्तमान में ही डूबा हुआ था. उससे बाहर निकलने की राह खोज रहा था."

"अच्छा? क्या सफलता मिली?" बेला ने हंसते हुए पूछा.

"बीयर पिओ बेला. थकान दूर हो जाएगी."

बेला ने पास रखा गिलास उठा लिया और एक ही घूंट में आधा खत्म कर दिया. "बहुत सुंदर दिन है और यह रेस्टहाउस भी देर तक याद रहेगा." आगे भी कुछ कहने जा रही थी लेकिन क्षण भर की दुविधा के बाद रुक गई.

रोहतगी से विदा लेकर जब से कार में बैठकर उनकी यात्रा शुरू हुई तब से वह बेला के चेहरे के पीछे झांकने की कोशिश कर रहा था. बेला से भी यह बात छिपी नहीं रही. एक बार वह हंसकर बोली, "क्या हम एक-दूसरे की जासूसी करने के लिए इस यात्रा में आए हैं?"

उसने भी हंसकर टाल देना चाहा, "कैसी जासूसी?"

"तुम क्या नहीं जानते? मैं सब कुछ जानती हूं. लेकिन छोड़ो इन व्यर्थ की बातों को..."

बात वहीं खत्म भी हो गई लेकिन कई बार उसे याद आई जिससे वह सतर्क हो गया.

बाद में उसे बेला की कही जासूसी की बात सोचकर हंसी भी आई लेकिन उसे विषय की गंभीरता का भी लगातार एहसास होता रहा. वह क्यों और कैसे इस उलझन में फंसने को तैयार हो गया? किस उद्देश्य से अकेले बेला के साथ यहां आने का रोहतगी का प्रस्ताव उसने स्वीकार कर लिया? अपने ही जाल में से बाहर निकलने में असफल व्यक्ति एक और भी उलझी स्थिति के अंधेरे में अपने आपको समर्पित करने के लिए तैयार कैसे हो गया? एक घने पेड़ की छाया में बैठे, निस्तब्धता के आवरण में अपने आप को छिपाए, सामने दिखाई देते नर्मदा के शांत, स्निग्ध जल प्रवाह के साथ चुपचाप बहते जाने की नियति उसे कहां ले जाएगी? उसने एक लंबी सांस ली जिससे वह उस दलदल में से बाहर निकल सके.

"तुम फिर कहीं खो गए हो," बेला ने इस बार गंभीर मुद्रा में उसकी बांह झिंझोड़ते हुए कहा, "तुम कुछ नहीं कर सकते. छोड़ दो व्यर्थ की यह चेष्टा जिसका परिणाम कुछ नहीं निकलेगा. बहुत देर हो चुकी है," वह मानो अपने आपसे ही कह रही थी, "और उसकी जरूरत भी क्या है? हम सब अपने-अपने घेरों में बंधे जीवन का समय काटने के आदी हो गए हैं, तब उस लक्ष्मण रेखा को लांघने की जरूरत क्यों?"

वह हंसने लगा. "यह सब क्या सोच रही हो बेला?"

"अब मैं कुछ भी नहीं सोचती. कुछ आदतें समय और परिस्थितियों के साथ साथ बदलती जाती हैं," उसने मानो अपने आप से ही कहा.

वह ध्यान से बेला की ओर देखता रहा. फिर एक लंबी सांस खींचकर बीयर का गिलास खत्म कर दिया. हवा तेज चलने लगी थी. ऊपर छाये घने पेड़ की कुछ पत्तियां उनके पास ही गिर जाती थीं. उसने पास ही रखी टोकरी में से कुछ चिकन सैंडविच निकालीं और मेज पर रख दीं, "मैं होटल से ही इन्हें पैक करवा कर ले आया था."

बेला नैपकीन में रखे सैंडविच को देखती रही. फिर हंसकर कहने लगी, "पुरानी स्मृतियों को जीवित करने का प्रयास कभी सफल नहीं होता, ऐसा मेरा विश्वास है. उन्हें एक बार दफनाने के बाद फिर उनसे संबंध कभी नहीं जुड़ते..."

वह समझ नहीं सका. बेला की ओर देखता रहा.

सुबह उसकी आंख जल्दी ही खुल गई. कोशिश करने पर भी वह अधिक सो नहीं पाएगा, यह जानकर चारपाई छोड़कर उठ खड़ा हुआ. रात को भी तरह-तरह के बेसिर-पैर के स्वप्न दिखाई देते रहे थे. समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था. वह कमरे के बाहर बरामदे में आ गया जहां सूरज की पहली किरणें चमकने लगी थीं. बेला के कमरे का दरवाजा बंद था. बाग में हवा कुछ तेज ही थी जिससे पेड़ों की हल्की शाखाएं धीमी गति से हिल रही थीं. घास पर रात की गिरी ओस की बूंदें उज्जवल मोतियों की तरह चमक रही थीं.

चौकीदार को देखकर गरम चाय पीने की इच्छा अनायास ही प्रबल हो उठी. चाय लाने का आदेश देकर बरामदे में दोनों कमरों के बीच पड़ी एक आरामकुर्सी पर बैठ गया. यह सोचकर प्रसन्नता ही हुई कि बेला अभी सो रही है जिससे अकेले में वह अपनी भटकती भ्रांतियों को कुछ हद तक समेट सकेगा. लेकिन आंखों के सामने एक कोहरा-सा ही

SUITABLE TRAVEL WEAR FOR A PALACE-ON-WHEELS HOLIDAY.

Pack in the lifestyle of a Maharaja. With Odyssey. From VIP.

It's more than just luggage. It's a symbol of luxury.

The smoothest ride on wheels. Check the plush interiors. The impeccable finish.

The unexpected details. When you are travelling first class, you've got to wear the style to match.

Suitcases: Rs. 1445/- onwards. Briefcases: Rs. 1125/- onwards. Vanity Cases: Rs. 1245/-

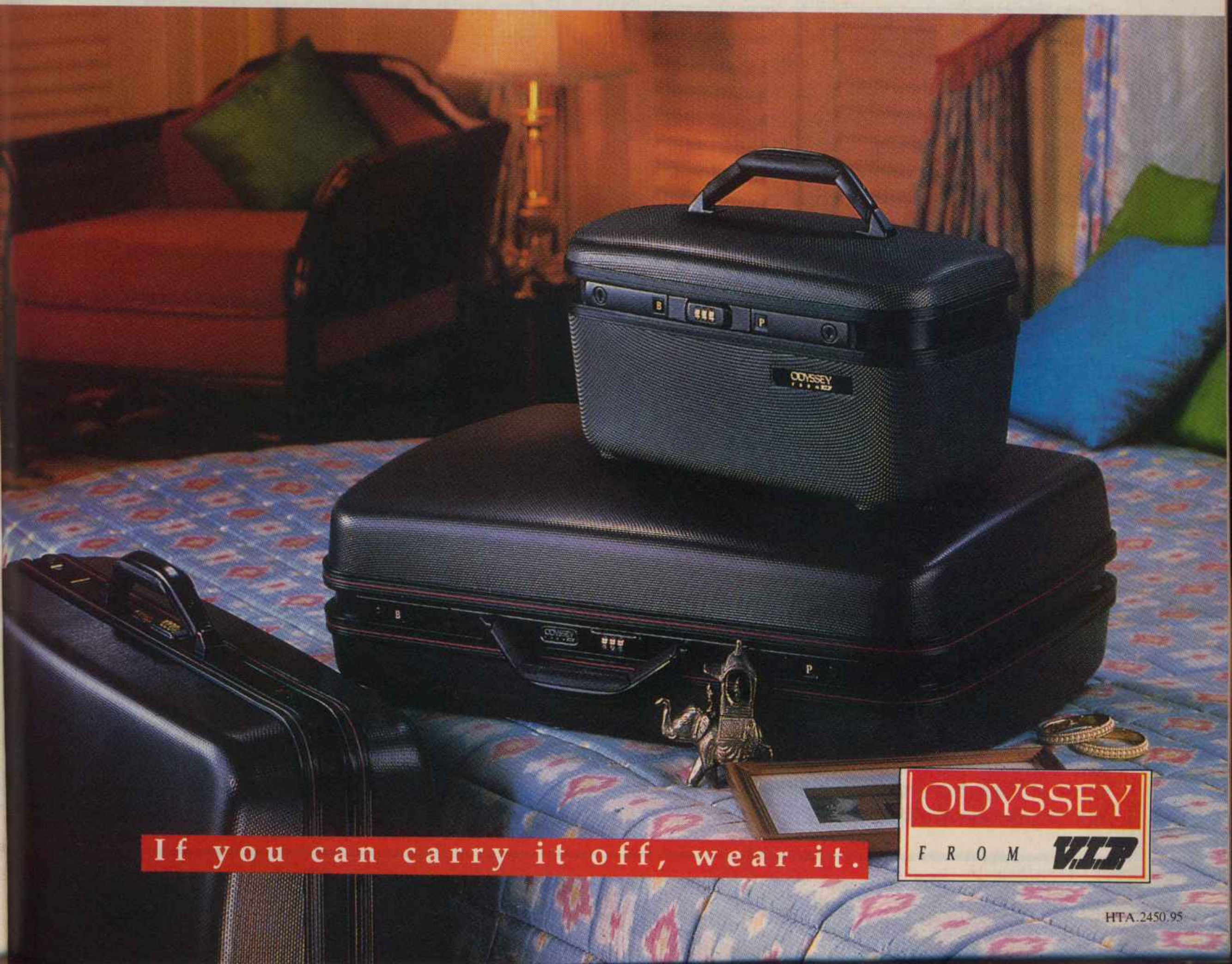

छाया रहा जिसके पार अदृश्य परछाइयां एक कोलाहल-सा करती रहीं जिसे इच्छा न होने पर भी उसे सुनना पड़ा. बेला के कमरे के बंद दरवाजे से बाहर कोई हल्की-सी आहट भी सुनाई नहीं दी. उसे लगा जैसे इस डाकबंगले तक पहुंचकर उसकी लंबी यात्रा अचानक ही समाप्त हो गई हो. वह मानो एक स्थायी पड़ाव था.

चौकीदार चाय ले आया तो वह वास्तविकता की स्थिति में पहुंच गया. "वे अभी शायद चाय नहीं पिएंगी," चौकीदार ने बेला के कमरे की ओर देखते हुए पूछा.

"नहीं, वे सो रही हैं. उन्हें सोने ही दो..."

गरम चाय के पहले ही घूंट में उसने अपने भीतर एक स्फूर्ति का अनुभव किया. चाय पीकर सिगरेट सुलगाते वक्त उसे बेला की बात सहसा याद आ गई, "बहुत सिगरेट पीने लगे हो—" उसके हाथ अचानक रुक गए. फिर मन ही मन हंसते हुए उसने सिगरेट सुलगा ली. उसे यह भी याद आया, "अब बहुत देर हो चुकी है..." कल शाम को ही बेला ने मानो उसे आश्वासन देते हुए कहा था. उसका चेहरा यकायक बहुत गंभीर हो गया. सामने बाग के सिरे पर लगे पेड़ों की कतार में से सूरज की किरणें घास के मैदान पर अजीब-सी आकृतियां बनाने लगी थीं.

> इस अंधेरी सुरंग में से क्या वह बेला के साथ बाहर निकल सकेगा? रोहतगी द्वारा रचित इस नाटक में नायक का रोल खेलने की क्या उसमें सामर्थ्य है? अपने लिए सहारे की खोज में भटकता व्यक्ति दूसरे को कैसे रास्ता दिखा सकेगा?

आज शिलालेख में उनका दूसरा दिन था, आज कोई जल्दी नहीं थी. गुफाओं में बने प्री हिस्टोरिक समय के कुछ रेखाचित्र देखने का प्रोग्राम अवश्य था, जो बाद में भी फिर कभी पूरा किया जा सकता है.

बेला के कमरे के बंद दरवाजे के पास जाकर उसे पता चला कि खिड़की भी बंद है. उसने तो रात को अपनी खिड़की खोल दी थी जिससे बाहर की ताजा हवा भीतर आ सके. बेला ने खिड़की क्यों नहीं खोली? दूसरे ही क्षण इस बात को भूलकर नंगे पांव गीली घास पर टहलता हुआ झाड़ियों के पास पहुंच गया जहां से वह नर्मदा की धारा को देख सकता था. दूर नदी पर पाल लगी एक नाव धीमी गति से बह रही थी. हवा तेज थी जिससे उसके रूखे बाल उड़ने लगे. बेला भी सुबह का यह दृश्य देखती तो उसे अच्छा लगता. उसे बेला को जगा देना चाहिए. पता नहीं, रात को कब सोयी होगी. सूरज कुछ ऊपर आ गया था.

कुछ देर बाद उसने हिचकते हुए बेला के दरवाजे पर हल्की-सी दस्तक दी और चुपचाप भीतर से किसी आवाज की प्रतीक्षा करता रहा लेकिन भीतर सन्नाटा ही छाया रहा जैसे वहां कोई न हो. दोबारा खटखटाना उचित नहीं समझा और वह अपने कमरे में आ गया. किसी अपरिचित स्थान में होटल या इस तरह के डाकबंगले में अकेले अपने कमरे में बैठे हुए उसका समय बहुत मुश्किल से बीतता था. न कोई पुस्तक पढ़ पाता था, न अखबार में दिलचस्पी रहती थी, खाली कमरे में घुटन-सी होती थी. अपने आने का उद्देश्य भी अर्थहीन-सा जान पड़ता था. ऐसा कितनी ही बार उसने महसूस किया था लेकिन उस गलती का इलाज भी उसके पास नहीं था.

स्नान के बाद कपड़े बदलकर उसने एक बार फिर अपने भीतर उत्साह की एक लहर महसूस की. नई चेक की कमीज पर उसने तेज खुशबू का स्प्रे छिड़का जिसकी सुगंध सारे कमरे में फैल गई. कनपटियों पर जहां बालों की सफेदी चमकती थी, उन्हें हल्के काले रंग से रंगा. वह जानना चाहता था कि बेला यह सब देखती है या नहीं. बरामदे में निकलकर देखा तो बेला का दरवाजा उसी तरह बंद था. वह सोच रहा था कि वह बरामदे या बाग में बैठी चाय पी रही होगी. बेला को इतनी देर तक सोते रहने की आदत तो नहीं होनी चाहिए क्योंकि रोहतगी जल्दी ही ऑफिस चले जाते हैं. किसी के विषय में कुछ भी जानना कितना कठिन है.

उसे थोड़ा भय भी लगा. वह फिर उसके कमरे के पास गया और बिना किसी दुविधा के इस बार कुछ जोर से दरवाजा खटखटाया जिसकी आवाज से सोता हुआ आदमी जग ही जाएगा. लेकिन इसका भी कोई नतीजा नहीं निकला. चिंता के घेरे में अब वह पूर्ण रूप से बंध गया. बार-बार जेब में घड़ी टटोलता, फिर याद आता कि वह तो उसने रोहतगी को दे दी थी. टाइमपीस कमरे के अंदर था. उसकी खीझ बढ़ जाती. चौकीदार से उसकी घबराहट छिपी नहीं रही. दो-तीन बार वह उसके पास आया लेकिन उसने उसे विदा कर दिया.

"पता नहीं, क्या हो गया. परदे में से कुछ दिखाई भी नहीं देता," चौकीदार के पास आने पर वह बोला.

चौकीदार ने उसे सांत्वना देने के विचार से कहा," पीछे बाथरूम में जो खिड़की है, उसकी चिटखनी टूटी हुई है. आप चाहें तो खिड़की में से भीतर घुसकर देख लें."

अपनी उत्तेजना को दबाते हुए वह बोला, "नहीं-नहीं, वैसा करने की जरूरत नहीं है. कुछ देर में अपने आप ही उठकर दरवाजा खोलेंगी. रात को शायद देर से सोयी हों..." मन ही मन यह जानकर तसल्ली हुई कि बिना दरवाजा तोड़े कमरे के भीतर जाना संभव है. आवश्यकता पड़ने पर इसी का उपयोग किया जाएगा. और कुछ देर बाद उसने ऐसा ही किया. डाकबंगले के पिछवाड़े में किसी व्यक्ति के उपस्थित न होने की जानकारी के बाद वह खिड़की खोलकर गुसलखाने में आ गया जहां से कमरे पर एक दृष्टि डाली. कमरे के भीतर बेला किस स्थिति में होगी, इसका अनुमान लगाकर उसे भय भी लगा था. भीतर घुसने में भी हिचक हुई. अकारण खुद को इस मुसीबत में फंसा देख उसे क्रोध भी आ रहा था. बेला करवट लेकर आंखों को एक बांह से ढके स्थिर लेटी थी. "बेला... बेला..." उसने बांह झिंझोड़कर उसे जगाने की कोशिश की.

उसकी तेज आवाज सुनकर बेला ने आंखें खोल दीं और उसे पास ही खड़े देख असमंजस में पड़ गई, "क्या हुआ..." वह बैठ गई, "तुम यहां कैसे आ गए? क्या बात है?" उसके स्वर में घबराहट और चिंता थी.

बेला का स्वर सुनकर उसने चैन की सांस ली. अपनी उपस्थिति पर थोड़ी झेंप भी हुई, "कितनी देर से दरवाजा खटखटा रहा था..."

बेला को वास्तविक स्थिति का कुछ आभास हुआ, "देर में स्लीपिंग पिल खाई थी, इसी से आंख नहीं खुली."

"बारह बज रहे हैं. अच्छा मैं बाहर जाता हूं. कुछ चाहिए?" वह दरवाजे की चिटखनी खोलने के लिए आगे बढ़ गया.

"एक कप चाय भिजवा दो."

"अभी चौकीदार ले आएगा," वह तेजी से बाहर चला गया. उसका दिल अभी तक बहुत तेजी से धड़क रहा था. अनिष्ट का जो भय उसके मन में समाया हुआ था, वह पूर्ण रूप से दूर नहीं हुआ था. बाग में पहुंचकर उसे थोड़ी राहत-सी मिली. सिगरेट सुलगाकर उसने चैन की सांस ली और चहलकदमी करने लगा. वही बहता जल और सांय-सांय करती निस्तब्धता, शिलालेख का यह दृश्य देर तक मन पर छाया रहेगा.

"क्या सचमुच डर गए थे?" अचानक ही बेला का स्वर सुनकर वह चौंक गया. उसने हड़बड़ाकर बेला की ओर देखा. उसे लगा जैसे बड़ी तन्मयता के साथ जरूरत से ज्यादा ही बेला ने श्रृंगार किया था. प्याजी रंग की सिल्क की साड़ी में उसका सादा शरीर निखर गया था. वह कुछ देर तक देखता ही रहा, मुंह से एक भी शब्द नहीं निकला.

"स्लीपिंग पिल का ऐसा गहरा असर होगा, यह मैंने नहीं सोचा था. लेकिन तुम्हें गुसलखाने की खिड़की से आने की जरूरत नहीं थी. क्या अकेले तुम्हारे साथ इस तरह का कोई कदम मैं उठा सकती हूं? उसके

लिए तो घर ही काफी है..."

"अच्छा, चुप हो जाओ बेला. आइ एम सॉरी..."

"खैर, छोड़ो इन बातों को. बाद में सोचूंगी तो हंसी ही आएगी तुम्हारी इस बेवकूफी पर," वह कुर्सी पर इत्मीनान से बैठ गई, "आज तो गुफाओं में जाकर पुराने चित्र देखने का प्रोग्राम था न? अब तो लंच के बाद ही जा सकते हैं." चौकीदार दो प्याले कॉफी ले आया.

"मैंने ही कॉफी लाने को कहा था," बेला ने कहा, "आज मैं भी कॉफी पिऊंगी, बीते हुए दिनों की याद में. यहां शिलालेख के इस डाकबंगले के लॉन में...यह भी देर तक याद रहेगा." उसे लगा जैसे बेला बहुत-सी तहों से एक ही दिन में बाहर आ गई हो. उसकी बातचीत, उसका उत्साह, उसके चेहरे की मुद्रा सब जैसे यकायक एक दूसरी ही दिशा में अपना रास्ता बना रही हों. "आज तो तुम बहुत स्मार्ट लग रहे हो!" बेला ने हंसते हुए कहा.

वह धीरे-धीरे नॉर्मल होता जा रहा था. उसे यह सोचकर झेंप हो रही थी कि उसने ही जल्दबाजी और उतावलेपन में बेला के विषय में बेबुनियाद आशंकाएं पाल ली थीं.

"क्या तुम प्रायः स्लीपिंग पिल लेती हो?" उसने गंभीर स्वर में पूछा.

बेला ने जोर का ठहाका लगाया, "इसका जवाब मैं नहीं दूंगी." कुछ देर वह चुप रही. फिर कहने लगी, "जानते हो पहली स्लीपिंग पिल मैंने उस रात को खायी थी जब तुम हवाई जहाज पर चढ़े थे. इच्छा तो हो रही थी कि पूरी बोतल ही खा लूं, लेकिन ऐसा नहीं किया. एक ही गोली खाई."

वह चुपचाप सिगरेट पीता रहा. बेला की बात सुनकर वह जैसे एक ही क्षण में बहुत ऊंचाई से नीचे पहुंच गया हो. बेला की ओर देखने तक का साहस नहीं हुआ.

"लेकिन इसमें घबराने की कोई बात नहीं है. डॉक्टर ने कहा है कि नींद न आने की अपेक्षा नींद की गोली खाकर सो जाना ही बेहतर है."

"कॉफी पी लो वरना ठंडी हो जाएगी..." उसने बहुत तटस्थ भाव से कहा. बेला ने उसकी बात सुनी नहीं.

"कभी-कभी मैं सोचती हूं कि तुम्हारा उस वक्त बाहर चला जाना अच्छा ही हुआ," बेला कॉफी के प्याले को हाथ में थामे कहने लगी, "तुम्हारे लिए भी और मेरे लिए भी..." बेला ने उसके चेहरे पर एक उड़ती-सी निगाह डाली, "हमारी मैत्री, आत्मीयता के जो संबंध बने थे उसने हम दोनों को ही पंगु बना दिया था जिससे उन संबंधों को आगे घसीटकर हम कभी सुख और चैन से नहीं रह सकते थे. तब हम जिसे सुख मानते वह अपने आपको धोखा देने के बराबर होता जिसका पता जल्दी ही चल जाता."

"इसी धोखे की वजह से शायद मेरा विवाह भी असफल रहा. और कोई कारण तो मेरी समझ में आता नहीं. मारिया भी नहीं समझ सकी. वह मुझसे पूछती थी, लेकिन जिसे मैं स्वयं ही नहीं जानता था, उसे कैसे बतलाता."

कुछ देर बाद बेला ने कहा, "तुमने मारिया के बारे में कुछ नहीं बतलाया. कैसी थी वह? क्या बहुत सुंदर थी?"

वह अपने अतीत में कहीं भटक गया. "मारिया..." क्षण भर बाद कहने लगा, "पता नहीं तुम्हें मालूम है या नहीं कि वह मिक्स्ड ब्लड की थी—ब्लैक ऐंड व्हाइट—लेकिन ब्लैक अधिक. हमारे जैसा ही उसका रंग था, लेकिन बिलकुल अलग ही दुनिया से आई हुई. व्हाइट से इतनी नफरत थी कि मेरी सफेद कमीज तक सहन नहीं कर सकती थी. एक दिन उसने मेरी सारी सफेद कमीजों, बनियानों और रुमालों को जला दिया. मुझे लगता है जैसे वह सनकी-सी थी, या थोड़ी पागल भी..." वह अचानक चुप हो गया, "लेकिन मारिया की चर्चा आज यहां क्यों की जाए. वह अध्याय तो सदा के लिए बंद हो चुका है."

बेला उसकी ओर ध्यान से देख रही थी, "जो अध्याय एक बार शुरू होता है, वह शायद कभी समाप्त होता नहीं. मृत्यु के बाद तक चलता रहता है—धुंधला हो जाता है लेकिन मिटता नहीं."

देर तक वे आरामकुर्सियों पर लॉन में चुपचाप बैठे रहे. ऊपर पेड़ की शाखा पर कोई पक्षी कुछ देर के लिए आ बैठता और कुछ आवाजें निकालकर उड़ जाता. लंच के बाद वे गुफाएं देखने गए. लगभग बीस मील की दूरी पर जंगल और पहाड़ियों के बीच काली चट्टानों के भीतर बनी ये गुफाएं बहुत पुरानी बताई जाती हैं. सीधी-सादी काली रेखाओं में बनी जानवरों और आदमियों की ये अजीब-सी आकृतियां बनाने वालों के इतिहास, उनके परिवेश के बारे में कोई जानकारी नहीं देतीं. ये रेखाचित्र कल्पना शक्ति के अभूतपूर्व उदाहरण थे जिन्हें पूरी स्वतंत्रता के साथ उन कलाकारों ने दर्शाया था.

गुफाओं में अंधेरा था. कहीं-कहीं चट्टान के बीच बड़ा-सा सुराख बना था जहां से बाहर चमकते सूरज की रोशनी भीतर कुछ उजाला कर देती थी. बेला कई बार गिरते-गिरते बची जिससे उसने बेला का हाथ कसकर पकड़ लिया, "गिरोगी तो हड्डी टूट जाएगी और इस बियाबान में मुझे ही तुम्हें कंधे पर ढोकर वापस ले जाना पड़ेगा." अंधेरे में ही उसने बेला की हंसी सुनी.

गुफाओं के एक सिरे पर फूस की छत के नीचे बना चाय का ढाबा था जिसके बाहर कुछ कुर्सियां, बेंच और मेज रखे हुए थे. गुफाओं में घूमते हुए वे दोनों इतने थक गए थे कि

वहां बैठकर चाय पीते हुए कुछ सुस्ता लेने की योजना में दोनों ने ही उत्साह दिखलाया. पास ही एक बस स्टॉप भी था जहां आसपास रहने वाले कुछ आदिवासी बस की प्रतीक्षा कर रहे थे. कुर्सी पर बैठकर बेला अपने आसपास की झाड़ियों, चट्टानों और लाल मिट्टी की दूर तक दिखाई देती सड़क को देख रही थी. कहीं किसी का भी स्वर सुनाई नहीं दे रहा था. एक चट्टान के पीछे सूरज डूबने की तैयारी कर रहा था.

"ऐसी सुनसान वीरान जगह में कोई रहे तो शायद उसे लगेगा जैसे बाहर की दुनिया के साथ उसका कोई संबंध न हो," बेला ने अपने आप से ही कहा.

वह हंसते हुए बोला, "इतनी शांति और इतना अकेलापन वह सहन नहीं कर सकेगा. उसे शहरों में रहने की आदत पड़ गई है."

"कोशिश करके देखना चाहिए," बेला ने कहा, "आदिवासी बच्चों के लिए एक स्कूल खोला जा सकता है."

शाम होते ही हवा तेज हो गई थी और ठंडी भी. "वक्त जैसे रुक गया है. यहां रहकर हमारी उम्र बहुत धीरे-धीरे बढ़ेगी और जिंदगी बहुत लंबी हो जाएगी," बेला धीमे स्वर में कह रही थी, "हम जैसे केवल अपने लिए ही जीवित रहेंगे." उसने अचानक दूसरी दिशा की ओर देखा जहां धूल उड़ रही थी, कुछ ही देर में गायों और बछड़ों का एक झुंड उनकी ओर ही आता दिखाई दिया. वह चुपचाप बस के अड्डे की ओर देखता हुआ सिगरेट पीता रहा. उसे लग रहा था जैसे भीतर कोई रिक्तता धीरे-धीरे फैलती जा रही है जो उसे पूर्ण रूप से अपने में बांध लेने की चेष्टा कर रही हो. उससे बाहर निकलने की उसने कोई चेष्टा नहीं की. "चलो बेला, वापस लौट चलें. अंधेरा होने से पहले ही डाकबंगले पहुंच जाना चाहिए," उसने बची हुई सिगरेट जूते से मसल दी.

डूबते सूरज की लालिमा में डूबा यह जंगल और उसके बीच बना यह टी-स्टॉल और आसपास दिखाई देते हुए आदिवासी लोग. बेला ने कहा, "एक-एक कप चाय और पी लेते हैं, फिर वापस चलेंगे. यहां से जाने की इच्छा ही नहीं हो रही."

चाय का ऑर्डर देकर, पैंट की जेबों में हाथ डाले वह आलस्य दूर करने के लिए सीधा खड़ा हो गया और कुछ कदम आगे बढ़कर आसपास का लैंडस्केप देखने लगा. साफ-सुथरा आकाश और कोने-कोने से आती हुई निस्तब्धता, जहां बांधने वाले सब तार एक-एक करके टूटने लगते हैं. एक युवा आदिवासी लड़का और लड़की सामने बेंच पर बैठे चाय पी रहे थे. लड़की बेला की ओर बड़े कौतूहल से देख रही थी और कभी-कभी लड़के के कान में कुछ फुसफुसाकर हंसने लगती थी. उनका रंग मंजे हुए तांबे की भांति चमक रहा था. लड़की के माथे पर चौड़ी-सी बिंदी थी. वह देर तक उन दोनों को देखता रहा. और उनकी सीधी-सादी जिंदगी के बारे में अनुमान लगाता रहा.

सुबह बेला का देर से उठना और स्लीपिंग पिल, गुफाओं में दो-तीन घंटों तक घूमना और डाकबंगले से शिलालेख तक का ऊबड़-खाबड़ रास्ता. अंत में अंधेरा होने के बाद जब वे डाकबंगले पहुंचे तो बेहद थकान महसूस की. उसने सुझाव दिया कि खाने से पूर्व थोड़ी रम पीकर थकान दूर हो जाएगी. बेला ने न हां की, न ही इनकार किया. वे दोनों उसके कमरे में ही आ गए. उसके कहने पर वह बाथरूम में जाकर मुंह-हाथ धो आई और थोड़ा-सा मेकअप कर लिया और फिर आरामकुर्सी पर पांव फैलाकर पसर गई. उसने अपने सूटकेस में से रम की छोटी बोतल निकाली और दो गिलासों में, एक में ज्यादा और दूसरे में कम उड़ेलकर पानी में भर दिया. एक सिगरेट सुलगाकर पास वाली कुर्सी पर सीधा बैठ गया.

"आज का दिन एक बहुत लंबी यात्रा के समान जान पड़ रहा है," बेला ने कहा.

गिलास का एक घूंट पीकर वह कहने लगा, "छोटी-बड़ी यात्राओं को जमा करके ही इतनी लंबी जिंदगी गुजर जाती है और इस दौरान बार-बार हम उसी बिंदु पर पहुंच जाते हैं जहां से हमने एक शुरुआत की थी..." वह हंसने लगा.

"कभी-कभी मेरा मन अकेले ही एक बहुत लंबी, कभी समाप्त न होने वाली यात्रा को करता है लेकिन जानती हूं कि यह स्वप्न कभी साकार नहीं होगा, लेकिन स्वप्न देखने का भी अपना सुख है," वह हंसकर बोली, "जैसे तुम दरअसल पहले निकल गए थे."

वह चुप रहा. कुछ देर बाद अचानक ही खड़ा हो गया, "अरे, मैंने तुम्हें मुक्ति की फोटो नहीं दिखाई..." फिर उसे याद आया कि बेला नहीं जानती कि मुक्ति कौन है, "मुक्ति मेरी लड़की का नाम है..."

उसने मेज पर रखी काले चमड़े की जिल्द वाली एक डायरी में से एक फोटो निकाली और बेला के हाथ में दे दी. "तब वह पांच साल की थी दो साल पहले की..."

"अरे, बिलकुल तुम पर ही गई है., वही आंखें वैसा ही माथा और फैली हुई नाक और घने काले बाल..." बेला फोटो को देखती हुई कहती रही, "बहुत प्यारी लगती है."

कुछ देर बाद वह बोला, "अगले साल मैं उसे यहां लाऊंगा."

"बिलकुल हिंदुस्तानी ही लगती है..." बेला ने फोटो से दृष्टि हटाकर उसकी ओर देखा, "क्या मारिया की फोटो भी है?"

उसने बेला की ओर चौंककर देखा, "नहीं, यहां नहीं है." फिर धीमे स्वर में कहने लगा, "मारिया से वह बिलकुल भिन्न है और रहना उसे मारिया के साथ ही पड़ता है. लेकिन मारिया उसे बहुत प्यार करती है."

बेला अचानक वहीं रुक गई और देर तक हिली-डुली नहीं. उसने भी कोई बाधा नहीं डाली. एक-दो बार कनखियों से उसने बेला को देखा भी लेकिन रम का गिलास हाथ में पकड़े वह स्थिर बैठी रही. उसे लगा जैसे गिलास उसके हाथ से छूटकर फर्श पर गिर पड़ेगा. वह चुप ही रहा.

खुली खिड़की में से बाहर अंधकार के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं दे रहा था. उसने मेज पर रखी घड़ी देखी लेकिन अभी आठ ही बजा था. कभी-कभी समय कितना धीरे बीतता है, उसने सोचा.

''कभी-कभी मैं सोचती हूं कि संतान से दुख ही अधिक मिलता है. जो सुख है भी, उसके भीतर कहीं यातना की कैंसर की तरह एक गांठ कहीं छिपी रहती है.''

वह हाथ में रम का गिलास थामे, उसे देखता रहा.

''मैं दोबारा इस यातना का शिकार नहीं बनना चाहती,'' बेला उसी प्रकार तटस्थ भाव में डूबी हुई कहने लगी, ''इस बात को रोहतगी नहीं समझते या समझना ही नहीं चाहते.''

वह उठकर खिड़की के पास जाकर खड़ा हो गया. हवा के धीमे झोंके भीतर आ रहे थे. वह बाहर अंधेरे में डूबे पेड़ों को देखता रहा जो उस वक्त काले धब्बे से दिखाई दे रहे थे.

''तुम चुप क्यों हो गए? शायद मेरी बातों से सहमत नहीं हो,'' बेला ने पीठ मोड़कर उसकी ओर देखा.

कुछ देर बाद वह खिड़की के पास खड़े-खड़े ही बोला, ''जिंदगी नियमों के आधार पर नहीं बिताई जाती. कई बार जानते हुए भी हम उनका उल्लंघन करते हैं—अपने सुख के लिए नहीं, बल्कि यह सोचकर कि यही सही है...''

बेला कुछ और ही सोच रही थी, ''अच्छा एक बात बतलाओ. मैं बहुत देर से तुमसे पूछना चाह रही थी लेकिन मेरे मन में कुछ झिझक-सी थी. क्या तुम मारिया से बहुत प्रेम करते थे?''

अतीत की स्मृतियां उभरने लगीं... वह कहने लगा, ''मुझे लगता है जैसे प्रेम और विवाह के बीच बहुत कच्चे धागों के बंधन होते हैं जो एक हल्के-से झटके के साथ टूट जाते हैं जिसका एहसास तक कभी-कभी नहीं हो पाता.''

उसने जोर से ठहाका लगा, ''बस, इतनी साधारण-सी बात. इसमें झिझकने की क्या बात है...'' उसने रम का एक लंबा-सा घूंट पिया और अकस्मात् चुप हो गया. अतीत की कुछ स्मृतियां दिमाग में उभरने लगीं जो समय और घटनाओं के जाल में उलझकर कुछ धुंधली पड़ गई थीं. कुछ कठिनाई के बाद ही वह कहने लगा, ''मुझे लगता है जैसे प्रेम और विवाह के बीच बहुत कच्चे धागों के बंधन होते हैं जो एक हल्के-से झटके के साथ टूट जाते हैं जिसका एहसास तक कभी-कभी नहीं हो पाता.''

बेला उसकी ओर एकटक देख रही थी. फिर बिना कुछ कहे एक लंबी सांस खींचकर उसने अपनी दृष्टि मोड़ ली. ''वास्तविक स्थिति का इन सब बातों से कोई संबंध नहीं होता. फिर हर व्यक्ति एक-दूसरे से अलग होता है,'' वह अपने आप से ही कहने लगी.

वह कुर्सी पर पांव पसारकर बैठ गया. चौकीदार ने दरवाजा खटखटाकर पूछा कि वे खाना कितने बजे खाएंगे.

चुप्पी के छोटे-छोटे अंतरालों के बीच शाम का झुटपुटा रात्रि के अंधकार में बदलता गया. बाहर आकाश में तारे एक-एक करके टिमटिमाने लगे थे, कोई उजला-सा, कोई फीका और धुंधला-सा. खाना उन्होंने कमरे में ही मंगा लिया. डाइनिंग रूम में जाकर कमरे के भीतर बने वातावरण को तोड़ने की इच्छा नहीं हुई. खाने के बाद झूठी प्लेटों को ट्रे में तरतीबार ढंग से लगाकर बेला दरवाजे के बाहर बरामदे में रख आई. मेज पर केवल एशट्रे ही बाकी रह गई.

उसने फिर एक सिगरेट सुलगाई.

''सुना है कि अमरीका में लोगों ने सिगरेट पीना लगभग बंद-सा कर दिया है. लेकिन देखती हूं कि तुम तो ज्यादा ही पीने लगे हो,'' बेला ने कहा.

वह हंस दिया, ''क्या फर्क पड़ता है?''

''क्यों? रोज ही तो अखबारों में सिगरेट पीने वालों के रोगों की चर्चा हुआ करती है.''

''रोग नहीं. केवल कैंसर. फेफड़ों का कैंसर...'' वह हंसते हुए बोला, ''लेकिन इतना भय क्यों? और भी तो कई बीमारियां हैं जो सिगरेट न पीने वालों को होती हैं.''

बेला चुप रही. उसे यह सोचकर आश्चर्य हुआ कि बेला बार-बार उसके सिगरेट पीने की चर्चा क्यों करती है. उसने सिगरेट तुरंत एशट्रे में मसलकर बुझा दी. कुछ देर बाद झिझकते हुए बेला की ओर देखकर वह बोला, ''अच्छा बेला, तुमने अपने बारे में कुछ नहीं बतलाया.''

बेला ने चौंककर एक उड़ती-सी निगाह उस पर डाली, ''किस चीज के बारे में?''

वह चुप रहा. क्षण भर को सोचा कि व्यर्थ ही बेसिर-पैर का यह प्रश्न उसने पूछ लिया जिसका शायद कोई उत्तर है भी नहीं.

उसे चुप देखकर बेला ही कहने लगी, ''अपने विषय में बतलाने के लिए मेरे पास है ही क्या. बच्चे की घटना मैंने पहले ही तुम्हें बता दी है.'' फिर कुछ रुककर कहने लगी, ''वर्षों से हमारी गाड़ी एक ही गति के साथ बिना रुके चलती आ रही है. न तेज होती है, न धीमे. कोई छोटा-मोटा एक्सीडेंट तक नहीं होता.'' वह हंसने लगी, ''हां, एक बात बताना भूल गई. पिछले साल रोहतगी को एक हल्का-सा हार्ट अटैक हुआ था. लेकिन डॉक्टर ने कहा कि घबराने की कोई बात नहीं है. संयम से भरी उनकी दिनचर्या को देखते हुए दूसरे अटैक की आशंका नहीं है.''

''अच्छा...'' उसने आश्चर्य से कहा.

''कभी-कभी मुझे रोहतगी पर बहुत तरस आता है. मेरे बदले किसी दूसरी लड़की से विवाह करके वे बहुत सुखी रहते,'' वह मानो अपने आप से ही कह रही थी, ''लेकिन अब बहुत देर हो चुकी है. मैं उनकी जिंदगी से हट भी जाऊं, तब भी वे एक नए सिरे से अपनी जिंदगी शुरू नहीं कर सकेंगे. जितना ही मैं उनसे दूर रहने की कोशिश करती हूं, उतना ही वे मेरे पास आते जाते हैं.''

वह तटस्थ भाव से चुपचाप सुनता रहा. एक घनी उदासीनता ने उसे अपने घेरे में बांध लिया. उसे यह भी लगा कि यह सब जानने का उसे कोई अधिकार नहीं. बेला को यह सब नहीं कहना चाहिए था. ''तुम कितनी बदल गई हो बेला. यह तुम नहीं जानती...'' उसने अपने आप से ही कहा.

''विकलांग बच्चों के साथ स्कूल में रहकर मुझे अपने जीवन की थोड़ी-सी सार्थकता का एहसास होने लगता है. लेकिन रोहतगी को यह पसंद नहीं है. शुरू में उन्होंने विरोध भी किया था. वे न जाने क्या सोचते हैं. शायद उन्हें भय है कि वहां जाकर मैं भी धीरे-धीरे विकलांग बनती जा रही हूं. वे अब भी कोशिश में लगे हैं और हमें यहां भेजना भी उनकी वही कोशिश है. वे समझना नहीं चाहते हमारी वास्तविकता को,'' बेला के स्वर में एक थकान-सी उभरने लगी थी.

बाहर तेज हवा चलने लगी थी जिससे बाग में लगे पेड़ों की शाखाएं अंधकार में भी झूलती हुई दिखाई देती थीं मानो छोटी-छोटी काली परछाइयां आपस में कोई खेल खेल रही हों. रात्रि के रेंगते हुए पल एक-एक करके अंधकार में खोते जा रहे थे. उसकी इच्छा हो रही थी कि दरवाजा खोलकर बाहर अंधकार में कहीं गुम हो जाए. लेकिन उस प्रयास में वह असफल रहा है. हजारों मील की दूरी पर स्थित किसी अनजाने शहर में जहां वह एक भी व्यक्ति को नहीं जानता था और कोई उसे नहीं जानता था, वहां गुम हो जाना आसान था. लेकिन उतना साहस वह नहीं जुटा पाया.

''हम तीनों...'' बेला ने उसके खोए हुए चेहरे की ओर ध्यान से देखा, ''हम तीनों अलग-अलग सूत्रों से एक दूसरे के साथ कहीं बंधे हुए हैं जिसमें से एक भी उससे बाहर नहीं निकल सकता. तुम इतने सालों तक इतनी दूर-दूर रह आए लेकिन उसे तोड़ नहीं सके और फिर लौटकर वहीं

आना पड़ा जहां से गए थे. यह कोशिश करना भी व्यर्थ की एक चेष्टा है.'' बेला का स्वर धीमा होता जा रहा था जिसमें न कोई उत्तेजना थी, न ही कोई मोह, थी केवल एक तटस्थता जैसे किसी मुकदमे का लिखा हुआ फैसला सुना रही हो.

दरवाजे पर खटखटाने की आवाज सुनकर वह चौंक गया. बेला उसी प्रकार आरामकुर्सी पर निढाल-सी आंखें मूंदे लेटी रही. उसे यह भी जानने की जिज्ञासा नहीं हुई कि आधी रात के वक्त इस समय कौन और क्यों दरवाजा खटखटा रहा है. क्षण भर के लिए उसे लगा जैसे अचानक रोहतगी ही आ गया हो, यह जानने के लिए कि इतनी रात वे दोनों एक ही कमरे में क्या कर रहे हैं. उसने हड़बड़ाकर एक ही झटके से तुरंत दरवाजा खोल दिया लेकिन सामने चौकीदार को देखकर उसे कुछ तसल्ली हुई. चौकीदार ने एक टेलीग्राम उसके हाथ में थमा दिया, ''कमरे में बत्ती जली देखकर मैंने सोचा कि तार आपको अभी दे दूं.'' इतनी रात को इस डाकबंगले में तार का लिफाफा हाथ में थामे वह स्तब्ध-सा खड़ा रहा. एक नजर बेला पर डाली लेकिन वह उसी प्रकार आंखें बंद किए लेटी रही. उसे शक हुआ कि वह शायद सो गई है. तार पढ़कर उसका चेहरा गंभीर हो गया. ''रोहतगी को हल्का-सा हार्ट अटैक हुआ है. उन्हें अस्पताल में दाखिल करा दिया है. डॉक्टर की राय में खतरे की कोई बात नहीं है.'' तार शायद रोहतगी के ऑफिस से किसी ने भेजा था.

वह तार लिये बेला की कुर्सी के पास आया. बेला के घने बाल माथे पर बिखर गए थे, चेहरा बिजली की रोशनी में चमक रहा था. क्षण भर के लिए वह झिझका. क्या बेला को यह समाचार इस समय सुना देना चाहिए? कल प्रातः उसे बता देगा. घड़ी देखी तो सुबह के चार बज रहे थे. कितनी जल्दी पूरी रात बीत गई.

''बेला, तार आया है,'' उसने थोड़ा चिल्लाकर कहा जिससे यदि बेला सो रही हो, तो वह उठ जाए. लेकिन वह सो नहीं रही थी. उसने अपनी आंखें तुरंत खोल दीं लेकिन थकान के कारण वे मुंदी ही रहीं. उसने एक ही सांस में तार पढ़कर सुना दिया. सुनकर बेला के चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया उसे दिखाई नहीं दी. वह कुर्सी पर सीधी होकर बैठ गई और उसके हाथ में फड़फड़ाता टेलीग्राम देखती रही. उसे स्वयं पढ़ने की इच्छा उसने प्रकट नहीं की. उसकी पथराई-सी खुली आंखें अपने भीतर ही खोई रहीं.

''हमें कल सुबह तड़के ही लौट जाना होगा,'' वह धीमे स्वर में बोला, ''आइ एम सॉरी बेला...'' बेला को चुप देखकर फिर कहा, ''कुछ देर के लिए अपने कमरे में जाकर सो जाओ. थकान कम हो जाएगी.''

बेला के चुप, अस्थिर चेहरे को देखकर उसे कुछ चिंता-सी होने लगी. वह बेला की कुर्सी के पास खिसक आया. कुर्सी पर रखा बेला का हाथ धीरे से दबाकर बोला, ''चिंता नहीं करो बेला. सब ठीक हो जाएगा...'' वह घुटनों के बल कालीन पर बैठ गया. बेला की गरम सांसों का स्पर्श उसे आग की लपट-सा लगा लेकिन वह अपने स्थान से हिला नहीं. बेला के काले घने बाल दिन भर की धूप और उड़ती हुई धूल के बाद चारों ओर बिखर-से गए थे. अनायास ही वह उन्हें सहलाने लगा, ''हमें शायद शिलालेख नहीं आना चाहिए था,'' उसने धीमे स्वर में मानो अपने आप से कहा.

अचानक बेला कुर्सी पर सीधी होकर बैठ गई. उसकी आंखों से नींद क्षण भर में ओझल हो गई. फिर हंसते हुए कहने लगी, ''चिंता की कोई बात नहीं है. मुझे लगता है जैसे हार्ट अटैक की यह तार सच्ची नहीं है. हमारे यहां आने के बाद शायद रोहतगी को लगा कि उन्होंने यह गलत कदम उठाया है. पहली बार भी जब हार्ट अटैक की घटना घटी थी तब भी मैं वहां नहीं थी. छाती के दर्द को ही मुझे डराने के लिए उन्होंने उसे हार्ट अटैक घोषित कर दिया,'' कुछ देर तक अपना आप में ही वह डूबी रही, ''लेकिन अब हम यहां नहीं रुकेंगे. रुकने का कोई मतलब भी नहीं है जैसे यहां आने का भी कोई कारण नहीं था.'' ■

भूमि-

- शिवानी
- चित्रः माधवी पारेख

उस रात को अनुराधा क्या कभी भूल सकती थी? उसी रात को उसके जीवन ने एक ऐसी करवट ली थी जिसका उसे पूर्वाभास भी नहीं था. कुछ ही घंटों पूर्व, जत्रियों से जगमगाते उसके लॉन में एक विराट पार्टी का आयोजन संपन्न हुआ था. अभी भी, अर्दलियों के मेज-कुर्सी खिसकाने की सर्रफर्र समाप्त नहीं हुई थी. पीने-पिलाने के लंबे दौर के बाद क्लांत, गहन निद्रानिमग्न पति की पलंग से लटकी शिथिल, पुष्ट बांह को उसने धीरे से उठाकर पलंग पर रखा ही था कि अचानक शोर सुनकर, खिड़की पर खड़ी हो गई. लगता है, आज ये अर्दली सोने नहीं देंगे. सोचा, नीचे जाकर डांटना ही पड़ेगा तब ही चुप होंगे. गाउन डालकर नीचे उतरी तो देखा, शोर लॉन से सरककर सड़क पर चला गया है. नौकरों की भीड़ का घेरा न जाने क्या देखने, एक-दूसरे पर ग़िरा जा रहा था. तब, क्या कोई दुर्घटना घट गई थी? कहीं उन्हीं की पार्टी की किसी मदालस अतिथि की कार तो दुर्घटनाग्रस्त नहीं हो गई? वह तेजी से सड़क पर आ गई.

''क्या हो गया हीरा सिंह, आज सोने नहीं दोगे क्या?''

उसकी आवाज सुनते ही, उसका फौजी अर्दली भागता-भागता बड़े अदब से हाथ बांधे खड़ा हो गया, ''मेमसाहब, कूड़ेदान के पास कोई एक बच्ची डाल गया है.''

''क्या...?''

''हां मेमसाहब, चलकर देखिए. ऐसी ठंड में, पता नहीं कौन कसाई ऐसी फूल-सी बच्ची को मरने छोड़ गया है.''

अनुराधा एक पल को ठिठकी. क्या, उसका वहां जाना उचित होगा? वह ब्रिगेडियर बालकृष्ण राव की पत्नी थी, वह जग गए तो? वह ब्रिगेडियर तो अपना ही नहीं, अपनी पत्नी का भी एक-एक कदम फौजी अनुशासन में बांधकर चलता था.

पर, फिर कुछ कुतूहल और कुछ शायद उसकी नियति हो, उसे वहां खींच ले गई थी! उसे देखते ही भीड़ का घेरा स्वयं बड़े अदब से सिमट गया. कूड़ेदान के पास, एक चादर में लिपटी वह नवजात फूल-सी बालिका मरी बटेर की-सी गरदन डाले चुपचाप पड़ी थी. दोनों नन्ही मुट्ठियां कानों से सटाए, जैसे अभी भी मां के गर्भ में सो रही हो, कोलाहल से बेखबर.

''लगता है, मर गई है मेमसाहब,'' और फिर बिना उसकी पुष्टि की प्रतीक्षा किए अर्दली ने अधैर्य से उसे उठा लिया—''सांस चल रही है, अभी जिंदा है. मैं इसे अपने क्वार्टर में ले जाऊं मेमसाहब? मेरी बेटी के अभी पांच दिन पहले बेटा हुआ है, उसका दूध पीकर, शायद यह जी जाए.''

अनुराधा ने कुछ नहीं कहा, पलटकर चली गई. पलंग पर लेटते ही उसकी आंखों से आंसू झरने लगे.

एक वह थी, विवाह के पंद्रह वर्ष बीतने पर भी संतान का मुंह देखने को तरस रही थी. कितने अनुष्ठान, कितनी पूजा, कितने व्रत किए; कितने ज्योतिषी, नजूमियों के पास भटकी, कितने मंदिरों में नाक रगड़ी, कितनी दरगाहों में मत्था टेका; गिरिजाघर, गुरुद्वारा कुछ भी तो नहीं छोड़ा, फिर भी गोद नहीं भरी. पति की प्रताड़ना की अवहेलना कर वह

सुता

भूमि पर लावारिस पड़ी मिली थी वह, और समृद्ध निस्संतान दंपती की सुता बन गई. लेकिन उसने जो कर्तव्य निभाया वह बाद में जन्मा उनका सुत भी न निभा सका.

राजस्थान के उस बीहड़ इलाके में स्थित उस वरदायी मज़ार के दर्शन कर फल खा आई थी, जिसके विषय में उसने किसी पत्रिका में पढ़ा था कि यदि किसी भाग्यवती को वह फल मिल गया और उसने खा लिया तो फिर वंध्या बनी रहने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था. कहा जाता था कि एक बार एक जनखा वहां पहुंचा, उसके भाग्य से फल भी मिला, खाया भी. कुछ ही महीनों में दिव्य फल ने अपना प्रभाव दिखा दिया. गर्भ में शिशु की हलचल भी हुई, किंतु जन्म से पहले ही अजन्मे शिशु ने अपनी विचित्र जननी के प्राण ले लिये और साथ ही साथ अपने भी.

एक यह है हृदयहीन, जो ऐसी सुंदर बच्ची को माघ की कड़कती ठंड में मरने छोड़ गया. यह कैसा अन्याय है विधाता का. मज़ार के पास पड़ी थी, इसी से सैयद बाबा ने शायद बचा लिया.

रात भर वह सो नहीं पाई. बार-बार जी में आ रहा था, बच्ची को क्वार्टर से उठा छाती से लगा ले. क्या पता, ईश्वर ने उसी के लिए यह दुर्लभ उपहार भेजा हो. पति जगे, तो रात का हैंगओवर अभी भी पलकों पर छाया था.

उसने ब्रिगेडियर को रात की घटना सुनाई तो वह भन्ना उठा, ''हीरा सिंह को क्या पड़ी थी जो उसे यहां ले आया, वह भी हमारे सागरपेशे में. पुलिस खबर पाते ही आ धमकेगी. कहां है? बुलाओ उसे.''

''क्यों बुलाऊं?'' इस बार अनुराधा तनकर सामने खड़ी हो गई, ''यह कहूं कि जहां से लाया है, वहीं पटक आ? हीरा सिंह ने वही किया जो हमें करना चाहिए था. आखिर पड़ी तो हमारी ही कोठी के सामने थी?''

''नहीं, उससे कहो अभी पुलिस थाने जाकर बच्ची को उन्हें सौंप आए...''

तब ही, हीरा सिंह बच्ची को लेकर स्वामी के सम्मुख नतमस्तक खड़ा हो गया. वह साहब की गर्जना सुन, भागकर बच्ची को ले आया था.

''क्या करता सरकार, नहीं लाता तो यह वहीं दम तोड़ देती. कोई ले जाने को तैयार ही नहीं था.''

''वे सब थे बुद्धिमान, और तुम हो और हमेशा रहोगे पल्ले सिरे के बेवकूफ—अब जाओ, दफा हो जाओ,'' ब्रिगेडियर का चेहरा तमतमा उठा था.

''नहीं,'' अनुराधा ने बच्ची को हीरा सिंह की गोद से छीनकर छाती से लगा लिया, ''यह कहीं नहीं जाएगी, यहीं रहेगी...''

''पागल हो गई हो क्या? सोचा है इसका परिणाम क्या होगा?'' ब्रिगेडियर फिर धाराप्रवाह अंग्रेजी में पत्नी को डांटने लगे.

''मैं पालूंगी इसे. आने दो पुलिस को, क्या कर लेगी हमारा? हम क्या इसे किसी से छीनकर लाए हैं या चुराकर? हां, इसका कोई रिश्तेदार लेने आया तो दे देंगे—पर तुम क्या सोचते हो, जो इसे इस बेरहमी से सड़क पर मरने छोड़ गया है, वह इसे लेने आएगा?—देखो, गले पर निशान. लगता है, कसाई ने इसे मारने में कोई कसर नहीं छोड़ी...''

दो दिन तक ब्रिगेडियर ने अनुराधा को कितना समझाया, ''अनुराधा, न जाने किसके पाप की गठरी है. लोग दस बातें करेंगे, फिर कभी यह भी सोचा है कि बड़ी होगी तो समाज इसे स्वीकारेगा?''

पर वृश्चिक राशि और वृश्चिक लग्न में जन्मी अनुराधा जो एक बार ठान लेती थी, वह करके ही छोड़ती थी.

उन दिनों उसके मामा भी उसके पास आए हुए थे. उन्होंने इस मातृ-पितृविहीना भांजी को पाल-पोस कर बड़ा किया था, कन्यादान किया था, उन्होंने भी बहुत समझाया, ''अनुराधा बेटी, परायी संतान पालना बहुत सहज नहीं होता. जब यह विवाह योग्य होगी, तब भी क्या तुम ईमानदारी से कह पाओगी कि यह तुम्हारी बेटी है? कौन है इसकी मां, पिता का कुलगोत्र क्या है ये प्रश्न तुम्हें बौखला देंगे. मैं तुमसे पहले भी कह चुका हूं कि गोद ली गई संतान कभी-कभी मां-बाप का गलग्रह बन जाती है...''

''तुम तो देख भी चुकी हो अनुराधा,'' ब्रिगेडियर ने कहा, ''कर्नल ग़नी की क्या दुर्दशा हुई—कश्मीर पोस्टिंग हुई तो एक गरीब सईस के खूबसूरत बेटे को गोद ले लिया—अपनी संतान थी नहीं, उसी पर मियां-बीवी ने ऐसा लाड़ लड़ाया कि पूछो मत. सबसे प्रख्यात पब्लिक स्कूल में भेजा, पर था तो सईस का बेटा, मसें भीगीं तो मां-बाप को ही दुलत्ती झाड़ने लगा—कौन हैं मेरे मां-बाप? क्यों खरीदा आपने मुझे? क्या हक था आपको? और फिर एक दिन, अपने उन्हीं मां-बाप को ढूंढ़ने,

बिना कुछ बतलाए चुपचाप घर से भाग गया. साथ में ले गया बाप का वॉलेट, मां के गहने और बहुत कुछ.''

''सुनो अनुराधा,'' मामा ने फिर शांत स्वर में समझाया, ''जिस दिन इसे पता लगेगा तुम इसकी सगी मां नहीं हो—पता तो एक-न-एक दिन जरूर लगेगा, कब तक छिपाओगी, कुदरत से तुम नहीं जूझ पाओगी—उसी दिन यह तुम्हारी सामान्य-सी डांट-फटकार भी नहीं सह पाएगी. बार-बार यही सोचेगी मेरी सगी मां होती तो क्या ऐसे डांटती. मैं जानता हूं, तुम इसे प्राणों से भी अधिक चाहोगी. पर अनुराधा, जिस सुख से विधाता हमें वंचित कर दैवी दंड देता है उस दंड को हमारे स्वीकारने में ही हमारा हित है. विधाता ने तुम्हें ऐसा पति दिया है, वैभव दिया है. एक संतान ही तो नहीं दी—और फिर अब तुम दोनों की उम्र भी गोद लेने की नहीं रही.''

पर, अनुराधा अपनी जिद पर अड़ी रही. पुलिस के आइजी उसके पति के क्लब के मित्र थे, ड्रिंक्स और ब्रिज के साथी, उन्होंने गोट बिठा दी. न कोई अड़ंगा लगा, न पूछताछ ही हुई.

एक दिन, विधिवत पंडित बुलाकर उसका नाम भी धर दिया गया—घटिपल तिथि विहीना जन्मी थी, इसी से पंडित ने ही सुझाव दिया—कुछ भी नाम धर दीजिए. ब्रिगेडियर भी बच्ची का सुंदर चेहरा देखकर पिघल गए थे, उन्होंने नाम धरा गोमती, ''लखनऊ में जन्मी है.''

''नहीं,'' मामा ने कहा, ''नदी और नक्षत्र का नाम नहीं रखा जाता.''

''सीता,'' अनुराधा ने कहा, ''छोटा-सा नाम है—सुंदर भी और पुकारने में छोटा.''

''नहीं,'' मामा ने फिर विरोध किया, ''यह नाम भी नहीं.''

''यह नाम भी नहीं? क्यों भला?''

''सीता क्या कभी सुखी रही? चौदह वर्ष का वनवास झेला, रावण ने हरण किया, पति ने त्याग दिया—रखना है तो पार्वती धर दे.''

''पार्वती जैसे बड़ी सुखी रहीं! नंगधड़ंग पति, पत्ते खाकर तपस्या की, मायके से धकेल दी गईं और बैल की सवारी मिली.''

अनुराधा ने बच्ची को मामा की गोद में डाल दिया, ''देखो मामा क्या रंग है—आंखें देखो, जैसे भगवान ने दो पन्ना जड़ दिए हैं—नाक एकदम यूनानी, मैं तो इसका नाम रखूंगी भूमि-सुता. धरती की बेटी है यह...''

और फिर सुता को देखने नित्य ही फौजी अफसरों की पत्नियां दल बांधकर आने लगीं. जो देखता वही उसका भुवनमोहिनी रूप देखकर मुग्ध हो जाता.

''बड़ी होकर यह निश्चित ही मिस यूनिवर्स बनेगी मिसेज राव, क्या नैन-नक्श हैं और क्या कंप्लेक्शन!'' इसी बीच, ब्रिगेडियर की बदली कोहिमा को हो गई, फिर सिक्किम और फिर सुदूर चीन.

सुता स्कूल जाने लगी थी, तब ही एक और चमत्कार हुआ. पिता को एक से एक सुख साधन दिलाकर भी सुता को जैसे संतोष नहीं हुआ. एक दिन अनुराधा बिस्तर से उठी तो लगा वह गिर पड़ेगी. पलंग की पाटी न थामती तो शायद चकराकर गिर भी पड़ती. पेट की सारी आंतें गोलमोल घूमती मुंह को आ रही थीं—वह घबराकर फिर लेट गई, घर में अकेली थी. सुता स्कूल गई थी, पति दौरे पर. घर में एक चीनी नौकरानी थी, जो न उसकी भाषा समझती थी, न वह उसकी. पर दो-तीन दिन तक लगातार स्वामिनी की यह अवस्था देख वह समझ गई. वह स्वयं नौ बच्चों को जन्म दे चुकी थी.

हंसकर उसने अपने पेट के इर्दगिर्द दोनों हाथों का घेरा बना, उसे समझाया कि उसने उसकी बीमारी का सूत्र पकड़ लिया है. यही नहीं, काल्पनिक शिशु को दोनों हाथों में हलरा-दुलरा, स्थिति और स्पष्ट कर दी.

''तुम्हें क्या हुआ है मम्मी?'' भोली सुता ने अपनी नन्ही बांहें मां के गले में डालकर पूछा, ''तुम बिस्तर से उठती ही नहीं?''

'हे भगवान' अनुराधा मन ही मन सोचती व्याकुल हो उठी—'चालीस वर्ष की वयस में विधाता का यह अद्‌भुत दान वह अंत तक ग्रहण कर पाएगी या उसी जनखे की तरह उसे भी जान से हाथ धोना पड़ेगा? इतने वर्षों से जिसके लिए वह तरस रही थी, वह आज अचानक विधाता उसे क्या सचमुच दे रहा है? क्या यह संभव था? एक बार बहुत पहले भी तो ऐसा ही हुआ था. विवाह के दूसरे ही वर्ष, ये ही लक्षण ब्रिगेडियर को कितना उत्साहित कर गए थे. डॉक्टरनी ने तो बधाई भी दे दी थी, पर एकाएक स्वयं ही तप्त धरणी से वे बादल स्वयं बिना बरसे ही चले गए थे! धीरे-धीरे वे सुखद लक्षण स्वयं लुप्त हो गए. क्या आज भी वैसा ही कुछ हो रहा है? चिंतातुरा अनुराधा पति की प्रतीक्षा करती रही. जब बताया तो वह हो-होकर हंसने लगा—पागल हो गई हो क्या—यह तुम्हारे मेनोपौज का टाइम है, सुना है इसमें ऐसा होता है. किंतु चीनी नौकरानी का निदान ठीक था. डॉक्टरनी ने पुष्टि की और पूछा, ''पहली संतान कब हुई थी?''

> **उसकी आवाज सुनते ही अर्दली ने भागते हुए आकर बताया कि कूड़ेदान के पास कोई एक बच्ची डाल गया है. वह सोच में पड़ गई—एक वह खुद जो संतान के लिए तरस गई, और एक यह है हृदयहीन...**

''कभी नहीं,'' ब्रिगेडियर ने कहा.

''तब कल आपके साथ जो वह प्यारी-सी बच्ची थी वह कौन थी?''

''हमारी गोद ली गई बेटी, पर डॉक्टर आर यू श्योर?'' बिग्रेडियर को अभी भी विश्वास नहीं हो रहा था.

''हंड्रेड परसेंट स्योर—टेस्ट में आ गया है—पर, आपको बहुत सावधानी बरतनी होगी मिसेज राव. बेड रेस्ट, नो ड्राइविंग, नो स्मोकिंग, नो ड्रिंक्स, वाहन भी नहीं—इस उम्र में प्रसव, बहुत कठिन होता है मिसेज राव—संतान भी एकदम स्वस्थ एवं नॉर्मल हो, इसकी भी मैं पुष्टि नहीं कर सकती.''

पर प्रसव भी स्वाभाविक हुआ, न सिजेरियन न फोर्सिप्स—बच्चा, पूरे आठ पौंड का गोलमटोल, गोरा-चिट्टा, मोम का पुतला. सुता तो भाई को पाकर बौरा गई थी, हर वक्त गोद में लेने की जिद करती.

''तू हमारी भाग्यलक्ष्मी है सुता,'' ब्रिगेडियर कहते, ''तू ही तो पीठ पीछे भाई लाई है—देखो अनुराधा, सुता पर तुम्हें अब और ध्यान देना होगा—भाई के लिए उसके मन में कभी ईर्ष्या का अंकुर न उगने देना...'' अनुराधा सांवली थी और बिग्रेडियर था घोर कृष्णवर्णी, पर बेटा था एकदम बगुले का पंख...

''पता नहीं यह रंग कहां से ले आया पट्ठा—कहां से पाया?'' ब्रिगेडियर ने हंसकर कहा.

''सुता से, अपनी बहन का रंग पाया है इसने,'' अनुराधा मुग्ध दृष्टि से पुत्र को देख रही थी.

ब्रिगेडियर ने उसी क्षण उसका नाम धर दिया था—''रजत... रजत राव—बड़ा होगा तो आर.आर. कह पुकारेंगे इसे—मुझसे भी बड़ा ओहदा हासिल करेगा—कटोरे पर कटोरा, बेटा बाप से भी गोरा समझी?''

ठीक ही भविष्यवाणी की थी ब्रिगेडियर ने. बेटा सचमुच ही बाप से भी गोरा निकला. वर्षों बाद स्वदेश लौटे, तो ब्रिगेडियर राव जनरल राव बन चुके थे. अवकाशप्राप्ति सन्निकट थी, पर उन्हें अपने आसन्न वानप्रस्थी जीवन की कोई चिंता नहीं थी. बेटी सुता अहमदाबाद में एमबीए कर रही थी, बेटा विदेश सेवा में आ गया था. उनकी निरंतर प्रवास यात्रा ने उन्हें रंचमात्र भी क्लांत नहीं किया था. शरीर अभी भी पूर्ववत्‌ संतुलित बना रह गया था, चीनी खाने की लालिमा कपोलों पर

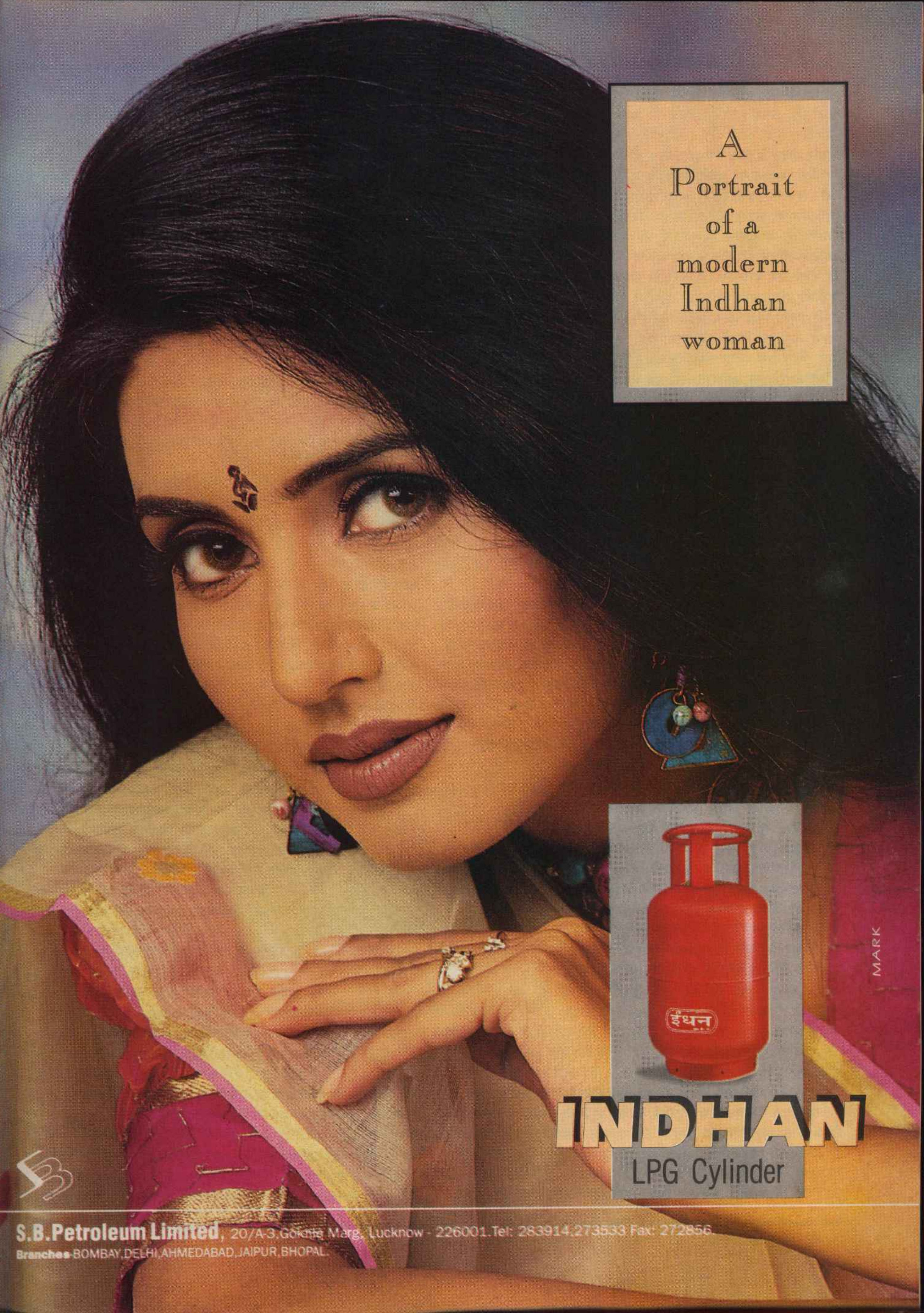
A Portrait of a modern Indhan woman
ईंधन
INDHAN
LPG Cylinder
MARK
S.B.Petroleum Limited, 20/A-3,Gokhle Marg, Lucknow - 226001.Tel: 283914,273533 Fax: 272856.
Branches-BOMBAY,DELHI,AHMEDABAD,JAIPUR,BHOPAL.

स्थायी रूप से रस-बस गई थी, उदर की परिधि एक सेंटीमीटर भी नहीं बढ़ी थी, अंतर हुआ तो बालों में, कनपटी पर हल्की सफेदी उतर आई थी किंतु मूंछें अभी भी काली थीं. राव ने शरीर की आकर्षक गरिमा बनाए रखने के लिए वैसा ही त्याग भी किया था. कड़ी कवायद, मीलों की जॉगिंग, जबान पर चीनी का दाना नहीं आने दिया. रात को केवल सूप, और लंच में उबली सब्जी, समुद्री घास-पत्ते और फलों का रस. अनुराधा भी पति की सेहत के साथ कदम पर कदम मिलाकर चली थी, इसी से तन्वी देह में छटांक भर मांस भी नहीं चढ़ने दिया. उस पर उसकी पहनने-ओढ़ने की रुचि सदा से बेजोड़ रही थी. जनरल बनने के बाद राव के चेहरे पर सामान्य-सा अहंकार अवश्य झलकने लगा था. आगे-पीछे एडीसी, तीन-चार गाड़ियां, अदब से दुहरी होती पूरी बटालियन. भला ऐसी प्रभुता किसे मदमस्त नहीं करती? वैभव बढ़ता गया; रिश्ते कमजोर पड़ते गए. नए मित्रों की संख्या बढ़ी, पुराने चेहरे स्मृति से विलुप्त हो गए. किंतु एक मित्र को वे कभी नहीं भूले—कर्नल माथुर. पति-पत्नी दोनों जनरल को, अनुराधा को अब भी उतने ही प्रिय थे. उन्हीं ने जनरल की अनुपस्थिति में, ठीक अपनी कोठी के सामने उनकी शानदार कोठी बनवा दी थी. पुत्री की उन्हें कोई चिंता नहीं थी. वह पहले ही घोषणा कर चुकी थी कि वह आजीवन कैरियर को ही पतिरूप में वरण करेगी—"मैं शादी नहीं करूंगी, पापा, आप दोनों धकेल भी देंगे तो भी इस घर से नहीं जाऊंगी."

बेचारी सुता... तब क्या जानती थी कि एक दिन नियति उसे उसी बेरहमी से उसी चौराहे पर धकेल देगी जहां एक बार पटक गई थी.

पुत्र की भी उन्हें चिंता नहीं थी. ऊंचा अगला गबरू जवान, रत्न जड़ित सिंहासन वाली नौकरी, उसके लिए भला रिश्ता क्यों ढूंढ़ें? ऐसे वांछनीय वर को तो रिश्ते स्वयं ढूंढ़ लेते हैं.

पर अनुराधा को पुत्र के प्रति पति की यह उदासीनता अखरती थी. कभी उससे सीधे मुंह बात नहीं करते. यह मत करो, वह मत करो, स्मोक मत करो, लड़कियों के साथ मत घूमो. आखिर, बच्चा तो वह रहा नहीं.

बचपन में ही, बोर्डिंग में डालकर उसने बड़ी भूल की थी, यह एहसास उसे अब होने लगा था. माता-पिता से रजत का रिश्ता, हमेशा के लिए, गरमी की छुट्टियों वाला रिश्ता रह गया था, महज औपचारिकता का रिश्ता. न बेटा बाप से सीधे मुंह बात करता, न बाप बेटे से. उधर सुता कभी किसी शिकायत का मौका नहीं देती. कभी कॉफी बनाकर ला रही है, कभी उनके गोल्फ के दस्ताने-टोपी थमा रही है, कभी इस्त्री किया रुमाल. यहां तक जनरल के जूतों में पॉलिश भी वह स्वयं करती, वह भी ऐसा कि मुंह देख लो.

"मैं हमेशा आदमी के जूते देखकर उसके व्यक्तित्व को जांचता हूं सुता. जिसके जूते धूल से सने, बिना पॉलिश किए होंगे उसका मन भी वैसा ही होगा, आलसी, धूल से सना, फूहड़."

अवकाशप्राप्ति के पश्चात, दिन-रात जूते चमकाने वाले अर्दली तो रहे नहीं. इसी से छुट्टी में घर आती तो सुता ही वह काम करती. छुट्टियां खत्म होतीं, वह चली जाती तो जनरल का मूड उखड़ जाता. उसके जाने के तीसरे ही दिन, रजत छुट्टी में अचानक घर आ गया. एक तो जनरल का मूड वैसे ही उखड़ा था. अचानक उसे देख, गुर्रा पड़े, "क्यों कैसे आ गए?"

"क्यों आपको मेरा आना अच्छा नहीं लगा क्या? देखा ममी?"

अनुराधा ने हंसकर बात टालने का प्रयत्न किया, "तेरे पापा को सुता के जाने का बुरा लगा है, अब तू आ गया है, चल अच्छा किया."

"पापा," वह जैसे लड़ने को ही एक दिन की छुट्टी लेकर आया था, "आपने और ममी ने मुझे बताया क्यों नहीं?"

"क्या नहीं बताया रजत?" मां का कंठस्वर सदा की भांति शांत, अविचलित था पर पिता की आग्नेय दृष्टि उसे और भड़का गई.

"यही कि दीदी आपकी गोद ली हुई बेटी है, मेरी सगी बहन नहीं है."

यहीं पर असहिष्णु राव एक भयंकर भूल कर बैठे, एक तो दो दिन से बढ़ा रक्तचाप कनपटी पर हथौड़े मार रहा था, उस पर बेटे का यह बेहूदा सवाल.

अपनी कुर्सी से एक झटके से उठे और खींचकर पुत्र के गाल पर ऐसा तमाचा मारा कि पांचों अंगुलियों के हस्ताक्षर उभर आए...

अनुराधा हतप्रभ होकर दोनों को देखती रही. एक ही वर्ष पहले तो राव की बाइपास सर्जरी हुई थी.

"क्या कर रहे हैं आप? जवान बेटे पर ऐसे हाथ उठाया जाता है?"

"हां-हां, हजार बार उठाऊंगा. खबरदार जो कभी यह बात जबान पर लाए—या सुता से कुछ कहा. वह कुछ भी नहीं जानती..."

"जरूर नहीं जानती," रजत व्यंग्य से हंसा, "तब ही आपकी चमचागीरी कर दिन-रात मस्का लगा रही है, जूतों में पॉलिश, पाइप भरना, बिस्तर लगाना. आपको, ममी को खुश करके एक दिन आपकी पूरी जायदाद में बराबर का हिस्सा लेना चाहती है वह! मैं भी देखता हूं कैसे लेगी वह!" और फिर वह तीर-सा निकल गया.

और ऐसे अनुराधा एक बार फिर निपूती बन गई. वह बेटा फिर बाप के रहते कभी नहीं लौटा. उस दिन से जनरल में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया. मौत तो उसी दिन हो गई, केवल स्वयं अपनी निष्प्राण लाश ढोते रहे. न हंसते, न बोलते, न ठीक से खाते. अब तक कठिन प्रयत्न से, संयम से सुरक्षित उनका यौवन दुर्ग अकस्मात ढह गया. आठ ही दिन में आनंदी चेहरे पर विषाद की झुर्रियां उभर आईं, आंखों के नीचे अनिद्रा की चानमारी के छिद्र उभर आए, डेंचर उतारकर उन्होंने स्वयं खिड़की से बाहर फेंक दिया. शेर बूढ़ा हो गया था पर अभी भी ऐंठ गई नहीं थी. दिन भर कमरे में पड़े रहते. अनुराधा ने उनके मित्र कर्नल माथुर को सब बताकर कहा, "अब आप ही समझाइए उन्हें. पता नहीं किसी दुश्मन ने बता दिया रजत को."

कर्नल के प्रयत्न से ही स्थिति में थोड़ा-बहुत सुधार हुआ, पर उस दिन के बाद घायल शेर बाहर नहीं निकला. रजत नहीं लौटा. एक पत्र से ही उसने मां को सूचित किया था कि उसकी पहली पोस्टिंग मॉस्को में हुई है. पत्र में न पिता का नाम था, न दीदी का.

अनुराधा ने चिट्ठी फाड़कर फेंक दी थी, किंतु ममता के बंधन क्या इतनी सहजता से टूटते हैं? एक दिन राव ने स्वयं ही पूछ दिया, "उसकी कोई चिट्ठी आई क्या?"

"किसकी?" अनजान बनकर अनुराधा ने पूछा.

"और किसकी, उस हरामजादे की, तुम्हारे बेटे की."

"हां, मॉस्को में पहली पोस्टिंग हुई है."

उधर सुता की पढ़ाई पूरी हो चुकी थी, कई जगह इंटरव्यू देने में जुटी थी वह. घर आई, तो पापा को देख वहीं ठिठककर खड़ी रह गई है, "डेंचर क्या हुआ पापा? कैसे अजीब लग रहे हैं आप, एकदम बूढ़े."

"बूढ़ा तो हो ही गया हूं सुता. तुम्हारा बाप क्या हमेशा जवान रहेगा."

"हां, हां, मेरा बाप हमेशा जवान था और रहेगा... मामा, पापा क्या बीमार थे? डेंचर टूट गया तो दूसरा क्यों नहीं बनवाया?"

अनुराधा की आंखों में आंसू आ गए. पति के जिस व्यक्तित्व पर उसे गर्व था, वही उसके देखते-देखते टुकड़ों में बिखर रहा था और वह कुछ नहीं कर पा रही थी.

कितनी सुंदर लग रही थी सुता, जैसे खिला गुलाब. कमर तक झूल

अनुराधा को सबने समझाया कि जिस सुख से विधाता हमें वंचित कर दंड देता है उसको स्वीकारने में ही हमारा हित है. पर उसने ब्रिगेडियर पति की भी बात काट कर उस बच्ची को गोद ले लिया.

रही चोटी, छरहरा शरीर, झलकें मारता गौरवर्ण और हरी झील-सी आंखें.

"जानते हैं पापा, आपके लिए एक सरप्राइज लाई हूं," उसकी आंखों में उत्साह, उमंग की सहस्र तरंगें तिर रही थीं.

राव का कलेजा डूब गया—कहीं, किसी प्रेम-वेम का चक्कर तो नहीं? संभावित वियोग की आशंका राव को त्रस्त कर उठी. क्या वह भी उन्हें बुढ़ापे में अकेला छोड़ जाएगी? कैसे जिएंगे उसके बिना?

"क्या है सुता? बताती क्यों नहीं? क्या पापा के लिए ही सरप्राइज लाई है, मेरे लिए नहीं?" अनुराधा ने उसके दोनों हाथ थाम लिये, "कहीं स्वयंवर रचाकर तो नहीं आई?"

"नहीं ममा, मैंने आपसे कहा है ना, मैं कभी विवाह नहीं करूंगी. आप दोनों को छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगी..."

"हमें घर-दामाद रखने में भी कोई आपत्ति नहीं होगी बेटी," अनुराधा ने हंसकर कहा.

"ममा मुझे सिटी बैंक में नौकरी मिल गई है, इसी महीने ज्वॉइन करना है. अब आपको नहीं छोड़ूंगी... आप दोनों मेरे साथ रहेंगे. अरे, रजत की ट्रेनिंग भी तो खत्म हो गई होगी—कहां है वह? अब तो भूले-भटके भी चिट्ठी नहीं लिखता."

एकाएक दोनों का चेहरा फक पड़ते देख, वह बुद्धिमती समझ गई कि कहीं कुछ गड़बड़ अवश्य हुई है. भाई को वह जानती थी. वह उद्धत, उद्दंड, अविवेकी लड़का कुछ भी कर सकता था.

"चल तू नहा-धोकर आ, फिर फुरसत से बातें करेंगे,"

रात को खाने की मेज पर पिता की अस्वाभाविक चुप्पी देख, वह समझ गई कि कहीं उन्होंने गहरी चोट खाई है. पर वह चुपचाप सिर झुकाए खाती रही. उसने न कुछ कहा, न पूछा.

पुत्री के आने पर, अनुराधा उसी के कमरे में सोती थी. पति को दूध, दवा देकर वह आई तो चेहरा एकदम उतरा था जैसे महीनों की बीमार हो. अनुराधा उसकी बगल की पलंग में लेटी थी. मां के आते ही उठकर उसकी पलंग में लेट गई—दोनों हाथों से मां के हाथ थाम, उसने पूछा, "ममा, क्या हुआ है—कुछ कहो ना, मेरा दम घुटा जा रहा है."

इस बार, इतने दिनों से रोका गया अनुराधा का गह्वर सहस्र धाराओं में फूट चला—वह बच्ची की तरह सुबक उठी...

"ममा, प्लीज ऐसे मत रोओ, मैं कुछ नहीं पूछूंगी, फॉरगेट इट."

"नहीं सुता, मैं आज तुझसे वह कहने आई हूं जो बहुत पहले कहना चाहिए था. अपना कलेजा मजबूत कर और याद रख बेटी, मैं और पापा, तुझे बहुत-बहुत प्यार करते हैं, हमें कभी गलत मत समझना."

"कैसी पहेली बुझा रही हो मम्मी, आज तुम्हें अचानक यह हो क्या गया है?" सदा अविचलित गांभीर्य की साक्षात मूर्ति अनुराधा आज इतनी अशांत, विचलित क्यों लग रही थी! शांत झील की जलधार में जैसे किसी ने ढेला मार दिया हो.

और फिर, अनुराधा एक सांस में सब कुछ कह गई थी—इस गृह में उसकी आगमनी से लेकर रजत का अविवेकी आरोप—कुछ भी नहीं छिपाया उसने.

एक पल को कमरे में स्तब्ध सन्नाटा छाया रहा. सुता पत्थर बनी चुपचाप बैठी रही, एक शब्द भी नहीं बोली. अस्पष्ट लैंपपोस्ट की रोशनी उसके चेहरे पर पड़ रही थी, कमरे की बत्ती बुझी थी. कागज-सा सफेद वह कमनीय चेहरा देख अनुराधा कांप उठी. वर्षों पूर्व की गई मामा की भविष्यवाणी क्या सच होती जा रही थी? "जहां उसे पता लगेगा अनुराधा, वह तुम्हारी सगी बेटी नहीं है, उसका विश्वास तुमसे उठ जाएगा—एक-न-एक दिन वह अवश्य पूछेगी—कौन थी मेरी मां, कौन थे मेरे पिता, तब क्या उत्तर दोगी तुम?"

उसी क्षण, सुता ने संयत कंठ से पूछा, "मेरी मां कौन थी, तुम जानती हो ममा? और मेरे पिता?"

इस बार भी अनुराधा झूठ नहीं बोल पाई—हां, वह जानती थी. पुलिस ने तीसरे ही दिन पता लगा लिया था. सौतेली मां के दुर्व्यवहार से ऊबकर घर से भागी उसकी अभागिनी जननी किसी समृद्ध जमींदार ठाकुर की बेटी थी. संन्यास लेने स्वेच्छा से नहीं, भटककर पहुंची थी ब्रह्मकुमारियों के आश्रम में. वहां आते ही बीमार पड़ी, पता लगा दोनों फेफड़े क्षयग्रस्त हैं. तत्काल उसे इलाज के लिए ठाकुरगंज के टीबी अस्पताल में भेज दिया गया. पूरे छह महीने में स्वस्थ होकर लौटी, तो स्वास्थ्य एवं रूप देखकर हेड वैष्णवी दंग रह गई. कपोलों की लालिमा,

बड़ी-बड़ी मदमस्त आंखों में उठती-गिरती आनंद उत्साह की सहस्त्र तरंगें. आज तक, जटिल रोग से पिचके क्षुधातुर उदर के अस्वाभाविक उभार का रहस्य जब उजागर हुआ तो बहुत देर हो चुकी थी. पूरे शहर में उस सर्वस्वत्यागिनी वैष्णवी दल की प्रचुर ख्याति थी. श्वेत वस्त्रों में लिपटी, बिना दायें-बायें नजर उठाए वे कभी-कभार देवदर्शन को निकलतीं, तो लोग श्रद्धा से स्वयं नतमस्तक खड़े हो जाते. यह अभागिनी कहां से कालिख पोतने आ मरी! नहीं, उसे शरण देने का अर्थ ही था पाप को प्रश्रय देना. आधी रात को उसे बड़ी बेरहमी से बाहर निकाल दिया गया था. वह फिर कहां गई, कहां उसने अपनी अवांछित संतान को जन्म दिया, यह सब वैष्णवी ने पता लगा लिया था. वही बदचलन मुसलमान डॉ. इदरीस कुरेशी ने उसे ले जाकर निशातगंज की एक कोठरी में छिपा दिया था और स्वयं निगरगंड सांड-सा घूमने लगा था. स्पष्ट था कि उसी ने प्रसव कराया और फिर मासूम मां का गला घोंट, लाश गोमती में फेंक दी थी. पोस्टमार्टम में गले में अंगुलियों के स्पष्ट निशान मिले थे. ''वह आत्महत्या नहीं निर्मम हत्या है,'' राव के मित्र पुलिस कमिश्नर मिश्रा ने कहा था, ''जिस धोबी ने सब देखा वह गवाही देने को तैयार नहीं है. न कोई गवाह है, न सबूत. डॉक्टर पकड़ा भी गया तो बड़ी आसानी से छूट जाएगा. बच्ची तुम्हारे पास ही रहे, इसी से अब हमने फाइल दाखिल दफ्तर कर दी है.''

''धीरे-धीरे सबूत भी जुट गया था,'' अनुराधा जैसे ट्रांस में बोलती जा रही थी, ''लाश गोमती में बहा, वह तुझे लेकर मज़ार पर पहुंचा—तेरा गला घोंटने जा ही रहा था कि पेड़ के नीचे सोया मुजावर जग गया—कौन है रे? रोती बच्ची को वहीं पटक डॉक्टर भागा. चेहरा नकाब से ढका था, हड़बड़ी में नकाब गिर गई और मुजावर ने पहचान लिया—यह तो ठाकुरगंज का डॉ. कुरेशी है. वह भी तो उनका मरीज रह चुका था—जब तक उसने शोर मचाया, डॉक्टर तेजी से कार चलाता गायब हो गया था. तुमने देखा, कौन रख गया है इसे? भीड़ में से किसी ने पूछा. नहीं जी, मैं देखता तो छोड़ देता उसे? बुद्धिमान मुजावर जानता था कि यह गवाही उसे महंगी पड़ेगी. पर, उसने अपने मित्र हीरा सिंह को बताया, और उसके पेट में क्या पानी भी कभी पच सकता था? तीसरे ही दिन मुजावर की लाश उसी पेड़ के नीचे मिली, जहां वह सोता था. तेरे पापा ने ही पुलिस को फोन किया पर डॉक्टर फरार हो गया था. कहते थे, दुबई भाग गया है.''

सुता निःशब्द बैठी थी. उसकी सुदीर्घ चुप्पी ने अनुराधा को भयत्रस्त कर दिया.

''नाराज हो गई सुता?''

वह फिर भी चुप रही.

''मैं सच कहती हूं सुता, कई बार तुझे सब कुछ बताने की सोची पर फिर साहस नहीं हुआ. तुझे भले ही गर्भ में न रखा हो, माना तुझे हमेशा अपने ही रक्तमांस का टुकड़ा,'' उसका गला रुंध गया.

''सो जाओ मम्मी, बहुत रात हो गई है,'' शांत संयत स्वर में कहीं उत्तेजना नहीं थी, वह फिर चुपचाप अपनी पलंग पर लेट गई.

पर, उस रात न मां की आंखों में नींद थी, न बेटी की.

सुबह होते ही वह फिर अपनी स्वाभाविक दिनचर्या में लौट आई, जैसे कुछ हुआ ही न हो. पापा के साथ, नित्य की भांति घूमने गई, चाय बनाकर लाई, इधर-उधर की बातें करती रही. एक पल को भी उसने उस अवांछित प्रसंग को उभरने ही नहीं दिया. अपने व्यवहार से, स्नेहसिक्त हंसी से वह जैसे उन दोनों को यही विश्वास दिलाने की प्राणांतक चेष्टा कर रही थी कि चाहे कुछ भी हो जाए वह उन्हीं की सगी बेटी है और हमेशा रहेगी.

मगर विधाता का खेल! अनुराधा आखिर बेटे की भी मां बनी. मगर सुता का सत्य बेटे से छिपा न रहा और परिवार से कट गया क्योंकि माता-पिता से सुता के सूत्र कहीं गहरे जुड़ गए थे.

''आज खाना मैं बनाऊंगी ममा, आप किचन में एकदम नहीं जाएंगी—चुपचाप पलंग पर लेटी रहिए—समझीं?'' ब्रिग्रेडियर राव ने अखबार नीचे धर, तिर्यक दृष्टि से पुत्री को देखा—''अब मुझे तेरी मां की कोई चिंता नहीं रही सुता. तू किचन ही नहीं, सब कुछ संभाल लेगी—मैं नहीं भी रहा तो...''

''छिः पापा, सुबह ही सुबह कैसी मनहूस बातें कर रहे हैं...''

''इनका तो दिमाग ही फिर गया है. तू नहीं रहती है तो मुझे ऐसे ही डराते हैं—क्यों जी, पिछली बार तिरुपति में पद्मनाथन ने आपकी कुंडली देखकर कहा था ना कि दीर्घायु योग है

आ ई ए आ बो ह वा ब द लें.
श ह र की ओ र च लें.

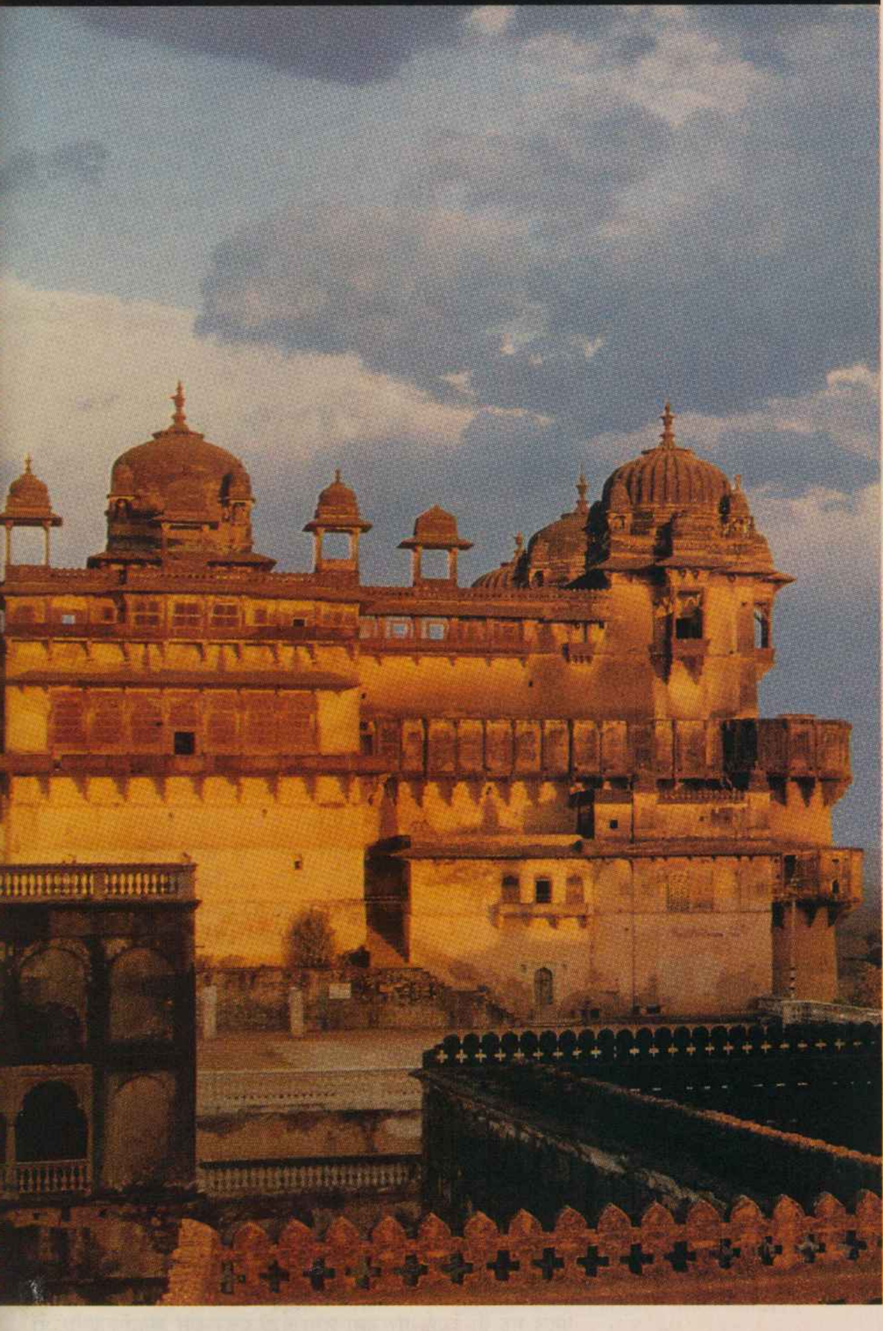

यहाँ आकाश पर साईन बोर्डों
के भद्दे पैबन्द नहीं.
काँक्रीट की ऊँची-ऊँची
इमारतों का जंगल नहीं.
भीड़ नहीं.
मोटर गाड़ियों की कतारें नही.
कनफोड़ शोर नहीं.
ओरछा में आपका स्वागत है.
सत्रहवीं सदी के इस शहर में
वक़्त गुज़रा नहीं, थम गया है.
शायद यहाँ के भव्य मंदिरों
के जादू में बँध कर.
या हवादार महलों की
नक्काशी को निहार कर.
या नदी के तीर पर बनी छतरियों
के प्रशान्त सौंदर्य में खो कर.
खुली हवा में साँस लीजिए.
ओरछा.
धूल और शोर से राहत पाइये.
एक 'महानगर' आइये.

मध्य प्रदेश पर्यटन

ग्वालियर • शिवपुरी • ओरछा

करीब के दर्शनीय स्थल: कार से दो घंटे के रास्ते पर है **ग्वालियर** - पाँच मशहूर राजघरानों का शहर; जहाँ महल, किले और मीनारें कंधे से कंधा मिलाये हैं. और त्रिकोण का तीसरा कोण है **शिवपुरी,** जो सिंधिया घराने की ग्रीष्म राजधानी थी. दुर्लभ पशु-पक्षियों-पौधों का स्थान.

कहाँ रूकें: **ओरछा.** होटेल शीशमहल. दो महलों के बीच स्थित यह आपकी राजसी रुचि के अनुकूल है. बेतवा कॉटिजेस. बेतवा नदी के किनारे खूबसूरत आरामदेह बसेरा.
ग्वालियर. होटेल तानसेन. आधुनिक सुख-सुविधाओं से पूरी तरह लैस. **शिवपुरी**. टूरिस्ट विलेज. सख्य सागर झील के किनारे स्थित रिसोर्ट. चिंकारा मोटेल में भी ठहरने की सुविधा है.

कैसे पहुँचें: ओरछा पहुँचने के लिये 19 कि. मी. दूर झाँसी रेलवे स्टेशन पर उतरें. ग्वालियर में रेलवे स्टेशन और विमान-स्थल दोनों है.

हम अहमदाबाद, बंबई, कलकत्ता और नई दिल्ली से सुविधाजनक एवं सुखद पैकेज टुअर्स की व्यवस्था करते हैं. अधिक जानकारी या बुकिंग के लिये करीबी म. प्र. पर्यटन ऑफ़िस से संपर्क करें: **भोपाल:** गंगोत्री, टी टी नगर. फ़ोन. 554340-43. फैक्स. 552384. **अहमदाबाद:** जी-3, हेमकूट कॉम्प्लेक्स, कैपिटल कमर्शियल सेंटर के सामने, आश्रम रोड. फ़ोन. 420395. **बंबई:** 74, वर्ल्ड ट्रेड सेंटर, कफ़ परेड, कोलाबा. फ़ोन. 2184860, 2187603. **कलकत्ता:** चित्रकूट, कमरा नं 7, छठी मंज़िल, 230 ए, ए जे सी बोस रोड. फ़ोन. 2478543, 2475855. **नागपुर:** 407-ए, लोकमत भवन, वर्धा रोड. फ़ोन. 523374. **नई दिल्ली:** 204-205 कनिश्का शॉपिंग प्लाज़ा, 19 अशोक रोड. फ़ोन. 3321187, 3324511 (एक्सटेंशन 277). मृगनयनी इम्पोरियम, ब्रह्मपुत्र शॉपिंग कॉम्प्लेक्स (रेलवे रिज़र्वेशन केन्द्र के पास), सेक्टर 29, **नोएडा.** फ़ोन. 89-55283, 89-56756.

होटेल शीशमहल, ओरछा.

NEXUS EQUITY 2369H

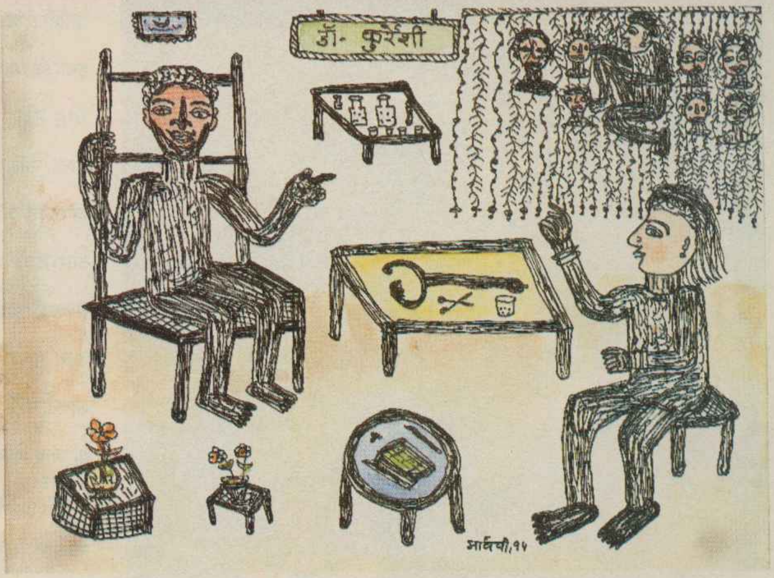

आपका?''

राव ने हंसकर चाय की चुस्की ली, ''देखो अनु, जब समय आता है तो यमराज किसी की कुंडली खोलकर नहीं देखते, चील का-सा झपट्टा मारकर ले जाते हैं. इसी से तो मैंने विल बनाकर रख दिया है, सब कुछ सुता का और रजत का, तुम्हें यूनिट से हर महीने पांच हजार मिलते रहेंगे, फिर सुता तो है ही...'' पति ने रजत का नाम नहीं लिया और यह बात, एक पल को अनुराधा के मन में कांटे-सी गड़ गई.

''फौजी अदब-कायदे की घुट्टी पी है. जिस दिन मौत चलने को कहेगी, एड़ियां खटका, सैल्यूट मारकर चल दूंगा.''

उसने यही किया था. दूसरे दिन सुता को जाना था. सुबह चाय की ट्रे लेकर गई तो देखा पापा गहरी नींद में सो रहे हैं. पर, इतनी देर तक तो पापा कभी सोते नहीं थे? वह गहरी नींद कितनी गहरी है, यह बहुत देर में समझ में आया—अनुराधा मूर्च्छित होकर पति की निष्प्राण देह पर लुढ़क पड़ी. एक सुता ही ने अपने शोक को बड़े साहस से पीछे धकेल दिया. वह भागकर माथुर आंटी को बुला लाई देखते ही देखते लोकप्रिय राव के मित्रों से कमरा घिर गया. माथुर आंटी दो वर्ष पूर्व वैधव्य का यही महादुख भोग चुकी थीं, उन्हीं ने अनुराधा को मृत देह से विलग कर, पलंग पर लिटा दिया, फिर सुता से कहा, ''तू मां के पास बैठ, मैं रजत को फोन करती हूं.''

''आइ हैव बैड न्यूज फॉर यू रजत—तुम्हारे पापा का आज सुबह, कार्डियक ऐरेस्ट से देहांत हो गया—तुम पहली फ्लाइट से चले आओ—हम बॉडी रखे रहेंगे...''

एक क्षण की चुप्पी से माथुर आंटी घबरा गई थीं—क्या लाइन कट गई?

''हलो हलो, सुन रहे हो रजत?''

''हां आंटी सुन रहा हूं, पर मैं अभी नहीं आ सकता आज. भारत के प्रधानमंत्री आ रहे हैं—मेरा आना असंभव है, आप विनोद भैया से अंतिम संस्कार करवा दें.''

भला, प्रधानमंत्री के सामने, जन्मदाता की क्या बिसात?

''क्या हुआ आंटी?''

''कुछ नहीं सुता. वह नहीं आ सकता, कहता है प्रधानमंत्री आ रहे हैं.''

सुता का चेहरा फक पड़ गया. क्या कहेगी ममी से? वह तो पहले ही से बुत बनी बैठी हैं. यह आघात क्या सह पाएंगी? अनुराधा की आंखों में न आंसू थे, न चेहरे पर शिकन—वह निष्प्राण देह के सिरहाने स्वयं निष्प्राण बनी बैठी थी.

स्त्रियों की फुसफुसाहट, सुता के कानों में गरम लावा उड़ेल रही थी.

''रजत कब आ रहा है? एक ही तो बेटा है, कंधा देने तो जरूर आएगा...''

किंतु, अभागा बाप पराये कंधों पर ही गया, बेटे का स्कंध स्पर्श उसे नसीब नहीं हुआ.

सुता ने छुट्टी बढ़ा ली थी—मां को अकेली छोड़ वह कैसे जा सकती थी? पर फिर अनुराधा ने ही उससे कहा, ''तू चली जा सुता, तेरी नई-नई नौकरी है—माथुर आंटी तो हैं ना.''

जाने से पहले दिन, वह मां की पलंग में ही सोयी.

''ममी, मैं उसका पता लगाकर रहूंगी.''

''किसका?''

''उसी का, जिसने हमारे घर की सुख-शांति भंग की, जिसने पापा के प्राण लिये, रजत को मेरा शत्रु बना दिया.''

''पागल मत बन सुता'', घबराकर अनुराधा बैठ गई, ''वचन दे, तू ऐसा कुछ नहीं करेगी. वह बहुत खतरनाक आदमी है—उसे ईश्वर ही दंड देगा.''

''नहीं दंड मैं दूंगी, और तुम्हें बता जाऊंगी कि मैंने कैसा दंड दिया—तब तक घर नहीं लौटूंगी ममी.''

ढूंढ़ तो उसने लिया ही, दंड भी ऐसा दिया कि परिवार सहित जीवन भर तड़पता रहेगा, पर मां को बताने का अवकाश जुटा, तो मां प्राण रहते भी निष्प्राण बन चुकी थी.

पहले गई थी दुबई, पर पता लगा वहां प्रचुर धन, ख्याति बटोर डॉ. कुरेशी बंबई चले गए थे. उन्हीं के एक मित्र से बंबई का पता लेने पहुंची, तो वे उसे घूर कर देखते रहे, ''आप उनकी कौन हैं?''

''कोई नहीं,'' वह हंसी—''क्यों पूछ रहे हैं आप...''

''माफ कीजिएगा, पर आपका चेहरा, आपकी आंखें, उठने-बैठने का सलीका...कुरेशी का है—इसी से पूछ बैठा.''

''कभी-कभी ऐसा भी होता है,'' वह हंसी, और पता लेकर तीर-सी निकल गई.

बंबई जाने से पहले उसने दुबई से घर को कई बार फोन लगाया. घंटी जाती रही पर किसी ने नहीं उठाया.

कहीं मम्मी बीमार तो नहीं हो गई? जब से उसकी श्रीलंका में पोस्टिंग हुई, वह काम में ऐसी डूबी कि घर की खोज-खबर ही लेना भूल गई. दो-तीन चिट्ठियां भी लिखीं, पर न माथुर आंटी ने उत्तर दिया, न मां ने.

दुबई से लौटी तो आते ही फिर जनक-संधान में जुट गई. सुना था, भिंडी बाजार में ही डॉक्टर कुरेशी की कोठी भी है और क्लीनिक भी. किसी माफिया सम्राट ने उन्हें कोठी खरीदकर उपहार में दी थी. किसी घृणित रोग से डॉक्टर ने उन्हें मुक्ति दिलाई थी, और फीस के रूप में वह कोठी मिली थी. वहीं वे अपनी बेगम और बच्चों के साथ रहते थे.

कई गंदी अली-गलियों को पार कर वह पहुंची तो संगमरमरी नेमप्लेट देखकर रुक गई—डॉ. इदरीस कुरेशी—गुप्त रोग विशेषज्ञ—यहां एड्स का यूनानी पद्धति से इलाज किया जाता है.

दो मुच्छेदार वर्दीधारी द्वारपाल उसे देखते ही चौकन्ने हो गए.

जब से दंगे हुए तब से उनकी सतर्क दृष्टि और पैनी हो गई थी, हिंदुआनी लगती है—एक की स्पष्ट फुसफुसाहट उसने सुन ली.

''किससे मिलना है, वहीं रुको,'' एक द्वारपाल गरजा.

''डॉ. कुरेशी से.''

''वे घर पर किसी मरीज को नहीं देखते. क्लीनिक में जाइए.''

''मैं मरीज नहीं हूं—उनसे मिलना है.''

''क्या बात है, कौन हैं अब्दुल?'' एक विचित्र मूर्ति द्वार घेरकर खड़ी हो गई.

शोख नीले रंग का सूट, रेशमी जालीदार दुपट्टा, सिर से पैर तक सोने की जगमगाहट, दबंग गृहस्वामिनी की मर्दानी आवाज बादल-सी कड़की, ''कौन हो तुम? किससे मिलना है?''

सुता उस स्वर्णमंडिता मूर्ति को देख अवाक् खड़ी रह गई—गल्फ ऐयरवेज से उतरती सोने से झलमलाती ऐसी मूर्तियां तो वह दिन-रात देखती थी, पर इतने गहने? कुहनी तक ठंसी-फंसी सोने की चूड़ियां, इंजन के सर्चलाइट-सी चमकती, चौड़े नथुनों को और चौड़ा दिखाती हीरे की लौंग, कंठ में भैंस के गले की-सी मोटी दुहरी सोने की चेन, गुलबंद, पान से लाल होंठ.

''बोलती क्यों नहीं, गूंगी हो क्या?''

''जी नहीं, गूंगी नहीं हूं. डॉक्टर कुरेशी से मिलना है.''

''तो सुन लो जी, डॉक्टर साहब घर पर किसी से नहीं मिलते—ऐसे ही कल वह सोनागाछी की बंगालन यहां धरना दिए रही—नहीं मिले तो नहीं मिले—शक्ल-सूरत से तो शरीफजादी लगती हो, यह छुतही बीमारी कहां से ले आई.''

''नहीं, मैं उनसे मिले बिना नहीं जाऊंगी...''

''अजीब सिरफिरी छोकरी है...''

''क्या बात है आमना? कौन है?'' डॉक्टर शोर-शराबा सुन, स्वयं निकल आया.

''आने दो—मैं देखता हूं क्यों मिलना चाहती है हमसे...''

''आ जाओ बेटी.''

वह संबोधन सुता को एक पल को अवश बना गया.

मगर सुता ने भी प्रण कर लिया कि परिवार की सुख-शांति में आग लगाने वाले का पता लगाकर रहेगी. और डॉ. कुरेशी को ढूंढ़कर उसने दंड भी दिया... परंतु तब तक मां निष्प्राण हो चुकी थी...

डॉक्टर अपने दीवानखाने में एक जहाजनुमा सोफे में धंसकर बोला, ''बैठो—कहो क्यों मिलना है हमसे?''

बुर्राक पाजामा, मलमल का कुर्ता, मुंह में सिगार, सामने दो बड़े-बड़े फूलदानों में महकता नरगिस का गुच्छा—एक नाव से-बने क्रिस्टल के पात्र में मोगरे के फूल, नन्ही बत्तखों-से तैर रहे थे. सामने दीवार पर मक्का-मदीना की तस्वीर, कुरान की आयतें, पूरे कमरे में लोबान के सुवासित छल्ले तैर रहे थे इसी से पहले चेहरा ठीक से नहीं दिखा, जब दिखा तो सिर चकरा गया—अब समझ में आया, दुबई में उनका मित्र उसे क्यों घूर-घूरकर देख रहा था.

कितना साम्य था बाप-बेटी के चेहरे में! वही रंग, वैसी ही तीखी नाक और एकदम वैसी ही हरी आंखें.

''जो कहना है बिना झिझक कह डालो—घबराओ नहीं, हमारे पास हर मर्ज की दवा है, हमने कइयों को नई जिंदगी बख्शी है.''

''और कितनों की जिंदगी छीनी है?'' सुता ने तपाक से पूछ लिया.

डॉक्टर का चेहरा तमतमा उठा, ''कौन हो तुम?''

''अपना चेहरा देखिए आईने में और फिर मेरा देखिए—फिर, नहीं पूछेंगे कि मैं कौन हूं.''

''यह क्या बदतमीजी है...''

''जी हां मैं वही हूं जिसकी मासूम भोली मां का गला घोंट, आप गोमती में बहा आए थे. मैं वहीं हूं जिसका गला घोंट आप सैयद बाबा की मज़ार पर पटक आए थे. मुजावर ने देख लिया तो आपने उस गवाह को भी साफ कर दिया.''

डॉक्टर का चेहरा सफेद पड़ गया, घुटने पर रखे दोनों हाथ बुरी तरह कांपने लगे.

''क्या चाहती हो तुम? पैसा? बोलो कितना चाहिए...''

''पैसा?'' वह जोर से हंसी, परदे के पीछे छिपी डॉक्टर की मुटल्ली नौ बच्चों सहित सब कुछ सुन रही है, उसने देख लिया था.

''कुछ चीजें ऐसी भी होती हैं डॉक्टर कुरेशी, जिन्हें पैसा भी नहीं खरीद सकता—जानते हैं आप?'' वह उत्तेजित होकर खड़ी हो गई थी, ''मैं इतनी दूर से यही कहने आई हूं—सुन सकेंगे आप?''

''जो कहना है जल्दी कहो और दफा हो जाओ. मेरा वक्त बहुत कीमती है, मरीज इंतजार कर रहे होंगे, नमाज़ भी पढ़नी है.''

''अच्छा तो आप नमाज़ भी पढ़ते हैं?''

दो जोड़ा हरी आंखें आपस में टकराईं—एक में थी घृणा, क्रोध और प्रतिहिंसा; दूसरे में था आतंक, केवल आतंक. कहीं पर्स में पिस्तौल छिपाकर तो नहीं लाई है छोकरी—बदला लेगी क्या?

''मैं यही कहने आई हूं कि आपकी यह आलमगीर कोठी, गहनों से लदी आपकी बेगम, बेशुमार दौलत, सब यहीं धरी रह जाएगी. यहां तो यहां, कब्र में भी आप तड़पते रहेंगे. आप हत्यारे बूचड़ हैं डॉक्टर, अपने कुरेशी नाम को सार्थक किया है आपने.''

फिर, वह हवा के झोंके-सी निकल गई थी—एक बार जाने से पहले, उसने मुड़कर देखा अवश्य था.

डॉक्टर का मुंह खुला था, जबड़े लटक गए थे, आंखों में था भयंकर आतंक. लग रहा था अदृश्य हथकड़ी बेड़ियों में कसा-बंधा जघन्य अपराधी हिल-डुल भी नहीं पा रहा है!

अपना बदला वह ले चुकी थी.

तड़पेगा अवश्य, फिर उसकी बेगम, उसके बच्चे भी तो सब सुन रहे थे.

उसे दृढ़ विश्वास हो गया कि जो अपने अतीत को भुला, केवल अपने समृद्ध वर्तमान में जीता है उसे भविष्य कड़ा दंड अवश्य देता है. अब वह घर जा सकती थी. पर सामान संजो ही रही थी कि माथुर आंटी की चिट्ठी मिली:

''कहां खो गई हो तुम सुता, रजत और तुम्हारी भाभी से तो मुझे कोई उम्मीद नहीं थी, पर तुम कैसे भूल गई अपनी मम्मी को? अब भी उन्हें देखने नहीं आई, तो जीवन भर पछताओगी सुता. वह अब इस दुनिया में रहकर भी नहीं है. ब्लडकाउंट तो लो था ही, अब स्मृतिभ्रष्ट भी हो गई है. उसे न कुछ याद है, न होश ही रहता है. मैं ही जबरदस्ती नहलाती हूं, खिलाती हूं. रजत को लिखा तो उसने उत्तर ही नहीं दिया, सुना है कैलिफोर्निया चला गया है.

''फिर, एक दिन दोनों बिना बताए आ गए. होटल में रुके, दो दिन बाद जाने लगे तो कटलरी, बोनचाइना फर्नीचर सब औने-पौने दाम में बेच गए. कहने लगे—सोचते हैं, मम्मी को कलकत्ता के चैशायर होम में

रख आएं, आप कब तक इन्हें संभालेंगी?

"मैं भी अड़ गई, जीते जी मैं अनुराधा को किसी पिंजरापोल में नहीं जाने दूंगी. दिन भर मैं देखती हूं, रात की एक नर्स रख ली है. लगता है इसके प्राण तुझमें ही अटके हैं—तू आ जा सुता."

सुता दूसरे ही दिन पहुंच गई थी. माथुर आंटी द्वार पर ही खड़ी थीं.

"अभी-अभी खिलाकर सुला आई हूं—सुना है, यह बीमारी पहले विदेशों में ही होती थी, बुढ़ापे की बीमारी न अच्छे-भलों में गिनती, न पागलों में."

सुता जानती थी उस बीमारी का कारण क्या है. विदेशों में संतानों की उदासीनता से पीड़ित, निष्कासित, ओल्ड होम में डाल दिए गए बूढ़े मां-बाप, क्या वह हाइडपार्क की बेंचों पर स्वयं शून्याकाश को निहारते नहीं देख चुकी है? संतानप्रदत्त वे ही अकृतज्ञ आघात उन्हें धीरे-धीरे विस्मृति के गर्भ में डुबो देते हैं. एड्स की भांति, अब यह बीमारी भी भारत में रेंग आई है. रजत और उसकी पत्नी के दिए गए अदृश्य आघातों के नासूर क्या एक-आध थे?

निराश्रित होने का आंतक अनुराधा की निरीह आंखों में सदा के लिए जम गया था—कहां जाएगी वह?

कभी कमरे ही में लावारिस लाश-सी पड़ी रही तो?

कौन देगा उसे मुखाग्नि?

टूटी-सी कैंपकॉट में सिमटकर बित्ते भर की रह गई मां को देख सुता ने बड़ी चेष्टा से रुलाई रोकी.

सामने के दो दांत टूट गए थे, जिस गहन केशराशि को वेणी बनाने में उसकी अंगुलियां दुखने लगती थीं वह दूर्वादल के विरल गुच्छे-सी एक रबर बैंड में बंधी थी, कहां गया मम्मी का वह दबंग व्यक्तित्व?

जीवन की सबसे बड़ी राहजनी तो वह देख चुकी थी जहां पिता पुत्री का गला घोंट सकता है, जहां सगा बेटा मां को प्राण रहते भी निष्प्राण बना सकता है. इससे बड़ी राहजनी, भला देख भी क्या सकती है?

"क्या पापा का डबलबेड भी बेच गए?"

"कहा ना मैंने, सुतली भी नहीं छोड़ी, उसका भी गोला बनाकर बेच गई तेरी भाभी, फ्रिज, वॉशिंग मशीन, तीन-तीन एसी..."

"लखनऊ की इस सड़ी गरमी में मम्मी कैसे रहेंगी यह भी नहीं सोचा?"

"क्या सोचते? मैंने क्या अनुराधा को यहां रहने दिया? अपने यहां उठा ले गई. फिर मुझे लगा, भले ही विस्मृत हो गई हो, कहीं तो इसके इस प्रिय बंगले के फर्श तले इसके अवचेतन में इसकी स्मृतियां दबी पड़ी होंगी—जा रही हैं तो यहीं से जाएं."

सुता ने उस संक्षिप्त अवधि में मां की सेवा में अपने को मिटा दिया, रात की नर्स की छुट्टी कर दी, माथुर आंटी को जोर-जबरदस्ती कर घर आराम करने भेज दिया. ये अंतिम क्षण सिर्फ मां-बेटी के रहे. तीसरे दिन ब्रह्म मुहूर्त में मम्मी का हाथ स्वयं उससे विलग हो गया.

बड़ी देर तक वह उसकी छाती में मुंह छिपाए पड़ी रही. फिर मां का हिमशीतल माथा चूम, उसने चादर से मुंह ढांप दिया और माथुर आंटी को बुला लाई. उन्हीं की मदद से उसने फिर मुट्ठी भर की प्राणहीन देह को भूमि पर धरा.

उजाला होते ही प्रतिवेशी भागते आ गए—वह संत स्वभाव की सौम्य प्रतिवेदिनी सबको प्रिय थी.

"अंतिम संस्कार मैं करूंगी आंटी," सुता का दृढ़ स्वर सुन, सब चौंक उठे...

"नहीं, यह तो बेटा करता है सुता."

देखते ही देखते महाप्रस्थान की पूरी तैयारी हो गई.

दाग कौन बैठेगा? यह काम तो पुत्री नहीं कर सकती.

"विनोद आ गया है, वह अनुराधा को चाची कहता था, वही दाग बैठेगा," माथुर आंटी ने कहा. विनोद उनका भतीजा था. किसी तरह समझा-बुझाकर सुता को घाट जाने से रोक लिया गया.

तीसरे दिन एक गंडपात्र में अस्थियां चुनकर विनोद उसे थमा गया था, "सुता, प्रयाग बनारस या हरिद्वार में विसर्जित कर देना."

पूरे दस दिन तक वह विनोद के साथ निशातगंज के घाट पर क्रिया करने बराबर खड़ी रही.

लखनऊ के उस घाट की तीखी सीढ़ियां उतरते ही जैसे उसकी श्वास अवरुद्ध हो जाती थी. एक ओर शिव का मंदिर, सामने डोरियों से बंधा अश्वत्थ का अक्खड़ वृक्ष जिसकी परिक्रमा कर, मृत व्यक्ति से अंतिम विदा ली जाती थी—आसपास बनी समाधियां और सामने बहती गोमती की धूमिल क्षीण जलधारा.

आज क्रिया का अंतिम पर्व था—हाथ में जल लो, कुश और तिल—तुम्हारी चाची थी ना?

"नहीं, मेरी मां थी, मैं करूंगी," सुता विनोद को धकियाकर स्वयं बैठ गई—पंडित जी ने आश्चर्य से उसे देखा—पागल थी क्या यह लड़की?

"तुम कैसे करोगी, पिंड तो भैया ने दिया है ना?"

"आप कराइए पंडित जी—मैं करूंगी."

"उनका कोई बेटा, सगा भतीजा, भान्जा नहीं है क्या?"

"मैं ही उनका बेटा, भतीजा, भान्जा हूं—कहा ना मैंने," वह झल्लाई तो पंडित सहम गया.

"हाथ में जल लो—कहो... गंगायां च जले मोक्षो/वाराणस्यां जलेस्थले/अंतरिक्षे, गंगासागर संगमे/ये मृता न पुनर्भवा! गंडपात्र को दोनों हाथों से विसर्जित करो."

सुता ने पात्र को सिर से लगाकर जलधारा में विसर्जित कर दिया.

धीरे-धीरे हिलता-डुलता, कभी सीधा कभी टेढ़ा होता वह पात्र बहता गया. "ये मृता न पुनर्भवा...

"मम्मी जाओ, अब इस बेरहम दुनिया में मत लौटना," वह बुदबुदाने लगी.

"विनोद भैया, आप पंडित जी को घर ले जाकर दक्षिणा चुका दीजिए, मैं थोड़ी देर में आ जाऊंगी..."

सचमुच ही सिरफिरी लड़की है, सोचता विनोद चला गया.

वह बड़ी देर तक निःस्तब्ध घाट पर अकेली बैठी रही. पात्र अब आंखों से ओझल हो चुका था.

वर्षों पहले, इसी गोमती की उदार बांहों ने उसकी एक जननी को आश्रय दिया था. आज उसकी दूसरी मां को भी अपनी उन्हीं उदार बांहों में ले लिया.

"बहन जी," वह चौंकी.

मंदिर का अर्द्धनग्न पुजारी न जाने कब उसके पीछे आकर खड़ा हो गया था.

"अब आप घर जाइए—यह सड़क अब लखनऊ की बदनाम सड़क बन गई है, जब से रिंग रोड बनी है, दिन-रात राहजनी, चेन खींचना, गुंडागर्दी आम बात हो गई है..."

"कहें तो रिक्शा बुला दूं?"

"नहीं मैं चली जाऊंगी..." वह उठ गई.

जीवन की सबसे बड़ी राहजनी तो वह देख चुकी थी जहां पिता पुत्री का गला घोंट सकता है, किसी भोली निर्दोष किशोरी का सर्वनाश कर अकारण उसकी जान ले सकता है, जहां सगा बेटा मां को प्राण रहते भी निष्प्राण बना सकता है. इससे बड़ी राहजनी, भला देख भी क्या सकती है? ■

जेके टायर

हम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के स्टील रेडियल टायर बनाते हैं।

इसीलिए मारुति ने अपनी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की कार ज़ैन के लिए केवल जे के ही चुने।

जेके स्टील रेडियल
असली रेडियल

सर्वश्रेष्ठ भारतीय मोटरों के लिए केवल एक ओरिजिनल इक्विप्मेन्ट स्टील रेडियल।

JKI-81/93-94 Hin.

मुझे अच्छी तरह देख

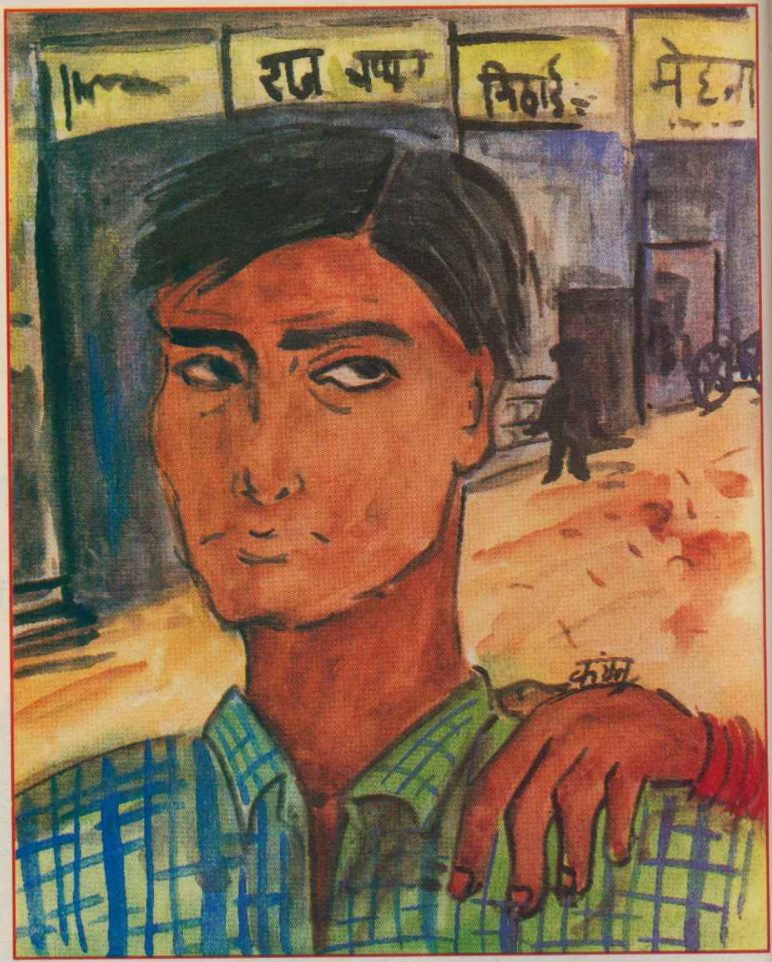

● रमेशचंद्र शाह

● चित्र: कंचन चंदर

विस्मृत हो चुके स्नेह-संबंध अचानक जब आंखों में आंखें डाल कर वास्ता देने लगते हैं कि मुझे अच्छी तरह देख तब समय का फासला बीच से गायब हो जाता है और तिल-तिल संचित घनीभूत पीड़ा हाहाकार कर उठती है.

भीड़ भरे बाजार में अचानक अपने कंधे पर किसी के हाथ का दबाव महसूस हुआ. "अरे, हेमू! तू कब आ गया रे?"...पीछे पलट कर देखूं, इतने में तो वह एकदम मुझसे लिपट गई और मेरे गालों को सहलाने लगी. निर्मला...हां, निम्मो दीदी ही तो! अब वह मेरा हाथ अपने हाथ में लिये उसे झुलाती हुई चल रही थी—झरने की तरह इठलाती हुई. सच कैसे बोलता! यूं ही कह बैठा, "बस दो ही दिन तो हुए मुझे यहां आए हुए." "अच्छया! अब झूठ बोलना भी सीख गया?" उसने एक जोर का धौल मेरी पीठ पर जमा दिया, "हफ्ते भर से पड़ा है और कहता है दो ही दिन तो हुए. अरे, कितने बरस बाद आया है. कम-से-कम पूछता तो सही, दीदी मरी है कि जिंदी...?"

मैं कुछ कहने को ही था कि इतने में सामने ही एक पान की दुकान के आगे निर्मला दीदी का पति दो-चार लोगों से घिरा दिखाई दे गया. मैं उसकी ओर बढ़ा ही था कि वह मेरी बांह पकड़ के मुझे घसीटती हुई एक संकरी गली में घुस गई. "मैं तुझे छोड़ने वाली नहीं हूं. चल, मेरे घर चल. वहीं मिल लेना अपने जीजा से. बजार में तो... तुझे मालूम ही ठैरा, वो जरा ज्यादे ही स्वांग दिखाते हैं. वैसे, पहले से काफी फर्क है. संजू की दुकान खुलवा दी है ना, तब से पगलेट इनका कंट्रोल में है. ये बजरुवे बदजात! इनको मुफ्त का ठेठर चाहिए ना! तू था, इसलिए चुप रह गई. नहीं तो सालों को दो चनकट्टे लगाती..."

मैं चौंक गया. इसे हो क्या गया? निम्मो दीदी और गालियां! तो क्या...गोपू, छोटू इसके बारे में जो कुछ बता रहे थे, सच है कि इसका दिमाग भी चल गया है.

"तू समझा ना इनको हेमू! बता, अच्छा लगता है मेरा बीच बजार में इनको टोकना? इतना बांध के तो रखती हूं दुकान से. तीन-तीन, चार-चार चक्कर लगाती हूं. मजाल है, जो कभी मेरे सामने भी पड़ जाएं ये छोकरे. ऐसा छलझाड़ किया था मैंने एक दिन इनका, कि देखते रह गए थे सारे बजरिये."

"अच्छा अच्छा"— मैंने उसे हौले से एक तरफ किया. उसे कतई होश नहीं था कि वह रास्ता चलते लोगों के लिए खुद भी तमाशा बन रही है और मुझे भी बना रही है. हमारे दोनों ओर लोग इकट्ठा थे. संकरी गली के मुहाने को पूरी तरह छेंके हुई थी वह—दोनों हाथ मेरे कंधों पर धरे. अब जिस चौड़ी-सी गली में हम थे, वही उसके घर की ओर ले जाती है और घर नजदीक ही होना चाहिए, मैंने अंदाजा लगाया. थोड़ा आगे जाकर वह ठिठक गई. बोली, "मैंने बजार का रास्ता बंद कर दिया कभी का. तू तो

जुगों बाद पधारा है. तुझे क्या पता? मैंने खदेड़ दिया सबको. अब यह पूरा घर मेरा है. तुझे पीछे का रास्ता दिखाना था ना, इसलिए घसीट लाई. पहचान तो रहा है? कि भूल गया?''

''वाह! ऐसे कैसे भूल जाऊंगा!'' मैंने कह तो दिया. मगर उस तिमंजिली इमारत के पिछवाड़े पर निगाह दौड़ाते हुए मेरे भीतर कहीं कोई पहचान नहीं जगी. आखिर मकान तो दरअसल इन्हीं लोगों का था. इसके पति के सीधेपन का नाजायज फायदा ही तो उठा रहे थे वे लोग. क्या गलत किया इसने, जो उन कृतघ्न घुसपैठियों को निकाल बाहर किया. वह भी, कितना कुछ बरसों चुपचाप झेल चुकने के बाद.

''मैं क्या करती हेमू, तू ही बता. एक तरफ़ अकेली औरतजात मैं, और दूसरी तरफ़ ये तीन-तीन राकस हमारी जान को लगे हुए. और इन भोलेनाथ को कोई होश नहीं. ये राकस हमको बेच खाते तो भी इनको कोई मतलब नहीं. मैंने भी ठान ही ली हेमू कि मुझे अगर जिंदा रहना है, अपने बच्चे पढ़ाने हैं तो इनका इलाज तो मुझे करना ही पड़ेगा. या तो ये रहेंगे या मैं. आखिर ये कोर्ट-कचहरी हैं किसलिए?''

वह बोले जा रही थी लगातार. तभी अचानक मुझे लगा, गली के कई सारे मकानों की खिड़कियों से चिपकी कई सारी आंखें और कई सारे कान हमीं पर टिके हुए हैं. मैं सिटपिटा गया... ''अच्छा अभी चलता हूं दीदी. कल शाम आऊंगा इसी वक्त.'' उसने फिर से मेरा हाथ पकड़ लिया, ''चल, तुझे बजार तक छोड़ आऊं. तुझे शरम तो नहीं लग रही मेरे साथ चलने में?'' मैं क्या कहता? चुपचाप हथकड़ी पहने उसके साथ-साथ घिसटने लगा.

''तू मेरे घर कित्ता आता था, तुझे याद है? अब तो तू सब भूल गया होगा. मैं तेरे लिए आलू के परांठे और तिमिल का रायता और...जो भी तुझे पसंद है, सब बनाऊंगी. और हां, सूजी के पुए भी. कित्ती ज़िद करता था तू सूजी के पुए खाने की—तुझे याद है?''

''हां, याद है''— मैंने कहा, ''किसी पूर्व जन्म की-सी याद.'' वह बच्चों की तरह खिलखिलाकर हंसी, ''तू इतना निरमोही कब से हो गया रे? और...बहू को क्यों नहीं लाया? कित्ते...सात-आठ बरस तो हो ही गए होंगे. सुना तेरे लड़के का ब्याह भी हो गया. कोई पंजाबन ले आया है, सुना. जैसा बाप, वैसा बेटा. तूने क्या कम हीरोपना दिखाया था? कितना कलपाया था मेरी मौसी को तूने—कुछ पता भी है?...अरे, पराये मन से ही सही, एक आंखर तो मुझे लिख भेजता. गोपू और छोटू तो गए थे, सुना. नहीं रे! जब तू ही मुझे भूल गया तो ये छोरे मुझे क्या पूछेंगे!... बुरा क्यों मानूंगी? उन पर मेरा हक ही क्या है. हां, तुझ पर जरूर अपना हक समझती थी और अभी भी समझती हूं. तू लाट-कमिश्नर कुछ भी बन जाए, रहेगा तो वही मेरा हेमू मेरे लिए. समझा?''

''हां, हां समझ गया,'' मैंने कहा, ''अब तू जा.'' मैं डर रहा था, कहीं उसका पति अभी भी वहीं पर खड़ा अपना स्वांग दिखा रहा हो और यह जाके हंगामा खड़ा कर दे तो?...और सचमुच ही वह मुझे उसी संकरी गली में ठेलती हुई मेरे पीछे-पीछे आने लगी. मैंने उसकी बांह थामी और उसे वापस उसके घर की सीढ़ियों तक खदेड़ कर ही दम लिया.

पूरे आठ बरस बाद मैं यहां लौटा हूं. पहले हर साल आता था गरमी की छुट्टियों में, और तब सोचा भी न होगा कि कभी ऐसा भी वक्त आ सकता है, जब मैं आठ-आठ बरस इस कस्बे का मुंह भी नहीं देख पाऊंगा. तब लगता था जैसे मैं उस दूर परदेस में दस-दस महीने इसीलिए खटता हूं कि दो महीने यहां गुजार सकूं—अपने बचपन के नगर में... और... अब? जब मैं हर तरह से, हर तरफ से बुरी तरह फंस गया हूं...अब ऐसा क्या हो गया है कि मेरे भीतर अपनी इस जन्मभूमि के लिए भी कोई ललक नहीं रह गई है जबकि वह परदेस मेरे लिए आज भी उसी तरह, उतना ही परदेस बना हुआ है. यह कितनी अजीब बात है कि इतने बरसों में मुझे एक बार भी इसकी याद नहीं आई और यहां आकर भी, सात-आठ दिन हो गए, न किसी से मिलने-जुलने का मन होता है, न घूमने-फिरने का. मुझे आखिर हो क्या गया है? लगता है, जैसे मेरे भीतर कोई चीज़ एकदम पथरा गई है. एकदम सुन्न पड़ गई है.

नहीं! यह सच नहीं है. मैं अभी मरा नहीं, जिंदा हूं. यह कोठरी, इसकी दीवारें गवाह हैं...मुझे कुछ हो रहा है. मुझे क्या हो रहा है?...

क्या सचमुच इन सारे बरसों के दौरान मुझे कभी उसकी याद नहीं आई होगी? कितनी असंभव, कितनी अनर्गल-सी लगती है यह बात!...मगर क्या यही सच नहीं है? जब कि...जब कि, मैं जब भी छुट्टियों में यहां आता था, हर तीसरे-चौथे उसके यहां जा पहुंचता था. उससे मिले बिना मुझे कल ही नहीं पड़ती थी. और वह...अपने पति, अपने भरे-पूरे परिवार के सामने ही, उन सबको—सारे संसार को—ओट करके एक ऐसा एकांत मानो जादू के जोर से मेरे लिए रच देती, जिसमें सिर्फ मैं होता था और सिर्फ वह.

''तू इतना निरमोही कैसे हो गया रे?'' उसने छूटते ही मुझसे कहा और बिलकुल सही कहा. मेरा कुछ भी उससे कैसे छुपा रह सकता है? वह सब जानती है, सब समझती है. मुझे उससे कुछ भी कहने की जरूरत नहीं. मगर...क्यों नहीं? वह कैसे जान सकती है उस मात्रा और उस घटना को, जिससे मैं पिछले बरसों के दौरान गुजरा हूं. मैंने तो पहले भी उससे कभी मुंह नहीं खोला. जी उमड़ता नहीं था कई बार, उससे सब कुछ कह डालने को, अपनी घुटन बहा डालने को?...पर तभी, जब वह दूर होती, अलभ्य होती. उसके सामने पड़ते ही वे सारी बातें अपने आप बिला जातीं.

क्या वैसा ही कुछ उसके साथ भी होता होगा? क्या उसे भी मेरे पास बैठकर कुछ उसी तरह का सुकून, और कुछ उसी तरह का सहारा मिलता रहा होगा? यह सवाल पहले तो कभी नहीं उपजा था मेरे मन में. अब क्यों उपज रहा है? मुझे कल जाना था उसके पास—उसे वचन दिया था मैंने. कितनी व्यग्र उत्कंठा के साथ मैं इंतजार करता रहा था शाम का? फिर क्यों नहीं गया मैं? जाके भी, उसके घर की देहरी छूकर भी, क्यों वापस लौट आया? यही तो था वह सवाल, जो मुझसे अचानक आ टकराया था और जिसने मुझे वहीं का वहीं स्तंभित कर दिया था. आठ-आठ बरस मैंने जिसकी एक बार भी सुध नहीं ली, जिसके बारे में कभी सोचा तक नहीं—जबकि यही उसकी जिंदगी के सबसे विकराल वर्ष थे...और...यह सब कुछ अपने घर के लोगों से जान चुकने के बाद भी मैं इतने दिन तक उसके पास नहीं फटका. अब क्यों जा रहा हूं? किसलिए?

वह क्या लगती है मेरी? मां से कित्ती बार पूछा होगा मैंने. कित्ती बार उसने बताया होगा. मगर मैं कभी नहीं समझ पाया, कभी नहीं याद रख पाया उस अजीबोगरीब और दूरदराज के रिश्ते को, जो उससे मेरी मां को मौसी कहलवाता था और मुझसे उसे दीदी. दीदियों की—चचेरी, ममेरी, फुफेरी दीदियों की—भला क्या कमी थी हमारे यहां! मगर उन सबको ओझल करती हुई मात्र यही एक छवि क्यों मेरे समूचे बचपन के आर-पार जगमगाती रहती है? कैसी विपदा के दिन थे वे! जब मां लगभग अपंग हो गई थी और दादी मरणासन्न...तब वह कौन था, जो हमारे पूरे परिवार को संभाले हुए था? यही निर्मला, यही निम्मो दीदी ही न? तब वह नई नवेली दुलहन थी. उसकी उम्र ही क्या रही होगी? यही अठारह-उन्नीस साल ही ना? वो तो उसकी सास की मेहरबानी थी, या ससुर की—मुझे याद नहीं—जो उसे बरसों... कभी सुबह, कभी शाम, हमारे यहां खटने भेज

मुझे बाजार में अचानक अपने कंधे पर किसी के हाथ का दबाव महसूस हुआ. पलटकर देखूं, हां, निम्मो दीदी ही तो! अब वह मेरा हाथ अपने हाथ में लिये उसे झुलाती हुई चल रही थी—झरने की तरह इठलाती.

देते रहे. हां, यह मेरी ही तो ड्यूटी थी उसे उसके घर से लिवा लाना और फिर वापस वहां पहुंचाना. मेरी क्या उम्र रही होगी तब? यही आठ या नौ बरस. मेरे लिए चरम उल्लास का क्षण वह होता था जब मैं उसके अभिभावक की तरह, अंगरक्षक की तरह उसे एक भरे-पूरे बाजार के बीच से 'एस्कॉर्ट' करता था. कितनी सारी उत्सुक और सराहती निगाहों को अपने ऊपर महसूस करता हुआ मैं अपने सौभाग्य पर फूला नहीं समाता था. वह घूंघट नहीं करती थी और चलती हुई भी सरपट भागती-सी लगती थी—पहाड़ी झरने की तरह खिलखिलाती हुई—और उसका हाथ पकड़े मुझे लगभग दौड़ना पड़ता था उसके साथ-साथ चल पाने के लिए.

घर में दाखिल होते ही मुझे खटका हो गया था कि वह नहीं है. वहां था उसका पति, जिसने कोई आधा घंटा मेरा दिमाग चाटा होगा. कितनी बार उठने को हुआ, पर वह हर बार मुझे बिठा देता और वहीं से अपनी औरत को पुकारने लगता अपनी फटी-बेसुरी आवाज में, जैसे उसकी ड्यूटी हो मुझे रोक रखने की. मैं बेहद परेशान था. लग रहा था जैसे किसी पागलखाने में पटक दिया गया हूं. किसी बात की कोई तुक नहीं, सिलसिला नहीं. पागलपन आखिर और कहते किसे हैं! वह तो कह रही थी, पहले से बहुत संभल गए हैं. क्या इसी को संभलना कहा जाएगा? मुझे तो, उलटे, पहले से भी ज्यादा पगलेट दिखाई दिया. पहले तो बहकते-बहकते बीच में कभी पटरी पर भी आ जाते थे, कुछ ठीक-ठाक बात भी कर लेते थे. अब तो एकदम ही चौपट हो गए हैं. तुतलाहट-लड़खड़ाहट भी पहले से कहीं ज्यादा है. भला दुकान कैसे चलाते होंगे. क्या मदद मिलती होगी इनसे संजू को? उफ!

पहले भी मुझे बड़ी वितृष्णा होती थी. पहले भी, रास्ते में दूर से दिखाई पड़ते थे तो मैं कतरा कर निकल जाता था. पर आज तो मेरी हालत अजीब ही हो गई. दो मिनट भी जिस आदमी को झेलना पहाड़ लगता है, उसके साथ पूरी उम्र गुजार देना. कैसे झेला होगा उसने एक अभूतपूर्व विषाद और आतंक ने मुझे जकड़ लिया.

तभी वह भागती हुई आई और मेरा हाथ पकड़कर मेरे पास ही बेंच पर बैठ गई. वह अब भी उसी तरह तेज थिरकती हुई नदी की तरह चलती है और अभी भी उसकी आंखों में वैसी ही चमक पैदा होती है. अब भी उसी तरह खिलखिला कर हंसती है. मगर उसका हांफना देखकर मैं तो चकित रह गया. हांफते-हांफते ही उसने अपना सिर मेरे कंधे पर टिका दिया और सामने खड़े पति की ओर एक हाथ से इशारा किया..."अब खड़े क्या हो? जाओ दुकान पर बैठो. संजू को भेजो. तुमने तो..." मेरे सिर पर हाथ फेरते वह खिलखिला पड़ी, "तुमने तो इसका दिमाग चाट डाला होगा. क्यों रे, कुछ बचा भी है यहां मेरे लिए?" मैंने भी उसकी हंसी में शरीक होने की कोशिश की. पर नहीं हंस सका. जीजा जी भीगी बिल्ली की तरह सटक गए थे. तब पहली बार रसोई की खटर-पटर से लगा, घर में कोई और भी है.

इतने में दोनों लड़कियां चाय लेकर आईं और उनके पीछे-पीछे एक छोटा-सा बच्चा. बच्चा आते ही उसकी गोद में चढ़कर उसे तड़ातड़ तमाचे मारने लगा. मैं तो चकरा गया. "अरे ये कौन है? क्या कर रहा है?..." "प्रणाम कर गुल्लू! ये तेरी मम्मी के मामा जी हैं", वह बोली...."नहीं करता, जा, साली, हरामजादी, कुतिया..." उसने नमकीन की प्लेट उठाई और उसके मुंह पर दे मारी....."मैं तेरा सिर फोड़ दूंगा...." मेरे काटो तो खून नहीं. मैं उठकर खड़ा हो गया. पर वह तो उसी तरह बैठी रही, "अच्छ्या! अच्छ्या!"—वह उसे डांट क्या, पुचकार रही थी..."जा, देख तो तेरी मम्मी क्या कर रही है. सुशी! इसका दूध गरम कर दे और इसे अपनी खाट पर सुला दे..." "नहीं सोऊंगा, जा," बच्चा बुरी तरह चीख पड़ा और फिर यकायक उसने बेंच पर चढ़ के पच्च से उसके मुंह पर थूक दिया. वह उठी, बच्चे को एक हाथ से उठाया और सामने की तंग अंधेरी कोठरी का दरवाज़ा खोल के बच्चे को भीतर फेंक के दरवाजा बाहर से बंद कर दिया.

"बैठ हेमू, बैठ. तेरी चाय भी ठंडी हो गई. छोड़, मैं तेरे लिए खाना लगाती हूं अभी." बच्चा बेतहाशा दरवाजा पीट रहा था...गालियां बक रहा था...और वह एकदम शांत, निरुद्विग्न मेरे पास बैठी हुई थी. मैं घबरा गया. "नहीं, मैं खाना नहीं खाऊंगा," मैंने उठते हुए कहा, "मुझे आज जाना है जरूरी काम से." "कैसे नहीं खाएगा रे?" वह झटके से उठी और मेरा कान पकड़ के घसीटती हुई रसोई की ओर ले चली, "तूने कल की मेरी सारी मेहनत चौपट कर दी. मैं आज तुझे छोड़ने वाली नहीं, समझा?" दोनों लड़कियां मुस्कराती हुई रसोई से बाहर निकल आईं. "क्यों? बैंगन बनाया है ना? ठीक किया. इसे आज वही खिलाऊंगी, जो यह बिलकुल नहीं खाता. इसे पता तो चले, दीदी की रसोई बरबाद करना कैसा होता है."

वह मेरी थाली लगाने में व्यस्त हो गई. बैंगन की कथा तो बस कथा थी. कितनी सारी चीजें बनाई थीं उसने. जैसे उसे पता हो पक्का, कि मैं तो आऊंगा ही. कितने बरसों के बाद मैं उसे रसोई में खाना लगाते देख रहा था. जैसे सपना देख रहा होऊं. हां, सचमुच, मुझे सब कुछ स्वप्नवत् लग रहा था. तभी मेरा ध्यान गया कि कोठरी से बच्चे की चीख-पुकार नहीं सुनाई दे रही. शायद थककर ढेर हो गया हो वहीं? "ये क्यों कर रहा था ऐसा?" मैंने पूछा.

वह एक क्षण को चौंकी और फिर खिलखिलाकर हंस पड़ी, "पंद्रह दिन का था हेमू ये, तबसे मैंने इसे पाला है. इसकी मां को ट्रेनिंग में जाना था. बस, फिर मेरे पास ही रहा आया. उन्हें अपने दूसरे बच्चों से और अपने 'नर्सिंग होम' से फुरसत मिले तब न? कल तारा जा रही है लखनऊ—उसके साथ भेजना है इसको. कितना भटकना पड़ा है इन लड़कियों की खातिर मुझे, तुझे क्या पता. पंद्रह-बीस दिन से इसका बस यही हाल है. अभी चौथा जनमवार मनाया था इसका. इसके मम्मी-डैडी दोनों को बुलाया था कि अपनी अमानत वापस ले जाओ. अब मैं एक दिन के लिए भी इसको रखने को तैयार नहीं. यहां बुरी तरह बिगड़ रहा है बजार के छोकरों की सोहबत में. तूने देख ही लिये लच्छन इसके. मैं इस उम्र में इसके पीछे कहां-कहां दौड़ूं बता. किसको-किसको संभालूं? कल को इसी के मां-बाप मुझको नाम धरेंगे, कि हमारा लड़का बरबाद कर दिया. हां रे, अपना खून अपना ही होता है. तू ही बता, मुझे क्या अच्छा लग रहा होगा इसे इतना पाल-पोस के घर से खदेड़ देना? मगर...मैं करूं क्या, तू ही बता. ये गया नहीं उनके साथ. कहने लगे, बस एक साल और अपने पास रख लो. मुझे भी चढ़ गई. मैंने कहा क्यों रखूं? तुम्हारी औलाद है, तुम जानो. अरे, तूने उस दिन नहीं देखा इसने कैसा तूफान मचा दिया था. अब जा के समझ में आ गया है इसके, कि मैं इसे रखने वाली नहीं हूं. अब वो मुझे गाली नहीं बकेगा तो क्या करेगा? थप्पड़ नहीं मारेगा, मुझ पर थूकेगा नहीं, तो क्या करेगा? माया इसी को कहते हैं हेमू. तू तो खुद ही इतना विद्वान है. मैं तुझे क्या समझाऊं."

बोलते-बोलते वह हांफने लगी. जबरदस्ती मेरी थाली में एक परांठा और डालती हुई बोली, "तू भी कह रहा होगा, दीदी को हो क्या गया है? कैसा कसाईपन दिखा रही है. तू होता मेरी जगह, तो बता तू क्या करता? सच्ची कह रही हूं हेमू, आशु जितना ही उग्र रूप धारण करता है, उतना ही मुझे अच्छा लगता है. मैं तो यही चाहती हूं वह मुझ पर थूके, मुझसे घृणा करे. तभी तो वह अपने मां-बाप को पहचानेगा. उनको अच्छा मानना सीखेगा. है कि नहीं? और

"हां, पागल हो गई हूं," उसने बिफर कर कहा, "तेरे पागल जीजा के साथ मैं पागल नहीं हूंगी, तो और क्या हूंगी..." उसने फिर रोना शुरू कर दिया. मैं अवाक्, विमूढ़ उसे देखता रह गया.

उपाय क्या है, बता? मैं कब तक उसे अपना मन बहलाने का खिलौना बनाके रक्खूंगी?..."

मैं चुपचाप सुनता रहा और कौर निगलता रहा. चलने को हुआ, तो मेरे लाख मना करने पर भी वह मेरी बांह थामे गली के नुक्कड़ तक मुझे छोड़ने आई. रास्ते में उसका लड़का मिला. "जा तेरा खाना रक्खा है, खा ले. हेमू, मेरा संजू बड़ा कारोबारी बन गया है, तुझे कुछ पता भी है? सारे मुहल्ले वाले इससे जलते हैं. वही, जो इसे इसे लायक नहीं समझते थे और इसका मजाक उड़ाते थे. इसने भी करके दिखा दिया सबको. हेमू, मैंने दिन देखा, न रात. इसकी दुकान किसी तरह जम जाए, इसके लिए क्या-क्या नहीं किया...जा रे, तरुली सुला रही होगी आशु को. सुशी से कहना, तुझे परोस दे." बेचारा चुपचाप सिर झुकाए आगे बढ़ गया... "बिलकुल अपने बाप पर गया है, हेमू. वैसा ही सीधा, उल्लू-बेल्लू जैसा. मगर सब सीख गया कि नहीं सीख गया? तू बैठना कभी इसके पास. दो-चार अच्छी बातें बताना इसे. हेमू, ये मुहल्ले वाले क्या कहते हैं, तुझे पता है? कहते हैं, इसने अपनी लड़कियों को लड़कों की तरह पाला और लड़के को लड़की की तरह. मैं होती कौन हूं, हेमू किसी को कुछ भी बनाने वाली! सब अपने भाग का खाते हैं. मुझे तो यही संतोष है कि मेरी लड़कियों ने मेरी सारी कसर निकाल दी. मुझे कितना शौक था पढ़ने का—तू तो जानता ही है. बारह बरस की थी, तभी से बांध दिया मुझे खूंटे से मेरे मां-बाप ने. मैं मिडिल पास भी होती तो...क्या जो नहीं कर देती. यूं ही पढ़ गईं मेरी लड़कियां? सोने का मैडिल मिला था तेरी भान्जी को डॉक्टरी पढ़ने में—तुझे पता है? अब यह संजू नहीं पढ़ा, तो इसमें मेरा क्या कसूर है? नहीं पढ़ा तो क्या हो गया? किस पढ़े-लिखे से कम है? बता, अपना कारबार चला रहा है कि नहीं? बस अब एक ही चिंता रह गई है हेमू, इसका घर बसा दूं, इसकी बहू ले आऊं, बस. बाकी दोनों बहनों को ब्याहना इसकी जिम्मेदारी है. नौकरी कर ही रही हैं. कोई खाली तो बैठी हैं नहीं."

"अभी तो तू है ना?" उसने अकस्मात् पूछा तो मैं कुछ जवाब नहीं दे पाया. उसके अजीब-से वाक्य-विन्यास में उलझकर रह गया. "क्या उल्लू-बेल्लू-सा ताक रहा है मुझे? सुना नहीं, मैंने क्या कहा?" उसकी मुस्कराती आंखों में मुझे सहसा अपना बचपन दिखाई दे गया. मुझसे झेला नहीं गया. उठकर टहलने लगा. वह उसी तरह मुस्कराती हुई चुपचाप मुझे देखती रही. एक अजीब सन्नाटा, अजीब गूंगापन-सा व्याप गया. बीच में उसके पति आए, सुशी आई, पड़ोसिन आई...कितनी बातें, कितना शोर आया. पर वह गूंगापन, वह सन्नाटा ज्यों का त्यों बना रहा. अब भी, जब मैं अपनी कोठरी में लेटा हुआ हूं—उससे विदा लिये भी कम-से-कम दो-तीन घंटे बीत चुके—वह गूंगापन अभी तक मुझ पर हावी है...

आज भी उसने मुझे खाना खिलाकर ही छोड़ा. उसकी लड़की को यह पसंद नहीं—मेरा रोज़-रोज़ आना और इतनी देर बैठे रहना. उसके चेहरे से साफ झलकता है. उसके पति की बात और है. वह अपनी ही ऊलजलूल दुनिया में इतना मगन रहता है कि उसके लिए बाकी किसी चीज़ का कोई मतलब नहीं. वह अपने पति को भोलेनाथ कहती है—उसके मुंह के सामने ही. आज जब हम चौके में बैठे हुए थे आमने-सामने, और वह हमें खाना परोस रही थी—मुझे एकाएक युगों पूर्व की एक घटना स्मरण हो आई. मैं खाते-खाते रुक गया. एक समूची फिल्म जैसे रील की रील खुल रही थी मेरी आंखों के सामने....

तब मैं चौथी में पढ़ रहा था या पांचवीं में. हां, जब उसे मैंने पहली बार देखा था, तब चौथी में पढ़ता था, इतना पक्का है. मां उसे नीमू कहके बुलाती थी. "तेरी दीदी लगती है ये," उसने मुझसे कहा था. मैं उसे देखता ही रह गया था. इतनी सुंदर भी कोई दीदी हो सकती है—मैंने सोचा तक नहीं था. वह मुझे किसी कहानी या उपन्यास की नायिका लग रही थी साक्षात्, जो मैंने शायद उन्हीं दिनों पढ़ा था. प्रथम प्रेम का रोमांच और भला क्या होता होगा! और वह भी एक नौ बरस के लड़के का. एक और भी थी उसी की समवयस्क, जो मेरी चाची के रिश्ते में कुछ लगती थी—जिसका नाम मैंने सांवरी रख छोड़ा था और इसका गोरी. हां, वह एक ऐसा दौर था, जब ये दोनों हमारे घर रोज ही आया करती थीं. जब मां भी बीमार थी और चाची भी.

मैं उसका नाम भूल गया था. आज दीदी ने ही याद दिलाया — घंटी. घंटी का पति काफी अरसे से बाहर था रोजगार की तलाश में. उसकी चिट्ठी आई थी जिसे वह निर्मला दीदी को पढ़ा रही थी. फिर अपने पति को चिट्ठी कैसे लिखी जाए, इस बारे में दोनों के बीच खुसुर-पुसुर चल रही थी, जिसे मैं बेहद कुतुहल के साथ दरवाजे की ओट में छुपा सुन रहा था. 'प्रिय प्राणनाथ' जैसे ही सुना, अपनी हंसी नहीं

रोक सका और पकड़ लिया गया. हंसते-हंसते मेरा बुरा हाल था. डरने के बदले उलटे खिझाना शुरू कर दिया मैंने, "चिट्ठी लिखनी नहीं आती तो मुझसे क्यों नहीं पूछती? प्रिय प्राणनाथ क्या होता है? 'मेरे प्राणनाथ' या खाली 'प्रियतम' लिखो." पता नहीं, कौन-सा उपन्यास था, जिसमें ढेर सारी चिट्ठियां थीं. मैंने दो-एक पढ़के सुनाईं और कहा, "ये है ढंग प्रेम-पत्र लिखने का. समझी?"

बस, फिर तो गोरी-सांवरी दोनों पीछे ही पड़ गईं मेरे. इसी कोठरी की बगल में दोनों की खुसुर-पुसुर चलती रहती. 'जरा अपने प्राणनाथ को तो बुला'— सांवरी कहती. कभी वह लिखी हुई चिट्ठी लेकर मेरे पास आ जाती और मैं उसका संपादन-संशोधन करता रहता. रसोई में व्यस्त निम्मो दीदी बीच-बीच में कोठरी में झांक जाती. उससे रहा नहीं जाता— उसकी जगह जो मैंने छीन ली थी. और सारे मामलों में घोंचू और बेहद झेंपू माना जाने वाला मैं बस इसी जगह कैसे इतना बेशरम और ढीठ था—आज यह सोचकर ही अजीब लगता है. कितना सताता था मैं उन्हें, किस कदर छेड़ता था! कभी-कभी मामला इतना हल्का-फुल्का नहीं रह जाता था, सचमुच संगीन हो जाता था. तब मेरी मुश्किल हो जाती थी. सांवरी के आंसू निकल आते थे और उसकी देखा-देखी मेरे भी. प्रेम-पत्र लिखना-लिखवाना क्या आसान काम है? सांवरी हंसते-रोते और झेंपते-शरमाते जो भी टूटे-फूटे वाक्य बोलती, उन्हें मैं भला ज्यों का त्यों कैसे लिख देता? ज्यों का त्यों लिख दूं, तो फिर मैं लेखक किस बात का? मेरी विशेषज्ञता किस काम की, जिसका सिक्का दोनों पर बैठ चुका था. कभी ज्यों का त्यों सुना देता तो कभी कुछ गोल भी कर जाता. आखिर चिट्ठी छोड़ने का जिम्मा भी तो मेरा ही था. मेरी गोरी और सांवरी सखियां अपनी रस-कौतुक भरी आंखों से मुझे ऐसे निहारती रहतीं जैसे मेरा चेहरा ही चिट्ठी हो. ऐसी-ऐसी बातें कहानी-उपन्यास में पढ़ी हुई मैं उन्हें सुना दिया करता कि वे शर्म से लाल हो जातीं और मुझे नकली गुस्से में थपड़ियाने लगतीं. मुझे अच्छी तरह पता था, उन्हें यह सब कितना अच्छा लग रहा है. मेरी सेवाएं अमूल्य हैं, इसका भी मुझे पूरा एहसास था. तभी तो उसका फायदा भी जमकर उठाने में मुझे कोई संकोच नहीं था.

मगर यह सांवरी प्रकरण जल्द ही खत्म हो गया. शायद घंटी अपने पति के साथ चली गई थी. उसकी नौकरी लग गई थी. निम्मो दीदी अकेली पड़ गई थी और मुझ पर पहले से भी ज्यादा उसका प्यार बरसने लगा था. अपनी सहेली के अभाव की क्षतिपूर्ति अब वह मुझी में ढूंढ़ती थी. एक दिन की बात है, मैं कोठरी में अपनी डेस्क पर बैठा स्कूल का काम कर रहा था. अचानक वह आई और मेरी कॉपी छीनकर एक तरफ फेंकती हुई बोली, "पहले मेरा काम कर. फिर पढ़ना." उसका चेहरा मुझे बड़ा अजीब-सा लगा. बोली, "चिट्ठी लिखनी है." "किसको?", मैंने पूछा, "तुझे चिट्ठी लिखाने की क्या जरूरत है?" "तुझे इससे मतलब?" वह सहसा बिफर पड़ी, "घंटी की चिट्ठी तो बड़े शौक से लिखता था. मैंने लिखने को कहा तो अब पुछड़े क्यों लगा रहा है?"

मेरे लिए उसका यह रूप एकदम ही नया था. इतने गुस्से में उसको मैंने कभी नहीं देखा था. इसे हो क्या गया है, मैंने सोचा. कहीं यह भी वैसा उपन्यास तो नहीं करना चाहती? मैं डर गया. उसने मेरी कॉपी से पन्ना फाड़कर मुझे दिया, "चल, लिख चुपचाप." मैं हाथ में कलम लिये उसका मुंह ताकता रहा. एक मिनट...दो मिनट...जाने कितने मिनट बीत गए, वह उसी तरह गुम्म बैठी रही. मैंने उसे हिलाया, झकझोरा, "अब बोलती क्यों नहीं?" उसने रोना शुरू कर दिया. "तू रो क्यों रही है?" मैंने पूछा. "रो कहां रही हूं", उसने मुझे बुरी तरह झिड़क दिया, "घंटी की चिट्ठी कैसे लिखता था अपने मन से? वैसे ही क्यों नहीं लिखता?" "मगर किसको?..." "तेरे जीजा जी को. और किसको?"...."तू पागल हो गई है क्या?..." "हां, पागल हो गई हूं," उसने बिफर कर कहा, "तेरे पागल जीजा के साथ मैं पागल नहीं हूंगी, तो और क्या हूंगी..." उसने फिर रोना शुरू कर दिया. रोते-रोते उसकी हिचकियां बंध गईं. मैं अवाक्, विमूढ़ उसे देखता रह गया. फिर मुझे जाने क्या हुआ, मैंने कलम उठाई और लिखना शुरू कर दिया.

प्रिय जीजा जी,

आप अजीब आदमी हैं. आपको कुछ समझ में आता है कि नहीं आता? आप मेरी प्यारी दीदी के स्वामी बन बैठे हैं और उसे बिलकुल प्यार नहीं करते जबकि वह आपको इतना प्यार करती है. आपको पता है, आपकी पत्नी आपको कितना प्यार करती है? आप उससे बात तक नहीं करते. आपको पता है, वह कितनी सुंदर है? क्या आपने कभी उसे हंसते देखा है? कैसे

अचानक मैंने अपना सिर उसकी गोद में रख दिया और कहा, "तुम भी मुझे बिलकुल वही निम्मो दीदी लगती हो." एकाएक उसने मेरा चेहरा दोनों हथेलियों में भरकर ऊपर उठाया और कहा, "झुट्ठा. देख, मुझे अच्छी तरह देख."

देखेंगे? आप तो उसे सताते हैं, रुलाते हैं. आपको पता है, लोग उसकी एक झलक पाने को तरसते हैं. वह साक्षात् देवी है. फिर भी वह आपको देवता की तरह पूजती है. क्यों? इसलिए कि आप उसके स्वामी बने बैठे हैं. आपका दिल पत्थर का है. पत्थर को पूजना बेकार है. दीदी को गुस्सा कभी नहीं आता. वह तो साक्षात् देवी है. पर साक्षात् देवी को जब गुस्सा चढ़ता है तो आप जानते हैं क्या होता है? क्या आपको डर नहीं लगता? दीदी आपको छोड़कर चली जाएगी और कभी आपका मुंह भी नहीं देखेगी. तब अच्छा होगा? मेरी आपसे विनती है, आप ऐसा मत करिए. मेरी दीदी का आदर करना सीखिए. उसे इस तरह मत सताइए. नहीं तो...'अब पछताए क्या होता है जब चिड़ियां चुग गई खेत' वाली कहावत आपने सुनी ही होगी. थोड़ा लिखा बहुत समझना. आपका हेमू.

मैं इस कदर डूबा हुआ था चिट्ठी लिखने में कि मुझे पता ही नहीं चला, वह कब मेरे पास से उठकर चली गई. अकेली तो वह जा नहीं सकती—कहां गई? मैंने उसे घर में ढूंढ़ा. वह सचमुच अकेली चली गई थी. कहीं ऐसा तो नहीं कि उसने चुपके से पढ़ लिया और नाराज होके चली गई? मैं घबरा गया बुरी तरह. सीधा दौड़ पड़ा उसके घर की तरफ. वह मुझे देखकर सदा की तरह मुस्कराई नहीं. अजब रुखाई से झिड़कते हुए बोली, "अब क्या है? क्यों आया यहां?" मैंने उसके हाथ में वह पुरजा पकड़ाया और फौरन भाग आया.

उन दिनों उसे रोज ही हमारे घर आना होता था. मैं ही तो जाता था उसे लिवाने और छोड़ने. मेरी हिम्मत नहीं पड़ रही थी उसके सामने पड़ने की. पर वह मुझे देखकर रोज की तरह मुस्कराई जैसे कुछ हुआ ही न हो. स्कूल से भी लौट आया, तब तक वह घर में ही थी. मैं धड़कता दिल लिये अपनी कोठरी में बैठा रहा कि अभी वह दौड़ती हुई आएगी और मुझे सारा किस्सा बताएगी कि मेरी चिट्ठी का जीजा जी पर कैसा जबरदस्त असर पड़ा. खुद उसे कैसा लगा चिट्ठी पढ़के. परंतु वह तो मेरे पास एक बार भी नहीं फटकी. शाम ढल आई और खाना-वाना पकाकर वह घर जाने को भी तैयार हो गई. हमेशा की तरह मैं उसके साथ हो लिया. पर वह कुछ भी नहीं बोली. घर की सीढ़ियों के बीच जब उसने हमेशा की तरह मुझे प्यार करने के बजाय "अच्छा तू जा अब"... निहायत रूखे ढंग से कहा तो मैं भौंचक्का रह गया.

दूसरे दिन भी यही हुआ. आखिर, तीसरे दिब जब मुझसे रहा नहीं गया तो उसे चौके में अकेला पाकर पूछ ही लिया मैंने, "उस चिट्ठी का तूने क्या किया?" वह पहले तो मुझे घूरती रही. फिर जाने मेरे चेहरे में क्या देखा कि उसे जोरों से हंसी आ गई. "तुझे चिट्ठी लिखनी आती भी है?" उसने कहा, "मैंने तो उसी वक्त फाड़ के फेंक दिया था वो कागज. पता है, तेरे जीजा जी के हाथ में पड़ जाता तो क्या होता?..." "क्या होता?" मैंने कहा. उसने मेरा कान पकड़कर उमेठ दिया. "पगला कहीं का! कुछ अक्कल भी है तुझे? जो मन में आता है अनाप-शनाप, कुछ भी लिख देता है. अभी तेरे जीजा मुझे घर से निकाल देते तो?..." "कभी नहीं", मुझे भी गुस्सा आ गया, "तूने फाड़ क्यों दी चिट्ठी? तुझे हिम्मत नहीं थी तो मुझे लौटा देती. मैं देता उनको." उसकी मुखमुद्रा एकदम कठोर हो गई, "खबरदार!" वह मुझे डपटते हुए बोली, "आइंदा कभी तूने इस तरह किया तो देख लेना. अरे, मैंने तुझसे मेरी चिट्ठी लिखने को कहा कि खुद अपनी तरफ से? तू होता कौन है अपने से बड़ों को इस तरह धमकाने वाला? यही पढ़ रहा है, यही सीख रहा है स्कूल में?"

मैं तो जैसे आसमान से गिरा. मुझे रोना आ गया. और मैं उसके पास से उठ के अपनी कोठरी में जा दुबका. काफी देर बाद जब मैंने डेस्क से ऊपर मुंह उठाया तो देखा, वह मेरी कोठरी के दरवाजे पर जाने कब से खड़ी है और उसकी आंखों में आंसू हैं.

जब मैं खाना खा चुका तो वह बोली, "तू कल भी आएगा ना?..." मैं उसका मुख ताकता रह गया. अभी-अभी तो मैंने बताया था इसे, कि मैं कल जा रहा हूं. इसे हो क्या गया? इतनी जल्दी कैसे भूल गई? वह उसी तरह अपने आप में डूबी. मेरे आर-पार देखती हुई बोलती रही...."तेरी दीदी के पास अब सब कुछ है, सब कुछ. रोज मालपुए भी खाना चाहे तो खिला सकती हूं सुबह-शाम. तुझे याद है हेमू, तुझे सूजी के पुए कितने अच्छे लगते थे? मैं ससुराल से चुराकर-छुपाकर लाती थी तेरे लिए, जब भी पुए बनते थे. बुआ मुझसे कहती थी—तूने इसकी आदत बिगाड़ दी है नीमू. इसे अब मेरे हाथ का कुछ भी अच्छा नहीं लगता. जा, ले जाना इसको तू ही. तू ही पाल इसको अब....याद है, तू किस तरह मुझसे चिपका रहता था—मुझे छोड़ता ही नहीं था. जब बहुत दिन हो जाते और मैं तेरे घर नहीं आती तो तू किसी-न-किसी बहाने मेरी ससुराल पहुंच जाता था. मुझे बड़ी शरम लगती थी. बहुत गुस्सा भी आता था. मुझे कहना पड़ता था तुमसे 'जा, घर जा अब.' फिर जब तू चला जाता था, मुझे बहुत बुरा लगता था. मुझे रोना आ जाता था. सच्ची, रे. अब तो, उलटे, मुझे देखकर तुझको शरम लगती होगी जब मैं बीच बजार में तुझसे तू-तड़ाक करने लगती हूं. लगती है ना शरम तुझे, बोल? अब तो तू बहुत बड़ा आदमी हो गया है ना? पर मैं क्या करूं हेमू तेरे बड़प्पन को लेकर? मुझे तो तू आज भी वही बाल-गोपाल रूप में दिखाई देता है. मैं क्या करूं?'

अचानक...जब वह यह कह रही थी...मुझे जाने क्या हुआ, मैंने उसके पांवों के पास जमीन पर बैठते हुए अपना सिर उसकी गोद में रख दिया और कहा, "सच्ची दीदी? तू सच्ची कह रही है?..." "हां, रे..." उसने मेरे सिर को थपकाते हुआ कहा, "सच्ची नहीं, तो क्या झूठी कहूंगी?..." "तो एक बात तुमसे कहूं?" मैंने उसकी हंसती हुई आंखों में झांकते हुए कहा, "तुम भी मुझे बिलकुल वही निम्मो दीदी लगती हो. वैसी की वैसी नई नवेली दुलहन दीदी, जैसी तुम तब दिखती थीं, जब... याद है तुमको...वह 'प्रिय प्राणनाथ' वाली बात?"

मेरी बात सुनकर वह बच्चों की तरह खिलखिला पड़ी और दूसरे ही पल उसकी मुखमुद्रा एकदम बदल गई. एकाएक उसने मेरा चेहरा अपनी दोनों हथेलियों में भरकर ऊपर उठाया और कहा, "झुट्ठा. देख, मुझे अच्छी तरह देख."

न जाने उसकी आवाज में ऐसा क्या था कि मैं बुरी तरह चौंक पड़ा. इतने पास से उसका चेहरा मैंने कभी नहीं देखा था.

"देख, मुझे अच्छी तरह देख हेमू, और फिर बोल, क्या मैं बासठ बरस की बुढ़िया तुझे नई नवेली दुलहन जैसी दिखती हूं?"

मेरे मुंह से एक बोल नहीं फूटा. जीवन में पहली बार...नहीं, शायद, दूसरी बार...मैंने उन हंसती हुई सदाबहार आंखों को बरसाती ताल की तरह डबडबाते देखा. पहली बार मैंने उस परम आत्मीय चेहरे में एक समूचे जीवन की त्रासदी को, उसकी तिल-तिल संचित और घनीभूत पीड़ा को यहां से वहां तक गुंगुवाते-धुंधवाते-घुमड़ते देखा.

हस्बमामूल, मेरे लाख मना करने के बावजूद, वह मेरा हाथ पकड़े मुझे सीढ़ियों के नीचे तक छोड़ने आई. इतनी गूंगी विदाई उसने मुझे कभी नहीं दी थी. ■

न्यू इन्डिया एश्योरन्स जन्मजात अग्रणी...

हर पथ पर रहें अग्रणी.

- **कार्यकुशलता वर्ष 1993-94 :**

● प्रीमियम आय में नम्बर 1 :	
भारतीय संचालन द्वारा	: रु. 1362.63 करोड़
समुद्रपारीय संचालन द्वारा	: रु. 253.89 करोड़
● लाभ में नम्बर 1	: रु. 193.48 करोड़
● निवेश द्वारा प्राप्त आय में नम्बर 1	: रु. 313.00 करोड़
● कुल परिसंपत्ति में नम्बर 1	: रु. 3391.81 करोड़
● ग्रामीण व्यापार विकास में नम्बर 1	: 25%
● व्यापक कार्यालय-सेवा व्यवस्था में नम्बर 1:	
भारत में	: 1169
भारत से बाहर	: 28
● मानव संसाधनों में नम्बर 1	: 23,000 से भी अधिक कर्मचारी दल

और हमें अग्रणी का स्थान दिलाया है आपने. क्योंकि आपको है विश्वास कि हमसे बढ़कर कोई नहीं रख सकता आपका ख्याल.

हमें अग्रणी का स्थान दिलाने वाले हमारे ग्राहकों को हार्दिक शत-शत अभिवादन!

न्यू इन्डिया एश्योरन्स

भारत की सबसे बड़ी साधारण बीमा कंपनी
(भारतीय साधारण बीमा निगम की सहायक कंपनी)
प्रधान कार्यालय : 87, महात्मा गांधी रोड, फोर्ट, बम्बई - 400 001.

सावधानी बरतें. बीमा कराएं.

75 PLATINUM YEARS

न्यू इंडिया का
नए युग में प्रवेश

NIA/12-L/PREM ASSOCIATES/HIN

A KASHMIRI CARPET IN JUTE

Believe it only when you see the Persian rugs, Tibetan floor mats and colourful dhurries woven in jute.

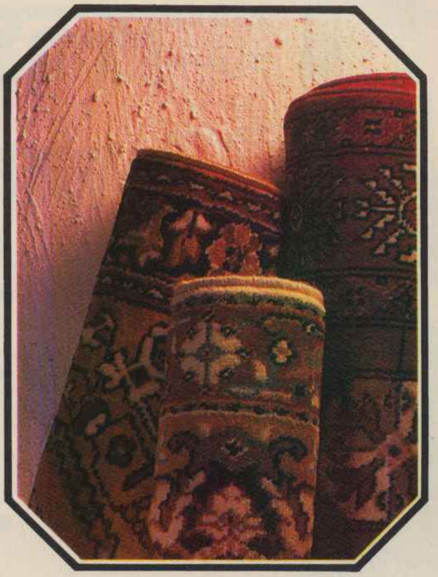

We are glad that most people are laying out the red carpet for jute floor coverings. And why not ? Look at the wonders you can weave out of this golden fibre today.

Take for instance the jute-blended carpets from Kaleen and Champdany Industries and the floor coverings from Uniproducts. They not only look beautiful, but also have properties that make them easy to maintain. Add to that affordable prices and you know why they are such a hit. The jute dhurries from Agra and Panipat are no less attractive. Also available are broadloom mattings from Kerala and non-woven coverings from Hyderabad and New Delhi. But beauty is not the only reason why interior designers and homemakers are opting for jute. Being biodegradable jute offers you the option to be ecofriendly.

Besides floor coverings the Jute Manufactures Development Council is using the versatility of jute to evolve and promote newer uses. Thanks to extensive R&D, Indian jute can now be blended, moulded and dyed to create virtually anything. Be it fabrics or furniture, handicraft or packaging, wall panels or even paper !

So the next time you see a lovely carpet, do not be surprised if it is jute. It will only prove a point–with jute you can have the world at your feet!

JMDC

Jute Manufactures Development Council
Ministry of Textiles Government of India
3A Park Plaza 71 Park Street Calcutta 700 016 India
Tel 29 9240/29 3437 Fax 91 (33) 297136

Clarion 3T1E03

NATURALLY VERSATILE. NATURALLY JUTE.

बेबस

● गोविंद मिश्र

● चित्र: हरिपाल त्यागी

जीवन भी तो भूत ही है, नहीं सधा तो उलटा चढ़ बैठता है. वृद्धावस्था में जब शरीर मुक्ति के लिए छटपटाता है, वह उतरने का नाम नहीं लेता.

वे कहीं रहें, पचास-साठ फटे-पुराने कपड़े उनके साथ बराबर रहते हैं. कभी किसी को फैलाकर देखेंगे, तो किसी को पहनकर. किसी को बक्से से निकालेंगे तो किसी को बक्से में ठूंस देंगे. किसी पर हाथ फेरेंगे तो कुछ को चारपाई के सिरहाने लगा थपथपा कर देखेंगे. बदल-बदलकर इन्हीं कपड़ों-लत्तों को वे तकिया की जगह रखते हैं. एक-एक की खबर उन्हें रहती है. एक बार मैंने सैकड़ों छेदों वाली एक बनियान हटा दी. उन्हें फौरन पता चल गया. ढूंढ़ मच गई. जब तक बनियान नहीं मिली, उन्होंने आसमान सिर पर उठा लिया था. चिथड़ों से वे ऐसे घिरे रहते हैं जैसे वे ही उनके पास-पड़ोसी, हितैषी मित्र हों.

वे नब्बे के इर्द-गिर्द चल रहे हैं. अम्मा कहती हैं कि अभी मैं उतना नहीं खा सकता. वे पुराने ब्राह्मण हैं तो मीठे से पुराना प्रेम है. महीने में कम से कम दो किलो शक्कर उन्हीं की होती है, घर में मिठाई आ गई तो आधा उनकी. आम खाना जो है सो अपनी जगह, ऊपर से दिन भर में एक किलो दूध और आधा पाव दलिया ले लेते हैं. एकदम दत्तचित्त होकर खाते हैं, सिर नीचा और आंखें बंद किए हुए, जैसे कि उनके आंख-कान भी साथ-साथ चबा रहे हों, जैसे कि जीवन में अगर कुछ है तो भोजन है. सोने से पहले वजनी दीवान को बैठे-बैठे खिसकाकर आड़ा-तिरछा लगाते हैं, कभी खिड़की से सीधी हवा की खातिर, कभी उत्तर-दक्षिण का गणित लगाकर. दक्षिण दिशा को पैर नहीं किए जाते! हमेशा तिरछी लगी चारपाई पर ही सोते देखा है उन्हें. इन दिनों गर्मियां हैं तो सिर्फ एक लंगोटी लगाए वे दीवान पर पड़े दिखते हैं.... कमरे के दरवाजे-खिड़की पूरा खुलें, इस बात से बिलकुल बेखबर कि मकान में मैं हूं, मेरी पत्नी भी है. रात को पेशाब करने वे बाथरूम नहीं जाते, हालांकि बाथरूम उनके और मां के लिए अलग है और उनके कमरे से तो करीब-करीब सटा हुआ है. एक प्लास्टिक की बोतल को ऊपर से काट कर रख लिया है, रात उसी में पेशाब कर लेते हैं और सबेरे बाथरूम में उड़ेल आते हैं. उन्हें कोई बीमारी नहीं है, लेकिन अधिकतर वे कराहते ही रहते हैं, "अरे दैया... अरे मोरे करम रे...हाय! कैसो अंग-अंग बिगरो है रे... अरे भोगमान भुगतने है रे.... अरे कोऊ नहिं आय रे... अरे दुनिया मरत जात, मोहे जाने कबै मौत आहै रे..." उनकी कराहें तरह-तरह की आवाजों और स्वरों में निरंतर बहती रहती हैं, नहीं सुनाई देतीं तो तब जब वे पूजा करते हैं, खाते या गरियाते हैं... या जब आसपास कोई नहीं हो. किसी की आहट हुई तो उनका कांखना वैसे ही बहने लगता है जैसे किसी झरने का अटकाव हट गया हो और वह फिर से बह चला हो.

खाने और कराहने के अलावा बाहर के संसार से उनका संपर्क गरियाने के रास्ते होता है. दिन में तीन-चार बार तो जरूर ही गलाफाड़ गरियाना हो जाता है, जो कोई चपेट में आ गया. और कोई नहीं तो अम्मा हैं ही. सबेरे अगर उनके बाथरूम जाने के समय अम्मा बाथरूम में हुईं तो वे उसी समय चालू हो जाते हैं, "अरी सासगधन की निकरह्या कि नहीं, जा पाई कि वहीं पसर कै रह जैहे...!!" दिन में छोटी से छोटी बात पर उनकी और अम्मा की भिड़ंत होती रहती है... जैसे दो जानवर जो एक साथ कैद कर दिए गए हों, साथ रहते-रहते ऊब जाएं और रह-रह कर एक दूसरे पर झपट पड़ते हों. भिड़ंत के बाद भी वे जंग को खत्म नहीं करते, सिर्फ आगे के लिए मुलतवी कर देने का ऐलान करते हैं, "अरी अभागचंदिन! बेईमानिन! यहां चार मड़ई देख लये तो बिगर गओ दिमाग. चल घरै फिर तोरी दशा बनाई जैहै ठीक से." अम्मा न हुईं तो मैं हूं. मैं चुप रहता हूं, उन्हें बोलने देता हूं. कभी कोई प्रतिवाद कर बैठा तो वे फट से मुझ पर चढ़ बैठते हैं, "अरे दलुद्रियो! आदमी हो जाओ! मारैं खां लै आए हौ. जियन देव तनिक बेईमानो! हलालियो!!"

ऐसा लगता है कि वे सिर्फ

मेरे पिता... उन्हें देख अकसर मैं थक आता हूं. इतना लंबा सफर... मगर आज भी वे कुछ कर गुजर सकते हैं. कोई लाज-लिहाज, मर्यादा उन्हें नहीं बांधती, जबकि मां पर संभ्रांत होने का ठप्पा लग गया था.

शरीर जीते हैं और उसी के लिए और सिर धुनते, कराहते रहते हैं, आंखें बंद कर, सिर नीचा कर, "हाय... हाय... अरे आज यौ पखवा धरो है रे, ... देह भमत है, कैसे चक्कर आउत हैं कि ठाड़ो तक नहीं होत बनत... अरे कैसी गरमी चढ़ी है मूड़ में रे..."

उनके तौर-तरीके वर्षों पुराने हैं इसलिए उनके हाथ में भी नहीं है अब इन्हें बदलना. कोई मिलने आया तो दुखड़े रोकर उसके मन में अपने लिए दया उभारते हैं, "बस आखिरी साल आय, ई साल नहीं बचनै अब..." ऐसा कहते-कहते पिछले पंद्रह साल तो निकाल दिए हैं उन्होंने. अकसर इतने जोर से कांखते-बिलखते हैं कि जो नहीं जानता वह घबरा जाए. मेरा एक दोस्त जिसने उन्हें पहले नहीं देखा था वह तो बोला, "इन्हें बहुत तकलीफ है, फौरन अस्पताल में भरती कराओ."

एक बार ये बेचारे स्वयं ही अपने जाल में बुरी तरह फंस गए. पहले यों ही कहा होगा, फिर शायद वहम हो गया कि पेशाब नहीं हो रही. वे कांखते रहे, शिकायत करते चले गए कि सबेरे से पेशाब लगी है और हो नहीं रही. तब वे छोटे कस्बे के अपने घर में थे. कस्बे के डॉक्टर ने सुना, सबेरे से पेशाब नहीं हुई तो दौड़ा-दौड़ा आया. उसके सहायकों ने इनके हाथ-पैर पकड़े और वह जुट गया सलाई डालकर पेशाब निकालने में. ये चीखते-चिल्लाते रहे... पेशाब कुछ नहीं निकली, वहम जरूर निकल गया. डॉक्टर के जाने के बाद से आज तक और ढेरों शिकायतें करते रहे हों, पेशाब न होने की शिकायत मुंह पर नहीं आई है. वैसे, कभी-कभी सच भी बोलते हैं. दो साल पहले तक खासा दूर तक चल लेते थे. हमारे यहां आए थे, तो बाजार निकल गए. वहां एक पट्टी पर काफी देर तक बैठे हुए इन्हें किसी ने देख लिया और पूछा, "आप किसी का इंतजार कर रहे हैं क्या?" ये बोले, "हां मृत्यु का, आप मिलें तो भेज देना..."

ये मेरे पिता हैं. उन्हें देखकर अकसर मैं थक आता हूं. इतना लंबा सफर! जिसमें पिछले पचीस से भी अधिक साल ऐसे कि जीवन में शरीर धारण करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं!

पिछली गर्मियों में जब अम्मा बीमार पड़ीं तो वे दोनों कस्बे वाले अपने घर में थे. अकेले ही रहते हैं वहां. बीमारी के तीन-चार दिनों तक कोई डॉक्टर को बुलाने नहीं गया, जबकि कै-दस्त लगातार हो रहे थे, हैजे के साफ लक्षण. जैसी कि अम्मा की आदत पड़ चुकी है, वे अपने और जीवन के प्रति घोर वितृष्णा में अपने को मनुष्य कम और मशीन ज्यादा लगाते हुए झेलती रहीं. एक तरह के नशे में उठतीं, बाथरूम जातीं और वापस आ पस्त पड़ रहतीं. आंगन के पार अपने कमरे में बैठे पिता सामने से अम्मा को देखते रहते और गरियाते जाते, "ई तरां को घाम और लपट! भरी दोपहरिया में निकल जाएगी, कहेगी—मोहै शंभू बाबू के जाने. कोऊ जौ कछू धर दे अल्लो-बल्लो, बासो-तिरासो सो खा लेने जैसे जनम-जनम की भूखी होय! ले भुगत अब...." पांचवें दिन जब बाथरूम से आते हुए अम्मा गिर पड़ीं तो पड़ोस की भौजी दौड़ी-दौड़ी गईं और डॉक्टर को बुला लाईं. डॉक्टर ने पिता को खूब लताड़ा, "आज अगर खबर न मिलती तो साफ थीं ये." पिता की सिट्टी-पिट्टी गुम... अगर सचमुच अम्मा को कुछ हो जाता तो क्या करते वे यहां अकेले, कैसे करते? किसी लड़के के पास रहना ही ठीक होगा अब... और मैं जब पहुंचा तो साथ आने को बगैर हो-हुज्जत तैयार हो गए थे इस बार. मैं दोनों को यहां ले आया था. हमेशा के लिए अपने यहां रखने की सोचता था क्योंकि अकेले छोड़ने लायक अब दोनों ही नहीं रह गए थे.

अम्मा के अलावा किसी और का बनाया खाना वे नहीं खाते, धर्मभ्रष्ट हो जाएंगे. उन्हें यह ख्याल ही नहीं आता कि अम्मा की भी अवस्था हो गई है, उनका एक पैर टेढ़ा हो गया है, वे ठीक से चल भी नहीं पातीं और हैजे की बीमारी उनको बेहद कमजोर कर गई है. अपने लिए खाना बनवाने के अलावा वे उन्हें दिन भर दौड़ाते हैं, "तना यह ले आना, तना वह उठा देना" जैसे अम्मा बीस साल की लड़की हों. अपने कमरे से अम्मा को बुलाने का एक अलग तरीका ईजाद किया है उन्होंने. कटोरी पर चम्मच मारकर घंटी जैसे बजाएंगे कि अम्मा हाजिर हों. अम्मा डेढ़ टांग से जीहुजूरी में भागती रहती हैं. बीच-बीच में झुंझलाकर चिल्ला पड़ती हैं, "नहीं करती, नहीं करूंगी", तो उधर से वे गरियाते हैं, "करह्या न तो जैहै कहां, बंदरी लट्ठी के बल नचैगी..."

और सचमुच अम्मा जिंदगी भर बंदरिया की तरह नाचीं. पति की गालियां और मार सहने, उनकी सेवा करने के अलावा उन्होंने पढ़ा, घर का खर्च पूरा करने के लिए अध्यापिका हुईं, ट्यूशन किए, अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दी. उन्होंने यह सब भी किया क्योंकि वे सोचती थीं आगे का, बच्चों का. पिता को क्या, वे तो सोचते थे कि करेंगे ससुरे, जो जिनके भाग्य में होगा. लोग ताज्जुब करते रहे कि अम्मा पढ़ी-लिखी हैं. पति जानवरों जैसा सुलूक उनके साथ करते थे और वे झेलती रहीं? एक वाकया तो मेरे जेहन में आज भी साफ-साफ उभरता है. तब मैं सात-आठ का रहा होऊंगा. अम्मा मेरे साथ अपनी प्रधानाध्यापिका के घर गई थीं. पिता कहां थे मुझे ठीक-ठीक याद नहीं. हम रात वहीं रुक गए थे. दूसरे दिन पिता आए और अम्मा

को बाहर बुलवाया. न बात, न चीत और अम्मा के सिर पर एक जोर का थप्पड़ मार सड़क की तरफ धकेल दिया. अम्मा गिरते-गिरते बचीं! ठीक जैसे गाय को भगाते हैं वैसे ही अम्मा को हांकते हुए वे घर लाए थे. अम्मा आगे-आगे भाग रही थीं, पीछे वे थप्पड़ पर थप्पड़ मारते हुए, खदेड़ते हुए. मैं... रोता-बिलखता पीछे-पीछे भागता चला जा रहा था. इसी तरह मुझे याद आता है—एक बार घर के आंगन में पिता ने अम्मा को रस्सी-रस्सी मारा था आंगन के बीचोबीच नीम का पेड़ था. अम्मा बचने की कोशिश में उसके चक्कर पर चक्कर लगाती जातीं, पीछे-पीछे ये रस्सी लिये उन पर बरसाते हुए. जब बवंडर शांत हुआ था तब अम्मा एक कोने में बैठी खूब रो रही थीं, उन्हें रुक-रुककर हिचकियां आती थीं. मैं सामने बैठा था, लाचार... पास में जलती एक ढिबरी. मैं अम्मा से पूछ बैठा था, "अम्मा! बाबू कब मरेंगे?" वे मुझे देखती रह गई थीं!

सबेरे-सबेरे वे एक चम्मच घी, एक चम्मच शक्कर और एक चम्मच पिसी काली मिर्च मिलाकर चाटते हैं... किसी ने कहा था, खाली पेट खाया जाए तो नेत्र ज्योति बढ़ती है. उन्होंने गांठ बांध ली. तब तक अम्मा लोटा भर चाय बनाकर उनके कमरे में दे आती हैं. उधर से वे उनके रात के जूठे बर्तन उठाकर लाती हैं और उन्हें धोती हैं. जो बर्तन धोने आता है वह पता नहीं किस जाति का है... पिता ने आपत्ति उठाई थी इसलिए अम्मा को धोना है. उसके बाद अम्मा पानी डाल-डालकर, सींक की झाड़ू से बाथरूम धोती हैं, पिता द्वारा फैलाई गंदगी को साफ करती हैं... उसके बाद ही नहाती हैं. इस बीच पिता घूमने के लिए निकल गए होते हैं—अकसर जनेऊ कान ही में फंसा हुआ और लंगोटी की नाड़ फटी पैंट से निकलकर दोनों टांगों के बीच झूलती हुई. सिर पर जरूर तब साबुत टोपी होती है.... वह इसलिए कि घर में पहनने वाली टोपी दूसरी है. घर वाली टोपी का घेरा भर है. बालों के ऊपर आने वाला टोपी का हिस्सा उन्होंने फाड़ कर निकाल दिया है ताकि चैंथी पर हवा लगती रहे. बचे घेरे को भी पीछे की तरफ से काट कर सेफ्टीपिन लगा लिया है ताकि टोपी को जरूरत के हिसाब से कसा या ढीला किया जा सके. ...इलास्टिक, जबकि इलास्टिक उन्होंने नहीं देखी. जब तक वे लौटें तब तक अम्मा दलिया चढ़ा चुकी होती हैं, साथ-साथ उनके लिए खाना बनाती जाती हैं. खाना बनकर उनके कमरे में पहुंच जाए, उसके बाद ही गैस पर दूसरों का खाना बनना शुरू हो सकता है.

पिता को आम या मिठाई दिख जाए तो उनका चित्त चंचल हो उठता है. अम्मा इस बात का पूरा ध्यान रखती हैं कि जो भी ऐसी चीज घर में आए उसे सबसे पहले उनके कमरे में पहुंचा आएं. अकसर तो ऐसा भी होता है कि दोनों में थोड़ी देर पहले खूब लड़ाई हुई, वे गरियाकर, थकथकाकर "घर चल, वहां अच्छी तरह दशा बनाई जाएगी" कहते हुए अपने कमरे में चले गए... और थोड़ी देर बाद ही अम्मा कटोरी में आइसक्रीम लेकर उन्हें देने पहुंचीं. अम्मा को शायद ऐसा लगता है कि चाहे जो भी इस व्यक्ति ने उनके साथ किया हो, अब इस मुकाम पर पहुंचकर... जब दोनों ही लाचार हैं, दूसरे को सहानुभूति मिलनी चाहिए. अम्मा उन्हें हर चीज तादाद में भी सबसे ज्यादा देती हैं, फिर भी कभी-कभी उन्हें लोगों की आंख बचाकर फ्रिज से मिठाई या आम उठाकर ले जाते देखा जाता है...

अम्मा उम्र में दस साल छोटी, सुंदर, इनसे ज्यादा पढ़ी-लिखी और उस जमाने में काम पर जाने वाली महिला थीं... तो हर जगह उन्हीं की पूछ... पिता के अंदर हीन भावना रस्सी की तरह ऐंठती चली गई.

तभी एक अघटना घट गई. अम्मा बालूशाही मिठाई का एक डिब्बा पिता के लिए उन्हीं के कमरें में रख आई थीं. किसी की गलती से वह हमारे कमरे में रखी मेज पर पहुंच गया. बालूशाही का डिब्बा उनके कमरे से गायब होना... हाहाकार मच गया. यह पता लगते ही कि डिब्बा हमारे कमरे में था, पिता ने सीधे मेरी पत्नी को निशाना बनाया और व्यंग्यबाण चलाने लगे, "मैं तो पहले से जानत तों, बा उठा लै गई हूहै. हम लोगन खां न कछू मिल पावै. हम ससुर ढोर जो ठहरे... धर दओ भूसा और सानी सारन के आगे, औ का!" पत्नी ने विरोध करने की कोशिश की कि डिब्बा उन्होंने नहीं उठाया था तो वे एकदम लड़ने निकल आए, "खा अपने लड़कन की कसम.. " कहां नाचीज वह जरा-सी मिठाई, कहां बच्चे. पत्नी रोने लगी. अम्मा भी बिलख पड़ीं, "इस दुष्ट के मारे कोई शांति से न रह पाएगा. पूरा आतंकवादी है यह!" पत्नी दिन भर रोई, "मुझे चोरी लगाते हैं, जैसे कि मैं खाऊंगी वह सड़ी मिठाई." मैं जानता हूं पत्नी को डाइ-बिटीज है, वह मिठाई खा ही नहीं सकती... पर इन सब पेचीदगियों, बारीकियों में जाने की फुरसत पिता को कहां. वे गरियाते रहे, पत्नी रोती रही. दूसरे दिन वह बेटे-बहू के पास दूसरे शहर चली गई, "अम्मा रहें, आप रहिए. मैं क्यों रहूं, क्यों सहूं. कोई गुलाम हूं उनकी या कि आपकी..."

अम्मा पत्नी का जाना चुपचाप देखती रहीं. मैं अपने सामने साक्षात काल की सवारी निकलते देख रहा था. एक समय पिता अपने वृद्ध पिता को अपने यहां रखने के लिए गांव से ले आए थे और अम्मा रखने को तैयार नहीं हुई थीं. मैंने उन्हें पिता से कहते सुना था, "इस आदमी को वहीं रख आओ जहां से लाए हो. ये वे ही हैं जिन्होंने हमें घर से निकाल दिया था." रास्ते में पानी पीने के लिए उनका एक गिलास ले जा रहे थे तो उसे भी छीन लिया था. पिता कुछ नहीं बोल पाए थे, क्योंकि वह सच था. एक उसी मौके पर मैंने उन्हें चुप होते देखा था. अम्मा, जो कितनी डांट-मार सहती थीं, उन्होंने धमकी दी थी, "अगर वह बूढ़ा यहां रहा तो वे नहीं रहेंगी, नौकरी छोड़ देंगी." पिता को अम्मा के चले जाने की चिंता नहीं व्यापी होगी.. क्योंकि अम्मा कहीं भी जातीं वे ढूंढ़ निकालते और घसीट कर वापस ले आते. इतने उद्दंड वे थे, लेकिन अम्मा की नौकरी छोड़ देने की धमकी काम कर गई होगी. जो हो, तीसरे दिन वे अपने पिता को वापस गांव छोड़ आए थे.

पत्नी का जाना सुनकर उन्हें थोड़ा ताज्जुब हुआ, लेकिन उसके आगे कुछ नहीं. उन्हें क्या फर्क पड़ता था. उनका सारा काम तो अम्मा करती हैं जिनको उन्होंने कसकर पकड़ रखा है. सभी अस्त्रों का इस्तेमाल करते हैं वे. मार-पीट, डांट-फटकार, लताड़-दुत्कार तो करते ही हैं, कभी बेहद दयनीय बन जाते हैं, कहेंगे, "अब तौ तैं जहां रैहे वहीं रैहों, तोरे ही आसरे पड़ो हौं, चाहे जैसे राख..." कभी अम्मा तंग आकर बिना बताए कहीं को चले जाने की धमकी देती हैं, तो वे ब्रह्मास्त्र उठा लेते हैं, "चली जा, मैं अन्न-जल छोड़ दैहों, छत सै कूद जैहों, प्राण दै दैहों... फिर भगवान न्याय करेंगे, वे विचारेंगे जौन पाप तोहै लगेगा—ब्रह्म हत्या या कि पति हत्या, या कि दोनों!" मेरी पत्नी के जाने में जो राजनीति उनके अनुसार थी, वह भी उन्होंने अम्मा को समझाना शुरू की, "देख, कैसे चतुर हैं... लुगाई खां भेज दओ कि लड़का-बहू खां संभालै और हमैं लगा दओ कि ई घर का राखो... अब यहां मरो चाहै जिओ. उनको तो काम सधत है भाई. हमारी जरूरत रही तो ले आए... और का... अब कराउत हैं काम तो सैं... सो कर. अपने घर में नोने रहते, सो तोरे मारें न रहन पाए."

ऐसी पैंतरेबाजी से वे पहले भी अम्मा को उकसाते रहे हैं कि वे वापस कस्बे वाले घर चलें—"चल चलिए अपने घरै, दो रोटी इज्जत की तो खैबी..." वहां अम्मा सिर्फ उनका करें, वहां उनका एकछत्र राज हो... और पहले वे कामयाब भी हुए हैं, हालांकि सिर्फ पैंतरेबाजी से नहीं, हुड़दंगबाजी से—जैसे कि कोई बाहर का मुझसे मिलने आया उसी के आगे चालू हो जाएंगे, "देखो हम बूढ़े-बुढ़िया को कैसी यातना दे रहे हैं ये. यहां जबरदस्ती रखे हैं, काम कराते हैं..." या मेरे बाहर के किसी पड़ोसी को पकड़ पाए तो उससे ही कहेंगे, "जरा इसे समझाइए, हमारा लड़का बनता है, हमें भूखा मारता है..." उनकी ऐसी ही हरकतों से परेशान होकर अम्मा तंग होकर चल दी हैं वापस उस छोटे-से घर में

पिसने के लिए. वे कहती हैं, "मैं गाली खाने, मार-पीट से नहीं डरती, इस नंग्यांय से डरती हूं." हां, पिता कुछ भी कर गुजर सकते हैं, कोई लाज-लिहाज, मर्यादा उन्हें नहीं बांधती जबकि मां पर संभ्रांत होने का ठप्पा लग गया, तभी से जब से उन्होंने नौकरी की. वे अपने ऊपर होती क्रूरता को ढककर रखना चाहती थीं, इसलिए पी जाती थीं. वे भाग जातीं अगर एकदम निम्न वर्ग की होतीं, लेकिन वे मध्यवर्ग की थीं. उनकी पढ़ाई-लिखाई भी क्या थी... मैट्रिक और बेसिक टीचर्स के लिए ट्रेनिंग... जो उनके संस्कार, उनके आसपास अन्य औरतों के उदाहरण... इनके प्रभाव को कम करने की ताकत नहीं रखती थी. सहते रहना धीरे-धीरे उनकी आदत बन गई.

पिता इस तरह के क्यों हुए? जब उनका ब्याह हुआ तो विवाह के बाद ही उन्हें उनसे भी पहले की पीढ़ी वाले एक बुजुर्ग ने सलाह दी थी, "पुजारी! लाठी के बल रखोगे तभी रहेगी, वरना सुंदर स्त्री तो चिड़िया होती है... ये आई, वह गई..." पिता ने गांठ बांध ली और शुरू से ही अम्मा से उनका संबंध गाली-गलौज, डांट-मार, लाठी वाला ही बना. अम्मा उम्र में दस साल छोटी, सुंदर, इनसे ज्यादा पढ़ी-लिखी और उस जमाने में काम पर जाने वाली महिला थीं... तो हर जगह उन्हीं की पूछ. जैसे-जैसे जिंदगी पिता को पीछे और पीछे धकियाती चली गई, उनके भीतर हीन भावना भीगी रस्सी की तरह ऐंठती चली गई. उसी रफ्तार से गंसता चला गया क्रोध... अम्मा के लिए क्रोध, हर किसी पर क्रोध, हर क्षण क्रोध. उन्हें जीवन में जो कुछ मिला, नोच-खसोटकर ही मिला... सो वही उनका स्वभाव बन गया.

अम्मा और उनके परिवार ने पिता के क्रोधी होने का कारण कुछ और ही ढूंढ़ निकाला था. विवाह के बाद पुजारी जी यानी कि पिता एक भूत को वश में करने के लिए दिया जलाकर दुबक के खंडहरे में बैठे थे. दो रातें तो उन्होंने निकाल लीं... तीसरी रात भूत ने उन्हें डरा दिया. तंत्र-मंत्र जो टूटा सो टूटा, भूत इन पर चढ़ बैठा. तब से आज तक नहीं उतरा है....

हां, जीवन भी तो भूत ही है, कमबख्त नहीं सधा तो उलटा चढ़ बैठता है आप पर.

पत्नी को गए कई दिन हो गए हैं. फोन पर उससे जब-तब बात हो जाती है. मैं उसे आने को बाध्य नहीं करता क्योंकि सोचता हूं कि मां-बाप मेरे हैं, वह क्यों उनका भार उठाए. वह बात-बात में पिता की खामियां गिनाने लगती है. मैं कहता हूं कि अब मां-बाप कोई कद्दू-लौकी तो नहीं, जो बाजार जाकर छांटकर बढ़िया-बढ़िया ले आया जाए. पत्नी यह समझने को तैयार नहीं. उसे तो यह भी नहीं समझ में आता कि अब इस उम्र में, ऐसी लाचारी में ये लोग जाएं तो कहां जाएं. वह कहती है, "यह वे जानें, यह उनकी समस्या है!" जो बालूशाही वाली हास्यास्पद बात से शुरू हुआ वह धीरे-धीरे एक बड़े तनाव का रूप लेता जा रहा है. पत्नी कहती है, "ठीक है, अब शायद हमें यों रहना होगा अलग-अलग." ये मेरे माता-पिता जिन्हें कभी इतना शौक था कि कम उम्र में ही मेरा विवाह करा दिया था, क्या वे ही हमारे अलग होने का कारण बनेंगे?

एक दिन बर्तन धोनेवाला छुट्टी मार गया. अम्मा को मैंने बर्तन धोने नहीं दिए क्योंकि उम्र की वजह से उनकी उंगलियों में वह ताकत नहीं. जोड़ों में दर्द भी रहता है. मैं धोने लगा और पिता ने देख लिया, लुके-छिपे वे सब टोह लेते रहते हैं. देखते ही रसोईघर के सामने आ बड़बड़ाने लगे, "बढ़िया है,...ऐ, खूब बढ़िया है. मांज बर्तन-भांडे, बना रोटी! मेहरिया खां चढ़ा लओ मूड़ पै—ले नौकर पर नौकर—बर्तन-भांडे खां नौकर, रोटी बनावे खां नौकर. बिगार दयी आदत! सो अब तना में फनफनाई और भग गई. मैंने तो ऐसो बांध के रखो कि नोने आज तक रोटी बनाउत और सब करत है, देख ले. मजाल है जो न करै..."

> **वे बोले जा रहे थे अनाप-शनाप... मैं भीतर तक मचमचा उठा—इस आदमी से हर कोई नफरत करता है. कब तक ददौं मचाता रहेगा? यह शख्स जिंदा क्यों है? "आप तानाशाह हैं, राक्षस हैं..." मैं चीख पड़ा.**

वे अपनी तारीफ कर रहे थे कि उन्होंने अपनी पत्नी को कस कर रखा तो आज तक उनका करती है, जबकि मैंने ढील दी इसलिए अपनी पत्नी को बिगाड़ दिया और अब उसकी जगह रसोईघर के काम कर रहा हूं...अरे कर रहा हूं तो? पत्नी से ही यह काम क्यों कराया जाए, सिर्फ इसलिए कि वह पत्नी है?

वे बोले जा रहे थे अनापशनाप... मैं भीतर तक मचमचा उठा—इस आदमी से हर कोई नफरत करता है. यह खूब खाता, थलथलाता और बलबलाता है, दूसरों को दुख देता है, उसमें ही अपनी शेखी समझता है.... और क्या करता है यह... कब तक ददौं मचाता रहेगा? यह शख्स जिंदा क्यों है? इसे अब मर जाना चाहिए...

"आप तानाशाह हैं, राक्षस हैं..." मैं चीख पड़ा.. "आपके लिए बीवी आदमी नहीं जानवर है. सिवा अपने स्वार्थ के कभी कुछ और दिखा आपको? संसार में क्या एक भी ऐसा व्यक्ति है जिसके काम आते हों आप? उलटे अपना जीवन धारण करने के लिए दर्जनों लोगों को कष्ट देते हैं, उन्हें मुक्ति दीजिए... मुक्ति!"

वे एकाएक चुप... थोड़ा सहमकर मुझे देखने लगे— जीवन की यह कौन-सी व्याख्या थी जो मैं कर रहा था? मरने की तो वे भी सोचते हैं दिन में कई बार, लेकिन स्वयं को शरीर के कष्टों से मुक्ति दिलाने के लिए दूसरों को मुक्ति...? नहीं, वे ऐसा कुछ नहीं सोच रहे थे. उस स्तर पर तो वे जीते ही नहीं. शायद उन्हें झटका लगा था! अम्मा के तेज बोलने के तो वे अभ्यस्त थे, लेकिन मैं तेज पडूं? माने उनका लड़का उन्हें गाली दे रहा था!

खामोश वे अपने कमरे में चले गए, फिर शाम तक कुछ नहीं बोले. जिसका मुंह चौबीसों घंटे चलता रहता हो, उसका एकाएक अपना मुंह यों सिल डालना... घर में थोड़ी-थोड़ी दहशत भरने लगी थी. रात को उन्होंने चुपचाप खाना खाया और निढाल-से पड़ रहे. चारपाई भी आड़ी-तिरछी नहीं लगाई. गरमी की रात थी फिर भी देर रात मैंने उन्हें सिकुड़े पड़े देखा... निस्पंद, एक दुबली-पतली काया, बिस्तर पर तिरछी पड़ी हुई, जैसे अपने में घुसी चली जा रही हो. जो हर समय पूरे घर को मचमचाए रखता हो, उसे ऐसी निरीह अवस्था में देखना अजीब लगा. थोड़ी दया उपजी, थोड़ा डर भी लगा. हिम्मत नहीं हुई कि हिला-डुलाकर देखता. मैं बेवजह तेज पड़ गया था कल. उनकी जिस क्रूरता को लेकर मेरा आक्रोश था, मैं खुद वैसी ही क्रूरता कर बैठा.

•••

"हाय... अरे दैया रे... अरे मोरे करम रे..." सबेरे-सबेरे आवाजें सुनाई दीं तो मैंने राहत की सांस ली. हमेशा की तरह उन्होंने काली मिर्च, घी-शक्कर अपनी चिरपरिचित तल्लीनता से चाटी. अम्मा चाय रख आईं तो चाय पी डंडा लेकर घूमने निकल पड़े. रास्ते में अम्मा पड़ीं तो शुरू हो गए, "ओ री! सामान बांध ले, हम अपने घरै जैहैं... इन भ्रष्ट लोगन के साथ न रैहें."

"तो तुम जाओ, अकेले रहो वहां," अम्मा ने कहा.

"जैहे कैसे न... तैं जैहे, तोर मांछी (मक्खियां) जैहैं..." उनकी आवाज ने अपनी पुरानी तेजी पकड़ ली थी. अम्मा और वे फिर अपने झगड़े में उलझ गए थे. मुझे याद आया कस्बे में भी सबेरे-सबेरे उनकी लड़ाई जरूर होती थी, जैसे रात के विश्राम के बाद दो योद्धा पुनः युद्ध पर आ डटते हों. फिर कल तो वे आधा दिन से चुप थे. तबीयत भर गालियां देकर और खाकर वे निकल गए बाहर कराहते हुए, "अरे दैया रे... कैसो पखवा धरो है रे आज, कैसे चक्कर आउत हैं... "

जिस कट्टरता से वे जिंदगी से चिपके हुए थे, आखिर जिंदगी भी कैसे छोड़ेगी उन्हें... पीछे से मैं सोच रहा था. ■

RICOH

अधिक जानकारी के लिए रिको डीलर से मिलिए

Representative in INDIA: STAR MARKETING ENTERPRISES: C-20, Everest-Tardeo Road, Bombay-400 034 Phone: (22) 494-2082 Fax: (22) 492-8742 Service Agent: **INDIA**: CAMERA CENTRE: Gr. Floor, 189-191, DR. D.N. Road, Opposite Central Bank of India, Bombay 400 001 Phone: 22-2625560 Authorized distributors: **U.A.E**: JUMBO ELECTRONICS CO., LTD.: Jumbo House, P.O. Box 3426, Dubai Phone: (971) 4-523555 **KUWAIT**: AL ALAMIAH ELECTRONICS INTERNATIONAL LTD.: Ussama Bldg., Fahd Al Salem Street, P.O. Box 23781, Safat, 13098 Phone: (965) 2-414140,1,2 **SAUDI ARABIA**: AL ALAMIAH ELECTRONICS CO.: Alamiah Bldg., University Street, P.O. Box 5954, Riyadh 11432 Phone: (966) 1-477-0106 **QATAR**: NASIR BIN ABDULLAH & SONS GROUP OF COMPANIES: P.O. Box: 329, DOHA Phone: (974) 417575 **OMAN**: MUSCAT ELECTRONICS CO. (LLC): P.O. Box 8009, Muttrah Phone: (968) 796591 **BAHRAIN**: SOLAR ELECTRONICS CO. w.l.l.: P.O. Box 814, Manama Phone: (973) 211200 **HONG.KONG**: LAIKOK PHOTOGRAPHIC PRODUCTS (HK) LTD.: 5th Floor South East, Warwick House, Taikoo Place, 979 King's Road, Quarry Bay Phone: (852) 856-3933 Fax: (852) 856-3977 **REPUBLIC OF SINGAPORE**: WYWY PRIVATE LIMITED: 12 Hoy Fatt Road, Singapore 0315 Phone: (65) 472-2155

RICOH BUSINESS MACHINES, LTD., CAMERA DEPT.: 23/F., China Overseas Building, 139 Hennessy Road, Wanchai, Hong Kong Phone: (852) 8622888 Fax: (852) 8661120
RICOH CO., LTD., PHOTO PRODUCT DIV.: 3-32-3, Higashi-Shinagawa, Shinagawa-ku, Tokyo 140, Japan Phone: (813) 5479-2858–9 Fax: (813) 5479-2877

शेयर बाज़ार हो या आपकी ज़िंदगी,
सौदे का फ़ायदा तो सही जगह पर ही मिलेगा...

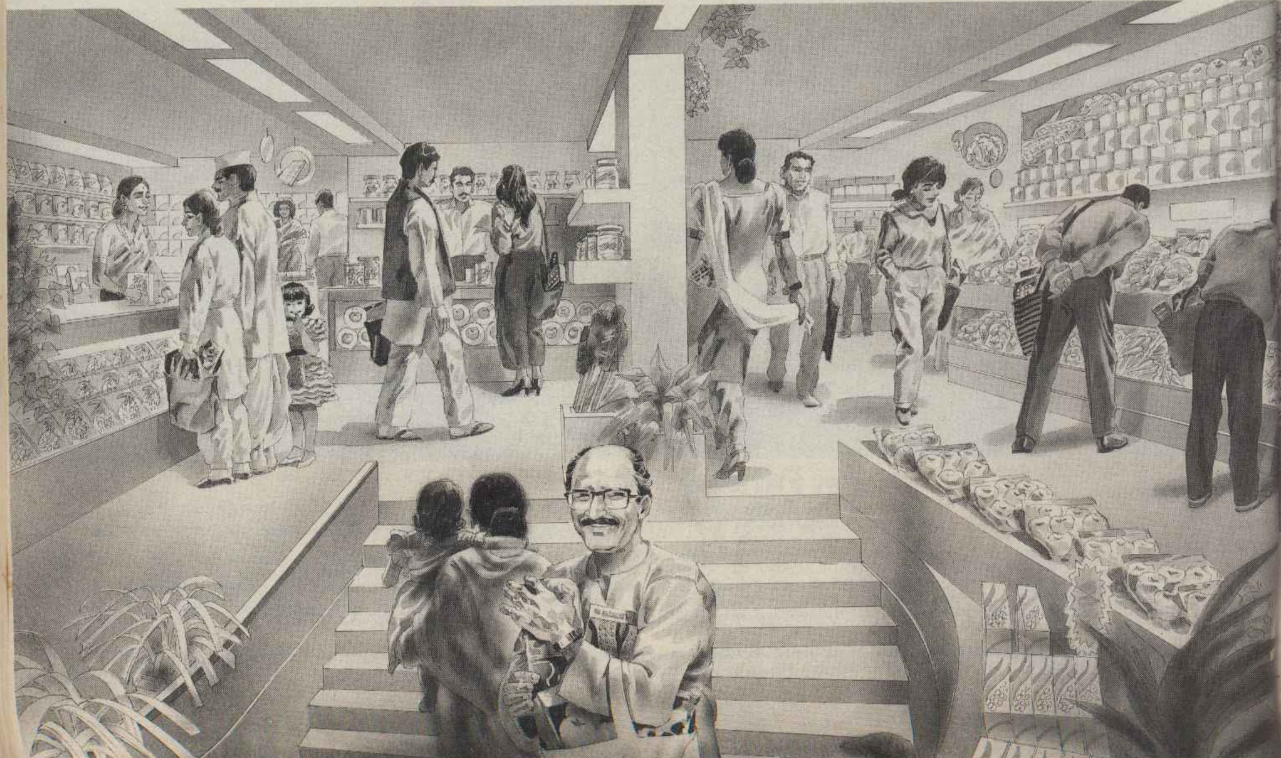

ओ टी सी एक्स्चेंज ऑफ़ इंडिया का आधार हैं ये दो उसूलः

पहला, स्टॉक एक्स्चेंज ऐसा हो जो इन्वेस्टर को ऐसे शेयर उपलब्ध कराए जिनमें सफ़लता की अच्छी संभावनाएँ हों.

दूसरा, जहाँ शेयरों की ख़रीद और बिक्री हर बार एक सुखद अनुभव साबित हो.

इस रौशनी में देखिए, ओ टी सी एक्स्चेंज में लिस्टिड शेयरों में से कुछेक की कामयाबी की झलक. लिस्टिंग* के बाद इनमें वार्षिक वृद्धि दर्ज हुई है इस प्रकार: रिन्यूएबल एनर्जी सिस्टम्स ७०७%, कार्तिक अलॉएज़ ३३७%, मैक्सवैल अपेरल ३३४% और वालेचा इंजीनियरिंग १५७%. और चार ऐसी कंपनियाँ हैं जिन्होंने लिस्टिंग के बाद पिछले एक साल में बोनस इश्यू पेश किए हैं.

ओ टी सी एक्स्चेंज में इस तरह के मुनाफ़े एक नियमित सिलसिला हैं. कारण, यहाँ लिस्ट होने वाली हर कंपनी की पूरी छान-बीन और जाँच-परख ओ टी सी के एक सदस्य द्वारा की जाती है, जो ख़ुद ही उस इश्यू को स्पॉन्सर भी करता है, और इश्यू ख़त्म होने के बाद भी आपके प्रति जवाबदेह रहता है. यही वजह है कि ओ टी सी कम्पोज़िट इन्डैक्स जुलाई '९३ से अगस्त '९४ तक ३ गुना बढ़ा है. यूँ कहिए कि देश के किसी भी स्टॉक एक्स्चेंज के मुक़ाबले इसने ७५% अधिक वृद्धि दर्शाई है.

इस से भी आगे, ओ टी सी एक्स्चेंज आपके लिए नेशनल मार्किट की राहें भी खोलता है, ताकि भारत भर में कहीं भी आप को बेहतर से बेहतर क़ीमत मिल सके. साथ-साथ बनी रहती है लिक्विडिटी भी. क्योंकि, तमाम लिस्टिड शेयरों के लिए औसतन १० बाज़ार की नब्ज़ समझने वाले 'मार्किट मेकर्स' मौजूद रहते हैं, जो हर वक़्त ख़रीद/बिक्री का भाव देते रहते हैं. इसके साथ उन सिक्यूरिटीज़ की ख़रीद/बिक्री की सुविधा भी जो न सिर्फ़ ओ टी सी एक्स्चेंज में, बल्कि दूसरे एक्स्चेंजों में लिस्टिड हैं. यानी आप टाटा टी, टाटा कैमिकल्स, रिलायंस, एस्सार गुजरात, टाटा स्टील जैसे शेयरों और मास्टरगेन, मास्टरशेयर, एस बी आय मैगनम जैसे म्यूचुअल फ़ंड व यू टी आय यू एस ६४ का लेन-देन भी कर सकते हैं.

इन सब के अलावा कुछ पहलू और भी. ओ टी सी के मायने हैं एक अनुशासित, साफ़-सुथरी मार्किट. पूरी तरह कम्प्यूट्राइज़्ड होने के कारण तमाम लेन-देन स्पष्ट और आपकी नज़रों के सामने होता है. कागज़ात पर लेन-देन की सही तारीख़, समय और क़ीमत लिखी मिलती हैं. जल्द से जल्द सेटलमेन्ट किया जाता है. भुगतान के बदले में काउंटर रसीद (सीआर) तुरंत आपको दे दी जाती है. बेचे गए शेयरों का भुगतान ७ दिन के अंदर कर दिया जाता है.

इन सब के बाद भी ओ टी सी एक्स्चेंज में दूसरी कई सेवाएँ आपके इन्तज़ार में हैं. जैसे, इन्वेस्टर के नाम पर ट्रांसफ़र, पुनः संयोजन या विभाजन, वग़ैरह. और ये सेवाएँ आप किसी भी काउन्टर से हासिल कर सकते हैं.

ओ टी सी एक्स्चेंज ने उठाया है एक और बड़ा क़दम. अमरीका की NASDAQ के साथ गठबंधन. इसका मतलब होगा भविष्य में आपके लिए विश्व-बाज़ार के दरवाज़ों का खुल जाना. क्योंकि NASDAQ आज दुनिया का दूसरा सब से बड़ा और तेज़ी से बढ़ रहा स्टॉक एक्स्चेंज है.

कुल मिलाकर हम कहेंगे कि ओ टी सी एक्स्चेंज ऑफ़ इंडिया आपके लिए सब से बेहतर फ़ैसला साबित होगा.

OTC EXCHANGE OF INDIA

११७, मेकर चैम्बर्स III,
नरीमन पॉइन्ट, बम्बई ४०० ०२१
फ़ोनः २८३ १३०८/४५.
फ़ैक्सः ०२२-२८३१२७५
वॉइस मेलः ९७२१०५८

आ प का अ प ना स्टॉ क ए क्स्चें ज.

रजि. ऑफ़िसः ९२, मेकर टावर्स एफ़, कफ़ परेड, बम्बई ४०० ००५. फ़ोनः २१८८९६४/८५११ फ़ैक्सः ०२२-२१८८०१२ वॉइस मेलः ९७२१०५८ **क्षेत्रीय ऑफ़िसः मद्रास** - पी. आर. सुरेश, फ़्लैट न. १ तथा २, क्यू २६, वेणा विला, अन्ना नगर, मद्रास ६०० ०४०. फ़ोनः ६२६८८८०/८६/९०. फ़ैक्सः ६२६८६०६ **नई दिल्ली** - नीना नागपाल, १४ डी, आत्माराम हाउस, १, टॉल्सटॉय मार्ग, नई दिल्ली ११० ००१. फ़ोनः ३७१२०४५/३७३१६५९/३७३९२६१/२/३/४/५ फ़ैक्सः ३७३१६५७ **प्रतिनिधि ऑफ़िसः बैंगलौर** - फ़ोनः ३६१११४/३३४३०१४ **कोचीन** - फ़ोनः ३६३११६/३५४१५२ **कोयम्बतूर** - फ़ोनः २१३६५२/२३६०३४ **त्रिवेन्द्रम** - फ़ोनः ४४५०८५ **हैदराबाद** - फ़ोनः ३१४०८१/६३७४८४/३१८६०८ **विजयवाडा** - फ़ोनः ७४१९८ **चंडीगढ़** - फ़ोनः ६०३२४७/६०६६१२ **इन्दौर** - फ़ोनः ३२३४५/३०९६३ **जयपुर** - फ़ोनः ३७३२०३ **जोधपुर** - फ़ोनः ३१४५७/३०७८१ **लखनऊ** - फ़ोनः २३४३३९ **कानपुर** - फ़ोनः ३११९३४/३१९७१९ **अहमदाबाद** - फ़ोनः ४६८५८१/४६१४२२ **बड़ौदा** - फ़ोनः ३२४४५९ **सूरत** - फ़ोनः ६२७३४३/६१३०६८ **राजकोट** - फ़ोनः २७७४५ **पुणे** - फ़ोनः ३२५७९५/३२५४८६ **नागपुर** - फ़ोनः ५३७३५७/५२०३८५ **गोवा** - २२७५९४/२२१४७३ **पटना** - फ़ोनः २३८७८४ **भूबनेश्वर** - फ़ोनः ४०७७३७.

कृपया मुझे निम्न पुस्तिका भेज दीजिए.
(आपको जो पुस्तिका चाहिए उसपर ✓ निशान लगाइए)

- [ ] ओ टी सी एक्स्चेंज में शेयरों का लेन-देन क्यों और कैसे किया जाए.
- [ ] ओ टी सी एक्स्चेंज में किसी कम्पनी को क्यों और कैसे लिस्ट किया जाए.
- [ ] ओ टी सी एक्स्चेंज से फ़ायनेंस प्रोफ़ेशनल किस प्रकार लाभ उठा सकते हैं.

नामः ____________________

व्यवसायः ____________________

पताः ____________________

*जुलाई ३१, १९९४

OTC 1 94 HIIN

सब कुछ करीने से

उच्च मध्यवर्गीय मानसिकता अपने परिवेश में, अपने संबंधों में, सब कुछ सलीकेदार चाहती है, देखने वाली दुनिया के लिए जीने वाली दुनिया को छोड़ने को भी तैयार रहती है.

● विजय मोहन सिंह
● चित्रः परमजीत सिंह

वह उनकी पहली पोस्टिंग थी. नई-नई नौकरी थी. शहर नया था. सब कुछ बहुत उत्तेजक और चुनौती भरा था. हां, शादी भी नई-नई थी. यद्यपि दस महीने हो चुके थे लेकिन लगातार साथ रहने का पहला मौका था. सुबह वे चाय पीते हुए 'गुटर-गूं' करते रहते कि अचानक दफ्तर का समय हो जाता, फिर वे हड़बड़ी में बाथरूम में बंद हो जाते. बाथरूम में घुसने से पहले वे अपना कमरा बंद करते. वार्डरोब से उस दिन की टाइ, कमीज, पैंट और मोजे पलंग पर करीने से सजा देते. नहाकर तरोताजा बना हुआ बदन, वार्डरोब के आईने में अपने आपको निहारता. सब कुछ पहचानता.

...तब तक मेज पर नाश्ता लग चुका होताः एक अंडे का सादा आमलेट, सुनहरा सिंका टोस्ट और ठंडे दूध का गिलास. ...प्रिया नाइटी में सामने बैठकर शाम के नाश्ते के बारे में पूछती. कभी-कभी यह भी कि क्या उससे पहले कोई फिल्म देखी जा सकती है? मेट्रो में 'वेस्ट साइड स्टोरी' लगी है और संगीत में एलविस प्रिस्ले की नई फिल्म. संगीत करीब है. खाना खाकर भी निकला जा सकता है. ...हल्के से आमलेट का टुकड़ा टोस्ट के साथ मुंह में रखने के बाद करीने से तहाकर रखे गए नेपकिन से मुंह पोंछते हुए अकसर वे कहते, "प्रिया, आज तो देर रात ड्यूटी है, मुमकिन नहीं है. सैटरडे तक इंतजार कर लो." फिर "सी यू" कहते हुए सीढ़ियां उतर जाते. वह बालकनी में खड़ी होकर उन्हें कार का दरवाजा खोलते हुए देखती और "बाय-बाय" कहती. कार जयंत के पिता ने शादी के मौके पर दी थी. वे विदेश में थे. कार भी विदेशी थी.

...गर्मियों के दिन थे. प्रिया मिक्सी में कभी आम, खरबूजा या साधारण मिल्कशेक बनाकर फ्रिज में डाल देती और जयंत के आने का इंतजार करती. शाम को वे बालकनी में बैठकर ठंडा मिल्कशेक पीते हुए बातें करते. जयंत कम बोलते, प्रिया ज्यादा. चूंकि अपना पास-पड़ोस कुछ बना नहीं था, इसलिए वह अपने घरेलू नौकर के बारे में ही अधिक बातें करती जैसे कि वह समय से कोई काम नहीं करता और कुछ भी ठीक नहीं करता. सब्जियां खराब लाता है, महंगी भी. कहीं भी जाता है तो लौटता बहुत देर से है और यह भी कि रात को कहीं से पी कर लौटता है.

...इसके बाद उन्होंने उस शहर में नए-नए 'ज्वायंट्स' की तलाश शुरू की. ...मेट्रो के पीछे ढाबेनुमा दुकान में 'खाटी कबाब' बहुत अच्छा मिलता है (जिसका मतलब कि बहुत मशहूर है) और नदी के किनारे बना 'स्टीमरनुमा' रेस्तरां शहर का सबसे रोमैंटिक रेस्तरां है. खासतौर पर उसके ऊपरी तल्ले पर खाली मेज मिल जाए तो क्या कहना! खिड़की के पास वाली. उसके करीब से स्टीमर अकसर सायरन बजाते हुए चलते. ...यह सब कुछ बेहद दिलचस्प और उत्तेजक था.

> **गर्मियों के दिन थे. प्रिया मिल्कशेक बनाकर फ्रिज में डाल देती और जयंत के आने का इंतजार करती. शाम को वे बालकनी में बैठकर ठंडा मिल्कशेक पीते हुए बातें करते. जयंत कम बोलते, प्रिया ज्यादा. अपना पास-पड़ोस कुछ बना नहीं था.**

...धीरे-धीरे उन्होंने शहर के ऐसे तमाम ज्वायंट्स का अनुसंधान कर डाला. ...फिर अचानक ध्यान गया कि घर में कोई ढंग का म्युजिक सिस्टम नहीं है. 'म्युजिक सिस्टम' आया तो तलाश शुरू हुई कि इन दिनों चर्चाओं में, बैठकखानों में किन गानेवालों की आवाज़ी पैठ ज्यादा है. ...और फिर तलाश उन गलों के 'डिस्क्स' की.

...यूं दिन गुजरते गए...फिर लगा कि कुछ है कमी मगर फिर भी. .. प्रिया को लगा कि सबसे बड़ी कमी तो आदमी की हैः न जयंत का कोई दोस्त है, न उसका. दफ्तरी दोस्त, दोस्त नहीं होते. पास-पड़ोस गैर भाषायी था. उस शहर में बारिश बहुत होती थी. लगातार बारिश में अकेले बैठे रहना. चंद ग़ज़लों, गीतों, कॉफी और मिल्कशेक के सिवा.

...जयंत की सुबह जल्दी शुरू होती और शाम देर से. शाम को वे बालकनी में 'डनहिल' और 'ब्लैक लेबल' के साथ सफेद कुर्ते-पाजामे में बैठ जाते. प्रिया नौकर को खाने की हिदायतें देती बालकनी और रसोईघर के बीच आती-जाती रहती. उसे थोड़ी उलझन होती कि जयंत इतना कम बोलते हैं जबकि उनकी आवाज काफी साफ, भारी और सुलझी हुई थी. प्रिया को कुछ देर चुप रहने के बाद ही लगता कि कुछ बोलना चाहिए. किसी के साथ चुप बैठे रहने का अभ्यास उसे नहीं था.

...इसी बीच खुशकिस्मती से मिल गए गोयल दंपती. वे अचानक उस दिन न्यू मार्केट में मिल गए और बन गए 'दोस्त' जल्दी ही, इसलिए भी कि वे बिलकुल करीब रहते थे.

...मि. गोयल एक बातूनी इंसान थे और बातूनी बने रहने के लिए जो अपरिहार्य गुण होने चाहिए वे उनमें मौजूद थेः दुनिया में बहुत कम विषय होंगे जिन पर वे बातें न कर सकते हों और बहुत कम कार्य होंगे जिन्हें संपन्न कराने में वे सहायता न कर सकते हों. प्रिया की जरूरतें और दिक्कतें बेशुमार थीं. पहले कुछ महत्वपूर्ण जरूरतें जैसे गैस का कनेक्शन नहीं है, टेलीफोन नहीं है वगैरह. फिर कुछ कम महत्वपूर्ण दिक्कतें, जैसे बाथरूम या रसोई की नाली अकसर बंद हो जाती है, नल का वाशर या फ्लश काम नहीं करता. जयंत इन मामलों में उसकी कोई सहायता नहीं कर सकते थे. लेकिन गोयल साहब आनन-फानन में ये दिक्कतें दूर करा देते. इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रिया को एक लंबी सूची बनाकर दी कि शहर की किस दुकान में कौन-सी चीज सबसे अच्छी, सस्ती और उपयोगी मिल सकती है. श्रीमती गोयल यानी कणिका इसके विपरीत काफी कम बोलने वाली महिला थीं. वे अपेक्षाकृत कम पढ़ी-लिखी भी थीं. लेकिन घर में अकेली पड़ी प्रिया को अकसर पकड़कर अपने घर में ले जाने लगीं. फिर पकौड़े तले जा रहे हैं, पूरियां बन रही हैं और दिन 'यूं' गुज़र जाता. अकसर मि. गोयल के कई दोस्त भी आ जमा

होते. प्रिया को गोयल दंपती क्या मिले, वरदान मिल गया.

कणिका को जयंत बहुत पसंद थे. उनकी थोड़ी-सी संज़ीदगी पर पुरमज़ाक मिज़ाज, लंबी रोबीली कद-काठी और गहराई तक झांकने वाली बड़ी-बड़ी आंखें. छुट्टियों के दिन तो सुबह के कुछ बाद ही गोयल दंपती दोनों को पकड़ लेते और फिर लौटना ड्रिंक-डिनर के बाद ही होता.

...लेकिन एक दिक्कत की शुरुआत उन्हीं दिनों हुई. जयंत कभी जवाबी दावत नहीं देते थे और प्रिया को यह अप्रिय लगने लगा. वे लोग पकड़-पकड़कर खिलाते-पिलाते रहें और ये हजरत अपनी खामोशी में गुजारने वाली छुट्टियों का इंतजार! जयंत उनके यहां जाते तो प्रिया की वजह से, और वे आते तो प्रिया की वजह से.

"जयंत यह तो ठीक नहीं है. ऐसा आखिर कब तक चल सकता है?" एक शाम को प्रिया ने जयंत से पूछा. जयंत ने 'ब्लैक लेबल' का एक घूंट लिया और डनहिल का धुआं बालकनी से बाहर उड़ाते हुए कहा "चलाने को किसने कहा है? मि. गोयल मुझे पसंद नहीं हैं और न उनकी फूहड़ बीवी कणिका. मुझे लोगों से ज्यादा मिलना-जुलना पसंद नहीं है."

"लेकिन वे लोग हमारा कितना खयाल करते हैं. अपनी समस्याएं भूलकर दिन-रात हमारी समस्याएं सुलझाने में लगे रहते हैं. वे न होते तो इस शहर में सेट्ल करने में कितनी दिक्कतें होतीं."

"यह इसलिए कि मि. गोयल कुछ नहीं करते केवल दूसरों की समस्याएं सुलझाना उनका काम है—वे दोस्तों से दोस्तों का काम करवाते हैं और यही उनका काम है," जयंत चुप हो गए.

प्रिया चुप रही. वह ऐसी बातों का मतलब नहीं समझ पाती थी. पसंद या नापसंद कर सकती थी. पर तब जयंत का प्रतिवाद करने के दिन शुरू नहीं हुए थे.

...तभी जयंत का तबादला दूसरे शहर में हो गया. जाहिर है, तबादला बेहतर ओहदे पर हुआ था. घर भी अब बेहतर था. जयंत को अपनी नई जिम्मेदारियों के साथ एडजस्ट करने में देर नहीं लगती थी. प्रिया को केवल इतना पता था कि नए और बेहतर घर को नया और बेहतर दीखना चाहिए. छुट्टी के दिन वह जयंत को उस इलाके में ले गई जहां उसकी नई महिला परिचिताओं ने बताया था कि शहर में 'सबसे अच्छे फर्नीचर' बनते और मिलते हैं. वहां उसने सबसे नई चलन वाले सोफा सेट का ऑर्डर दिया. उसके अनुरूप भारी परदों के कपड़े खरीदकर सिलने को दिए गए. और 'रिद्म कॉर्नर' से तलत महमूद, लता मंगेशकर, बेगम अख्तर, मलिका पुखराज आदि के एल.पी.'ज़ खरीदे गए. ...इसी बीच जयंत के पिता ने उन्हें 'हॉलैंड फिलिप्स' का नया 'टेबल टर्नर' भेज दिया था.

प्रिया को लगा, अब व्यवस्थित गृहस्थी की शुरुआत हुई. सारा जीवन उसके सामने 'लाल कालीन' की तरह बिछा हुआ था. नए सोफे, खूबसूरत परदे जो रंग-बिरंगी डोरियों से खींचने पर खुलते और बंद होते थे. फर्श पर ईरानी नक्काशीदार कालीन बिछ गया था. दीवारों पर मशहूर पेंटरों की तरतीब से लगी नकलें थीं. ...एक सुबह चाय बनाते हुए प्रिया की हैरती निगाहों को ड्राइंग रूम के चारों कोने खाली-खाली नहीं बल्कि सूने-सूने लगे. जयंत जब 'सी यू' कहकर दफ्तर चले गए तो प्रिया 'कमल' के पास से सफेद पत्थरों के चार बड़े-बड़े गमले खरीद लाई: एक में रबर का पौधा, दूसरे में मनीप्लांट की लतर, तीसरे में कैक्टस और चौथे में चौड़े चितकबरे पत्तों वाला... दीवारें और ड्राइंगरूम उनके आने भर से दमक उठे. शीशों से छनकर जाने वाली रोशनी का रंग बदल गया. हर तरफ एक नूर-सा प्रतिबिंबित होने लगा. शाम को जयंत आए तो उसने चहककर कहा, "देखा." जयंत ने टाइ की गांठ ढीली करते हुए ड्राइंगरूम को देखा और सोफे पर बैठकर जूतों के फीते खोलने लगे. एक जम्हाई लेकर उन्होंने सोफे के सिरहाने गरदन टिका दी और ड्राइंगरूम की छत देखने लगे. प्रिया की आंखों की चमक और आवाज की चहक बुझ-सी गई.

...कुछ दिनों बाद प्रिया का ध्यान अपने किचन की ओर गया और लगा कि उनका किचन वैसा ही नहीं है जैसा उसकी दोस्त बनने के करीब आती महिलाओं का है. मसलन, वहां विदेशी मिक्सी नहीं है, ऑटोमैटिक टोस्टर नहीं है. विदेशी क्रॉकरीज़ नहीं हैं आदि. ...किचन के पिछले दरवाजे से 'अशोका होटल' की शानदार इमारत नज़र आ रही थी, 'अशोका दि ग्रेट' की तरह.

...इसी बीच न्यूयॉर्क से प्रिया को अपनी एक पुरानी सहेली का खत मिला कि शादी के बाद उसके पति वहीं बस गए हैं. उनके पास काफी बड़ा फ्लैट है और वह चाहे तो परिवर्तन के लिए कभी भी वहां आ सकती है. जीजा तो नौकरी में व्यस्त होंगे, उन्हें शायद वक्त न मिले. ...प्रिया को जिंदगी में पहली बार ऐसा रोमांचक आमंत्रण मिला था. लगभग भयभीत कर देने वाला. पर यह संभव हो तो क्योंकर हो. अचानक उसे याद आया कि जयंत ने बताया था कि चूंकि उसकी नौकरी एयरलाइंस की है इसलिए बीच-बीच में उन्हें अंतरराष्ट्रीय उड़ानों के टिकट मुफ्त मिल सकते थे.

थोड़ी हिचक के साथ उसने जयंत से इसका जिक्र किया तो उन्होंने सहजता से कहा कि यह बिलकुल संभव है. वैसे भी उन लोगों की यह सुविधा 'ओवर ड्यू' है. वे जनरल मैनेजर से बात कर लेंगे. "आप नहीं चल सकेंगे क्या?" प्रिया ने पूछा. "नहीं प्रिया वहां का चप्पा-चप्पा मेरा अति परिचित है और फिर नौकरी की व्यस्तताओं के ये दिन!"

...जयंत की अधिकांश शिक्षा अमरीका में हुई थी और वे अमरीका को विश्व का महानतम गणतंत्र ही नहीं, सबसे सभ्य तथा सुसंस्कृत देश भी मानते थे. ...जयंत सुबह-शाम बंद कमरे में 'दुर्गासप्तशती' का पाठ करते थे. शाम को स्कॉच का पहला पेग लेने से पूर्व अनामिका से स्कॉचयुक्त जल को छूते हुए दो-तीन बूंदें हवा में प्रार्थना भाव से उड़ा देते थे.

...प्रिया हफ्ते भर के लिए न्यूयॉर्क चली गई. लौटी तो जिंदगी और जीवंतता से लबरेज़. क्या लोग, क्या चीजें, इमारतें, सड़कें! ऐश्वर्य और वैभव का स्वर्ग. सब कुछ चमकता, दमकता, नाचता, खिलखिलाता. इस दुनिया में कितनी दुनिया हैं.

...लौटने के बाद उसे आसपास इतना घिनौना, बदसूरत और बजबजाता हुआ लगा. कैसी जिंदगी बसर करते हैं हम लोग!...लेकिन चूंकि प्रिया को सब कुछ स्वाभाविक रूप से भूल जाने की आदत थी, इसलिए जल्दी ही वह उस दुनिया को भी भूल गई.

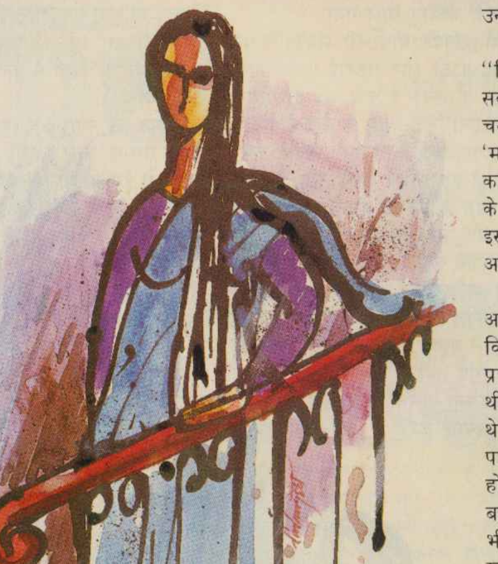

...प्रिया वहां से ढेर सारी क्रॉकरीज़, ऑटोमेटिक किस्म के उपयोगी सामान आदि लाई थी. इसलिए उसकी पहली चिंता यह थी कि उन्हें घर में सुंदर और सुरक्षित रूप से रखा कहां जा सकता है. ...पहली बार उसे अपना यह आधुनिक प्रशस्त घर जीर्ण और संकीर्ण लगा. यही नहीं, परदे बदरंग लगे, सोफे खस्ताहाल, फर्श की मुजैक पिछली सदी की लगी. दीवारों की डिस्टेंपरिंग ऊबड़-खाबड़. क्या हो सकता है... क्या हो सकता है? वह दिन भर नाइटी में अकेली घूमती हुई सोचती. थक-हारकर वह टेलीफोन पर अपनी किसी संपन्नतर महिला मित्र से घंटे-डेढ़ घंटे बतियाती कि आखिर क्या हो सकता है? तय यह पाया गया कि इस समस्या का हल किसी फाइव स्टार होटल के कॉफी शॉप में 'ओवर ए कप ऑफ कॉफी' ढूंढ़ा जा सकता है. फिर उसे कुछ दिन गुजारने में देर नहीं लगी क्योंकि उस शहर में लगभग एक दर्जन फाइव स्टार होटल तो थे ही. उनमें भी दर्जनों किस्म के जलपान, पानगृह आदि थे. ...इस तरह प्रिया उस जरा-जीर्ण गृह के मनहूस वातावरण से दूर कोज़ी कॉनर्स में इस समस्या का हल ढूंढ़ने में वक्त गुजारने लगी.

...वक्त अपनी रफ्तार से गुजरता रहा. इसी बीच स्वाभाविक प्रक्रिया से प्रिया को दो बच्चे भी हुए, घर में नौकर-नौकरानियों की संख्या भी बढ़ी. खर्च भी बढ़ा और हमेशा की तरह घर का खर्च चलाने की तंगी भी. दुर्भाग्य से जयंत की तनख्वाह उस रफ्तार से नहीं बढ़ी. अब वह नई समस्या का समाधान ढूंढ़ने के लिए टेलीफोन पर इश्तहारों में दी गई सस्ती सेल वाली जगहों की तलाश करने लगी. जिंदगी यूं ही गुजरने लगी.

...प्रिया क्या करे? 'सेल्स' से सामान तो आते, पर खर्च और भी बढ़ जाते.

इन सबका हल ढूंढ़ने के लिए वह जयंत के दफ्तर जाते ही अपनी सहेलियों को फोन करने बैठ जाती, घंटों बतियाती और जब फोन पर बात नहीं बनती तो हारकर किसी 'फाइव स्टार' के अंधेरे फुसफुसाते कोने में उनके साथ बैठ जाती.

पिता ने विदेश जाने से पूर्व जयंत को एक कागज का पुर्जा दिया और कहा कि वह इस पते पर जाकर परिवार व पुत्री को देख आए. जयंत ने प्रिया को सीढ़ियों से उतरते देखा था और निर्णय कर लिया था.

...अंत में जयंत ने भी कहा, "प्रिया घर तो इस तरह चल नहीं सकता." "यही तो, घर को कैसे चलाया जाए?" जयंत ने 'मर्सीडीज़' दफ्तर ले जाना बंद कर दिया. अपने दूसरे सहयोगियों के साथ कार शेयर करने लगे. इससे ड्रिंक्स का खर्च निकल आता. पर घर का क्या करें.

जयंत और प्रिया की शादी अकस्मात नहीं हुई थी. नहीं, प्रेम विवाह भी वह नहीं था. जयंत की प्रायः सारी शिक्षा विदेश में हुई थी. किंतु पिता-पुत्र दोनों चाहते थे कि जयंत का विवाह किसी परंपरागत भारतीय परिवार में हो. जयंत ने विदेशी लड़कियां बहुत देखी-जानी थी. स्वदेश में भी राजघराने की कन्याएं और स्वदेश में भी विदेशीपन की ओर लपकतीं 'बरकटी' (बॉब्ड हेयर वाली) लड़कियां थीं ही. जयंत चूंकि विदेश में पढ़े अच्छे घराने के लहीम-शहीम नौजवान थे—सलीकेदार—अतः वे उन लोगों में थे जो 'मोस्ट एलिजबल बैचलर' माने जाते हैं. कई वर्षों तक जयंत ने अपने ऐसा होने और ऐसा पाने का सुख लिया था. लड़कियों की तस्वीरें ताश की गड्डियों की तरह बार-बार फेंटे जाने के बाद प्रतीति हुई कि उन्हें 'शकुंतला' की तरह अनाबिद्ध रत्न और अस्पृश्य पुष्प चाहिए. आदर्श भारतीय कन्या. नगर-नगर खोज होने लगी. अचानक किसी 'संबंधी-सूत्र' से एक सुदूर कस्बे में कुलीन तथा कुलवंत पिता की एकमात्र पुत्री प्रिया का पता जयंत के पिता को लगा. उन्होंने अवकाश समाप्त होने पर विदेश जाने से पूर्व हवाई अड्डे पर जयंत को एक कागज का पुर्जा दिया और कहा कि वह इस पते पर जाकर घर-परिवार तथा पुत्री के देख-सुन आए और फिर उन्हें सूचित करें. जयंत ने पिता की बातों को गांठ में बांध लेना सीख लिया था और अगले सप्ताह ही उस अनाम से सुदूर कस्बे में तार देकर पहुंच गया.

...कड़ाके की सर्दी में उनकी ट्रेन आधी रात को उस कस्बे के स्टेशन पर पहुंची जहां उनके भावी श्वसुर भावी सालों सहित अगवानी के लिए स्टेशन पर उपस्थित थे. वहां से वे एक लंबी पुरानी कार में उस हवेली में ले जाए गए जो उनकी ससुराल होने वाली थी. वह एक सुनसान ठंडी रात थी, ऊबड़-खाबड़ सड़कें और मरियल पीली रोशनियां. हवेली में पहुंचने पर उनके सुंदर सुकुमार और संकोची साले ने उनके ठहरने का कमरा दिखाया. गरम पानी से हाथ-मुंह धोने के बाद पूछा गया, "खाना कब खाएंगे?" उन्होंने कहा "जब कहिए." उन्होंने कमरा बंद करके सूटकेस खोला, ब्रांडी की बोतल निकालकर दो-तीन लंबे घूंट लिये और सफेद कुर्ते-पाजामे पर काला शॉल डालकर बाहर आ गए.

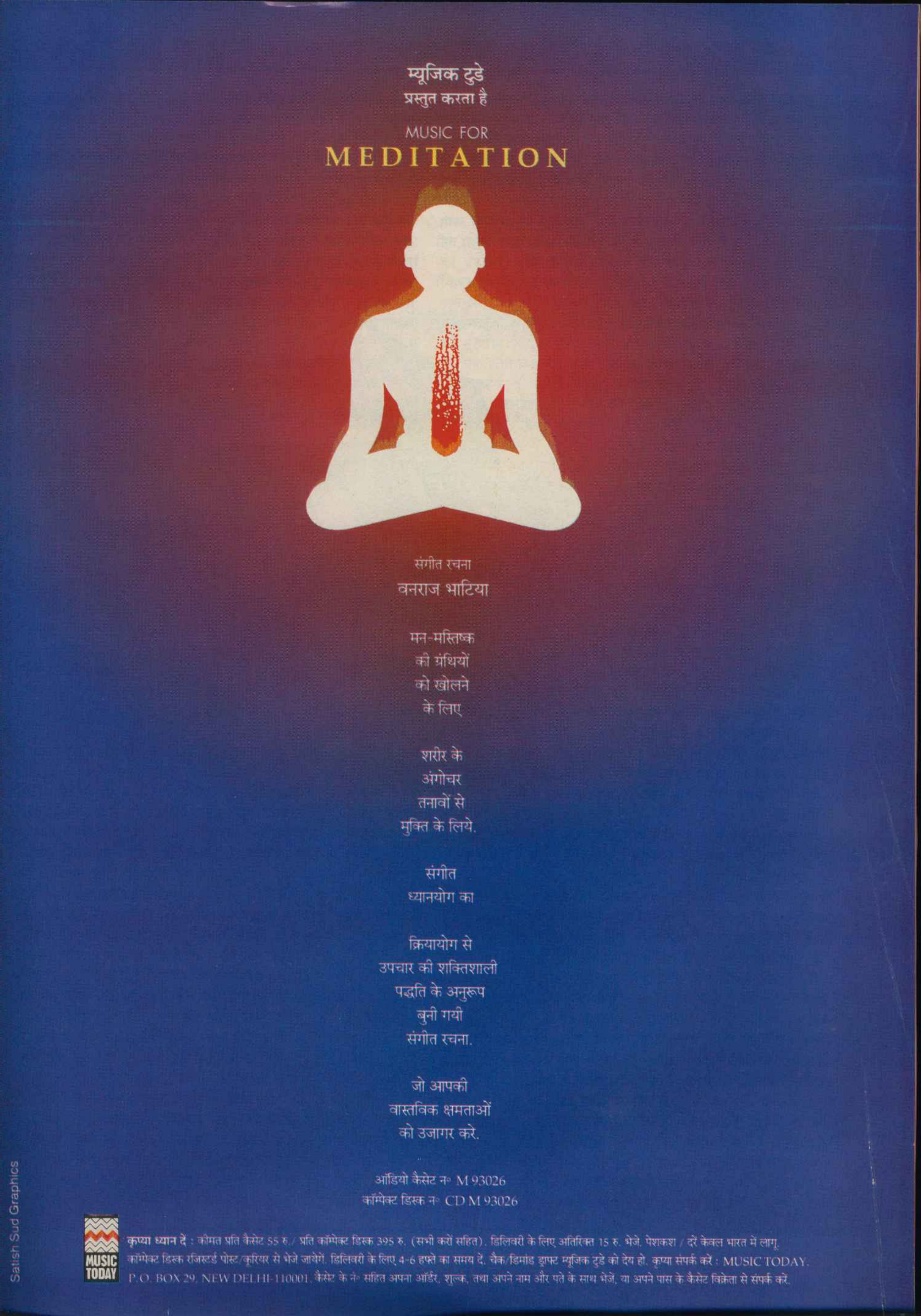
म्यूजिक टुडे
प्रस्तुत करता है
MUSIC FOR
MEDITATION
संगीत रचना
वनराज भाटिया
मन-मस्तिष्क
की ग्रंथियों
को खोलने
के लिए
शरीर के
अंगोचर
तनावों से
मुक्ति के लिये.
संगीत
ध्यानयोग का
क्रियायोग से
उपचार की शक्तिशाली
पद्धति के अनुरूप
बुनी गयी
संगीत रचना.
जो आपकी
वास्तविक क्षमताओं
को उजागर करे.
ऑडियो कैसेट नं॰ M 93026
कॉम्पैक्ट डिस्क नं॰ CD M 93026
MUSIC TODAY
कृप्या ध्यान दें : कीमत प्रति कैसेट 55 रु./ प्रति कॉम्पैक्ट डिस्क 395 रु. (सभी करों सहित). डिलिवरी के लिए अतिरिक्त 15 रु. भेजे. पेशकश / दरें केवल भारत में लागू. कॉम्पैक्ट डिस्क रजिस्टर्ड पोस्ट/कूरियर से भेजे जायेगें. डिलिवरी के लिए 4-6 हफ्ते का समय दें. चैक/डिमांड ड्राफ्ट म्यूजिक टुडे को देय हो. कृप्या संपर्क करें : MUSIC TODAY. P.O. BOX 29, NEW DELHI-110001. कैसेट के नं॰ सहित अपना ऑर्डर, शुल्क, तथा अपने नाम और पते के साथ भेजें, या अपने पास के कैसेट विक्रेता से संपर्क करें.
Satish Sud Graphics

'ड्राइंगरूम' में सकता-सा छाया था. नौकर-चाकर, सास-श्वसुर, साले सभी एक भयभीत प्रत्याशा में यहां-वहां जड़े हुए थे. मेज़ पर सभी प्रकार के संभव उम्दा, लज़ीज खाने सजे हुए थे. जयंत ने उन्हें देखा और ठिठक गये, "मेरा तो शनिवार है, शनिवार को मैं 'नॉनवेज़' लेता नहीं." यह सुनाकर उन्होंने सारे परिवार को प्रसन्न और स्तब्ध कर दिया. यह लगभग विदेशी, आधुनिक नौजवान और 'शनिवार' मेज़ से 'नॉनवेज़' हटाया जाने लगा तथा जो भी उपलब्ध 'वेज़' था वह मंगाया गया. "आप एक स्कॉच तो ले ही सकते हैं?" उनके भावी श्वसुर ने पूछा, जो उन्होंने एक मित्र से इस खास मौके के लिए मंगाया था.

"पिता जी, मैं तो लेता नहीं, आपका साथ देने के लिए मैं गरम पानी और नींबू ले सकता हूं." "नहीं, नहीं, लीजिए न, सर्दी बहुत है और आप लंबे सफर से थके हुए आए हैं." तब तक भावी श्वसुर निखालिस महुआ से छक चुके थे. "नहीं, पिता जी फिर कभी, वैसे भी आज शनिवार है." बहरहाल, फिर मुख्तसर-सा खाना हुआ और जयंत 'रिटायर' हो गए. कमरा बंद करके उन्होंने फिर सूटकेस खोला, ब्रांडी का, एक लंबी गले से कलेजे तक आग की लकीर-सी बनाता घूंट लिया और लिहाफ में घुस गए.

भावी सास ने भी यह सब देखा था और इस 'विदेशी' भावी जमाता का निखालिस 'देसी' रूप देखकर निहाल हो गईं. ऐसा कहां मिलेगा? लेकिन मिल जाए तब तो. ...वे प्रदेश की राजधानी में पढ़ती अपनी कन्या के भविष्य के बारे में निश्चिंत-सी होने लगीं. उसे हाल ही में राजधानी के सर्वोत्तम कन्या कॉलेज में भेजा गया था ताकि कोई सुयोग्य वर वहीं उसका चयन करे. उसी पश्चिमी शिक्षा और संस्कृति के सर्वाधिक चर्चित केंद्र में.

...अगली सुबह पुरानी 'फोर्ड व्ही-8' को धो-धाकर हवेली के फाटक पर खड़ा कर दिया गया. वह 'जनकपुर' वहां से महज घंटे भर की दूरी पर था. गाड़ी में जयंत के साथ उनकी भावी सास के अतिरिक्त एक सालानुमा 'संदिग्ध' युवक भी था. बाकी लोग वहीं रहे. ...भावी श्वसुर अत्यंत उद्विग्न तथा किंचित नर्वस भी थे इसलिए उन्होंने गंभीरतापूर्वक वहां जाने से मना कर दिया था.

...चूंकि वह 'कन्या कॉलेज' नगर की सीमा पर स्थित था, इसलिए उसके आसपास हल्की-सी वीरानी थी. कुछ पेड़, झाड़ियां और सुनसान-सा मैदान...इतवार की सुबह थी, कॉलेज के चैपल की घंटी अभी बज ही रही थी. मार्निंग प्रेयर के आर्गन की आवाज भी आ रही थी, कॉलेज के पोर्च में व्ही-8 रुकी तो जयंत ने सुना. पोर्च के ऊपर दूर तक सीढ़ियां थीं और फिर वेटिंग पारलर यानी अच्छा-खासा ड्राइंगरूम. भारी परदों और कालीनों से ढकी खामोशी. नन-सी दीखती सफेद वस्त्रों वाली महिला ने उन्हें बैठाया और हॉस्टल के कमरों से प्रिया को बुलाने गईं. इतवार का दिन था, प्रिया ने बाल धोए थे और वह धूप में अभी उन्हें सुखा ही रही थी. उसने मिलने वालों के बारे में सुना तो बेसुध-सी नीचे भागी.

...जयंत ने उसे सीढ़ियों से उतरते हुए देखा और निर्णय ले लिया. प्रिया हल्के नीले रंग की साड़ी, हवाई चप्पल और अधसूखे बालों में निपट घबराई-सी सीढ़ियां उतर रही थी. जयंत ने देखा सफेद उतरते पांव, घबराई-सी आंखें और हांफते अधखुले होंठ. प्रिया नीचे आई और अपनी मां से लिपट गई, सुबकती हुई. "प्रिया, तुम्हें कुछ देर के लिए हमारे साथ चलना है, अपनी वार्डेन से इजाजत ले लो," प्रिया की मां ने कहा. प्रिया ने भागती निगाहों से बाकी मिलने वालों को देखा और ऊपर चली गई. कुछ देर बाद वह भरसक सजी-संवरी-सी लौटी, "हम शाम तक लौट आएंगे न?" जैसे उसे अपने पूछने पर यकीन न हो.

"हां, हां, शाम तक तो हमें भी लौट जाना है," मां ने कहा. जब वे सब सीढ़ियों से उतर रहे थे तो ऊपर हॉस्टल की लगभग सारी खिड़कियां खुली हुई थीं और लड़कियों के ढेर से सिर नीचे झांक रहे थे. उनके लिए प्रिया की हस्ती खुशकिस्मती-सी चमक रही थी. यानी हमारी प्रिया इस

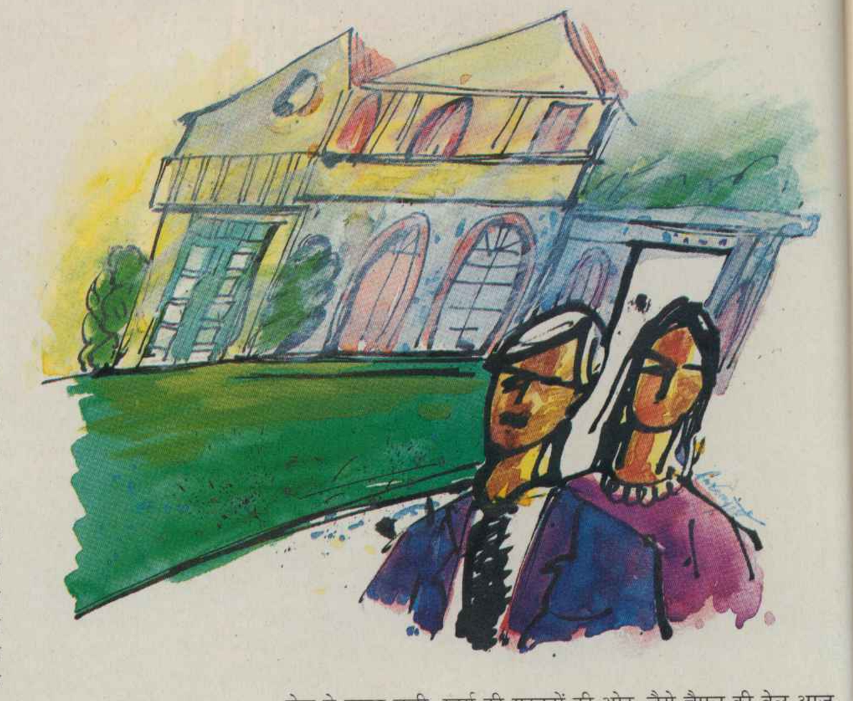

जेल से बाहर चली, स्वर्ग की सरहदों की ओर. जैसे चैपल की बेल आज केवल प्रिया के लिए बज रही हो.

..."कहां चलें?" प्रिया की मां ने उस सालेनुमा जंतु से पूछा, "पैलेस!" प्रिया ने कहा और सकुचा गई. "प्रिंस!" जंतु ने कहा. प्रिंस प्रिया के पिता का सबसे प्रिय रेस्तरां था. पुरानी इमारत, ऊंची सीलिंग्स वाली होटल, रेस्तरां-कम-बार. प्रिया को इस इमारत से चिढ़ थी. पैलेस शहर का सबसे नया, फैशनेबल रेस्तरां था.

"प्रिंस ही चलें," प्रिया की मां ने कहा. व्ही-8 उसी के पोर्च में रुकी. बड़ा-सा सुनसान हॉल, सफेद मेजपोशों से ढकीं मेजें, काली महोगनी की कुर्सियां और स्टैंडों पर रखे पीतल के बड़े-बड़े गुलदान. काफी देर बाद एक अधेड़ बेयरा नमूदार हुआ. "क्या मंगाया जाए?" मां ने जंतु से पूछा. "यहां कटलेट अच्छे मिलते हैं, कॉफी भी. वैसे, रोटी और गोश्त भी मंगाए जा सकते हैं." "नो, नो, फॉर माइसेल्फ, कटलेट ऐंड कॉफी इज ओ.के.," जयंत ने कहा. वही ऑर्डर दिया गया.

इसके बाद आधा घंटा गुजरा और बेयरा गुम. पूरे हॉल में सन्नाटा. "क्या यहां म्यूजिक भी नहीं लगाते?" जयंत ने जंतु से पूछा. "हमें पैलेस जाना चाहिए था," प्रिया ने धीमी आवाज में कहा. इस बीच वह परेशान थी. इधर-उधर बेचैनी से देखती हुई, कभी नजर बचाती जयंत को, मां को और कभी उस खाली हॉल को. ...कटलेट, कॉफी और आइसक्रीम—सभी बदज़ायका थे. ...वे वहां से 'परेशां' निकले.

...उसके बाद दूसरे या तीसरे महीने ही प्रिया की शादी हो गई. ...वह एक नफ़ीस बारात थीः आधुनिकता और सामंतशाही की मिली-जुली मिसाल. जयंत के पिता एक राजघराने के छोटे राजकुमार थे. बाद में उन्हें विदेशी सेवा में ले लिया गया था और तब से विदेशों में ही यहां-वहां तबादला होता जा रहा था. उस बारात में कुछ सामंती अवशेष ऐसे भी थे, जिनकी सुबह शराब की घूंट से शुरू होती थी और रात बिस्तर के आसपास उसे उगलते हुए. कुछ ऐसे भी थे जिन्हें शराब से गुरेज़ नहीं था लेकिन तीसरे छोटे पेग के बाद ही उन्हें मेज पर खाना लगा हुआ मिलना चाहिए था. जयंत के पिता के लिए पूर्व और पश्चिम का मेल कराना सचमुच एक बहुत बड़ी समस्या हो गई थी. दूल्हे-दुलहन सहित जब बारात रवाना हुई तो रिजर्व की गई पूरी ट्रेन शराब से सराबोर थी. ...पर उसमें भी सबसे दिलचस्प वाकया तो तब घटित हुआ जब सबको अपनी-अपनी जगह टिकाने के बाद जयंत के पिता जब अपने कूपे में पहुंचे तो उनके होश फाख्ता हो गये. पता चला कि उनकी 'स्पेशल ब्रांड' वाली शराब का क्रेट गायब था. बाद में मालूम हुआ कि वह गलती से वर-वधू के कूपे में बंद हो गया है और इतनी रात गए उसे खुलवाया तो जा नहीं सकता था. पिछले पचास वर्षों में इतना भयानक हादसा उनके जीवन में कभी घटित नहीं हुआ था.

...जयंत की नई पोस्टिंग के कुछ दिनों बाद उनके पिता की मृत्यु हो गई. उत्तराधिकार में बाकी अनेक वस्तुओं के साथ अपनी विधवा धर्मपत्नी यानी जयंत की मां को भी उनके पास छोड़ गए. प्रिया को लगा कि बाकी चीजें तो आसानी से स्वीकार की जा सकती हैं लेकिन जयंत की मां को नहीं. वे आसान महिला थीं ही नहीं. घर वैसे ही नहीं चल पा रहा था. प्रिया की हताशाओं का अंत नहीं था. जयंत के अनेक सहयोगियों की धड़ाधड़ 'फॉरिन पोस्टिंग' हो रही थी, पर जयंत का नंबर ही नहीं आता था. प्रिया झल्लाकर उनकी सहयोगियों की पत्नियों से टेलीफोन पर कहती, "कितनी मोनोटोनस लाइफ है यहां की, है न?" यहां की यानी इस देश की. इस देश के बाहर वे लोग कितनी रंगारंग शानदार जिंदगी जी रहे होंगे और हम यहां सड़ रहे हैं. दुनिया कहां से कहां जा रही है और हम...वह हताशा से हलकान होकर रेकॉर्डप्लेयर पर कोई रेकॉर्ड रख देती.

...मेज पर बिखरे अखबारों, पत्रिकाओं में अमरीका, इंग्लैंड, स्विट्जरलैंड सब होते पर वह उनमें कहीं थी. कहीं भयानक भूखमरी होती, कहीं बमबारी, कहीं भूकंप. पर प्रिया को लगता सब यहीं हो रहा है, वहां केवल खुशहाली ही खुशहाली है. आसपास सब कुछ बेरौनक और बदरंग है. एक सीमा के बाद दिमाग पर जोर डालने का अभ्यास उसने किया नहीं था, न ही इसकी कभी ज़हमत उठाई थी. कमरे में बंद मधुमक्खी की तरह वह चक्कर लगाती रहती. अचानक सड़क से किसी हॉकर की आवाज सुनाई पड़ती और बदहवास-सी नीचे भागती.

...जयंत हमेशा की तरह शाम ढलने के बाद ब्रीफकेस लिये हुए टाइ की नॉट ढीली करते ड्राइंगरूम में दाखिल होते और सोफे पर ढेर हो जाते "बहुत थक गया प्रिया." कुछ देर बाद नौकर चाय की ट्रे और स्नैक्स की प्लेट लिये हुए दाखिल होता. प्रिया अपने और जयंत के लिए चाय बनाने लगती. कुछ देर बाद जयंत बाथरूम से सफेद कुर्ते-पाजामे में बाहर आते. 'पेग' से नाप कर स्कॉच का पेग बनाते और सिगरेट जलाकर बैठ जाते. डिनर के बाद वे बालकनी में डनहिल पीते हुए चक्कर लगाते, उसके बाद सुबह के लिए अलार्म लगाकर सो जाते. ..."यह भी कोई जिंदगी है," प्रिया सोचती.

...घर ऐसे ही चल रहा था कि अचानक जयंत को एक विदेशी पोस्टिंग मिल ही गई. ..."सच हुए सपने मेरे"...प्रिया को लगा, अब सारी समस्याएं हुश्. अब वह अकसर कैलकुलेटर पर जयंत की विदेशी मासिक आय को भारतीय मुद्राओं में परिवर्तित करती रहती. अगर पांच साल की पोस्टिंग हुई तो इन पांच वर्षों में कितनी हुई भारतीय बचत?

...लेकिन पांच साल बाद!.पांच साल बाद प्रिया सोचती है, वे पांच वर्ष.

...पहली विदेशी पोस्टिंग के विदेशी शहर में जो घर उन्हें ऑफिस की ओर से रहने को मिला वह वैसा ही था जैसा प्रिया ने सोचा था या सपना देखा थाः गेट के ठीक बाद कच-कच हरा मखमली लॉन, बीच में ड्राइव-इन. फिर बड़ा हॉल जिसमें वाल टू वाल कारपेट, एक कोने में 16×18 का बेडरूम, उससे संलग्न 9×11 का बड़ा-सा बाथरूम. 12×14 का किचन जिसमें एक तरफ दीवार से लगा सोफा भी पड़ा हुआ था. सब कुछ चमचमाता हुआ. बड़ी-सी फ्रिज—लगभग दीवार की छत तक पहुंचती हुई, माइक्रो ओवेन, रनिंग हॉट और कोल्ड वाटर. और बाथरूम, किचन का मुंहतोड़ जवाबः बाथटब के पास झूलता हुआ टेलीफोन और चैनल म्यूज़िक. वहां वे केवल अपने पहनने के कपड़े और म्यूज़िक सिस्टम आदि लेकर पहुंचे थे. दूसरी मंजिल पर दो बड़े-बड़े बेडरूम, वैसे ही संलग्न बाथरूम, बालकनी और लॉन की ओर खुलता खूब बड़ा टेरेस. "सच हुए सपने मेरे..." प्रिया गुनगुनाती हुई घर भर में डोलती रहती.

...पर प्रिया ने 'सपना' देखना बंद कर दिया. कब वह केवल उसमें रहने लगी, कब उसके रहने को भी महसूस करना बंद कर दिया—पता न चला. जयंत अकसर बिना सूचना दिए देर से आते और अपनी पुरानी दिनचर्या दोहराते.

...एक दिन प्रिया ने किसी काम से जयंत को दफ्तर में फोन किया तो पता चला कि वे दफ्तर में नहीं हैं. प्रिया ने घड़ी देखी, लंच का समय अभी नहीं हुआ था और जयंत आम तौर पर काम के घंटों में दफ्तर से बाहर नहीं जाते थे. शाम को वे लौटे तो प्रिया ने पूछा कि आज वे दफ्तर से बाहर गये थे क्या? जयंत ने वैसे ही टाइ की नॉट खोलते हुए पलटकर पूछा, "तुमने फोन किया था क्या?" "हां, बच्चे छुट्टियों में बाहर जाना चाहते हैं, उनके कुछ जापानी दोस्त उन्हें टोकियो ले जाना चाहते हैं, मुझे भी."

जयंत ने टाइ की नॉट खोलना बंद कर दिया और प्रिया की ओर गंभीरता से देखते हुए कहा, "यहां बीवियां सामान्यतः दफ्तर में फोन नहीं करतीं जब तक कोई खास बात न हो. 'वी आर नॉट सपोज़्ड टु बी डिस्टर्ब्ड इन ड्यूटी आवर्स.' यह तो तुम दफ्तर जाने से पहले या बाद में भी कह सकती थीं." प्रिया को यह प्रतिक्रिया कुछ ज्यादा ही लगी. उसने कुछ हैरानी से जयंत को देखा और नौकर को चाय के लिए कहने किचन में चली गई. नौकर वह देसी ही लाई थी, वही पुराना वाला.

...पिछले शनिवार को उनके कुछ भारतीय मित्रों ने एक पार्टी अरेंज की थी, डॉ. पटेल के यहां. डॉ. पटेल का घर काफी बड़ा था, हॉल भी. वहां पंद्रह-बीस लोग मजे से खा-पी सकते थे, फिर भी जगह बचती थी. डॉ. पटेल वहां भारतीय मूल के सबसे बड़े डॉक्टर ही नहीं, सबसे अधिक मिलनसार और दूसरों के दुख-दर्द में शरीक होने वाले इंसान भी समझे जाते थे. उनके यहां से भोज का निमंत्रण पाना खुशनसीबी समझी जाती थी, स्टेटस का प्रतीक भी. डॉ. पटेल का निमंत्रण पत्र मिला था तो प्रिया खुशी से उछल पड़ी थी. पता नहीं बाकी कौन-कौन लोग होंगे वहां, उत्तेजना के मारे उसका बुरा हाल था. डॉ. पटेल जयंत से दो-तीन बार मिल चुके थे उनके दफ्तर में ही. वे एक सभ्य, सुसंस्कृत, अधेड़ व्यक्ति थे. थोड़े परंपरागत किस्म के और स्थिर स्वभाव वाले. यात्रा संबंधी उनकी कुछ दिक्कतें थीं जो जयंत ने आसानी से सुलझा दी थीं. अचानक उनका निमंत्रण पाकर जयंत को थोड़ा अटपटा लगा था. उन्होंने अभी कोई निर्णय नहीं लिया था, पर

अचानक जयंत को एक विदेशी पोस्टिंग मिल ही गई..."सच हुए सपने मेरे"...प्रिया को लगा, अब सारी समस्याएं हुश्. अब वह अकसर कैलकुलेटर पर जयंत की विदेशी मासिक आय को भारतीय मुद्राओं में परिवर्तित करती रहती.

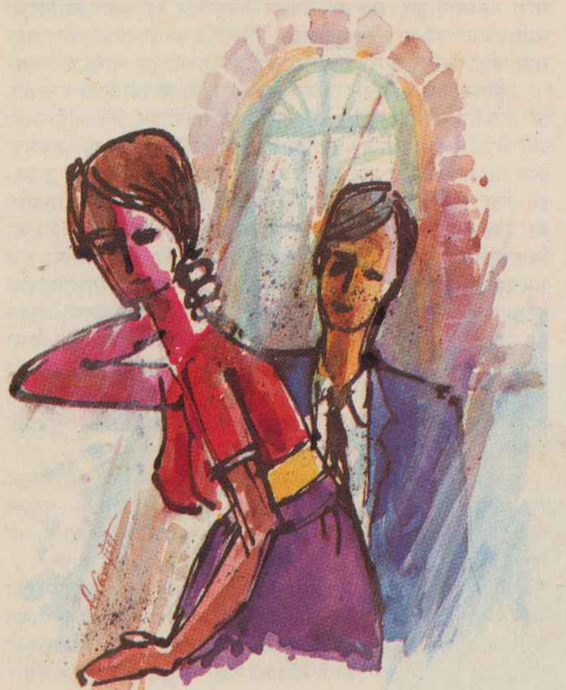

प्रिया ने तब तक फोन करके अपनी सभी सहेलियों को यह खुशखबरी सुना दी थी. चूंकि उनमें से कइयों को यह निमंत्रण नहीं मिला था, इसलिए वे केवल ईर्ष्यादग्ध हो सकती थीं. प्रिया इससे और विभोर हो उठी.

वह पूरा सप्ताह प्रिया ने यह सोचने में बिताया कि पार्टी में जयंत क्या पहनेंगे और वह क्या पहनेगी. पार्टी से दो रोज पहले डॉ. पटेल ने जयंत को फोन करके पूछा कि वे लोग पार्टी में आ रहे हैं न? उनकी आवाज़ में इसरार था, जयंत मना नहीं कर सके.

लेकिन इसी बीच एक छोटी-सी दुर्घटना हो गई जिससे जयंत थोड़े 'शॉक्ड' हुए. पार्टी से एक दिन पहले प्रिया शहर के सबसे महंगे 'ब्यूटी पारलर' से लौटी तो जयंत ने देखा कि उसने अपने घने काले लंबे बाल कटवा लिये थे. इतने छोटे कि पीछे से उसकी नंगी गरदन भी दीखती थी. प्रिया के लंबे बाल उन्हें बहुत पसंद थे. वर्षों पहले हॉस्टल की सीढ़ियों से उतरती हुई प्रिया को देखकर उन्होंने जो 'निर्णय' लिया था, उसमें उन बालों की भी भूमिका थी.

...जयंत ने वीरान आंखों से प्रिया को देखा. वह उत्फुल्लता से दमक रही थी, "कैसी दीख रही हूं?" उसने चहककर पूछा. "बहुत अच्छी. बिलकुल डॉ. पटेल की पार्टी के लायक," जयंत अपनी वितृष्णा छिपा न पाए.

"नहीं जयंत, ये बाल यहां के लिए अलामत थे. इन्हें कौन संभाले, धोए, सुखाए. मुझे हमेशा जुकाम रहने लगा था. मेरा 'साइनस' भी बढ़ गया था. दरअसल, यहां के मौसम में भारतीय किस्म के बाल बिलकुल नहीं चल सकते थे."

...जयंत को लगा, प्रिया ठीक कह रही है—यहां के मौसम में...

डॉ. पटेल की पार्टी में बहुत भीड़ नहीं थी. पंद्रह-सोलह लोग ही रहे होंगे. सभी वयस्क, तीस-पैंतीस की उम्र वाले. डॉ. पटेल के 'साइडबर्न्स' भी सफेद होने लगे थे. वे गहरे नीले रंग के सर्ज-सूट में थे. महिलाएं भी लगभग इतनी ही थीं. आम पार्टियों की तरह तेज़ दमघोंट खुशबू और ढेर-सी चहचहाटें नहीं थीं. न जोरदार ठहाके. प्रिया पहली बार यहां किसी ऐसी पार्टी में आई थी. वह थोड़ी भौंचक्की थी. शायद कुछ निराश भी. हॉल सचमुच बहुत बड़ा था. ऊंची सीलिंग रोमन गिरजाघरों से मिलती-जुलती थी. झकाझक सफेद कालीन और कोने में आबनूसी रंग वाला बड़ा-सा पियानो. हॉल में धीमा चैनल म्यूजिक बज रहा था. पियानो के दूसरे छोर पर 'बार' बना हुआ था.

डॉ. पटेल ने सबसे परिचय कराया. कुछ पहले से ही परिचित थे. डॉ. पटेल की पत्नी भी डॉक्टर थीं. जयंत या प्रिया उनसे पहले नहीं मिले थे. वे काफी ऊंचे कद की महिला थीं. हल्की सांवली, बड़ी-बड़ी खूब सफेद पुतलियों वाली आंखें—जिनमें चंचलता नहीं थी—गहराई से हेरने वाली जिज्ञासा थी. वे मस्टर्ड कलर की फ्रेंच शिफोन साड़ी में थीं. बाल पीठ पर कमर तक फैले हुए थे. वे उम्र के उस मुकाम पर थीं जब देह में उतनी कसावट नहीं रहती, एक गदराई हुई मांसलता आ जाती है. परिचय होने पर उन्होंने जयंत की ओर गहरी निगाहों से देखा. "आपके बारे में काफी सुन रखा था," उन्होंने धीमी आवाज में कहा. जयंत वहां के भारतीय 'भद्रलोक' में अपनी आवाज़, आंखों और ऊंचे कद के लिए चर्चित थे. श्रीमती पटेल अन्य महिलाओं की तरह बहुत सजी-संवरी नहीं थीं. एक हल्का, पर सतर्क मेकअप, जो कम नहीं होता किंतु ज्यादा लगता नहीं है. व्यवहार और बातचीत में एक लापरवाही-सी थी, पर उसमें भी एक योजनाबद्ध सलीका.

...स्पष्टतः वह अपेक्षाकृत सफल, संतुष्ट और अपने लक्ष्य को प्रायः ठीक-ठीक जानने वालों की गैदरिंग थी. कुछ ही देर में प्रिया उसमें और 'मिसफिट' होती गई. एक बार जयंत के करीब से गुजरते हुए उसने धीमे से पूछा भी, "क्या यह पार्टी इसीलिए यहां इतनी मशहूर है?" जयंत धीरे से मुस्कराकर गुजर गए. बेयरे ट्रे में ड्रिंक्स और स्नैक्स लिये घूम रहे थे. लोगों की पीने की रफ्तार पहले थोड़ी सुस्त किंतु फिर तीव्रतर होती गई, बातचीत और आवाजें भी. पहले जो लोग अलग-अलग गुच्छों में बंटे हुए थे वे अब अधिक उन्मुक्तता से कम परिचितों से भी मिलने-बतियाने लगे थे. महिलाएं जिन-कोक और वाइन में नशीली होकर अभिव्यक्तियों में उदार होने लगी थीं. प्रिया को एक भारतीय पुलिस अफसर की पत्नी मिल गई थी. वह उसके साथ एक कोने में बैठी जिन में बिटरेक्स और टॉनिक मिलाकर पी रही थी. बेयरे सलामी, सासेजेज, टिक्के और पनीर पकौड़े लिये घूम रहे थे.

...अचानक चैनल म्यूजिक रुक गया और एक महिला की आवाज आई, "हम लोग खाने से पहले चाहें तो थोड़ा नाच सकते हैं." फिर उस आवाज ने कुछ जोर देकर पूछा, "अगर आप चाहें तो!" "ज़रूर-ज़रूर..." लोग सामूहिक स्वर में बोले. बत्तियां धीमी हो गईं और म्यूजिक 'फॉक्स-ट्राट' की धुन बजाने लगा. तभी जयंत की निगाहें कुछ दूर खड़ी श्रीमती पटेल पर पड़ीं, वे उसी ओर देख रही थीं. जयंत ने उनकी ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा, "डॉ. पटेल, हम लोग कुछ देर फॉक्स-ट्राट कर ही सकते हैं. हम बुजुर्ग लोग."

"अवश्य, व्हाइ बुजुर्ग?" ...जयंत का एक हाथ श्रीमती पटेल की नंगी पीठ पर था, दूसरा उनकी थोड़ी पसीजती-सी खुशबूदार हथेली में फंसा. श्रीमती पटेल नाचने में कुशल थीं. जयंत के लिए भी यह कोई पहला मौका तो था नहीं और वहां यह असहज भी नहीं लग रहा था. जल्दी ही उनमें आत्मविश्वास आ गया और नाच की गति में त्वरा आ गई. ...श्रीमती पटेल की पीठ में तपिश और फिसलन-सी भर गई, लय से स्पंदित. जयंत की उंगलियों के नाखून कुछ बढ़े हुए थे. अनजाने उनकी हथेली का दबाव बढ़ा तो श्रीमती पटेल ने हल्की पीड़ा से उन्मत्त होते हुए उन्हें देखा. ...नाच की उत्तेजना और हरारत से उनका चेहरा तमतमा-सा रहा था. नाक के नीचे, होंठों के ऊपर पसीने की बूंदें. जयंत का चेहरा उन बूंदों के काफी करीब तक चला गया था. श्रीमती पटेल की उन बूंदों पर हवा का हल्का झोंका-सा पड़ा तो उन्होंने अपनी सफेद पुतलियां उठाकर जयंत को देखा.

...बत्तियां फिर तेज हो गईं और लोग अपने साथ नाचने वालों का

शुक्रिया अदा करते हुए खाने की मेजों की ओर बढ़े. ...चैनल पर कोई उनींदी-सी धुन बजने लगी थी. कॉफी और आइसक्रीम के बाद कुछ लोग 'नाइट कैप' या 'वन फॉर द रोड' लेने लगे और बाकी हाथ मिलाकर विदा ले रहे थे. जयंत ने श्रीमती पटेल से हाथ मिलाकर विदा ली और प्रिया की ओर बढ़े, ''प्रिया, चलो भी, सुबह मुझे जल्दी ही एयरपोर्ट जाना है.'' प्रिया ने बेमन होकर पुलिस अफसर की पत्नी से विदा ली, ''बाइ शुभा, तुमसे मिलकर बहोत अच्छा लगा. कल फोन करूंगी, अच्छा...''

...मुख्य द्वार पर डॉ. पटेल और श्रीमती पटेल खड़े थे. श्रीमती पटेल के हाथों में सुर्ख गुलाबों के छोटे-छोटे गुलदस्ते थे जो वे हर मेहमान को झुककर मुस्कराती हुई थमा रही थीं. जयंत ने डॉ. पटेल से गर्मजोशी के साथ मिलाया और अपने घर आने की दावत दी, ''जरूर जब याद कीजिए, मैं कोई गया वक्त नहीं हूं...'' ''जो आ भी न सकूं,'' जयंत ने जुमला पूरा किया. दोनों हंसने लगे. जयंत को अपनी हाज़िरजवाबी पर खुशी हुई. वे प्रिया के साथ कारों की कतार में वह शेर गुनगुनाते हुए अपनी कार तलाशने लगे. ''...मेहरबां हो के बुला लो...'' वे कार की चाबी घुमाते हुए स्टीयरिंग के सामने बैठ गए. प्रिया पास बैठती हुई ऊबी आवाज में बोली, ''ओह, कितनी बोरिंग पार्टी थी. क्या इसलिए ये पार्टियां इतनी मशहूर हैं?'' ''जो आ भी न सकूं, ...जो आ भी न सकूं...'' जयंत तरन्नुम में गुनगुनाते हुए चमकती सड़क पर कार चलाते रहे.

...बच्चों की छुट्टियां यूं ही खत्म हो रही थीं. वे टोकियो नहीं जा सके. जयंत और प्रिया ने तय किया कि अगले सत्र में लंदन के किसी अच्छे स्कूल में दाखिला मिल जाए तो बेहतर होगा. कुछ रोज बाद ऑफिस से लौटकर जयंत ने बताया कि उन्होंने अपने एक दोस्त के माध्यम से दाखिले का इंतजाम कर लिया है. उनका एजेंट 'हायर परचेज' पर वहां घर भी दिला देगा. प्रिया खुशी से झूम उठी, ''जयंत, बच्चों के साथ मैं भी लंदन जाऊंगी. वरना ये अकेले रहेंगे कैसे? कभी अकेले तो रहे नहीं.''

''हां, ये तो है,'' जयंत ने सोचते हुए कहा. ''फिर कुछ घंटों की ही फ्लाइट तो है. कभी भी आ सकती हो.'' प्रिया लंदन जाने की तैयारी करने लगी.

पार्टी से एक दिन पहले प्रिया 'ब्यूटी पारलर' से लौटी तो जयंत ने देखा कि उसने अपने घने काले लंबे बाल कटवा लिये थे. ''कैसी दीख रही हूं,'' उसने पूछा तो जयंत अपनी वितृष्णा न छिपा पाए, ''बहुत अच्छी...

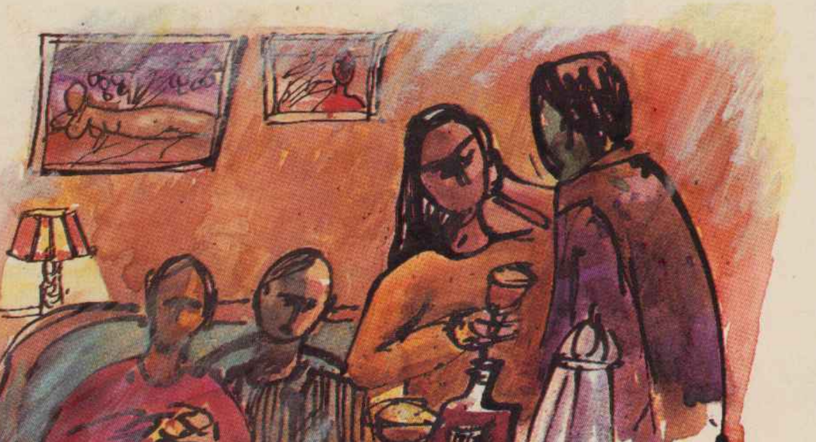

...जयंत चिड़चिड़े हो गए थे. यह खयाल ही उन्हें गुस्से से पागल कर देता था कि उनकी पत्नी उनकी स्पाइंग कर रही है. ...प्रिया लदंन में कई बार जयंत के दफ्तर फोन करती. अकसर वे दफ्तर में नहीं होते थे. कभी एयरपोर्ट, कभी बाहर लंच पर! एक बार वह लंच के समय दफ्तर पहुंच गई तो जयंत का सहायक घबरा गया, ''मैडम, वे कब आएंगे, बताकर नहीं गए हैं. आप बैठिए न, क्या लेंगी? वे लंच भी शायद बाहर ही लेंगे.'' उसके बाद प्रिया ने ऑफिस जाना तो बंद कर दिया, पर फोन बराबर करती रही. जयंत का लंच बॉक्स प्रायः वैसा का वैसा ही वापस लौटता. यहां तक कि उबले पानी का फ्लास्क भी.

...श्रीमती पटेल अपना क्लिनिक लंच के समय तक ही खोलतीं, फिर वहां से जयंत को फोन करतीं. उसके बाद वे शहर के किसी बेहतरीन 'ईटिंग ज्वायंट' में जाते. कभी-कभी तो उस ऐतिहासिक शहर के प्राचीन खंडहरों में पुरसुकून लताकुंजों में बने घने एकांत वाले ठिकानों में भी, जहां उस देश की मशहूर शराब और फास्ट फूड मिलते थे. वहां अथाह एकांत और शांति के बीच, वे घंटों गुजारते.

जयंत को पता चला गया था कि इससे उनकी प्रैक्टिस पर गहरा असर पड़ रहा है. मरीज भी कम ही आ पाते थे. एक बार उन्होंने बियर के नशे में डूबी श्रीमती पटेल से इसका जिक्र किया तो उन्होंने भर्राई आवाज में बियर से तर-ब-तर होंठों से उन्हें चूमते हुए कहा, ''क्या एक ही मरीज काफी नहीं है जयंत? क्या इसी को अधेड़ावस्था का प्रेम कहते हैं?''

...ऐसे में कई तनावों की गांठें खुलने लगतीं. उनमें कोई युवा तो रह नहीं गया था. पति, पत्नी, बच्चे थे पर कोई अपराध बोध नहीं था. जयंत को केवल प्रिया की 'स्पाइंग' नागिन की तरह पीछा करती हुई परेशान करती. इस घिनौने जासूसीपन से छुटकारा पाना है.

...फोन की घंटी देर से बज रही थी. जयंत स्वयं कभी फोन नहीं उठाते थे, इसलिए प्रिया बाथरूम से जल्दी-जल्दी गाउन लपेटती हुई फोन की तरफ भागी. पुलिस अफसर की पत्नी का फोन था, ''प्रिया, मैंने सुना है तुम लंदन जा रही हो?'' ''हां शुभा, इस अगले महीने के शुरू में. बच्चों को वहां स्कूल में दाखिला मिल गया उन्हें हॉस्टल में रखना तो अफोर्ड नहीं कर सकते, इसलिए उनके साथ रहना पड़ेगा.'' ''पर प्रिया...'' उस छोर पर शुभा की आवाज अचानक रुक-सी गई... ''तुम क्या जयंत के दफ्तर जाने के बाद ग्यारह बजे होटल फ्लोरेंस के कैफे में मिल सकती हो?'' ''...हां क्यों नहीं. कोई खास बात तो नहीं है?'' ''नहीं कोई खास बात तो नहीं है पर आ जाओ तो अच्छा है, बहुत दिनों से मिले भी नहीं.'' ''ठीक है, मैं आ जाऊंगी, तो वहीं मिलते हैं, बाइ.'' प्रिया ने फोन रख दिया. वह जल्दी-जल्दी तैयार होने लगी. ...ठीक ग्यारह बजकर पांच मिनट पर वह होटल फ्लोरेंस के कैफे में थी. वह शहर का सबसे बड़ा होटल था. सवा ग्यारह बजे उसने कैफे के शीशे से देखा, प्रिया भागती हुई सीढ़ियां चढ़ रही है. कैफे ग्राउंड फ्लोर पर ही था. अपनी दुबली

Firs+.

Longes+.

First Indian company to win drilling contracts outside India against worldwide competition. World's largest sponge-iron plant and the only fully integrated steel project on India's west coast. The largest and most diversified private-sector

STEEL · SHIPPING · OIL & GAS · POWER · FINANCE ·

Clarion

Larges+.
Deepes+.

shipping fleet in India. The longest underwater pipeline laid in India. The deepest oil-well drilled in Asia. First to admit, it's only just beginning.

TURNKEY PROJECTS • TRADING

ESSAR

A positive a++itude

कलाई पर घड़ी देखती, प्रिया को उस वक्त वह बड़ी निरीह-सी लगी. उस छोटी-सी काया पर उसे लाड़ उमड़ आया. ''आइ ऐम सॉरी प्रिया,'' उसने सामने के सोफे पर खुद को पटकते हुए कहा, ''आज ही वाशिंग भी करनी थी, बेटी पिकनिक पर जा रही है, साहब स्पेशल ड्यूटी पर. बताओ तुमने कुछ मंगाया क्या?'' वह एक ही सांस में बोल गई. प्रिया मुस्कराती हुई उसे देखती रही. ''नहीं, अभी तो यही रखा है.'' वहां बेक्ड ब्रेड के डंठल और मक्खन रखे हुए थे. ''चलो कुछ मंगाते हैं. लंच आज यही हो जाए. क्या खयाल है?'' ''खयाल तो अच्छा है, पर क्या मंगाएं?'' ''चलो सोचते हैं, पहले एक-एक 'ब्लडी मेरी' हो जाए.''

सुर्ख ब्लडी मेरी सिप करते हुए शुभा ने कहा, ''तुम लंदन जा रही हो. मैं तुम्हें बहुत मिस करूंगी.'' ''हां शुभा, मिस तो मैं भी बहुत करूंगी पर तुम जानती हो मेरा लंदन जाना जरूरी है.'' शुभा अचानक गंभीर हो गई और अपनी दीखती उम्र से काफी बड़ी, ''प्रिया तुम उम्र में मुझसे काफी बड़ी होओगी, वैसे भी मुझे इस तरह की बातें करने का कोई अधिकार नहीं है...'' वह चुप हो गई. ''नहीं, नहीं कहो न, तुम जानती हो इन थोड़े ही दिनों में तुम मेरी कितनी अज़ीज हो गई हो.''

''हां, इसीलिए तो...'' गिलास उसने ऊपर उठाकर उसकी ओर देखते हुए कहा, ''तुम लंदन न जाओ.'' ''क्यों?'' हैरान-सी होती हुई प्रिया ने कहा. ''क्या तुम सचमुच कुछ नहीं जानती?'' प्रिया अचानक हताश और निढाल हो गई. तो शुभा इतना कुछ जानती है. ''मुझे पता तो है शुभा, पर क्या करूं?'' ''सीधी-सी बात है, लंदन न जाओ. बच्चों के लिए कुछ इंतजाम कर लेंगे. मेरे पति की पहली पोस्टिंग वहीं तो हुई थी. वे कुछ बंदोबस्त कर देंगे.'' प्रिया की नजरों में यह निरीह नाज़ुक- सी दीखती लड़की अचानक उसकी रहनुमा बन गई. गंभीर और सचमुच की चिंता में तल्लीन. पर उसके सामने लंदन का लालच नगीने की तरह जगमगा रहा था. ''शुभा मैं दुनिया देखना चाहती हूं. कितना कम देखा है मैंने अभी. जयंत तो न जाने कब से सारी दुनिया की सैर कर रहे हैं? ...वैसे भी मुझे जाना तो है ही.'' शुभा ने उसकी ओर तरस खाती निगाहों से देखा और रुआंसी आवाज में बोली, ''किस दुनिया की बात कर रही हो प्रिया? देखने वाली दुनिया के लिए जीने वाली दुनिया छोड़ दोगी?'' प्रिया इस छोटी-सी गुड़िया की वाचालता पर दंग रह गई. ''मुझे नहीं लगता शुभा कि कोई दुनिया मुझसे छूट रही है.'' शुभा हारकर पर्स उठाती खड़ी हो गई. ''ओ.के. प्रिया, लंदन जाने से पहले फोन करना और हो सके तो लंदन जाकर भी.'' ''ओ.के. शुभा, बाइ!'' तभी शुभा अचानक रुक गई, ''लेकिन तुम आई कैसे हो?'' ''क्यों, टैक्सी से, गाड़ी तो जयंत ऑफिस ले गए.'' ''तो मैं तुम्हें छोड़ती हुई जाऊंगी.'' वह लाल रंग की स्पोर्ट्स कार लाई थी. उसने सिर पर रंगीन स्कार्फ बांधा और प्रिया के लिए दरवाजा खोलकर स्टीयरिंग पर बैठ गई.

...वह उस शहर में प्रिया की आखिरी शाम थी... फ्रैंकफर्ट में जब ब्रेक के लिए उसका जहाज उतरने जा रहा था तब भी उसके हाथ में इलेक्ट्रॉनिक टाइपराइटर पर टाइप की गई वे चंद संतरें चमक रही थीं ''प्रिया शायद अगले महीने मेरा ट्रांसफर किसी और शहर में हो जाए. पता नहीं किस शहर में. तुम लंदन से छुट्टियों में बच्चों को लेकर भारत चली जाना. बच्चे भी ननिहाल जाकर खुश होंगे. वहीं, मैं कहां हूं इसकी सूचना तुम्हें मिल जाएगी.'' प्रिया की उंगलियां अभी भी उस महीन कागज़ पर चिपकी हुई थीं.

...एयरपोर्ट पर जयंत ने वह सफेद लिफाफा थमाते हुए उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा था, ''टेक केयर.'' बच्चों को भी उन्होंने हल्के से अपने करीब चिपका रखा था...''सी यू.'' ''सी यू.''—फ्रैंकफर्ट एयरपोर्ट पर उतरने से पूर्व प्रिया को अपनी सीट का बेल्ट खोलने में दिक्कत हो रही थी...

...एयरपोर्ट से लौटकर जयंत को अपना घर प्रिया और बच्चों के बगैर सूना-सा लगा. उन्होंने टाइ के साथ उस सूनेपन को सोफे पर फेंक दिया और सिगरेट सुलगाते हुए टेलीफोन करने बैठ गए. ■

रिज़्क

● मैत्रेयी पुष्पा ● चित्र: मनमोहन गुलाटी

अपने रिज़क, अपने पेशे में भेदभाव, बैर-मिताई, ऊंच-नीच का ठौर नहीं करना, यही नसीहत दी थी दाई लल्लन को उसकी सास ने. और सचमुच अपने रिज़क और अपनी अंतरात्मा से बेईमानी नहीं की उसने.

बेहाल है लल्लन!

अमरोख गांव का सीपर (स्वीपर), जो मोंठ के अस्पताल में काम करता है, अभी-अभी खबर देकर गया है कि आसाराम... बसोरो ने अस्पताल के सामने खड़े होकर नारे लगाए, गालियां बकीं और हिंसाबाद... आसाराम सबसे आगे था, उसका स्वर सबसे ऊंचा था. साथी ईंट-पत्थर फेंक रहे थे. खिड़कियों के शीशे टूटे. कम्पोटर जी को बहुत चोट आई है. डाकधर साहब आग-बबूला हो उठे. इतनी बात सह सकते हैं डाकधर लोग? तुरंत थाना-पुलिस का सिपाही बुलावा लिया. दरोगा जी खुद हाजिर हो गए. आसाराम को कैद कर लिया. वह हवालात में...

लल्लन का रोम-रोम कांप गया. इस तरह की वारदात आज वह तीसरी बार सुन रही है. हर बार आसाराम उसे अंधकूप में धकेल देता है. वह मुंह खोले बावरी-सी खड़ी रह गई. सीपर लल्लन के बदहवास चेहरे को देखता रहा. देर तक वह कुछ नहीं बोली तो सीपर बोला, ''सीताराम भौजी, अब चलता हूं. उसे छुड़ाने की जुगत करना. बस इतना ही कहने आया था.''

लल्लन को अचानक चेत आया, बोली, ''भइया, बिरादरी का कोई आदमी...जमानत के लिए सिकंदरा के पल्टू दाऊ जू?''

''आं हां, कोई नहीं.''

लल्लन के मुख से गालियां फूटने लगीं—बिंड़ा रह हवालात में. बड़ा मरता था बिरादरी के लिए. सगे खास अब कहां अलोप हो गए? हत्यारे, सब अपने स्वारथ के हैं. गुड़ देखते के चींटें.

सीपर चला गया. लल्लन खड़ी रह गई अकेली.

पांवों में सत्त नहीं बचा, उससे खड़ा नहीं रहा जा रहा. माथे में घुमेर उठ रही हैं, और कान सनन सनन! क्या करे, क्या न करे? सोच में डूबी मड़ैया में घुसकर धम्म से धरती पर बैठ गई. माथे पर हथेली धरे, घुटने पर कोहनी टेके बैठी रही, ज्यों कोई गमी हो गई हो. सारे नाते-रिश्तेदारों, मिलने-जुलने वालों पर ध्यान आता-जाता रहा. पर कुछ हासिल नहीं. कोई जाना ही चाहता तो अब तक छुड़ा न लाता आसाराम को. सीपर कह रहा था तीन दिन... और उसके लिए आसाराम की जमानत कराना ज्यों सरग के तारे तोड़ना...

उदास निगाह से उस खटिया की ओर देखने लगी, जिस पर सास पड़ी हुई हैं. बेटा के आने की बाट में झुर्री भरी आंखें कौड़ी की तरह खुली हैं. पूछती हैं बार-बार, ''आसाराम नहीं लौटा लल्लन? वह तो कहता था कमली के सगाई के संबंध में अम्मा आधा दिन भी नहीं लगना. लो, आज तो पूरा महीना हुआ जाता है, कोई खबर नहीं. किसी से पूछताछ तो कर बेटी.''

अम्मा उठकर बैठ गईं, बूढ़े होंठों से जुगाली-सी करती हुई फिर आसाराम की बावत ही पूछने लगीं, ''ऐसा तो नहीं कि तू कुछ छिपा रही हो लल्लन? तेरा चेहरा कुम्हला गया है.''

लल्लन अधिक दुखी हो उठी. वह अम्मा की अनुभवी आंखों पर कब तक परदा डाले रहेगी? कब तक छिपा सकेगी सच बात? नासिया ने मां की हारी बीमारी का भी ख्याल नहीं किया. मन तो आता है कि सड़ने दे हवालात में. भाड़ में गई जमानत.

"अम्मा लेट जाओ, फिकर में हलकान हो रही हो. तुम्हारा तो वैसे ही जी अच्छा नहीं," लल्लन ने सास की आंखों में आसाराम के बदले की आत्मीयता उड़ेल दी.

घुटनों में मुंह गाड़े बैठी है लल्लन. ऐसे कब तक चलेगा? कब तक खींचेगी पूरी गृहस्थी का बोझ? बेआधार, बेरोजगार कैसे बैठा रहे कोई. भूखे पेट को कब तक मसोसे?

कैसे थे हम? क्या धजा बन गई? मुकद्दर की मार कहो सो भी नहीं. अपने रिज़्क से, अपने पेशे से बेईमानी करी, तो भोगेंगे नहीं?

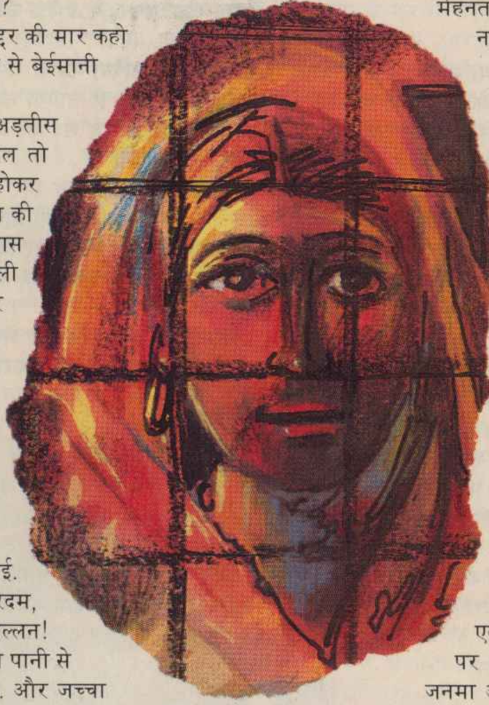

आज की नहीं है लल्लन. पैंतीस-अड़तीस बरस उमर गुजार चुकी है. बीसियों साल तो इस खिल्ली गांव में ही हो गए. गौना होकर आई थी तो हद से हद सोलह-सत्रह बरस की रही होगी. बीस-बाईस की होते-होते सास का आसन ऐसे ले लिया जैसे पिरौना वाली दाई अपनी बहू को गद्दी संभलवाने तैयार ही बैठी थी. खैनी-मिस्सी खाने में ही नहीं, अम्मा के हाथ का जस ज्यों की त्यों उतार लिया अपने हाथों में, अपनी तलहथियों में, उंगलियों में. लल्लन उंगलियों की पोरों से अपनी हथेली टटोलती रही. छू-छूकर देखती रही, जैसे पहचान रही हो कि ये वे ही हथेलिया हैं जो...

उसे अम्मा की असीस याद आ गई. "बेटी, मेरा आसीरबाद तेरे संग है हरदम, तेरे ऊपर. बस दो बातें याद रखना लल्लन! बच्चा जनाते बखत खुरपी-हंसिया खौलते पानी से धोकर पोंछकर फिर नरा (नाल) काटना. और जच्चा के कोठे में हवा का परगास रहे. वैसे, तू हौसला, हिम्मत वाली जनी है. अदब कायदा वाली है. तेरे ऊपर मेरी बड़ी उम्मीद है बेटा."

इस बात को वह आज भी मानती है, उसे सास की असीसें फल गईं. अम्मा के नाम से भी आगे गया उसके हाथ का जस. लल्लन के होते हुए गांव-आनगांव वालों को पिरौना वाली दाई की कमी नहीं अखरी.

आच सोचती है तो कलेजा कटता है. ऐसे लगता है, जैसे वे सब बीती बातें हों, सपने हों. वे दिन कहां हेरा गए जब अमगांव से अमरोख तक के माते-मोदी उसके लिए गाड़ी-गढ़ला जोतकर लाते थे. मड़ोरा कायले के लोधी कुर्मी उसे अपनी साइकिल के "कैरियल" पर बिठाकर ले जाते थे. उसी मान-सम्मान के चलते दिन रोज उसका कलेजा पुख्ता होता जाता था. हाथ निपुणता, कुशलता से चलते थे. फंसे, अधफंसे शिशु को अनुभवी उंगलियों से बाहर खींचकर जच्चा को निष्कंटक निरबार लेती थी. लल्लन की बांहें आज भी कसमसाती हैं, उंगलियां फड़कती हैं. पर काहे को... ये सब तो पिछली हिलोरें हैं. याद करके भी दुख ही पाना है.

सास की असीसें फल गईं लल्लन को. अम्मा के नाम से भी आगे गया उसके हाथ का जस. उसके होते हुए गांव-आनगांव वालों को पिरौना वाली दाई की कमी नहीं अखरी.

गहरी सांस भरी लल्लन ने, जगदीश तिवारी क्या भूल गए होंगे? उनकी मरती हुई बहू के प्रान वापस लाई थी. जच्चा के संग-संग ऐसे जूझी थी, ज्यों उसने सही हो जानलेवा पीरें, उसने ही जना हो तिवारी का नाती. घर लौटकर आई तो ये ही अम्मा आंखें फाड़े देखती रह गईं. बोलीं, "आज क्या जमराज से कुस्ती लड़ी थी? मड़ोरा से खिल्ली तक भी पसीना नहीं सूखा, ठंड के दिन में?"

"हां अम्मा हां! महामाई का सुमिरन करके और तुम्हारा नाम लै के हमने जमराज से ही कुश्ती लड़ी थी. बहू बच गई. अम्मा, बस हमारी मेहनत सुकारथ हो गई. जुग-जुग जीवे तिवारी का नाती."

अम्मा का कलेजा फूलकर दोगुना-चौगुना हो गया. पीठ थपथपाकर बोलीं, "बेटी, जनी की जात! एक पांव नरक में तो एक सुरग में. दाई ही भैमाता का रूप धरकर परगट होती है उस बखत." भैमाता के नाम का नारियल तोड़ा था उस रात. बच्चों में परसाद बांटा था लल्लन ने.

●●●

वही लल्लन आज घुटनों में मुंह दिए बैठी है.

सिकंदरा और खिल्ली के अहीरों में सिर-फुटउअल दुश्मनी थी. ऐसा बैर कि ब्याह-काज, पांत-पंत तो कहे कौन, मौत-गमी तक में आना-जाना नहीं. रंजिश निभाने के लिए सूत सलाह रखा जाता है, यह बात कोई खिल्ली सिकंदरा के अहीरों से सीखे. मजाल है कि कुत्ता, बिल्ली, माछी, मच्छर तक उड़कर जाए एक-दूसरे की सीमा में. हाट-बजार भी मिल जाते थे तो मुंह फेर लेते थे, एक-दूसरे को देखते ही.

पर भैमाता की भी अनेक लीलाएं हैं. उसी का जनमा आदमी उससे बच पाएगा भला.

लो, उन्हीं दिनों हरदयाल अहीर की बहू की जान खतरा खा गई. पहलौटी का बच्चा, और बहू थी अनजान, अखेल, अल्हड़. सिर्रिन के तीन दिन तक तो किसी को इलम नहीं होने दिया कि पीरें आ रही हैं. उसका भी क्या कसूर? घर में सास-ननद होतीं, कि देवरानी-जिठानी रहतीं तो पहचानतीं, पढ़ लेतीं पीर भरा चेहरा, दर्द भरी आंखें. ससुर मर्द की जात, क्या जाने, क्या पहचाने. उस बिचारे ने कभी दर्द पीर सहे हों तो जाने. ऊपर से बहू का घूंघट परदा. उसका आदमी लाम में. महामाई कि किरपा समझो कि पड़ोसिन चूल्हे की आग मांगने आ गई. बहू का बेहाल रूप देखा तो सन्न! तुरंत बाहर की ओर भागी और हरदयाल को सचेत किया, "ओ किरपाल के दादा, बहू तो रेत की मछली-सी छटपटा रही है. दइया, सांसें तक... नारी नब्ज! दाई को बुलाओ जल्दी. जल्दी से जल्दी"

मौत का खौफ सब डरों से भारी होता है. फिर कहां खिल्ली, कहां सिकंदरा? कुछ नहीं सोचा हरदयाल अहीर ने. घोड़े की पीठ पर जीन डाली और दौड़ लिये. दौड़ते-दौड़ते आ गिरे लल्लन की चौखट पर. आज भी सजीव है लल्लन की आंखों में वह तस्वीर... हरदयाल का लुटा, उजड़ा बदहवास मुख देखते ही वह घोड़े पर उनके पीछे बैठ ली थी. मुड़कर न गांव के लोगों की ओर देखा, न आसाराम की तरफ.

उसके हाथ में जस था, सिर पर अम्मा की असीस. बहू को जिंदगी मिली. हरदयाल के घर फूल-सी नातिन ने जनम लिया. हरदयाल ने खिल्ली वालों को दष्टौन में बुलाया था. खुद आया था मनाने. उस

बिटिया की बदौलत ही सिकंदरा खिल्ली के अहीरों में आना-जाना और मेल-मिलाप हुआ.

गहरी सांस लेकर एक नजर सास की ओर देखती रह गई लल्लन. पिरौना वाली बूढ़ी दाई ऐनक की टूटी कमानी में बंधा धागा अपने कान में लपेट रही है. क्या देखना चाहती हैं अम्मा? अब बचा भी क्या है? ऐनक लगाएं न लगाएं. बहू का रोया हुआ लाचार चेहरा देखकर क्या करेंगी?

मैंने तो तुम्हारी नसीहत, तुम्हारी कहनावत सिर आंखों रखी थी अम्मा, आज तक. याद है तुम्हारे बोल—बेटी, अपने रिज़क में भेदभाव, बैर-मिताई, ऊंच-नीच का ठौर नहीं. अपने पेसा से बेईमानी मत करना. रोजी का ठौर भगवान का ठौर है.

पर अम्मा, तुम्हारा ही बेटा...उसी की जिद...

अमरोख का सीपर कह गया है कि आसाराम...लल्लन ने आधी बात पर ही विराम लगा दिया. भला हुआ जो मोंठ के कसाई को बकरी बेच दी. रुपये लेकर आता ही होगा. बकरी खोल ले जाने का आज का ही वादा है. पेटों का गुजारा तो किसी तरह हो रहा है, ऊपर से... आसाराम की जमानत...?

मड़ैया के बाहर बने चबूतरे पर हरिया लेटा पड़ा है. अच्छी मार खाई है हरामी ने. भोर से उठकर रोटी-रोटी, ज्यों रोटी का कोई गीत हो, सारे दिन गुनगुनाना हो उसे. पतलेई भर सूखे बेर उबाले थे, सांझ की बेला तक सब भकोस लिये. पेट में कुआं खुदा है. सब दिन भूखा ही भूखा. दस साल का लड़का और खुराक पूरे मर्द के बिरोबर.

इस कमलिया की बच्ची के मूंड में मगज़ नहीं. मां पर क्या बीत रही है सो थोड़ेई खबर हैं. बारह-तेरह साल की जवान ऐसे देख रही है जैसे पांच-छः साल की अबोध हो. बस बकर-बकर जबान चलाएगी.

लल्लन के कलेजे पर अंगार उलटे पड़े हैं आज...इस कमलिया की बच्ची ने ही बताया-सिखाया है हरिया को. नहीं तो यह पूछने का क्या मतलब कि, "अम्मा तुम्हारी नौकरी कब लगेगी?" कह रहा था, "अम्मा, जिज्जी कैरयी थीं कि फिर तो हम मोंठ रहा करेंगे. वहां लडुआ-पेरा बिकते हैं. अम्मा ऽऽआं. दिलाओगी न लडुआ-पेरा?" कहकर अपने मैले होंठ चाटने लगा.

लल्लन ने आव देखा न ताव, कमली को धर लिया. झोंटा खींचती हुई बोली, "ला हम खबावें तुम्हें गू. बाप ने आंखन हेरे हैं लडुआ-पेरा? घर में चार पसेरी नाज था, दलिद्दरी बाप उसे भी बेच गया."

कमली अपने बाल सहलाती हुई सी-सी, सी-सी कर रही थी, चुपचाप रो रही थी. मैली धोती से आंखें पोंछ रही थी और लल्लन रोष में भरी आसाराम को कोस रही है, "जोगिया पिछौरा ओढ़ के बन गया संत-महंत. सोच रहा है बामन-बनियां इसकी नेतई कबूल लेंगे. मुकत हुआ बसोर की कौम से. बसोर की कौम चबा रही थी इसे."

किसी के पांवों की आहट है—चर्र-मर्र. लल्लन ने उझककर देखा, दरवाजे पर मोंठ का कसाई खड़ा है. वह हथेलियों का सहारा लेती हुई तुरत-फुरत उठी और सिर पल्ला माथे तक खींचती हुई बाहर आ गई.

कसाई राम-राम करके बाहर बने मिट्टी के चबूतरे पर बैठ गया. लल्लन ने कमली को आवाज दी, "अम्मा से बीड़ी मांग ला मोंड़ी."

"ना-ना" करते हुए कसाई ने अपनी अंटी में से कुछ नोट निकाल लिये और उसकी ओर बढ़ा दिए.

लल्लन ने रुपये ध्यान से गिने. गिन कर बकरी की ओर आंख से इशारा कर दिया यानी खोल ले जाओ.

हरिया कब उठकर खड़ा हो गया, उसने ध्यान नहीं दिया. बकरी रस्सा छूते ही मिमिया उठी. लड़का गिद्ध की तरह टूटा और बकरी के गले से लिपट गया. बकरी मैंऽऽ मैंऽऽ करके ऐसे चिल्ला रही थी जैसे फूट-फूटकर रो रही हो.

लल्लन ने हरिया को दो थप्पड़ जड़ते हुए डपटा, "मूरख मोल कर दिया तो खरीदार ले जाएगा नहीं?"

मगर हरिया सुने तब न! अपनी पतली-पतली उंगलियां बकरी के कानों पर कस लीं.

कसाई छुड़ा-छुड़ा कर हार थक गया. लड़का है कि जोंक की तरह बकरी से चिपटा हुआ. दोनों बांहों में उसकी गरदन को बांधे हुए. अंत में कसाई की बांह में दांत गड़ा दिए हरिया ने. बकरी ने खरीदार के पांव खूंद डाले. कसाई झल्ला उठा. हरिया की गरदन पर एक झांपड़ मारकर एक ओर को कूदा.

लल्लन ने हरिया को जी भरकर पीटा. वह जोर-जोर से रोने लगा. हरिया के संग बकरी ऐसे डकरा रही थी, ज्यों कसाईखाने में जिबह हो रही हो.

हार कर कसाई ने कोहनी तक हाथ जोड़ लिये. अपने रुपये वापस मांगे और लेकर चलता बना.

लल्लन जैसे लुट गई हो, खाली हाथों की मलती हुई खड़ी रह गई. उसका मन हुआ हरिया के प्रान निकाल कर धर दे. ठठरी-बंधे ने बना-बनाया काम बिगाड़कर धर दिया. अब चबा ले बकरी के हाड़!

सब तरफ से निराश, हताश होकर वह खिसियायी-सी मड़ैया में जा बैठी. आसाराम को कोस-कोसकर सस्वर रोने लगी.

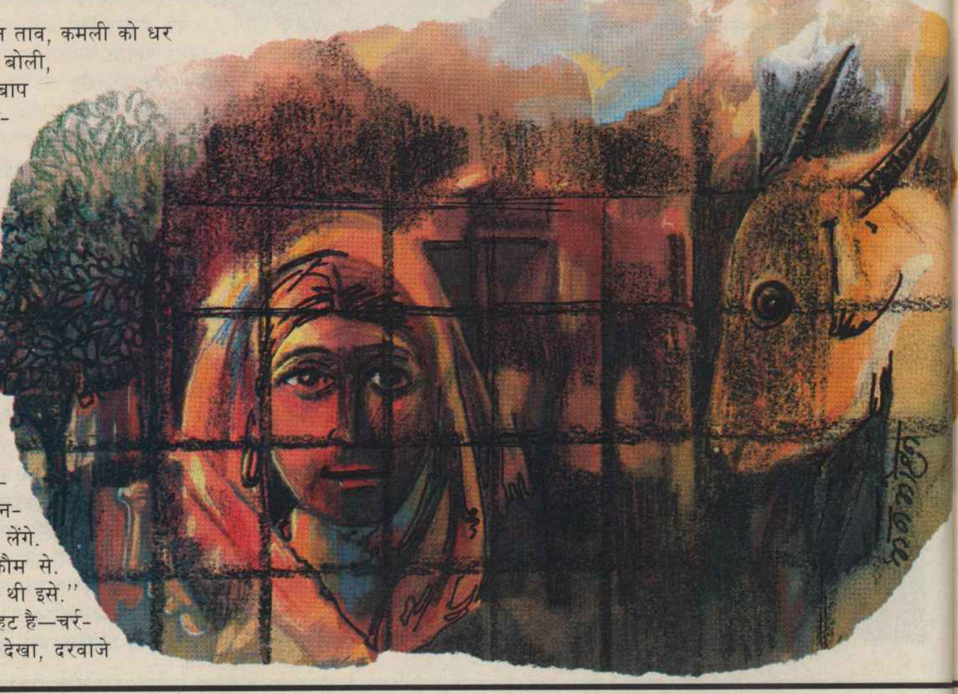

अम्मा धीर बंधा रही थी, ''अरे तू रोती काहे को है? बिटिया के सगाई संबंध की बात है, दिना देर हो गई होगी. बोल-कुबोल मत निकाले मुख से. देउता मना कि आसाराम राजी-खुसी लौट आवै.''

उसके मन में आया, कह दे असल बात. सुना दे अम्मा को पूत की करतूतें, पर थम गई लल्लन. क्या फायदा? रो-रोककर आंखें फोड़ लेगी डुकइया. बैठी रही ज्यों विष को कंठ में रोके हो. देख लो हरिया को, बकरी का रस्सा तो नहीं छोड़ा. कलाई में बांधे बाघ की तरह तना बैठा है. लीलेगा हमें?

कमली बूढ़ी दादी की देह से सटकर खटिया के पाये पर टिक गई है, जैसे अम्मा की आड़ में रहकर बच जाएगी लल्लन की जलती निगाहों से.

दिन डूबने को आ गया. लल्लन भारी मन से उठी, चूल्हे के पास बैठकर कंडे फोड़ने लगी. चना की भाजी सूप में रखी थी, उसे बीनने लगी. फिर काटने बैठ गई बोरे के टुकड़े पर दरात को पांव तले दाब कर.

मां का मन शांत देखकर कमली झोंटा-पछाड़ पिटाई भूल चुकी थी. वह फिर बकर-बकर बोलने लगी, ''अम्मा, चलते बखत दादा कै नहीं रहे थे कि चितगवां में चार-पांच गांवों की मिटिन है. कमतुआ ने बिरादरी का फैसला नहीं माना. डांड़ धरा जाएगा अब. दादा चितगवां के बाद अमरोख, अमरोख से कायले और कायले से...''

बूढ़ी दादी ने अधबीच ही बात काटकर पूछा, ''कमतुआ, वो नन्हाई का जमाई. उस पर डांड़. लो घर में दाने, न तन पै चीथरा.''

लल्लन चुप रहना चाहती थी, मगर उससे रुका न गया, ''बिरादरी वालों की मेहरबानी हुई है अम्मा! और सबसे ज्यादा तुम्हारे पूत की, सिकंदरा वाले पल्टू दाऊ जू की. भूखे-प्यासे बेबस आदमी से डांड़ मांगते हैं, भले अपनी खाल छोलकर दे. नहीं दे तो बिरादरी के नामी-गिरामी

बिरादरी की नेतागीरी में पति आसाराम जेल में बंद हो गया तो लल्लन को चार जनों का पेट भरने के लिए बकरी बेचने पर मजबूर होना पड़ा. मगर बेटे हरिया ने वह भी न करने दिया.

लोगों के जूता-पनइया डलिया में धर कर पूरे गांव की परिकम्मा करे. लाचार न होता तो भेजता अपनी जनी बच्चा जनाने? ऐन मानता तुम्हारा हुकम-ऐलान.''

''मंड़ोरा के भट्ट्यां ने कच्ची पांत करी तब जाकर बिरादरी में शामिल हुआ. अब कर्जा और चढ़ाए फिर रहा है अपने कंधों पर,'' बूढ़ी अम्मा का मुख चिरइया की चोंच की तरह खुल आया. मुद्रा ऐसी ज्यों सोच रही हों कि हे मोरे रामजी अपने रिज़क से ऊपर डांड़. परलय ही समझो. गजब.

चुप्पी छाई थी मड़ैया में. चारों मनिख अपनी-अपनी जगह माटी के पुतलों से गुम्म थे. लल्लन विषाद में डूबी चूल्हे में जलती कंडों की आग को देख रही है. कमली मां के मुख को देखती हुई सहमी-सी बैठी है. हरिया जिद्दी बछेड़ा की तरह खूंटा तुड़ाया-सा देख रहा है मां की ओर. बकरी मुंह को तेजी से दाएं-बाएं हिला-हिलाकर परेशान-सी देख रही है.

बूढ़ी अम्मा के भीतर जब-न-तब पिरौना वाली दाई कुनमुनाने लगती है. थमी हवा का मिज़ाज बदलती हुई बोलीं, ''लल्लन, हमारे जाने मोदी की बहू को नवां महीना जा रहा होगा.''

लल्लन सुनकर भी अनसुना कर देना चाहती थी, पर इतनी कठोरता न बरत पाई, लापरवाही से बोली, ''को जाने अम्मा.''

''काछिन की बहू तो कैरयी थी कि लागत असाढ़ दिन पूरे हो लेंगे. पहलौठी का बालक नहीं खिंचता ज्यादा दिन. लागत असाढ़ ही हो लेगा, देख लेना.''

लल्लन खिसियाई हुई-सी हंस दी, अम्मा अब तक भी अपना सास्तर नहीं भूलीं.

पिरौना वाली दाई निरीह भाव से बहू का मुख जोह रही थी.

सास का विवश चेहरा देखकर उस पल लल्लन को तरस आ गया, संयत होकर बोली, ''काहे को दिन गिनती हो अम्मा? अपन को क्या लेना-देना? आम खाने ही नहीं हैं तो पेड़ों की गिनती बिरथा ही ठहरी. कौन महिना? कब होगा? तुम भी... अम्मा.''

अम्मा धीमे-धीमे बड़बड़ाई, जैसे खुद से ही बातें कर रही हों, ''सो, तो है. पर बेटी, नहीं मानता मन. रिज़क जो जिंदगानी भर करते रहे, उसे साल खांड़ में कोई कैसे भूल जाए? क्या खबर थी कि खोजी ऐसा कौल भरेंगे...''

अम्मा के मन में कच्चे करेले की-सी करुआहट भर आई है, जानती है लल्लन. वे उसे जबरदस्ती लील रही हैं, सो भी पता है उसे. विवश निगाहों से देखने लगी सास की ओर. क्या करें अम्मा भी, उन्होंने तो ऐसे ही दिन देखे हैं कि गांव में किसी बहू को दस दिन चढ़े तो उसकी चर्चा नाऊ टोला, बसोर टोला, धोबी टोला में चटपट पहुंचती. खुशियाली मनने लगती. होंसे फूले फिरने लगते कामगर. जी भर-भरकर दुआएं, असीसें दी जातीं.

लल्लन आह भरकर रह गई, कराहती-सी बोली, ''अब तो अपन राजा हो गए अम्मा. गलीज काम छोड़कर महाराजा. हंसी-खुशी, दुक्ख, गम, गीत, परवों में शरीक होने के बखत हवा हुए. अकेले-अकेले का रोना-हंसना रह गया है. सो, चाहे हंसो-गाओ, भले रोओ-कराहो. अपनी-अपनी ढपली, अपना-अपना राग.''

अम्मा खटिया से उतरकर धरती पर आ बैठी. हरिया के कुंआ-पेट से जो उबले बेर छिपाकर रखे थे, कमली उनकी गुठली निकालकर उन्हें अलमूनियम की फूटी-पिचकी कटोरी में धर लाई.

''लो, खा लो बूढ़ी अम्मा.''

''भूख नहीं है बेटा, तें खा लै. काय री, लल्लन, भाजी चूंटने गई थी, सो बनाई नहीं. खा लेते सब जने.''

उत्तर लल्लन ने दिया, ''वोई तो चढ़ी है चूल्हे पै. काहे की भाजी अम्मा.'' गहरी सांस लेकर रह गई वह.

''गांव के लोग दुसमन हो गए हैं. जनीमानसें बोली मारती हैं. खेत निराती काछिनें मुंह ऐंठ रही थीं. काछी की मोंठ वाली बहू की जबान दो गज लंबी है. सरग-पताल चलती है.''

''चलेगी काहे नहीं, कांजी हौद के फाटकदार की मोंड़ी है,'' अम्मा ने झुर्री भरा हाथ लहराया.

''तो क्या लफटंट कलट्टरनी हो गई? जीभ में दस लपेटा देकर बोली, आय हाय अब तो खेत पट्टी वाले भी भड़ियाई (चोरी) से भाजी खोंटते फिर रहे हैं. गरब तो गाड़ी भरा था. नहीं पुसानी डाकधरनी जी, परदा में?''

काछी की बहू के बोल लल्लन के मुख से सुने तो पिरौना वाली के भीतर बैठी दाई गुर्रा उठी, कांपती आवाज में बोलीं, ''देख तो छिनार कछनियां को! कल के दिन जनने बैठेगी तो पांवों में मुंह गाड़ देगी. हा हा खायेगी कि बचा लो अम्माऽऽऽआं, अबकी बेर बचा लो.''

लल्लन को अनचाहे ही हंसी आ गई. दुख भरी हंसी. अम्मा का गरब-राग बिरथा है. जानती तो है कि न हम दाई और न काछी की बहू हा हा खाने वाली. पर अब क्या कहे...कैसे तोड़े बूढ़ी डुकइया का भिरम. कपाल पर दोनों हथेली टिकाए सोच में बैठी है लल्लन. और अम्मा को शायद भारी चुप्पी खल रही है. वे बार-बार ऐसे देखती हैं, जैसे कुछ कहने को व्याकुल हों. मुरझाए हुए होंठ कांपकर रह जाते हैं.

अम्मा के मन में क्या घुमड़ रहा होगा? वही न, जो उसके मन को धुन रहा है. जिस पर अम्मा ने कई बार आसाराम के साथ कलह की थी. जी भरकर उस घड़ी को कोसा, जिस बुरे बखत तीन-तीन बीघे के पट्टे इस गांव के चारों बसोरों के नाम लिखे गए थे. डग भर डांग का टुकड़ा क्या मिला, बिरादरी का हर आदमी अपनी औकात भूल बैठा.

कंकरीली भूमि, जिसको छूते ही हल की फाल टेढ़ी हो जाए, जिसमें

बीज मर जाए, पानी ढरक जाए, उस पर गाड़ी भर गुमान, फोकट के पट्टीदारों से सीने गज-गज चौड़े. सिर्री पागिल हो गए हो तुम लोग, अम्मा बड़बड़ाती थीं उन दिनों.

करेला और नीम चढ़ा. सो एक और करामात हुई. लल्लन कहे तो क्या कहे? अम्मा के आंख मिलाने का हौसला उसका नहीं. लोगों के संग उसकी भी मति मारी गई थी.

सचमुच वह महूरत बुरा था, जब आसाराम ने मां से कहा था, "अम्मा गांव-गांव से दाइयां टिरैनिंग के लिए जा रही हैं. शहरी चाल से बच्चा जनाना सिखाया जाएगा उन्हें. लल्लन को भी जाना होगा. सिरकारी ऐलान है. नहीं तो दाईगीरी नहीं कर सकेगी."

अम्मा की आंखें पलट पड़ीं. गुजुर-गुजुर देखती रहीं, कभी आसाराम को, तो कभी लल्लन को. उनसे कुछ कहते न बन रहा था. उन दिनों अम्मा के सामने पड़ने से बचती थी वह. अम्मा अचंभे में भरी-सी चुपचाप बैठी रही थीं.

आसाराम ने एक दिन फिर दोहराई अपनी बात, ऊंची आवाज में, जैसे अम्मा बहरी हों.

वे बोलीं, "कैसी सहरी चाल बता रहा है हमें? वहां क्या आदमी का बच्चा नहीं जनमता? बरसों से जन्त—जाये कर रही है लल्लन, क्या सीखना बाकी रह गया है रे? कठिन से कठिन सोर निबटाई हैं उसने. सहर की डाकधरनी कौन-सी भैमाता की धजा थमा देगी?"

आसाराम ठठाकर हंस पड़ा. हंसी लल्लन को भी आई. अम्मा बुरा मानेंगी, सो उसने उनकी ओर से मुख फेर लिया. वाह री अम्मा!

हंसते-हंसते आसाराम बोला, "अम्मा, नए जमाने की चाल तुम क्या समझो? मंड़ोरा, अमरोख, चितगवां, सिकंदरा छोड़ तुम तो कहीं गई नहीं. आजकल पेट में चीरा लगाकर डाकधरनी ऊपर से ऊपर ही बच्चा काढ़ लेती हैं, सो पता है तुम्हें? और तो और, पेट में दूरबीन लगाकर यह भी बता देंगी कि मोंड़ा जनम लेगा या मोंड़ी. तुमने सुनी ऐसी बात?"

अम्मा की बूढ़ी आंखें अचरज से फैल आई थीं. बेटे की ओर मुंह बाये देखती रहीं, फिर टेढ़े होंठ करके हंसकर बोलीं, "चलो आज तो सुन लिया जे चिमितकार. मसखरी की बातें हमें अच्छी नहीं लगतीं आसा."

"महामाई की सों अम्मा. हम मसखरी नहीं कर रहे."

"परलय मत करै. दूरबीन न हो गई, भगवान की आंख हो गई. भैमाता के कुदरती खेल में मनिख दखल दे. मोरे राम घोर कलजुग ही आ गया," अम्मा बुदबुदाईं.

आसाराम आगे-आगे झोला लेकर चला था. लल्लन सास के पांव छूकर मोंठ "टिरैनिंग" के लिए जाने लगी. अम्मा के बूढ़े लस्त-पस्त होंठों पर असीस थी, न बददुआ. चेहरे पर खुशी थी, न गम. चलते-चलते लल्लन के पीछे मुड़कर देखा, वे हरिया के नन्हे कंधे पर हाथ धरे झुकी हुई-सी खड़ी थीं, जैसे अपने आपमें सिमट रही हों.

मिडवाइफ सेंटर पर लल्लन ने अनेक नई बातें सीखीं. बहुत-सी नई-नई चीजें देखीं. झक्क सफेद कैंची, साबुन की लाल बट्टी, रोयेंदार नीली-पीली तौलिया, डिटौल का पीली शीशी, दूध-सी सफेद चिलमची. बेदाग सफेद गौज और नाल बांधने के लिए सफेद काड (धागा).

याद करती है तो आज भी कौंधती हैं वे चीजें आंखों में. उसे लगा था वह, वह तो निपट अज्ञान थी. अनाड़ीपन के चलते ही जना रही थी बच्चे.

मेमसाब (मिडवाइफ) ने केसबक्सा थमाकर आंख-दवा, पौडर, अनीमा और इंगेसन (इंजेक्शन) के बारे में बताया था. डिलेवरी के टैम चूड़ी-छल्ला नहीं पहनना है, इनफेसन (इन्फैक्शन) का डर रहता है.

उसने सोचा, लो अम्मा को इन बातों का क्या इलम? वह बताएगी, तो मानेंगी भी नहीं. बलिहारी! बलिहारी! गांव में जाकर बरतेगी तो मुंह बाये रह जाएंगी जनीं.

लल्लन की टिरैनिंग खतम हुई. वह गांव आई, डाकधरनी की अदा से उतरी थी मोटर से. सफेद धोती, उलटा पल्ला, बालों का जूड़ा, पांवों में साफ नीली हवाई चप्पलें. घूंघट, न परदा. बहुत जने नहीं पहचाने उसे. घर आई तो सास मुंह फाड़े रह गईं.

आसाराम सिर ऊंचा करके खड़ा था.

गांव में खबर फैल गई, लल्लन मेम बनकर आई है. मड़ैया के आगे से जो निकलता, एक नजर उसकी ओर जरूर देखता. औरतें राह गैल में उसे रोक कर बतियातीं. अपनी हारी बीमारी तक बताने लगीं, जैसे वह डाकधरनी हो.

जिस तरह आई थी, उसी तरह रही. उसी पोशाक में, उसी अदा से, उसी इलम के साथ. बच्चा जनाने बुलाई जाती तो कायले वाली काकी की बहू उसका केसबक्सा उठाकर पीछे-पीछे चलती. परसूती (प्रसूति) वाले घर में वह मेमसाब की तरह व्यवहार करती—"पानी खौलाओ पतलेई में. खिड़की दरवाजा-खुला राखो. भीड़-मीड़ नहीं. टिटनस का इंगेसन लगवाया? बैठकर बच्चा नहीं होगा, जच्चा को खटिया पर लिटा दो."

लल्लन का हुकुम डाकधरनी का फरमान! पुजारिन, मोदिन, मातौन, ऊंच-नीच जाति की सब जनी बांदियों की तरह उसका हुकुम बजातीं. बच्चा होने के बाद वाले निर्देश ध्यान से सुनतीं—तेल मत लगाना बच्चा को. काजर-माजर भी नहीं. इनफेसन हो जानें हैं. लोई मत फेरना माथे पर, कोमल चमड़ी रहती है, चिर जाएगी. जच्चा-बच्चा के पास गोबर-मोबर न लाना. टिटनस बन जाएगी. ऊपर के दूध से ढारिया (डाइरिया), क्या कहते हैं कि दसत लग जाएंगे. जच्चा के लिए लडुआ-मडुआ भी मत बांधना. कंटीपेसन (कांस्टीपेशन) का डर रहता है ये वो कबज. और देखो, पोलिया (पोलियो) की बूंदें जरूर पिवा लाना मोंठ जाकर.

लल्लन दाई नहीं, सचमुच डाकधरनी थी गांव की. इसके अलावा हंस-हंसकर झगड़ती थी अपने किसानों से. लड़की के जन्म पर सोहर गाने से, नेग देने से जो लोग अनखाते थे, लल्लन उनसे नई चाल की बातें करती—फैमिली पिलानिंग का जमाना आ गया है. मोंड़ी-मोंड़ा में भेद नहीं माना जाता. सूधे दोसों इक्यावन. बढ़िया धोती-बिलौज. नाज-पानी फसल के ऊपर लूंगी और पूरी पपरिया—परब-त्यौहार.

सोहर गाकर बरार की पहली सोर उठाती—"*जसोदा जी से हंस-हंस पूछत दाई/नंदरानी जी से हंस हंस पूछत दाई/रातै तो मैं लली जनाय गई, लालन कहां से लाई/जसोदा जी से...*

क्या दिन थे! दिया-लिया उसके आंचल में न समाता था. मड़ैया की जगह दो कोठे का घर बन जाए, ऐसी इच्छा थी लल्लन की. बसोर टोले की हवा बदल गई थी. अपनी जाति के चार घरों में बहू-बेटियां उसे सिट्टर-सिट्टर कहकर पुकारतीं. लल्लन का रुतबा क्या कहिए! उसका

कराहट बढ़ती ही गई मोदी की बहू की. लल्लन बिरादरी के प्रतिबंधों को तोड़ मोदी के घर जाने से खुद को रोक न सकी. बच्चे ने जन्म लिया तो उसका रुदन लल्लन के कानों में अनहद नाद बन गया.

मुलाहिजा क्या पूछिए! गांव के घरों में घूमने निकलती तो मोदिन मातौनें उसके लिए पौर में 'पिढ़ी' डाल देतीं. वह पी वी, परगनेंट, आरन, कैल्सम और बिटामन वाली अस्पताली बोली बोलती.

आसाराम की भी वेशभूषा बदल गई. वह सफेद कमीज, सफेद धोती पहनता. रंगीन पगड़ी बांधकर ब्याह-कारज, परब-त्यौहार रमतूला बजाने जाता. कमली और हरिया भरपेट रोटी-साग तो क्या, गुड़, घी खाते. अम्मा के लिए खैनी-तम्बाकू आता. छिरिया गेहूं चरती. लल्लन मोंठ की मेमसाब की तरह घड़ी-घड़ी चीनी की चाय पीती. वह चाय बनाने के लिए अलमूनियम की टोंटीदार केटली मोंठ के बजार से लाई थी. कांच के चार गिलास.

वे बातें सपना हो गईं. मन में अवा-सा सुलगता है अब तो!

कहते हैं न, सुख के दिन लंबे नहीं होते. लो, उन्हीं दिनों बिरादरी

वालों के सिर पर कोई देव सवार हुआ था. आसाराम बौराने लगा. बसोरों ने जिद ठान ली. कैसी जिद? अपनी रोजी को ही लील लेने की जिद! बोले, हमारी जनीमानसें बच्चा जनाने घर-घर नहीं जाएंगी. नाल नहीं काटेंगी. बसोर की जाति हैं तो क्या हम गंदा काम करेंगे? गंदगी उठाने को पैदा हुए हैं?

"अरे! शहर में डाकधरनी नहीं जनाती बच्चा? गंदा काम करती है कि नहीं?" गांव के लोगों ने कहा.

"हां हां जनाती हैं बच्चा. हमारी औरतें जरूर जनाएंगी, मगर सिरकारी नौकरी मिल जाए तब. मोंठ की दाइयां दो-दो हजार पाती हैं, और हमारी औरतों को क्या मिलता है? नाज-पानी के ऊपर खून-पानी में हाथ साने रहें? नहीं जी नहीं. बामन-बनियां हो चाहे चमार-कोरी, हम किसी के दरबज्जे नरक उठाने के बदले अनाज उगाहने नहीं जाएंगे. भिखारी नहीं हैं."

"वैसे भी जमाना बदल रहा है अब. हमारी जाति वालों की बात सबसे पहले सुनी जाएगी. हम सिरकार दरबार जाएंगे. नौकरी मांगेंगे. और मिलेगी," बसोरों ने सुना दिया.

आसाराम ने लल्लन को नेठम रोक दिया, "बिरादरी से बाहर होकर रहोगी? अपने इलम की कीमत तुम ही नहीं जानोगी तो दूसरा कौन कदर करेगा? बसोरिन ही रह जाना."

याद करती है लल्लन—सांचा बामन तो आसाराम ही बना था. पीला रामनामी पिछौरा ओढ़ लिया. सिकंदरा के रैदास ढुलकिया से चार-छः निरगुन पद सीख लिये. फिर तो जहां खड़ा हो जाए, अपना ज्ञान-ध्यान बखाने, भासन-परिबचन दे. अपने गांव के आसपास ही नहीं, दूर-दूर तक भी जाने लगा. कायले से आगे के गांवों में जाकर अलख जगाया कि हम नीच कौम नहीं, छोटे नहीं, दीन-दलित नहीं, तो क्यों करें गंदा काम?

ठीक बात है नीच कौम होकर रहना भी किसे अच्छा लगता है? छोटी जाति में जनम लेना करम का दोष है. लगभग सारे बसोरों ने आसाराम की बात पर अमल किया था. देखते ही देखते आसाराम भगत कहलाने लगा. बिरादरी के हित में लगा था. घर-द्वार छोड़, बाल-बच्चों की चिंता त्याग कर गांव-गांव डोल रहा था. सिकंदरा के पल्टू दाऊ जू तक उसके मुरीद हो गए.

वाह रे पलटू दाऊ जू. तुम्हें भी मति भिरम हो गया. तुम तो गुनी ज्ञानी ब्यौहारी आदमी थे. आसाराम के पाखंड में कैसे पड़ गए? क्या पट्टेदारी तुम्हारे सिर चढ़कर बोलने लगी? इस बात में अंदेसा नहीं कि दाऊ जू तुम आगे न आते तो मंसा या गैर मंसा अनेक कंठों से आसाराम की बातों का समर्थन न होता. उस जिद पर मौहर तो ठुकी तुम्हारा ही मुख देखकर.

अम्मा की दशा देखी न जाती थी. वे हाय-हाय करती रह गईं, कि अब क्या हो? दइया, बच्चा जनाना, न रमतूला बजाना. पेट कैसे भरे जाएंगे?

फिर क्या था, गांव-आनगांव की बसोरिनें मोदिन, मातौन, पंडितायनों की चाल चलने लगीं. रानी महारानी बनी अपनी-अपनी मड़ैयों के पट-रंगपुरों में विराजने लगीं. नहाना-धोना, धुतिया निखार निखारकर पहनना. महावर बेंदी करते रहना. मेहनतकश जनीमानसों को सोहता है साज-सिंगार करके दब-ढककर बैठे रहना? यही करते-करते अनाज बड़ा गया. यानी खतम. भूख जोर पकड़ने लगी.

सबसे पहले मड़ोरा के भदइयां ने नियम तोड़ डाला. उसकी जनी सबको अंगूठा दिखाकर डिलेवरी कराने चली गई. किसानों के यहां से नाज-पानी ले आई. जिसने सुना वही बमका. बिरादरी में हाहाकार मच गया. सबके सब भदई पर ऐसे टूटे जैसे वह गाय मारकर कलंकी हो गया हो. दंड धरा गया एक हजार. उसने नहीं दिया. फिर पंचायत जुटी, और कच्ची-पक्की पांत धर दी बेचारे के ऊपर.

कच्ची पांत तो उसने कर दी, पर एक दिन आसाराम की घिची (गरदन) पकड़कर मरोड़ डाली, "ससुर जू रिज़क छोड़ देंगे तो क्या तुम्हें बचाएंगे? हमारे बाल-बच्चा भूखन मर रहे हैं. तुम्हें नेतई सूझ रही है." कई घरों में ऐसा ही हुआ—कहीं चोरी-छुपे, तो कहीं उजागर.

आसाराम और पल्टू दाऊ जू ने दूसरी जुगत खोज ली. गांव-गांव डुग्गी पिटवा दी कि जो कोई यह काम करेगा, उसके बाल-बच्चों का शादी-ब्याह बसोर लोग मंजूर नहीं करेंगे. किसी कीमत पर नहीं. फिराओ लड़का-बच्चा कुंआरे.

इस फैसले ने असर किया. सचमुच लोग डर गए. बसोर बरारों के बेटा-बेटी आन बिरादरी तो ब्याहने से रही. आगे गैल कौन-सी है?

आसाराम ने पल्टू दाऊ जू के साथ मिलकर पार्टी बना ली. मिटिंग कमेटी जुड़े रोज के रोज. सलाह-मशवरा हों. दाइयों की अर्जी लेकर कभी ब्लॉक में जाएं तो कभी अस्पताल में, कभी हेल्थ-विजटर सेंटर पर. रोज आना, रोज जाना. खाली हाथ, भूखे पेट. क्या करें, किराया-भाड़ा लगाते-लगाते खीसा खाली हो गया, पांव छिल गए.

सरकारी आदमी एक ही जबाब देते—दाइयों को ट्रेनिंग इसलिए दी गई थी कि वे प्रसूति के समय सफाई का ध्यान रखें. ग्रामीण औरतों के प्रसव के समय सफाई और प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा का ध्यान रखें. गांव में फैले अंधविश्वासों को दूर करें. नई बातों से जच्चा को अवगत कराएं, जो उसकी सेहत के लिए जरूरी हैं. नौकरी और वेतन से इसका क्या तालुक? दाई-किट उन्हें सुविधा और सफाई के लिए दी गई है.

इस किताबी भाषा का अर्थ समझती है लल्लन. आसाराम ही

नादान... भूल गया कि मिडवाइफ सेंटर, अस्पताल, ब्लॉक बिरादरी से चलाए नहीं चलते. वह नहीं समझा, प्यार से, न फटकार से—भाईबंदी से, न दुत्कार से. उलटे बसोर बिरादरी को भड़का आया—हम हड़ताल करेंगे. जुलूस निकालेंगे. नारे बोलेंगे. अपना हक्क मांगेंगे. जागरूक हैं हम, ईंट से ईंट बजा देंगे. हमारी कौम की सुनवाई न हो, ऐसा हो नहीं सकता.

वाह रे आसाराम! धन्य है री लल्लन. रह-रहकर पछताती है वह. अपने करे का मलाल है उसे. कैसे भूल गई कि बिना काम करे कोई हक्क नहीं बनता. क्यों आसाराम की डग पर ही डग धरती चली गई फिर? अपने किसब के साथ बेईमानी क्यों बरती? कलेजे में उमड़ती दया-माया भी सुखा डाली. वह खुद से ही हिसाब मांग रही है आज...मास्टर जी की बहू माफ करेगी उसे? बहू मछली-सी छटपटाती रही. मास्टरनी हाथ जोड़ती रही, हा-हा खाती रही, समझाती रही—"बेटी, जिंदगानी से बड़ी नहीं होती कोई बिरादरी. तेरी बिरादरी से तेरे बदले की माफी मैं मांग लूंगी, भरे पंचों में. तू चल तो सही. मोंठ के सेंटर तक ले जाने की हालियत में नहीं है बहू."

मगर लल्लन दाई बहरी हो गई. नहीं गई. क्यों जाए? तालीम पाई हुई दाई ठहरी. हंसी-ठठ्ठा नहीं. कमली को ब्याहना नहीं है? कौन करेगा फिर सगाई-संबंध? मास्टरनी तो कर नहीं लेगी अपने घर में.

मास्टर जी की बहू मछली-सी तड़प कर मर गई. हत्या तेरे सिर है लल्लन. तेरे सिर. उसकी मौत की जिम्मेदार तू! बच्चे की कातिल तू.

> **अपने किए का मलाल लल्लन को झकझोर गया था. और अपनी बहू की जान खतरे में देख मास्टरनी का यह समझाना याद आ रहा था कि जिंदगानी से बड़ी नहीं होती कोई बिरादरी...**

कपूरे कक्का की पुतोहू. अधबीच फंसा बच्चा. निरबारना कोई मुश्किल नहीं था लल्लन दाई के लिए. मगर वह तो मोंठ झांसी के दाइयों के बराबर की है—अनाज के दानों की एवज डिलेवरी करना उसकी शान के खिलाफ पड़ता है. वह नहीं गई. कपूरे कक्का की पुतोहू और नन्हे नाती के खून से रंगे हैं तेरे हाथ... लल्लन अपने ही हाथों को उलट-पलटकर देखती है—बिरादरी की लकीरें कहीं बनी हैं हथेलियों में? इनमें तो अपने काम का ही अभ्यास भरा है, उंगलियां आज भी उसी तरह कसमसाती है, जैसे डिलेवरी के बखत...

ओ मोरी महामाई, मोरी भैमाता! छिमा करना! काहे को याद आ रहा है एक-एक केस? आंखों के आगे से क्यों गुजर रही है एक-एक डिलेवरी? रह-रहकर क्यों कोंच रही हैं वे जच्चा जो अब इस दुनिया में... खून ही खून दिखाई दे रहा है...अब तो गांव के लोग खुद भूल चुके हैं लल्लन को. उसकी ओर देखना छोड़ दिया है सबने. उसके घर की ओर जाने वाली गली में आता-जाता नहीं दीखता कोई. किसे दरकार है उसकी?

किसी को नहीं. यह अच्छी तरह समझती है लल्लन. और फिर क्यों हो दरकार? जिन्हें हम बड़ी कौम मानते हैं उन्होंने तो खुद गुरेज नहीं किया हमारे किसब से. माते की बहू तो खुद टिरैनिंग ले आई है. घर-घर बच्चा जनाने जाती है. लेना-देना भी क्या होता होगा, सौ बीघा खेत के मालिक हैं माते. चमार की बिट्टी सीख आई है दाईगीरी और तेली की सरजू भी.

वह तो दूध में से मक्खी की तरह निकाल फेंकी. सोचते ही लल्लन कांपने लगी. भीतर से जैसे सत्त निचोड़ रहा हो कोई. पांव उखड़ रहे हैं. कौन खींच रहा है सत्त? कौन उखाड़ रहा है पांव? आसाराम...जो हवालात में कैद है. कमली की सगाई... जो हो नहीं पाई. छिरिया...जो बिकी नहीं. मिलाई के लिए भी नहीं जा पाएगी, गांठ में किराया तक नहीं. अब भेंट नहीं होनी आसाराम! रिहाई नहीं होनी...

आंखों ही आंखों में रात काट दी. लाचार नजर से देखा, बूढ़ी अम्मा धरती पर लुढ़की पड़ी हैं. कमली रात भर करवटें बदलती रही है. हरिया की कलाई में बकरी की रस्सी...फोआ भरा बच्चा भूखे पेट.

लल्लन का बदन खोखला हो गया है. धरती पर दोनों हाथों के पंजों को टिकाकर मुश्किल खड़ी हो पाई. मड़ैया के बाहर उझकने लगी—उजाला हो गया है. दिन उग रहा है. किरनें फूटने को हैं.

मगर यह कराह...

नहीं, उसका वहम है. बूढ़ी अम्मा को ही नहीं, उसको भी भिरम होता रहता है. आदत कहां छूटी है? आग लगे इन कानों को, इनमें पीरें लेती जच्चा की कराहट ही गूंजती रहती हैं. सिर झटक दिया लल्लन ने.

"ओ मतारीऽऽऽ...ओ बाईऽऽऽ..."

हैंऽऽ! कोई कराह रही है. पी-र है. दर्द. वहम नहीं है यह.

कहीं मोदी की बहू...नहीं, कहां मोदी की बहू? हां, मोदी की बहू ही होगी. काछी की बहू कह तो रही थी कि लागत असाढ़...असाढ़. तो असाढ़ का महिना है. यह लल्लन तो महिने-दिन भी भूल चुकी है.

लागत असाढ़. यकायक उसकी पांचों इंद्रियां जागृत हो गईं. हाथ का अंगूठा चारों उंगलियों में बने गिनती के निशानों पर तेजी से चलने लगा—क्वार, कातिक, अगहन, पूस, माघ, फागुन, चैत, बैसाख, जेठ, असा... लागत असाढ़. एक सांस में गिन गई वह. माथा चकरी की तरह घूमने लगा.

कराहट निरंतर बढ़ती जा रही है. लगातार—ओ मतारीऽऽ...ओ बाई...अब कोई शुबहा नहीं, सच्ची में मोदी की बहू है. पनचक्की की तरह धक् धक् करने लगा लल्लन का कलेजा. बेचैन हो उठी संपूर्ण देह...

उसी समय मोदी की बहू जोर से चीखी. देर तक चीखी. यह बड़ा दर्द है. बस, और एक-दो ऐसे ही दर्द, फिर बच्चा...

लल्लन सुधबुध भूल गई. द्वार तक जाए, लौट आए. जाए, फिर लौटे. क्या करे, क्या न करे? वह मड़ैया में ही ऐसे खुरखुंद मचाने लगी ज्यों खूंटे से बंधी भूखी बकरी खूंटे के आसपास की जगह खूंद डालती है.

'ओ मतारीऽऽ.. ईऽऽऽई" मोदी की बहू.

इस बार लल्लन के देह में बिजली-सी कौंधी. पांवों में आंधी-तूफान भर गया. वह बदहवास-सी भाग छूटी. नंगे पांव भागती गई. भागती ही गई मोदी के द्वार तक.

गिरती-संभलती मोदी के चौखट से जा लगी. बुरी तरह हांफ रही थी, लगा कि बस गिरने ही वाली है. जैसे-तैसे किवाड़ पकड़कर किसी तरह सध पाई. डरने-झिझकने का समय न था. सोचने-समझने का भी होश नहीं...औरतों के बीच से जगह बनाती हुई चलती चली गई, और लड़खड़ाकर मोदी की बहू के पास जा गिरी.

"एऽऽ, ! एऽऽ!" वहां बैठी औरतें एक स्वर में चिल्ला उठीं.

"लल्लन!" पिढ़ी पर बैठी माते की बहू ने आश्चर्यपूर्वक टोका.

लल्लन झटपट संभलकर बैठ गई और फुर्ती से जच्चा को अपनी बांहों में भर लिया. बैठे ही बैठे माते की बहू की ओर गरदन घुमाकर तेजी से सांस लेती हुई बोली, "दुलहिन, हमारे रहते तु-म.." आंखें भरी थीं. गला रुंध आया. लगा कि आज अपने ही हक की भीख मांग रही है. माफी चाह रही है वह...

उसी क्षण बच्चे ने जन्म लिया. नन्हे रुदन से आंगन भर गया. आंऊऽऽ, आंऊ! लल्लन के कानों में अनहद नाद बजने लगा. मुख पर उल्लास गुलाल-सा बिखर गया. गंदगी में सने नवजात शिशु को अपने सांवले हाथों में उठाए चमकती आंखों से विभोर-सी देखती रही, ज्यों अमोल संपदा समेट ली हो और अपनी गद्दी पर राजरानी की तरह बैठी हो. उसने मन ही मन भैमाता का सुमिरन किया.

पहली सोर का गीत बरबस ही उमड़ आया कंठ में. छलक पड़ा होंठों से—*"जसोदा जी से हंस हंस पूछत दाई/नंदरानी जी से...* ■

हमारी शुभ कामनाऐं

रु. 100 करोड़ का ग्रुप रु. 200 करोड़ के कारोबार की ओर अग्रसर है।

निरंतर विकास की गौरवशाली परंपरा और अपार संभावनाओं वाला भविष्य

हमारी इस स्वर्णिम सफलता में अपना मूल्यवान योगदान देने वाले लाखों निवेशकों, दल के सदस्यों और शुभचिंतकों को हमारी हार्दिक बधाई।

मुख्य आकर्षण

★ सर्वाधिक लाभ
★ पूरी तरह सुरक्षित निवेश
★ मुफ्त दुर्घटना बीमा
★ सार्वजनिक धन का कोई नुकसान नहीं
★ निवेश राशि पर ऋण की सुविधा
★ नियत अवधि से पूर्व आंशिक भुगतान
★ निवेश राशि की ट्रांसफर सुविधा
★ दिनांक 30.9.94 तक 38 करोड़ रु. की मेच्यूरिटी राशि का भुगतान किया गया
★ सुरक्षित जीविका

5000 एकड़ में फैले विभिन्न क्षेत्रों में जी. एफ. आई. एल. की बढ़ती गतिविधियां

★ एग्रो-फॉरेस्ट्री फॉर्मर्स का विकास
★ स्वर्ण उद्यान (सामाजिक वानिकी फॉर्म्स का विकास)
★ यात्री स्थलों (गोल्डन कंट्री रिजॉर्ट्स) का विकास
★ हरियाणा, पंजाब, उ.प्र. आंध्र प्रदेश, गुजरात, हिमाचल प्रदेश और कर्नाटक जैसे राज्यों में कई स्वच्छ पर्यावरण वाले उपनगरों का विकास

संस्था ही सर्वोपरि है

Golden Forests
(INDIA) LIMITED
The Eco-Friendly People

एक अपील

गोल्डन फॉरेस्ट (इंडिया) लि., नाम और कार्यशैली से 1987 में रजिस्टर्ड यह एकमात्र संस्था है। हमारा रजि॰ न॰ 7310 है। चंडीगढ़, पंचकुला या मोहाली में हमारी कोई शाखा नहीं हैं हमारा कार्यक्षेत्र: कृषि आधारति सोशल फॉरेस्ट्री फार्मो, इको-फ्रेंडली टाउनशिप और टुरिस्ट रिजार्टों आदि का विकास करना है। जनता से निवेदन है कि वे कुछ लोगों द्वारा किए जा रहे गलत प्रचार और हमारे नाम अथवा कार्यशैली के दुरुपयोग से गुमराह न हों। सभी चेक और रसीद हमारे प्रधान कार्यालय से ही जारी किए जाते हैं। हमारी शाखएं/चैंबर हमारे डॉक्युमेंटेशन चैनल हैं। कंपनी के नाम पर चंडीगढ़ में स्थानीय चेक/डीडी स्वीकार किए जाते हैं। बहरहाल निवेशक हमारे बैंक खाते में डिपोजिट कर हमें उसका प्रमाण भेज सकते हैं। जी. एफ. आई. एल. संगठन अपने किसी भी टीम सदस्य को विज्ञापन देने का अधिकार नही देता है।

आर. के. स्याल
चेयरमैन व मैनेजिंग डायरेक्टर

रजिस्टर्ड और मुख्यालय : एस. सी. ओ. 832-33-34, मनीमाजरा, यू.टी. चंडीगढ़.
फोन : 554706, 554351 फैक्स : 0172-561078, 554706

"परिपक्वता" सुनिश्चित करने वाले सगंठन में निवेश करें।

प्रौढ़ शिक्षा

● स्वयं प्रकाश ● चित्र: स्वागता सेनगुप्ता

सुनने में बात अजीब लग सकती है, लेकिन है सही कि सदानंद मास्टर के पंद्रह वर्षीय बेटे बबलू को कस्बे के सरकारी डॉक्टर माथुर की सोलह वर्षीया बिटिया अलका से मुहब्बत हो गई. पता नहीं चला कि हो गई. पर हो गई. बबलू और अलका एक ही स्कूल में थे और एक बार जब गाय ने सींग मारकर अलका को साइकिल समेत गिरा दिया था, बबलू ने न सिर्फ उसे साइकिल-किताबों समेत उठाया था, बल्कि यह भी कहा था, ''देख के चला करो ना!'' वह कहना तो यह भी चाहता था... बल्कि डांटना चाहता था कि... लेकिन अलका के घने बाल, काली आंखें, छोटी-सी नाक, गोल-गोल होंठ, नई काट का चमचमाता कुरता-पाजामा और उसका रुआंसापन उसे कहीं खुभकर रह गया. चला आया. उसके बाद लगभग एक महीना दोनों की निगाहें स्कूल में एक-दूसरे को ढूंढ़ती रहीं...नजर आने पर खिल उठते, निगाहें मिलने पर बेसाख्ता मुस्करा पड़ते, पर कुछ सूझता नहीं क्या बोलें...अपनी-अपनी कक्षा में चले जाते...और एक-दूसरे के नशे में डूबे रहते.

बबलू अब यथाशक्ति चकाचक रहने लगा और यदि किसी दिन अलका नहीं दिखाई देती तो वह चिड़चिड़ा और अन्यमनस्क हो जाता और खामखां किसी से लड़ बैठता.

उन्हीं दिनों बबलू ने एक फिल्म देखी जिसकी हीरोइन दिव्या भारती थी और ताज्जुब कि उसे दिव्या भारती एकदम अलका माथुर जैसी लगी. हूबहू. और अलका माथुर एकदम दिव्या भारती जैसी. रात में सपने भी ऐसे ही आने लगे. पता ही नहीं चलता कि दिव्या भारती है या अलका माथुर.

छह-सात महीनों में बात यहां तक आ गई कि बबलू घंटों अलका के घर बैठा रहता, वह उसे क्या-क्या खिलाती, अंग्रेजी-हिंदी रेकॉर्ड सुनवाती, दोनों रेकॉर्ड बजाकर डांस भी करते और एक-दूसरे से अर्थहीन छोटी-छोटी बातें, छेड़छाड़ और खुशगप्पियां करते हुए निरंतर मुस्कराते रहते. बीच-बीच में स्कूल और पढ़ाई की भी कुछ बातें करते. कभी छू भर जाती अलका तो वह छुअन काफी-काफी देर बबलू के शरीर पर चिपकी रहती.

लेकिन उस साल बबलू फेल हो गया. और अलका पास. और बबलू घंटों तकिए में मुंह गड़ाकर रोता रहा. सदानंद मास्टर धीरज बंधाते कि कोई बात नहीं, और मेहनत करेगा तो अगले साल जरूर फर्स्ट डिवीजन आएगा. मनुष्य का कर्तव्य है कि... मास्टर साहब को क्या मालूम कि बबलू का क्या टूट गया है?

स्कूल खुलने पर अलका से बचता रहा. एक दिन सामने ही पड़ गई. उसने सहानुभूति दर्शाई. बबलू चिढ़ गया. दोनों की दोस्ती में गांठ पड़ गई. नहीं बोलना है. बस, अलका से कोई मतलब नहीं रखना है. बस. खत्म.

बहुत दिनों तक अपनी अलकाविहीन दिनचर्या बबलू को दुखी करती रही. बहुत दिनों तक अलका उससे बात करने की कोशिश करती रही. वह कक्षाएं पूरी हो जाने के बाद भी एक सहेली को साथ ले, बबलू के क्लासरूम के बाहर खड़ी रहती. शाम बिना काम खेल के मैदान जाती—जहां बबलू दोस्तों के साथ क्रिकेट खेल रहा होता—इस उम्मीद में कि बबलू उसे एक बार देख ले, बात कर ले, बस सिर्फ यह बता दे कि अलका से क्या गलती हो गई जो वह नाराज है. पर हर बार होता यह कि और सब उसे देख लेते, सिर्फ बबलू ही नहीं देखता. देखकर भी अनदेखा कर देता और दूसरे रास्ते से निकल जाता. स्कूल में लड़के-लड़कियां उनके बारे में बातें करते. बबलू के दोस्त कहते—बबलू! अलका माथुर तेरा इंतजार कर रही है. बबलू बाएं हाथ से माथे के बाल पीछे फेंकते हुए कड़वा-सा मुस्कराकर कहता—खामखां पीछे पड़ी है यार! कोई और यही बात बबलू के सामने कहता तो शायद बबलू उसे पीट देता.

अलका की क्लास की एक सांवली-सी लड़की कौशल्या बबलू के घर के पास ही रहती थी. अब तक अलका और कौशल्या की बोलचाल तक नहीं थी. लेकिन अचानक उनमें दोस्ती हो गई और खूब गहरी, और अलका रोज कौशल्या के घर आने लगी, और वह दो-दो घंटे वहीं रहती और दोनों भीतर भी नहीं जातीं, वहीं बगीचे में खड़ी-खड़ी बातें करती रहतीं, और अलका की नजर बबलू के मकान पर ही लगी रहती.

इस दौरान बबलू अगर घर से बाहर होता तो रास्ते से ही अलका को कौशल्या के बगीचे में खड़ा देख साइकिल पलटा देता और कहीं और चला जाता या यों ही सड़कों पर घूमता रहता, और यदि घर में होता तो किताब लिये बैठा रहता और बंद खिड़की की संध से कौशल्या के मकान की तरफ देखता रहता और दांत पीसता रहता. किसी काम के लिए कहीं जाने को कहा जाता तो या तो टालता रहता, पढ़ाई का बहाना बनाता और या साइकिल उठाकर इतनी तेजी से भागता जैसे कहीं आग लग गई हो.

एक बार अकेले में कौशल्या ने कहा, ''बबलू! तू अलका से बात क्यों नहीं करता?''

बबलू शायद इस प्रश्न की प्रतीक्षा कर रहा था. मुंह कड़ा करके बोला, ''तू अपना काम कर. मेरे मामले में टांग अड़ाने की जरूरत नहीं.''

फिर एक बार और कौशल्या ने कहा, ''बबलू! तू अलका से बात नहीं करेगा तो मैं तेरी मम्मी को बता दूंगी सारी बात.''

इस पर बबलू बोला, ''टंगड़ी तोड़ दूंगा तेरी दोनों. समझ गई? स्कूल आना भुला दूंगा.''

फिर एक और दिन कौशल्या के यहां अलका नहीं, कोई और लड़की खड़ी थी और कौशल्या बबलू को सुनाकर उससे कह रही थी, ''मैं क्या करूं बता? इसका तो दिमाग ही नहीं मिलता और वो महारानी, इसके गम में अनशन किए बैठी है. अब भई, हमसे तो नहीं उठाए जाते इतने नखरे किसी के.''

ऐसी बातों से बबलू का दुख और दुविधा और बढ़ जाते.

साल ऐसी ही गपड़-सपड़ में निकल गया.

उस साल बबलू पास हो गया, ग्रेस मार्क से. लेकिन अलका भी पास हो गई, फर्स्ट डिवीजन.

बबलू इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि उसकी किस्मत ही खराब है. पूरे साल अपने आपको और अलका को सताकर भी क्या मिला? ग्रेस?

अलका पास हो गई, वह फेल हो गया, यह अलका की गलती है. अलका का फर्स्ट डिवीजन

आया, वह ग्रेस से पास हुआ, यह भी अलका की गलती है. उसने इतनी गहराई से मुहब्बत की ही नहीं, जितनी बबलू ने. उसी के कारण बबलू का रिजल्ट बिगड़ा. सब लड़कियां मतलबी होती हैं. एक नजर मुहब्बत पर रखती हैं, एक नजर रिजल्ट पर. जबकि बबलू को फर्स्ट डिवीजन की कितनी जरूरत थी! अलका ग्रेस से पास हो जाती तो उसका क्या बिगड़ जाता? कॉलेज में एडमीशन तो मिल ही जाता. बाप डॉक्टर है. पैसा भी खूब है. डिग्री भी मिल ही जाती. शादी भी हो ही जाती. बच्चे भी हो ही जाते. इनमें कहां फर्स्ट डिवीजन मार्क्स की जरूरत है? लेकिन बबलू क्या करेगा? कॉलेज में एडमीशन नहीं मिला तो बबलू क्या करेगा?

किस्मत ही खराब है. वरना क्यों ऐसा होता कि जोशी माट्साब के बताए इंपार्टेन्ट्स में से एक भी नहीं आता! और फिर भी ऐसा खराब तो नहीं गया था पेपर. दो मार्क्स! क्या होते हैं दो मार्क्स? किस्मत ही खराब न होती तो पिछले साल भी क्यों फेल होता? क्यों पूरा साल उसे गंवाना पड़ता? क्यों छोटे-छोटे छोकरों के साथ बैठना पड़ता? अध्यापकों के उपहास का पात्र बनना पड़ता? खेलकूद, भाषण, एनसीसी, सांस्कृतिक कार्यक्रम कहीं भी जाते समय...यहां समय नष्ट न कर पढ़ाई में मन लगाने का भाषण क्यों सुनना पड़ता हरेक से? क्यों अलका और उसके घरवालों की नजर से गिरना पड़ता? क्यों कॉपी-पेसिंल-शर्ट-पिकनिक किसी के भी लिए पापा से पैसे मांगने से पहले दस बार झिझकना पड़ता?

पूरे साल उसने एक भी कपड़ा नहीं सिलवाया. एक भी पिक्चर नहीं देखी. एक भी पिकनिक पर नहीं गया. एनसीसी कैंप नहीं गया. एक भी प्रतियोगिता में भाग नहीं लिया. पूरे साल वह पिछले साल की कॉपियों के खाली पन्नों पर रफ वर्क करता रहा और इस-उस दोस्त से रबड़-पेंसिल-परकार-स्केच-पेन मांगकर काम चलाता रहा. पूरे साल उसे दोस्त लोग रिसेस में चॉकलेट-अमरूद-आलूबड़े-मूंगफली खिलाते रहे. पूरी सर्दी वह बगल से फटा स्वेटर पहनता रहा. पूरे साल जूतों के तले में कील गड़ती रही या पांव जलते-ठिठुरते-भीगते रहे. एक बार तो वह एनसीसी की निकर तक पहनकर स्कूल गया. जबकि और कोई भी आता है निकर पहनकर...?

और इस सारी तपस्या का फल क्या निकला? क्या वह पढ़ाई में खूब मन लगा सका? क्या होमवर्क में उसे 'गुड' या 'वेरी गुड' मिलता रहा? क्या उसकी साइकिल में हवा अपने आप भर गई? क्या उसे अलजेबरा ज्यादा अच्छी तरह समझ में आ गया? वह फर्स्ट आ गया? नहीं... हुआ सिर्फ यह कि वह बार-बार अलका की गली तक जा-जाकर लौट-लौट आता रहा. बार-बार टॉकीज में जाकर पोस्टर देखकर आ जाता रहा.

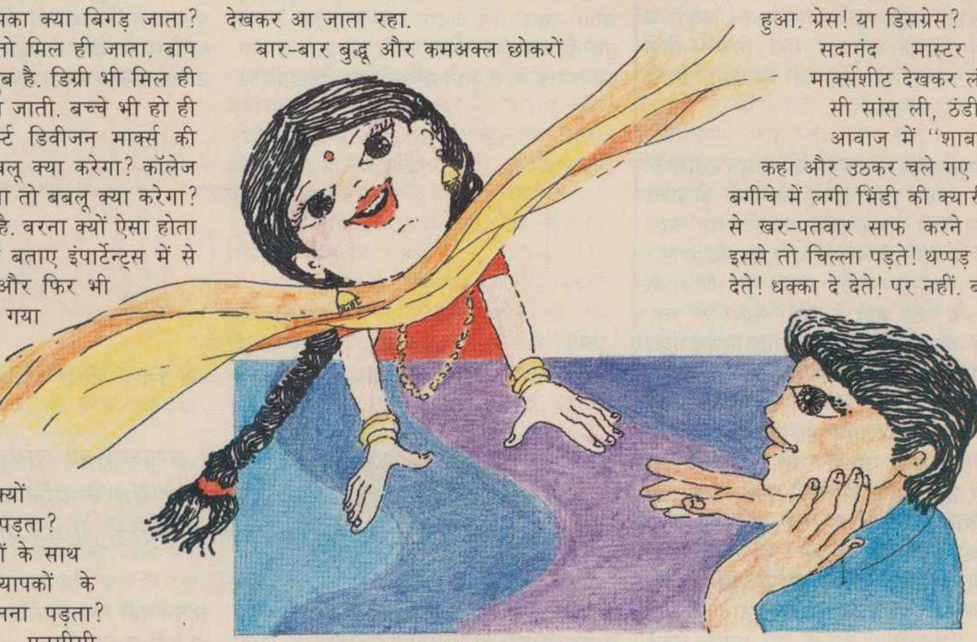

सब लड़कियां मतलबी होती हैं. एक नजर मुहब्बत पर रखती हैं, एक नजर रिजल्ट पर. जबकि बबलू को फर्स्ट डिवीजन की कितनी जरूरत थी... लेकिन अब बबलू क्या करेगा?

बार-बार बुद्धू और कमअक्ल छोकरों को खेलकूद-भाषण-सांस्कृतिक कार्यक्रम सबमें फर्स्ट आते देखता रहा. कूड़ा रचनाएं स्कूल मैग्ज़ीन में छपते, कूड़ा नाटकों को मंचित होते, कूड़ा छोकरों को अध्यापकों द्वारा शाबाशी दिए जाते और मॉनीटर बनते या सार्जेंट बनते या प्राइज उठाकर घर ले जाते देखता रहा. बार-बार अलका को उसकी निगाहें ढूंढ़ती रहीं... और बार-बार वह अलका से छिपकर भागता रहा. हर बार किताब में अलका के कान के झुमके हिलते रहे... हर बार अलका के सामने पड़ते ही अपनी मार्क्सशीट याद आती रही... हर बार हंसते-हंसते सहम जाता रहा... गुस्सा करते-करते रुआंसा हो जाता रहा... चिल्लाते-चिल्लाते फुसफुसा जाता रहा... बोलते-बोलते गुमसुम हो जाता रहा... गाते-गाते चुप हो जाता रहा...और परीक्षा हॉल में हमेशा की तरह शेर की तरह नहीं, चोर की तरह घुसा. पूरा मालूम होने पर भी नर्वस होता रहा, अच्छी लिखावट होने पर भी काट-पीट करता रहा, धाराप्रवाह लिखने का अभ्यस्त होने पर भी हाथ को थरथराता महसूस करता रहा, आसपास वालों के बार-बार चौंकने पर भी बार-बार पानी पीता रहा, टीपने का शक होने का डर होने पर भी बार-बार पेशाब करने जाता रहा... और आखिर ग्रेस मार्क से पास हुआ. ग्रेस! या डिसग्रेस?

सदानंद मास्टर ने मार्क्सशीट देखकर लंबी-सी सांस ली, ठंडी-सी आवाज में "शाबाश" कहा और उठकर चले गए और बगीचे में लगी भिंडी की क्यारी में से खर-पतवार साफ करने लगे. इससे तो चिल्ला पड़ते! थप्पड़ मार देते! धक्का दे देते! पर नहीं. बबलू की इंसल्ट करने में सबको मजा आता है. किस्मत ही खराब न होती तो ऐसा क्यों होता?

काश! कभी किसी अध्यापक ने उसे बुलाकर यही पूछ लिया होता कि बबलू, क्या बात है? आजकल इतने खोए-खोए क्यों रहते हो? आज सिर में तेल क्यों नहीं डाला? इस बार कल्चरल प्रोग्राम में भाग क्यों नहीं ले रहे हो? एनसीसी कैंप में क्यों नहीं गए? बबलू, कुछ प्रॉब्लम हो तो बताओ. किसी से झगड़ा हो गया क्या?

या काश! कोई उससे यही पूछ लेता कि अलका से झगड़ा क्यों कर लिया? उसे और अलका को आमने-सामने बैठाकर सारी बात सुलझवा देता! और कुछ नहीं तो यही कह देता कि बबलू, तुम बहुत ज़हीन और होशियार लड़के हो. एकाध बार की असफलता से कुछ नहीं होता. देखना... तुम बहुत आगे जाओगे.

लेकिन नहीं. कोई क्यों करता ऐसा? कौन लगता है वह किसी का? बबलू मर भी जाए तो इनको क्या फर्क पड़ेगा? वे तो उलटे कमजोर छोकरों को फर्स्ट आने पर उनकी पीठ ठोकेंगे. और बबलू को बुलाकर हमेशा भाषण पिलाएंगे, "बबलू, तुम तो बहुत इंटेलीजेंट थे! फिर फेल

कैसे हो गए? पढ़ाई ठीक से नहीं की होगी, है न? हमें तो तुमसे बहुत आशाएं थीं. अब छोड़ो भई ये खेलकूद, नाटक, तमाशा ...और पढ़ाई में मन लगाओ. क्या? सोचो, बेचारे सदानंद माट्साब को कितना बुरा लग रहा होगा.''

मानो बबलू सिर्फ पापा को सताने के लिए जान-बूझकर फेल हो गया हो! मानो उसका पास होना उसके खुद के लिए कतई जरूरी न हो, दूसरों का अनुमान सही निकले—सिर्फ इसलिए जरूरी हो. कोई नहीं समझेगा. उसकी किस्मत ही खराब है.

परदुखकातर कौशल्या से आखिर रहा नहीं गया और उसने बबलू की मम्मी को सारी कथा सुना दी. बबलू कहीं गया हुआ था. उसके लौटने से पहले ही मम्मी और सदानंद मास्टर डॉक्टर माथुर—वर्तमान प्रसंग में 'अलका के बाप'—के यहां जाने के लिए तैयार हो गए, लेकिन ताला लगाते-लगाते उनका निर्णय बदल गया कि जब अपने सिक्के में ही खोट हो तो दूसरों से क्या कहें! अचानक उन्हें मेरा ध्यान आया और वे मेरे पास आ गए. मैं बबलू का दोस्त हूं. हालांकि उम्र में उससे तीस बरस बड़ा हूं, पर उम्र हमारी दोस्ती में कभी खास आड़े नहीं आई. पिछले दो साल से मैं बंबई में था और आज ही लौटा था.

दम लेते ही बबलू की मम्मी शुरू हो गईं. कौशल्या से सुनी पूरी कथा सुनाने के बाद बोलीं, ''अब भैया, तुम ही उसे समझा सकते हो. हमसे तो वो सीधे मुंह बात भी नहीं करता है आजकल.''

''...क्या समझाना है?'' मैंने पूछा.

मम्मी को आश्चर्य हुआ? कैसा आदमी है? पूछ रहा है कि क्या समझाना है? बोलीं, ''अब तुम ही सोचो! कोई बात है? अरे, इस उमर में उसे पढ़ाई की जरूरत है या प्यार-मुहब्बत की? पागलपन कर रहा है. जिंदगी बिगाड़ रहा है.''

मैंने कहा, ''बबलू और अलका एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं तो क्या आपको ऐसा लगता है कि कुछ अप्राकृतिक बात हो रही है?''

बोलीं, ''अरे, पर भैया कोई उमर है उसकी ये सब करने की?''

मैंने कहा, ''आपके हिसाब से बबलू को अलका से प्यार करने के लिए क्या उम्र ठीक रहेगी?'' यथासंभव स्वर सहज था, पर व्यंग्य खुल गया. अचानक उन्हें ध्यान आया कि मैं उनका नहीं, बबलू का दोस्त हूं, और उन्हें मुझको अपने पक्ष में करना है, आज और इसी वक्त.

बोलीं, ''नहीं, हम ये नहीं कहते कि कुछ मत करो. पर पहले जरा लिख-पढ़ लो, अपने पैरों पर खड़े हो जाओ, फिर मर्जी आए जो करो, सारी उम्र पड़ी है!''

अब इस बात का मैं क्या जवाब देता?

लेकिन एक बात जरूर हुई. उस दिन से मैं प्रौढ़ शिक्षा का प्रबल समर्थक हो गया. ■

रोशनी की

● ममता कालिया ● चित्र: गोपी गजवानी

एक ओर रुढ़िग्रस्त मानसिकता—कथित अस्पृश्यों की छाया से भी बिदकने वाली, और दूसरी ओर निम्न वर्ग में अपने धंधे के प्रति सम्मानपूर्ण लगाव और समाज में स्वीकार्य होने की चेतना. दोनों आमने-सामने हों तो...

अब तो घर-घर में फ्लश लैट्रीन बन गई है. बस पिछवाड़े की पुरानी बस्तियों में कुछ कमाने वाले पाखाने बचे हैं. लेकिन बिटिया को कोई फर्क नहीं पड़ता. वह उसी तरह झाड़ू-पंजा लेकर काम पर निकलती है.

ससुर जी और पिता जी के दिए हुए घर हैं. कमाने जाना ही है. घर में बहू है, पोते-पोती हैं, छोटा लड़का प्रेम कुमार हाइस्कूल पास है पर पुश्तैनी धंधा कहीं छोड़ा जाता है? सारी बरकत इस कमाई की है. पति मन्नन नगर महापालिका में जमादार है पर उसे तनख्वाह के अलावा साल में बस दो वर्दी ही मिलती है. बिटिया तो अपने घरों से इतनी धोतियां लाती है कि सास-बहू के पहने खत्म नहीं होतीं; सारे साल पुरानी, होली पर नई.

बिटिया को ऊंची आवाज में बोलना बहुत पसंद है. कॉलोनी के पीछे पुरानी गली में एक श्रीराम प्रेस है. प्रेस का हर कर्मचारी बिटिया का भतीजा है, भले ही उसकी उम्र पैंतीस हो या पचास.

बिटिया सब्जी मंडी होती हुई काम पर आती है. प्रेस पहुंचकर अपनी छोटी-सी थैली कील पर लटकाकर वह एक नजर काम करने वालों पर डालती है. सैकूलाल कहता है, ''का हो चच्ची, नीक हो ना?'' बिटिया अपनी हवाई चप्पल उतारकर कंपोजिंग वाली कोठरी की दीवार से थोड़ी-सी टिककर हाथ नचाती है, ''लो बोलो अंधेर हुई गवा, चौराई चार रुपए किलो बिकानी है. अरे चौराई का का? जहां कच्चा, वहां साग.''

इसके साथ ही प्रेस में महंगाई पर चर्चा छिड़ जाती जिससे रामबाबू बहुत घबराते. उन्हें लगता उनके कर्मचारी अब तनख्वाह बढ़ाने के लिए शाम तक संगठित होकर प्रस्ताव रखेंगे. वे तुरंत ऊपर से आवाज़ लगाते, ''बिटिया जरा सीढ़ियां झाड़ देना.'' बिटिया के संभाषण को पूर्णविराम लग जाता. वह मरे-मरे हाथों से झाड़ू लगाने की रस्म अदा करती. वह प्रेस आती है चार लोगों से बतियाने और एड़ियां धोने. सारी कॉलोनी का काम कर चुकने के बाद वह श्रीराम प्रेस के नल पर अपनी छोटी-सी थैली में से निरमा की पुड़िया निकालकर पटिया पर एड़ियां रगड़ती है तो रगड़ती चली जाती है. कंपोज़िटर प्रमोद कहता है, ''रहने दो चच्ची, कहीं खाल न निकल आए.'' पर बिटिया नहीं रुकती. वह एड़ी, कुहनी और मुंह धोकर ऐसा चमका लेती है कि बड़ी-बड़ी मिस इंडिया भी उसके सामने सांवली लगें. सीपी जैसा उसका उजला रंग. वैसा ही उसका ठसका और ढंग. हालांकि वह संतूर साबुन नहीं लगाती, लेकिन उसकी उम्र का पता ही नहीं चलता.

पड़ोस का नौजवान राजू बिटिया को आते-जाते देखकर गाया करता था, ''चूड़ी नहीं मेरा दिल है, देखो देखो टूटे न..!'' एक दिन बिटिया ने उसे कसकर कलाई से पकड़ लिया और बरजा, ''यह चूड़ी चूड़ी का करत रहत हो. रिश्ते में हम तोहार चच्ची लगत हैं, जानो. हमार आगे हगना-मूतना सीखे हो तुम!''

सबसे मजेदार बात है कि फ्लश लैट्रीन साफ करते समय भी बिटिया अपनी नाक पर कपड़ा बांधती है. श्रीराम प्रेस का कन्हाईलाल कहता है, ''का हो, साफ झक्क पड़ी टट्टी धोने से भी घिनात हो चच्ची.''

''का करें ससुरी आदत जो हुई. पुराने रसूलाबाद से निकर कर आए हैं, जाएगी थोड़ो.''

प्रेस का एकमात्र ब्राह्मण है राधे मोहन पांडे. वह बिटिया को चच्ची नहीं कहता. बात बिटिया को खटकती है. पांडे बाकी कर्मचारियों से अलग है. वह सुबह-सुबह चाय की दुकान पर अखबार

घर-घर में अब फ्लश लैट्रीन बन
ससुर और पिता के दिए हुए घर
कहीं छोड़ा जाता है? मगर उसकी

बांचकर आता है. वह कहता है, "अब तोहार जमाना है, तोहरे बेटवा लाट कलट्टर बनिहैं."

बिटिया असुरक्षित हो जाती, "ऊ बना करे जो बनिहैं, हम तो आपन धंधा करबै करी."

कॉलोनी में बहुत से परिवार छुट्टियों में बाहर गए हुए हैं. घर में एक कुत्ता और चौकीदार सब छोड़ गए हैं. बिटिया को हर घर में रोज जाना पड़ता है. कैसी अजीब बात है, लैट्रीन झक साफ पड़ी है पर उसे रोज धोना जरूरी है.

मार

प्रमोद पूछता है, "चच्ची अब सब जगह फव्वारे वाली टट्टी बन गई है, काम हल्का हो गया होगा, है न!"

"अरे भैया इससे तो पहले आराम रहा. अब तो एक-एक घर में दुई-दुई बाथरूम. विम से रगड़ो, चमकाओ. पहले क्या था, राख डाली, पाखाना उठाया, बाल्टी में डाला और जाके फेंक दिया घूरे पे. कोई पूछने वाला नहीं कि ऐ बिटिया तुम पाखाना धोई कि नहीं. उन घरों में ब्यौहार भी बरक्कत का रहा."

श्रीराम प्रेस के काम में न धोती है, न रोटी पर बिटिया को पसंद है यह काम. रामबाबू बिलकुल गऊ हैं और कर्मचारियों से उसकी अच्छी पटती है. बस पांडे थोड़ा अकड़ू है. पर बिटिया उसकी भी काट जानती है. फट से कह देती है, "पंडित आज टंडन पारक में कांशी की रैली है, चलबो का. पर ई धागा उतारबै परी जो कान पे टांगे रहतु हो."

पांडे अंदर से हरदम जला-भुना रहता है. उसके बेटे के हाइस्कूल परीक्षा में 58 फीसदी नंबर आए हैं, कहीं दाखिला नहीं मिल रहा है. बिटिया का लड़का 48 फीसदी नंबरों पर ग्यारहवीं में साइंस लेकर पढ़ रहा है. उसे अपना भविष्य डोलता नजर आ रहा है. पास में कोई जमा-पूंजी नहीं कि लड़के को कारोबार में ही लगा दे. वह सारा दिन सिफारिश की टोह में रहता है. बिटिया ने कहा, "साहब से कहो, बेटवा का दाखला करा दें."

गई तो क्या हुआ, बिटिया को तो कमाने जाना ही है. पुश्तैनी धंधा अपनी खास ठसक भी है...

पांडे ने कहा, "अरे हमार कहां पहौंच है. हमार लड़का अधपढ़ रह जाइ."

"अरे नाहीं," बिटिया ने कहा, "हम और आप अलग थोड़ो हैं."

पांडे थोड़ा खिंच गया. उसे बिटिया का इतना अपनापा अच्छा नहीं लगा. वह वापस स्टूल पर बैठकर ऑटोमैटिक मशीन की चाल देखने लगा—'सिश सिश सां.'

बिटिया ने कोई परवाह नहीं की. वह फौरन छोटेलाल से पूछने में व्यस्त हो गई कि उसके बेटे चंदीराम का ब्याह कब का है, बारात कहां जाएगी; लड़की और कहीं की भी लेना, लाल-गोपालगंज की बिलकुल मत लेना. उसकी अपनी बहू लाल-गोपालगंज की है, चंटई वह करे, झूठ वह बोले, सोवे तो उठै ना, जौन उठ जाय तो सोवै की कौन कहै.

रामबाबू प्रेस के ऊपर ही रहते थे. उनकी पत्नी हर वक्त भुनभुनाने वाली औरत थी. एक दिक्कत यह थी कि वह बिटिया को अपनी जमादारिन समझती थी जबकि बिटिया अपने को प्रेस की नौकर मानती. उसके आते ही बहू जी आवाज लगाना शुरू कर देती, "बिटिया तूने कूड़े की बाल्टी नहीं धोई", "बिटिया मोरी पर काई जमी है."

बिटिया इस किचाइन पर कान दिए बगैर अपनी कमर का फेरुआ खोल, झटकारकर वापस लपेट लेती और स्लीपरें पैरों में डाल थैली कलाई पर लटका हवा हवाई हो जाती. घर-घर इतने साल घूमने के बाद बिटिया इसी निष्कर्ष पर पहुंची थी कि औरतें काम लेने में बहुत किट-किट करती हैं. मर्द सीधे होते हैं, तनख्वाह समय पर देते हैं, धौंस नहीं जमाते, बस कभी-कभी सरस निगाह उसके गोरे रंग पर डाल देते हैं. पर बिटिया अपना बदन बचाना जानती है, उसके पास झाड़ू से भी खरखरी जबान जो है.

कभी वह देखती कोई बहू जी बहुत हुकुम चला रही हैं, तो सीढ़ियों में पसरकर बैठ जाती, "बहू जी आज हमें न्यौता जाना है, कोई नायलन की धोती दे दो." बस अगले दो-चार दिनों के लिए बहू जी की बोलती बंद हो जाती.

आम तौर पर बिटिया घर की मालकिनों से परहेज रखती. 19 नंबर वाली तिवारिन से उसे शिकायत थी कि वह उससे छूत मानती है. 19 नंबर बंगला कुछ इस तरह बना था कि कमरे से गुजरे बगैर अंदर वाले बाथरूम तक जाना मुमकिन नहीं था. तिवारिन ने नुमाइश के अंदाज में अपना नया फ्रिज बैठक में रख रखा था. वक्त बेवक्त तिवारी जी के मेल-मुलाकाती और

दफ्तर के लोग आते तो सीधे फ्रिज के ऊपर रखे गिलासों में खुद पानी लेकर पी लेते. तिवारिन की दौड़-भाग कुछ कम हो जाती.

किसी-किसी दिन तिवारिन को शक हो जाता कि बिटिया की धोती फ्रिज से छू गई है. पहले वह इस बेढंगे बंगले पर झींकती, फिर दबी जबान में बिटिया को दो-चार गालियां देती. तब भी तसल्ली न होती तो वह साबुन-पानी और स्पंज से फ्रिज रगड़ने लगती. जल्द ही इस काम से वह हांफ जाती और बच्चों पर कांव-कांव करने लगती. बच्चे उसकी झिड़की से जरा न डरते. उलटे छोटू कहता, "ममी फ्रिज के अंदर की चीजें भी तो गंदी हो गईं. दूध भी धोओ, दही भी धोओ, बिटिया की छूत लगी है." बड़ा बेटा वीनू कहता, "चल बे छोटू निकाल सारे आम. ममी तुम तो अब आम खाओगी नहीं, बिटिया की छूत जो लग गई. चलो अपन खत्म करते हैं."

तिवारिन थोड़ी डरपोक भी थी. उसे एहसास था कि अगर बिटिया को यह बात पता चलेगी तो वह चिल्लाए बगैर नहीं रहेगी. वह बच्चों से कहती, "चुप करो, चिल्ला क्यों रहे हो? आदमी अपना हाथ-पैर गंदगी से खुद बचाता है. फिर यह तो चौदह हजार का फ्रिज है."

तिवारिन की आदत थी चीजों की कीमतें दर्शाते हुए बात करने की. किसी भी वस्तु की कलात्मकता पर उसका ध्यान बाद में जाता, कीमत पर पहले. कभी उसकी कोई पड़ोसिन आती तो वह कहती, "बड़ी अच्छी साड़ी पहनी है, कितने की है?" फिर उसे यह जताते हुए बड़ा संतोष होता कि इससे महंगी साड़ी तो वह घर में पहनती है.

तिवारी परिवार की जड़ें गांव में थीं, जैसी कि तकरीबन हर हिंदुस्तानी परिवार की होती हैं. तिवारी जी की समस्त शिक्षा-दीक्षा शहर में हुई थी. वे शिक्षा विभाग में उपनिदेशक थे. सैद्धांतिक स्तर पर वे जानते थे कि छुआछूत का खुल्लमखुल्ला समर्थन अनुमन्य नहीं है पर अपनी पत्नी के स्वच्छता-बोध पर काबू पाना उनके बस की बात नहीं थी. पत्नी लो-ब्लडप्रेशर की पुरानी मरीज थी. कोई भी बहस सीधे उसके रक्तचाप पर ही हमला करती. तिवारी जी में एक तरफ अद्भुत सहनशक्ति थी, तो दूसरी ओर पत्नी के मानसिक विकास के प्रति गहन उदासीनता. वे सोचते कि किसी दिन दफ्तर के पचड़ों से छुटकारा पाने पर वह फुरसत में पत्नी को समझाएंगे.

गर्मियों में छोटू, वीनू अपनी मौसी के यहां ग्वालियर चले गए. तिवारी जी रोज की तरह दफ्तर गए हुए थे. घर में तिवारिन अकेली थी. उसने बड़ी मेहनत से आज पति के लिए बेसन के लड्डू बनाए. पाव भर बेसन भूनने में उन्हें काफी मेहनत पड़ गई. खड़े की रसोई थी. तिवारिन भारी बदन की थी. कढ़ाही में कौंचा चलाते-चलाते एकदम पस्त हो गई. पर लड्डुओं का काम बीच में छोड़ा नहीं जा सकता था. उसने चीनी और इलायची पीसकर बेसन में मिलाई, फिर लड्डू बांधे. सामान उठाते-धरते वह सोच रही थी, चलो चार दिन के नाश्ते की छुट्टी हो गई. पति को लड्डू बहुत प्रिय थे. तभी बिटिया ने द्वार की घंटी बजाई. तिवारिन ने दरवाजा खोला और छूटते ही बोली, "बिटिया आंगन तो तू कभी धोती नहीं, चल आज धो डाल."

आप बड़मनई हमसे छूत मानत हैं. चौका-चूल्हा छी कर काम किया, ना प साब से," बिटिया ने तिवारिन को यह

"बहू जी पानी गिरा दो, धो देइत हैं," बिटिया ने कहा. आज पहली तारीख थी और बिटिया का उसूल था वह पहली तारीख को किसी से झगड़ा-झंझट नहीं करती. तिवारिन को बेहद थकान आ रही थी. कमर टूटी जा रही थी और पांव जवाब दे रहे थे. किसी तरह उसने आंगन गीला किया. वह कमरे की तरफ जा रही थी कि दहलीज से ठोकर खाकर धड़ाम से गिरी.

बिटिया झाड़ू फेंककर उसकी तरफ लपकी, "क्या हुआ बहू जी?"

तिवारिन होश में हो तो बोले. जाने कहां चोट पहुंची कि तिवारिन एकदम बेसुध हो गई.

बिटिया ने आंगन के नल से चुल्लू भर पानी लेकर उसके मुंह पर छिड़का और पुकारा, "बहू जी!" कोई जवाब नहीं. बिटिया परेशान हो गई. बाहर निकल उसने अगल-बगल के घरों में आवाज लगाई, "...बहू जी, माता जी..." दोपहर के दो बजे थे. कॉलोनी में तो दस बजे से

. जब आप बेहोश पड़ी रहीं, हमहि रचौ तो पूछ लो जायके डागदर ह बताकर सन्न कर दिया.

ही सन्नाटा खिंच जाता था. कहीं से किसी ने नहीं झांका. बहुत से परिवार छुट्टियों में बाहर गए हुए थे.

बिटिया ने अपने को फंसा हुआ महसूस किया. इस लाइन का यह आखिरी घर था जिसकी सफाई के बाद वह घर जाकर नहाती, कपड़ा पछाड़ती और खाना खाती. अब यह ऐसा चक्कर पड़ गया कि न तो उससे जाए बने, न न जाए बने.

तिवारिन का पिछवाड़े का दरवाजा अभी भी खुला पड़ा था. बस एक भूरी गाय वहां ठिठकी हुई दीवार का चूना चाट रही थी. उसे ठेलकर बिटिया फिर आंगन में आ गई. तिवारिन कमरे और आंगन की दहलीज पर चौड़े दरवाजे के बीचोबीच बेहोश पड़ी थी. बिटिया का एक मन हुआ कि बहू जी को इसी तरह छोड़-छाड़कर चल दे. शाम को घरवाले आकर निबटेंगे लेकिन मन नहीं माना. सारा घर खुला पड़ा है. कॉलोनी में सन्नाटा है. अनहोनी भी हो सकती है.

तभी सामने से लाल मारुति गुजरी. बिटिया पहचानती थी. यह इकतालीस नंबर वाले डॉक्टर यादव की गाड़ी थी. इस वक्त वे अस्पताल से घर खाना खाने आते हैं. बिटिया तेजी से 41 नंबर की तरफ बढ़ गई. सारी बात डॉक्टर साब को बताई. डॉक्टर साब लपककर 19 नंबर की तरफ चल दिए.

बिटिया अपनी आदत के मुताबिक जोर-जोर से बखान करने लगी, "मोटकी तिवारिन बेहोस पड़ी है. डागदर साब को देखो, खाना मेज पे लगा है पर दौड़ गए हैं, मरीज देखे बदे."

जब बिटिया वापस 19 नंबर पहुंची, डॉक्टर यादव मरीज की प्रारंभिक जांच कर चुके थे. ब्लडप्रेशर एकदम सिंक कर गया था. इंजेक्शन देना जरूरी था. उन्होंने बिटिया के हाथ में सिरिंज की डिब्बी पकड़ाकर कहा, "चलो उबाल कर लाओ इसे."

बिटिया दो कदम पीछे हट गई, "हम?"

"जल्दी करो."

बिटिया ने डरते-डरते डिब्बी थामी और कांपते पैरों रसोई में घुसी. उसे लग रहा था अभी तिवारिन होश में आकर उसे कच्चा चबा जाएगी. खेखर की तरह तो चिल्लाती है.

"क्यों गैस जलाना नहीं आता क्या?" डॉक्टर यादव ने देर लगती देखकर रसोई के बाहर से पूछा.

"आवत है डागदर साब," कहकर बिटिया ने माचिस की तीली गैस को छुआ दी. उसके अपने घर में गैस का चूल्हा था. सिरिंज बॉक्स उबलने पर वह संड़सी से उठाकर पतीली डॉक्टर साहब के पास लाई. डॉक्टर ने पड़ोसी और डॉक्टर दोनों का धर्म निभाया. उन्होंने डायरेक्टरी से नंबर ढूंढ़कर तिवारी जी को फोन किया और जब तक उनकी पत्नी संकट से नहीं उबरीं, अपना कंपाउंडर वहां बिठाए रखा.

बिटिया भी काफी देर रुकी रही. जब उसने बहू जी को हाथ-पैर हिलाते-डुलाते देखा, कंपाउंडर से बोली, "चलीं अब, नहीं हमका देखकर बर्राय लगिहैं."

शाम को तिवारी जी ने डॉक्टर यादव का बड़ा शुक्रिया अदा किया. उन्होंने फीस देने की भी कोशिश की पर डॉक्टर साब ने नोट नहीं पकड़े. डॉक्टर यादव बोले, "असली इनाम की हकदार तो आपकी जमादारिन है. वही मुझे बुलाकर लाई. लो बी.पी. पेशेंट्स के केसेज में कई बार पता भी नहीं चलता और वे सिंक कर जाते हैं. क्या नाम है उसका—बिटिया ने जिस तरह इनके तलुवों की मालिश की, पानी गरमाया, सिरिंज उबाली, वह बहुत अच्छी नर्स बन सकती है तिवारी जी."

तिवारी जी थोड़े विचलित-से घर लौटे. पत्नी होश में थी पर उसे बहुत कमजोरी लग रही थी. उन्होंने पत्नी को हॉरलिक्स बनाकर दिया. वे उससे यह बात छिपा ले गए कि उसकी तीमारदारी में बिटिया की क्या भूमिका रही. अभी तो इस तथ्य को वे अपने अंदर जज्ब करने के लिए संघर्ष कर रहे थे. उन्हें लगा पत्नी इस घटना को शायद न झेल पाए.

लेकिन बिटिया के स्वभाव में इतनी सतर्कता नहीं थी. फिर इस घटना की तो नायिका भी वही थी. जहां उसे दो-एक श्रोता मिलते, वह विस्तार से बताने लगती क्या हुआ, कैसे हुआ, कैसे वह दौड़ी-दौड़ी डॉक्टर यादव को बुला लाई. सगर्व समापन होता घटनाक्रम के इत्यादि के साथ. इस वक्तव्य के बाद बिटिया कहती, "उस टैम हमने यह नहीं सोचा कि बहू जी मार हमपे किल्लात हैं, छूत मानत हैं, बस डागडर साब जौन-जौन कहत गए, हम करत चले गए. अरे जान तो जान है, बड़मनई की हो, छोटमनई की हो. फिर तेवारी जी को हम बहुत मानत हैं. हमका कब्बौ नहीं रिसाइन."

श्रोता वर्ग, नौकर, ड्राइवर, माली आदि ने बिटिया के पराक्रम को सराहा. बिटिया और भी शौर्य से भर उठी, "अरे वो दिना हम आपन पतोहू की जान बचावा. आप जानौ पूरे दिन रहे, ओकी थैली फट गई. हम जायके द्रोपदी अस्पताल की बड़ी डागडरनी का गोड़ पकड़ लिहिस. डागडरनी मरीजगाड़ी पठाकर पतोहू को अस्पताल लिवाईं. हमार पतोहू लाल-गोपालगंज की ऐसी चंट है कि ओकरे आगे कौवा चंटई छोड़ दे पर हम कहिन मुसीबत में मनई न देखे चाहीं, ओकी जान देखौ."

एक दिन बिटिया उन्नीस नंबर में कूड़े की बाल्टी खाली कर रखने जा रही थी. तिवारिन तब तक पूर्ण स्वस्थ हो चुकी थी. उन्होंने कमरे में बैठे-बैठे ही पुकारा, "बिटिया बाल्टी धोकर जा. सारे दिन बदबू रहती है."

"धोय तो दिहिन बहू जी," बिटिया ने आंगन से जवाब दिया.

अंदर त्रिपाठी जी की घरवाली बैठी थी. तिवारिन ने उनसे कहा, "हमारी भंगिन तो बड़ी कामचोर है, मुफ्त के पैसे लेती है."

बिटिया के कान में यह वाक्य पड़ गया. गुस्से से वह आगबबूला हो गई. वह आंगन पार कर, सीधे कमरे के दरवाजे पर खड़ी हो गई, "का कहिन बहू जी, जरा फिर से बोलो. हम कामचोरी करत हैं."

तिवारिन उसे यों दरवाजे तक देखकर उत्तेजित हो गई, "हट-हट, सारा घर गंदा कर दिया, मुझे पोछा लगाना पड़ेगा." बिटिया ने पंचम स्वर में कहा, "ठीक हो गईं तो गुर्राए लगीं. हमरे हाथ का गरमाया दूध-पानी सब तोहार पेट मां है. वो बखत भी हम ऐहि रहें, कौनो अउर नाहीं. आप बड़मनई हमसे छूत मानत हैं. जब आप बेहोस पड़ी रहीं, हमहि चौका-चूल्हा छी कर काम किया, ना परचौ तो पूछ लो जायके डागदर साब से."

तिवारिन को काटो तो खून नहीं. वह एकदम काठ हो गई. हे भगवान! यह घर-घर पाखाना साफ करने वाली बिटिया क्या बक रही है. शुरू की बड़बोली तो है ही. ऐसा होता तो मुझे खबर न होती. उन्होंने चोर नजरों से अपनी सहेली की ओर देखा. त्रिपाठी जी की घरवाली बोली, "सुना तो हमने भी था कुछ, हमारा रामू कह रहा था."

बिटिया अभी भी प्रचंड थी, "सुन लो अच्छी तरह. हम कौनो झूठ नहीं बोलीं. हमरे सच बोले से तोहार इज्जत चली जात है तो हम का करीं. अरे तुम बाम्हनों की इज्जत का का है, जा के चार बूंद गंगाजल छींट लो आपन ऊपर, आपन चूल्हे-चौका पर. वापस आय जाएगी इज्जत. हम वा दिना पास न होती तो इज्जत तोहार बच जाती पर जान तो चली जाती."

इस बार तिवारिन कुछ नहीं बोली. उसके हाथ-पैर एकदम जवाब दे रहे थे. उसके अंदर इतनी भी ताकत नहीं थी कि उठकर पिछवाड़े का दरवाजा बंद कर ले. ■

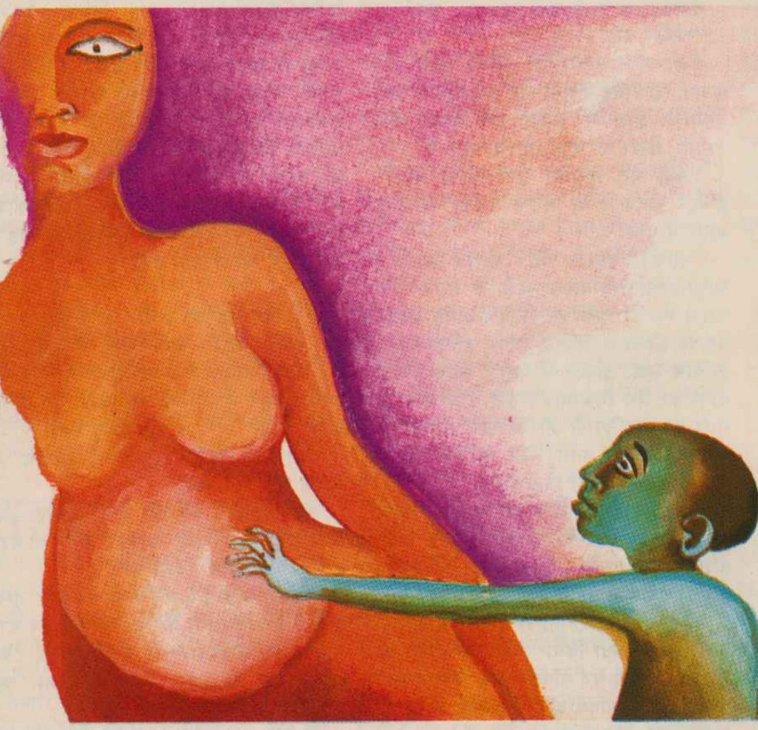

खरगोश

• प्रियंवद

• चित्र: अर्पणा कौर

किशोर मन—जीवन और जगत के प्रति अदम्य जिज्ञासाओं से लबालब. उम्र के इस सुहाने मोड़ पर कोई रूमानी कहानी सामने घट रही हो तो इच्छाएं खरगोश बन ही जाती हैं.

हमारे घर बिलकुल सटे हुए थे. किसी पुरानी हवेली को जबरदस्ती बांट कर बनाए गए दो हिस्से...छत...छज्जे...आंगन सूखी पपड़ी वाली दीवारें...उखड़े फर्श और ऊंची-ऊंची छतों और हवादार खिड़कियों वाले विशाल पुराने कमरे. दोनों हिस्सों को बांटने वाले आंगन के बीच में एक दीवार और उस दीवार में एक छोटा-सा दरवाजा था जिससे एक-दूसरे के घरों में जाया जा सकता था. एक घर में मैं था और दूसरे में अविनीश भाई!

उस समय मेरी उम्र ऐसी थी जिसमें हर बालक का एक महानायक होता है, दुर्धर्ष... अदम्य.... अपराजेय... दिव्य. अविनीश भाई मेरे नायक हुआ करते थे. साफ सफेद रंग... विद्वान... संतुलित, स्थितप्रज्ञ युवक का आभास देते थे वह. मेरी दृष्टि में संसार का ऐसा कोई पराक्रम नहीं था जो अविनीश भाई न कर सकें. मेरे लिए वह किसी भी देवता से सुंदर थे. जैसी कि वह अवस्था होती है, मैं उन पर मोहित था. चुपचाप बैठकर उनको देखने में भी एक सुख मिलता था. उनकी भंगिमाएं, उनकी मुद्राएं...बातचीत में कांपते होंठ...हाथों की उंगलियां...विचारवान् आंखें. अविनीश भाई मेरी अंतिम शरण थे. उनकी बात मेरे लिए सृष्टि का अंतिम सत्य थी. पतंग के कन्ने बांधने से लेकर पिशाच साधने तक मैं हर गुत्थी के लिए अविनीश भाई के पास दौड़ता था.

हमारे घरों के बीच का वह छोटा दरवाजा हर समय खुला रहता था. सुबह या शाम या रात किसी भी समय मैं आगंन पार कर उसी दरवाजे से होता हुआ ऊपर अविनीश भाई के कमरे में घुस जाता था. अविनीश भाई भी दुलार करते थे मेरा. बिस्तर में दुबकाकर चिपका लेते थे और दुनिया भर की बातें बताते थे. उनका कमरा किताबों से भरा रहता था. अविनीश भाई मेरे खाने के लिए हमेशा कुछ रखते. मीठी गोलियां... काजू या किशमिश. जेब से कुछ-न-कुछ निकालकर मुझे दे देते.

मैं अपने घर में कम अविनीश भाई के साथ ज्यादा लटका रहता था. "अविनीश भाई", मैं शाम को चार बजे तपती धूप में उनके कमरे में पहुंच जाता. वह कुछ पढ़ रहे होते.

"आओ बंदू," वह मुस्कराकर मुझे चिपका लेते और फिर पढ़ने लगते. मैं उनकी किताब छीन लेता.

"पढ़ना बंद अविनीश भाई."

"क्यों..."

"पास की नीली छत वाले ने कल मेरी तीन पतंगें काट दीं."

"तो?"

"आज उससे हिसाब बराबर करते हैं... तुम चलो."

"कहां?" अविनीश भाई पूछते.

"छत पर... पहले उसकी तीन पतंगें काटो चलकर."

"पर जरूरी नहीं है कि काट ही दूं...कट भी सकता हूं."

"नहीं," मैं अंधविश्वास से उनको देखता, "तुम्हें कोई नहीं काट सकता."

"चलो," मैं उनको खींचता.

"पर शाम तो होने दो."

शाम को मैं छत पर अविनीश भाई को ले जाता. सीना फुलाए...श्रेष्ठता के विजयी भाव से भरा. मैं चरखी दिखाता...अविनीश भाई पतंग बढ़ाते. नीली छत वाला भी उड़ाता. अविनीश भाई एक के बाद एक उसकी पांच पतंगें काटते. मैं उत्तेजना...उत्साह और आनंद से हर बार चीखता...तालियां पीटता. मेरी आत्मा में अविनीश भाई की शक्ति उतर आती. इसलिए कि जो सामर्थ्य, श्रेष्ठता अविनीश भाई के पास है वह सब मेरी है...क्योंकि अविनीश भाई मेरे हैं.

अकसर शाम को अविनीश भाई ऊपर छज्जे से मुझे आवाज देते. उनकी आवाज सुनते ही मैं सब छोड़कर दौड़ पड़ता. "चल घूम आएं," वह नीचे आकर मेरा हाथ पकड़ लेते, "मां से कह दे." मैं आंगन से ही चीखकर मां को बता देता.

मां मेरे पीछे बकती-झकती, माथा पीटती...मेरे घूमने को कोसती पर मैं कूदता हुआ अविनीश भाई के साथ निकल आता. हम बहुत देर तक घूमते रहते. डूबते सूरज की लाली में...ठंडी कांपती रातों में... कभी बारिश में. बाजारों में... गंगा किनारे....नाव पर... कभी पुराने किले में...कब्रिस्तान में और कभी किसी पेड़ के नीचे. अविनीश भाई मुझे कितना कुछ बताते रहते. "इंसान का दिल उसकी पूरी जिंदगी में दो हजार करोड़ बार धड़कता है... मादा मच्छर बस तीन दिन जिंदा रहती है और इन तीन दिनों में लाखों मच्छर पैदा कर मर जाती है... कि हाथी के पैर में कोई हड्डी नहीं होती...कि केवल ज़िराफ ऐसा जानवर है जो तैर नहीं सकता. चांद से जमीन की केवल चीन की दीवार दिखती है... दुनिया के किसी भी राडार या कंप्यूटर से तेज दिमाग चमगादड़ का होता है जो अंधेरी छोटी गुफाओं में तेज रफ्तार से उड़ता रहता है, पर कभी किसी दीवार से नहीं टकराता..." मैं हैरानी से मंत्रमुग्ध-सा सुनता रहता. कहां सीमा है अविनीश भाई की... कितना जानते हैं...!! क्या कोई उनसे भी श्रेष्ठ हो सकता है?

वे जाती हुई सर्दियों के दिन थे. दिन भर तेज हवाएं चलतीं और पेड़ों के सूखे पत्ते टूटकर गिरते रहते!! पांवों के नीचे चटकते...चीखते...!! दिन खाली-खाली लंबे और उबाऊ होने लगे थे. मैं सुबह से ही शाम होने का इंतजार करने लगता, क्योंकि सर्दियों के बाद के आसमान पर पतंगें उड़ना शुरू हो गई थीं.

उन्हीं दिनों एक शाम को अविनीश भाई ने मुझे ऊपर से आवाज दी, "बंदू..."

मैं बाहर आंगन में आ गया. छज्जे पर अविनीश भाई थे.

"क्या कर रहे हो?"

"पतंग जोड़ रहा हूं."

"चल...बाहर चलें."

मैंने सिर हिलाया. नीचे आकर अविनीश भाई ने मेरा हाथ पकड़ा और गली से बाहर ले आए.

हमारी गली के बाहर सड़क की दुकानों के आगे कई चबूतरे बने थे—कई तरह के, कई आकार के. रात को इन चबूतरों पर मुहल्ले के हलवाइयों की दुकानों पर काम करने वाले छोटे लड़के... या भिखारी सोते थे. दिन भर चलते-फिरते लोग कुछ देर बैठकर दम लेते... पानी, सिगरेट पीते... या मुहल्ले के बेकार लड़के शतरंज खेलते... ताश पीटते या सस्ती किताबें पढ़ते. वहीं एक चबूतरे पर अविनीश भाई बैठ गए. मैं भी उनके साथ चिपक गया. अविनीश भाई कुछ बोल नहीं रहे थे...बस चुपचाप सामने देख रहे थे. कितनी देर यूं ही देखते रहे. कभी-कभी गरदन घुमाकर दाएं देख लेते.

मैं ऊबता-सा कभी सामने सड़क पर गुजरती भीड़... धूप की घटती-बढ़ती छाया और कभी ऊपर आकाश की पतंगें देखने लगता. अचानक अविनीश भाई उठ गए.

"चल...पतंग उड़ाएं."

"पर अभी तो सब उतार रहे हैं," मैंने मुंह बनाया.

"अभी अंधेरा होने में देर है... चल."

"पर क्यों...हम अभी कहीं घूमने भी नहीं गए."

"फिर कभी," अविनीश भाई ने मुझे पकड़ा और लगभग घसीटते हुए घर ले आए.

पतंग...मांझा, चरखी लेकर मैं उनके साथ छत पर पहुंच गया. छत की एक ऊंची मुंडेर पर अविनीश भाई बैठ गए.

"तुम बढ़ाओ... मैं देख रहा हूं."

मैंने पतंग बढ़ानी शुरू की और बढ़ाता गया. बीच-बीच में अविनीश भाई को देख लेता. वह मेरी तरफ पीठ किए बैठे थे...सामने मकानों को देखते हुए. थोड़ी देर बाद ही अंधेरा घिरने लगा. चीखते हुए तोते पेड़ों को वापस लौट-रहे थे.

"एक तोता फंसाऊं," मैंने चिल्लाकर पूछा.

"नहीं...चलो..." अविनीश भाई अब उठे. "लाओ मैं चरखी कर लूं." मैंने पूरी पतंग खींची...अविनीश भाई ने चरखी की और लगभग अंधेरे में हम नीचे आ गए.

यही दूसरे दिन भी हुआ...तीसरे दिन भी. फिर हर शाम होने लगा. मैं ऊब गया इससे.

"यहां क्यों बैठते हो अविनीश भाई?" एक दिन मैंने पूछ लिया.

"बताऊं?" अविनीश भाई ने मुझे देखा.

"हां."

"अपनी मृत्यु देखता हूं."

"मृत्यु?" मेरी आंखें फैल गईं.

"हां," अविनीश भाई मुस्कराए.

"यहां क्यों बैठते हो अविनीश भाई?" एक दिन मैंने पूछ लिया.
"बताऊं?" अविनीश भाई ने मुझे देखा.
"हां."
"अपनी मृत्यु देखता हूं."

"क्या मृत्यु दिख सकती है?"

"हां."

"सच बताओ," मैं डर कर उनसे और सट गया.

"सच कह रहा हूं."

"मुझे भी दिखाओ."

अविनीश भाई हंस दिए.

मैं सामने सड़क पर देखने लगा. कहां हो सकती है अविनीश भाई की मृत्यु. सामने ठेले वाले जल्दी-जल्दी फुटपाथ पर बिछा अपना सामान समेट रहे थे. मदारी झोले में रंगीन पत्थर जड़ी-बूटियां भर रहा था...सांडे का तेल बेचने वाला टूटी रीढ़ वाली गिरगिट छिपकलियां, लिजलिजे निचुड़े छोटे-छोटे सांप, तेल की शीशियां झोले में समेट रहा था. सब्जियां... फलों के छिलके हड़बड़ाते लोग उठा रहे थे. हलवाई की दुकान पर छोटा लड़का सूजी उंगलियों से बर्तन मांज रहा था... दूसरा भट्टी की राख साफ कर रहा था... एक सांड लंगड़ाता हुआ जा रहा था... एक बूढ़ा खंभे से चिपका, घाव की मक्खियां उड़ा रहा था. कोने में एक जवान औरत दूसरी बूढ़ी औरत के सिर की जूं बीन रही थी... एक बच्चा चूहे की पूंछ को रस्सी से बांधकर उछाल रहा था...सब जीवित या...मृत्यु कहां थी?

"देख," अचानक अविनीश भाई ने मेरी बांह दबाई, "वह आ रही है."

"कौन?"

"मृत्यु."

मैंने दाईं तरफ देखा जिधर अविनीश भाई इशारा कर रहे थे. सड़क के एक ओर सुंदर लड़की धीरे-धीरे हमारी तरफ आ रही थी. हाथों में किताबें लिये...छाती से चिपकाए. गोरा रंग...खुले बाल...चमकदार फरफराते कपड़े...और कपड़ों के बीच पेट का थोड़ा-सा खुला हिस्सा...सफेद मुलायम...धीरे-धीरे हिलता, सांस लेता...एक छोटे खरगोश जैसा.

"कौन...यह लड़की?" कुछ देर मैं उसे देखता रहा फिर धीरे से बोला.

"हां."

"यही तुम्हारी मृत्यु है?"

"हां."

"कैसे?"

"उसे देखते ही मेरे प्राण निकल जाते हैं," अविनीश भाई हंसे.

"तो तुम रोज इसको देखने के लिए बैठते हो?" मैंने हैरानी से पूछा.

"हां."

"धत्," मैंने मुंह बनाया.

वह लड़की हमारे सामने से निकली. सिर घुमाकर उसने एक बार अविनीश भाई को देखा फिर पास की गली में चली गई.

"चलो... छत पर चलते हैं," अविनीश भाई चबूतरे से उतर गए.

"अब वहां क्या है?" मैंने ऊबते हुए कहा, "वह तो गई."

"गई नहीं... चलो."

हम दौड़ते छत पर आए. मैं अपने गुप्त स्थान से पतंग लेने के लिए लपका.

"नहीं... रहने दे अब," अविनीश भाई ने रोका, "मेरे साथ बैठ और चुपचाप देख." अविनीश भाई ने उसी मुंडेर पर मुझे अपने साथ बैठा लिया.

सामने घरों के बीच छत पर एक कमरे के बाहर कुछ लड़कियां खड़ी थीं... उनमें वह भी थी...अलग से दीवार पर झुकी हुई.

"अरे... वही है यह तो...और हमें देख रही है," मैं चिल्लाया.

"हमें नहीं सिर्फ मुझे," अविनीश भाई मुस्कराए.

"उसे पता है?"

"क्या?"

"यही कि तुम उसे देखने के लिए रोज बैठते हो."

"हां."

"उसे पता है कि वह तुम्हारी मृत्यु है?"

"नहीं."

"फिर?"

"फिर क्या?"

"कब तक ऐसे बैठोगे?"

अविनीश भाई कुछ नहीं बोले.

"छत पर क्या है?" मैंने उंगली उधर दिखाई.

"नाच सिखाने का स्कूल है."

मैं चुप हो गया. मैं उसे बिलकुल साफ देख पा रहा था. तेज़ हवा में उड़ते उसके खुले बाल...गोरा रंग...उसने एक बार अविनीश भाई को देखा फिर अंदर चली गई.

"वह क्यों चली गई?" मैंने पूछा.

"उसकी क्लास शुरू हो गई और हमारी क्लास खत्म," अविनीश भाई ने मुझे धकेला. मैं मुंडेर से कूद कर उतरा और अविनीश भाई के साथ लटक गया.

तोते फिर घरों को लौट रहे थे. आज पतंग नहीं थी इसलिए मैंने फंसाने के लिए नहीं पूछा.

अब शाम को अविनीश भाई के आवाज देने से पहले ही मैं तैयार रहता...कभी खुद ही उनके पास चला जाता.

"चलो अविनीश भाई ...मृत्यु आती होगी."

अविनीश भाई खिलखिला पड़ते.

"ब्रूटस...यू टू..."

हम उसी तरह चबूतरे पर बैठते रहे.

"हम कब तक इस तरह बैठते रहेंगे?" एक दिन मैंने पूछ लिया.

"क्यों?"

"कुछ होता ही नहीं...बस आओ...यहां बैठकर देखते रहो...फिर छत पर बैठो, देखते रहो...इस तरह देखने से क्या मिलता है तुम्हें...न पतंग उड़ाना, न घूमना..."

"तू भी तो देखता है," अविनीश भाई ने जेब से एक मीठी गोली निकालकर मुझे दी.

"वह तो तुम दिखाते हो इसलिए देखता हूं...मुझे क्या," मैंने गोली मुंह में रख ली.

"तुझे अच्छी नहीं लगती."

"लगती तो है," मैं झेंप गया. "पर इससे क्या होता है."

"इसी से होता है...इतनी सुंदर कोई लड़की देखी है तूने कभी?" मैं चुप हो जाता. सच यही था कि उसके पेट का वह हिस्सा मुझे भी अच्छा लगता था...मन करता था... मुंह चिपका दूं उसमें...या चबा लूं.

> **अविनीश भाई इशारा कर रहे थे. सड़क के एक और एक लड़की... गोरा रंग, खुले बाल, चमकदार फरफराते कपड़े, कपड़ों के बीच पेट का थोड़ा-सा खुला हिस्सा... सफेद मुलायम... छोटे खरगोश जैसा.**

"एक काम कर मेरा," अविनीश भाई ने जेब से एक कागज निकाला.

"आज वह आए तो जाकर उसे यह दे देना."

"क्या है यह?"

"चिट्ठी."

"नहीं."

"क्यों?"

"मारेगी?"

"नहीं मारेगी."

"तो तुम दे दो न?"

"मुझे मुहल्ले में सब देखेंगे... तुम बच्चे हो...कोई कुछ नहीं कहेगा."

"पर उसने पकड़ लिया तो?"

"बस हाथ में देना और भाग जाना."

"कहां?'

"घर."

मैंने कागज मुट्ठी में दबा लिया.

"एक गोली और दो."

अविनीश भाई ने जेब से एक गोली और निकालकर मुझे दी. मैंने उस गोली को भी मुंह में रखा और चुपचाप उसका इंतजार करने लगा. थोड़ी ही देर में वह आती दिखाई दी. कंधों तक खुले बाल, फरफराते कपड़े.

"चल तैयार हो जा," अविनीश भाई ने मुझे चबूतरे से धकेल दिया. कागज मुट्ठी में दबा कर मैं खड़ा हो गया, दौड़ शुरू होने के पहले वाली मुद्रा में. मेरी सांस तेज चलने लगी...बदन फूलने-पिचकने लगा. धीरे-धीरे वह मेरे सामने आ गई.

"दौड़," अविनीश भाई फुसफुसाए.

मैं दौड़ा और बिलकुल उसके सामने जाकर खड़ा हो गया. वह अचकचाकर रुकी और मुझे देखने लगी. मैं पहली बार इतनी पास से उसे देख रहा था. लाल शरबत में घुला गुंथा हुआ आटा हो जैसे—खुले बालों के बीच चौड़ा माथा...आंखों में वही जो मां की आंखों में होता है...हल्के सुनहरे रोओं वाला हाथ...बदन से आती कच्चे दूध की गंध के गुच्छे...और बिलकुल पास उसके पेट का वह हिस्सा... बिलकुल जिंदा... एक छोटा खरगोश... धीरे-धीरे कांपता हुआ... गरम सांस छोड़ता. मैं बिलकुल उसके पास था...मेरा चेहरा उस तक आ रहा था...इतना पास कि मैं उसे छू सकता था...उसकी गरमी महसूस कर सकता था. मैं सम्मोहित-सा उसे देखता रहा....जैसे अभी दौड़ेगा...इतना सुंदर भी कुछ हो सकता है...

"क्या है?" वह थोड़ा झुकी और धीरे से बोली...हल्की फुसफुसाहट-सी. चौंककर मैंने हाथ का कागज बढ़ा दिया.

"क्या है यह?" उसने कागज ले लिया और फिर पूछा.

"पता नहीं," मैंने कहा और मुट्ठी भींचे पूरी ताकत से दौड़ता हुआ घर तक भागता चला आया. अविनीश भाई को पलटकर देखा भी नहीं. कुछ ही देर में अविनीश भाई भी दौड़ते हुए आए.

"क्या हुआ," मैंने भय से पूछा, "कुछ बोली?" मैं अभी तक हांफ रहा था. भय...उत्तेजना से! अविनीश भाई ने मुझे कस कर चिपका लिया.

"चल छत पर चल कर देखें कि क्या हुआ."

हम छत पर आ गए और उसी मुंडेर पर बैठ गए. सामने वह खड़ी थी...उसी तरह. हम उसे...वह हमें देखती रही.

धीरे-धीरे अंधेरा उतरने लगा. तोते रोज की तरह चीखते हुए पेड़ों को लौटने लगे...वह खड़ी रही. फिर अंधेरा गहरा हुआ...रात हुई. सितारे निकले और चांद चमकने लगा...वह खड़ी रही. फिर धीरे-धीरे हवा तेज होती गई...जाती हुई सर्दियों की पागल हवा में पेड़ चीखते हुए अपने पत्ते नोच-नोचकर फेंकने लगे...वह खड़ी रही. परिंदों ने पेड़ों में सिर छुपा लिये...घरों के चिराग एक-एक कर बुझते गए...वह खड़ी रही. सूरज डूबा, सूरज उगा... फूल खिले...फूल मुरझाए...ऋतुएं आईं ऋतुएं गईं...कई जन्म हुए, कई मृत्यु...वह खड़ी रही.

सुबह मेरी आंख खुली तो मैं बिस्तर पर था. पता नहीं कब तक हम बैठे रहे...कब मैं छत पर सो गया...कब अविनीश भाई मुझे गोद में उठाकर बिस्तर पर डाल गए.

दूसरे दिन शाम को मैं फिर निश्चित समय पर तैयार हो गया. उत्सुकता और रोमांच से भरा. अविनीश भाई की आवाज नहीं आई. मैं

ही ऊपर उनके कमरे में चला गया. अविनीश भाई पलंग पर लेटे थे.

"अरे...चलना नहीं क्या?" मैं सिरहाने बैठ गया.

"कहां?"

"चबूतरे पर...मृत्यु के आने का समय हो रहा है."

"अब उसकी जरूरत नहीं है बंदू..." अविनीश भाई ने मेरी तरफ करवट बदली.

"क्यों?"

"वह नहीं आएगी...आज उससे दूसरी जगह मिलना है," अविनीश भाई ने मुझे थपथपाया. मैंने एक बार अविनीश भाई को देखा फिर उठा और नीचे चला आया. अब मेरे पास करने के लिए कुछ नहीं था. अचानक मैं एकदम खाली-खाली-सा हो गया था. हवा से जमीन पर दौड़ते पत्ते की तरह... दिशाहीन... उद्देश्यहीन... धकेला जाता....

धीरे-धीरे मैं अकेला ही गली के बाहर आकर चबूतरे पर बैठ गया. ऊंचे पेड़ की पत्तियां हवा में कांप रही थीं. एक कौआ उस पर बैठा चीख रहा था. सामने सड़क पर सब कुछ वैसा ही था. वही ठेलेवाले...गाय....जूतों का ढेर लगाए मोची...कूड़े के ढेर...बजबजाती नाली...सामान बेचते फुटपाथ पर लोग. सामने सांडे का तेल बेचने वाला बैठा था. चादर बिछाए अजीब-अजीब जड़ी बूटियां... अलग-अलग शीशियों में तरह-तरह के तेल...सूखे निचुड़े हुए गिरगिट...सांप... रेंगने वाला कोई और गिलगिला जानवर. किसी डिब्बे में सांप...और गले में पतली रस्सी से बंधे गिरगिटान. डंडी से वह उन्हें छूता तो वह फुफकारते...उछलते. तेल निकाले हुए निचुड़े सूखे को छूता तो वह वैसा ही पड़ा रहता. सामने ढेर में एक सफेद रंग का मोटा तंदुरुस्त सांप था...कुंडली मारे...बीच-बीच में जीभ निकालता. वह आदमी उसको डंडी से छूता चीख रहा था..."यह रेत का सांप है...भयानक...कभी काटता नहीं...चुपचाप छाती पर बैठ जाता है और अपने ज़हर से आदमी की सांसें जहरीली करता रहता है. आदमी को पता भी नहीं चलता कि कब उसके अंदर पूरा जहर फैल गया और कब वह मर गया."... मैं जुगुप्सा और भय से उसे बहुत देर तक देखता रहा.

धीरे-धीरे अंधेरा उतरने के साथ भीड़ छंटने लगी. सड़क किनारे के लैंप पोस्ट जलने लगे. ठेलेवालों ने सब्जियां समेटी और लौटने लगे. खाली होती सड़क ऊपर से गिरते पीले अंधेरे में गुंथे उजाले से ढक गई. अंधेरे के साथ तेज हवाएं चलने लगीं. अब सामने कुछ भी नहीं था. खाली सड़क...अंधेरा और कहीं-कहीं कांपती परछाइयां. रिक्शे पर बैठी बिलकुल नंगी एक पगली जा रही थी. तनी छातियां लिये, खिलखिलाती. रिक्शेवाला बदहवास रिक्शा दौड़ा रहा था...किसी अंधेरे कोने की ओर! सांडे वाले ने सब सांप, गिरगिटान समेट लिये थे. मेरे ऊपर उदासी छाने लगी...धीरे-धीरे पंजों से रेंगती ऊपर चढ़ती... मैंने पांव झटके... फिर धीरे से उठा और थका-थका-सा लुढ़कता हुआ घर आकर सो गया.

फिर मैं अकेला ही पतंग उड़ाने लगा. अविनीश भाई अकसर शाम को घर पर नहीं होते. रात को भी देर तक लौटते. कभी, जल्दी आते भी तो किताबें लेकर बैठ जाते. छत की पतंगबाजी...गंगा किनारे घूमना...खंडहरों की सैर सब बंद होने लगा.

अविनीश भाई मुझे अकसर बेचैन-से दिखते. कभी मैं उनके कमरे में पहुंचता तो लगता जैसे वह मेरी उपस्थिति से ही असहज

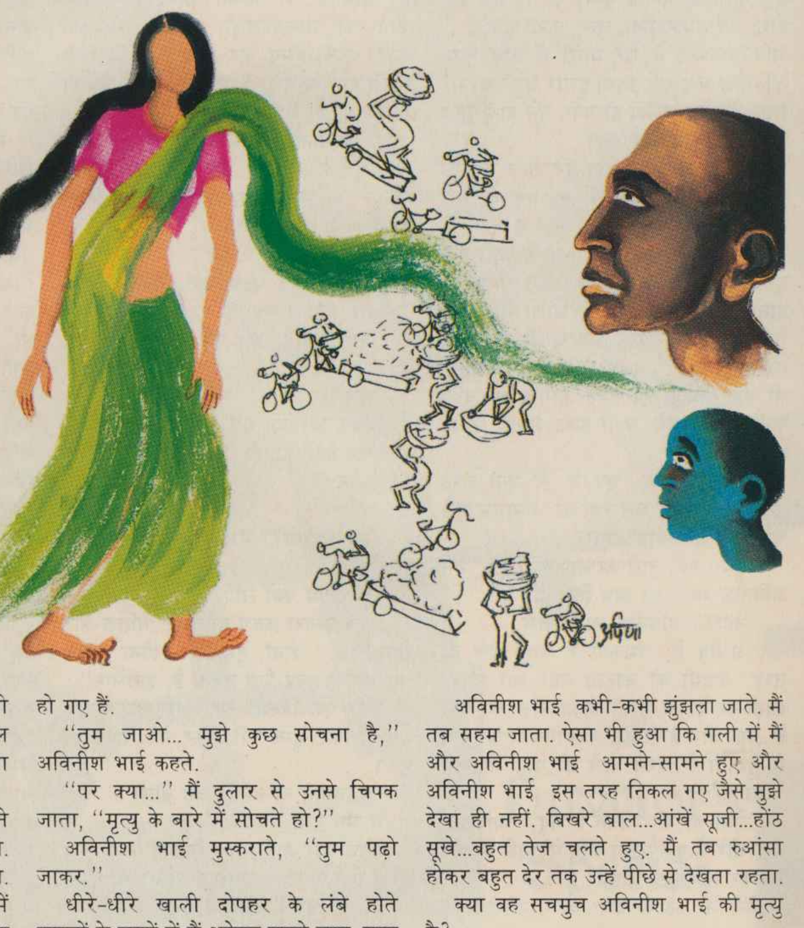

हो गए हैं.

"तुम जाओ... मुझे कुछ सोचना है," अविनीश भाई कहते.

"पर क्या..." मैं दुलार से उनसे चिपक जाता, "मृत्यु के बारे में सोचते हो?"

अविनीश भाई मुस्कराते, "तुम पढ़ो जाकर."

धीरे-धीरे खाली दोपहर के लंबे होते दरख्तों के सायों में मैं अकेला घूमने लगा. शाम को जब शहर की पुरानी-बूढ़ी-बदरंग दीवारों के कोनों, दरारों से धुंआ और अंधेरा टपकने लगता और कुहासे की ठंडक के साथ छोटे-छोटे घरों की छतों से धुआं उठता और किसी दूसरे घर की मुंडेर पर गुच्छा बनकर बैठ जाता...मैं अकेला चुपचाप उसे घूरता रहता. किसी पुराने खंडहर की टूटी दीवार के सहारे धूप में, किसी बुर्ज की सीढ़ियों पर सूखी घास को मैं अकेला नोचता रहता. कभी कोई चमगादड़ चीखता ऊपर से निकलता तो मैं बहुत देर तक खाली आंखों से उसे देखता रहता.

कभी अविनीश भाई से बहुत कुछ पूछना होता, बहुत कुछ बताना. पर अविनीश भाई नहीं मिलते. और कभी मिलते तो मैं उन्हें पकड़ लेता. "अविनीश भाई... गणित का एक सवाल नहीं निकल रहा."

"हो जाएगा... कोशिश करो," अविनीश भाई कहते.

"अविनीश भाई... शराब पीते समय गिलास क्यों टकराते हैं... या अविनीश भाई फूल हरे रंग का क्यों नहीं होता..."

अविनीश भाई कभी-कभी झुंझला जाते. मैं तब सहम जाता. ऐसा भी हुआ कि गली में मैं और अविनीश भाई आमने-सामने हुए और अविनीश भाई इस तरह निकल गए जैसे मुझे देखा ही नहीं. बिखरे बाल...आंखें सूजी...होंठ सूखे...बहुत तेज चलते हुए. मैं तब रुआंसा होकर बहुत देर तक उन्हें पीछे से देखता रहता.

क्या वह सचमुच अविनीश भाई की मृत्यु है?

•••

उस रात बसंत का चांद था.

खाना खाकर मैं लट्टू नचा रहा था. अचानक अविनीश भाई की आवाज सुनाई दी...बहुत दिन बाद. मैं बाहर आंगन में आया. छज्जे पर अविनीश भाई खड़े थे.

"क्या कर रहे हो?" उन्होंने पूछा.

"लट्टू नचा रहा हूं."

"चलो घूम आएं?"

"नहीं..." मैंने मुंह घुमा लिया, "लट्टू नचाऊंगा."

"मैं आ रहा हूं."

अविनीश भाई नीचे आए...मेरे सिर पर एक हाथ मारा और हाथ पकड़कर बाहर घसीट लाए. लंबी गली को पार कर हम फिर सड़क पर आ गए. हम चुपचाप चलने लगे. मैंने कुछ नहीं पूछा कि कहां जाना है.

"नाराज है मुझसे?" कुछ देर बाद अविनीश भाई खुद ही बोले.

"नहीं," मैंने सिर हिलाया.

"मुझे पता है तू नाराज़ है...तुझसे मिल नहीं पाता...तू अकेला घूमता है. पर जब बड़ा होगा तब समझाऊंगा. चल...गुस्सा थूक दे..." अविनीश भाई ने मेरे बालों में हाथ फेरा. अविनीश भाई का इतना दुलार बहुत था मेरे लिए. मेरा मन हल्का हो गया. मैंने हाथ पकड़ लिया अविनीश भाई का.

कुछ देर चलने के बाद हम शहर के पीछे वाली सुनसान सड़क पर आ गए थे. पूरी सड़क दिन भर के टूटे पीले पत्तों से भरी थी. पांव के नीचे चीखते वे पत्ते कभी-कभी कुछ दूर हमारे साथ दौड़ते, फिर दम तोड़ देते. दोनों ओर के पेड़ों की नंगी शाखों से चांदनी गिर रही थी... सफेद...ठंडी खाली सड़क पर परछाइयों के जाले बुनती. पता नहीं कैसी हवा थी वह...पागलों की तरह भागती तो बदन कभी सिहर जाते, कभी हल्के आनंद से देर तक कांपते रहते.

अविनीश भाई चुप थे. मैं उसी तरह उनका हाथ पकड़े चल रहा था. अचानक मुझे चमकदार सांप याद आया.

"तुमने सांडे वाले का सांप देखा है?" मैंने अविनीश भाई का हाथ हिलाया.

"नहीं"....अविनीश भाई बोले.

"अजीब है, चमकता है बहुत...रेत की तरह. आदमी को काटता नहीं...बस उसकी छाती पर बैठकर सांसों को जहरीला कर देता है...क्या जीभ है उसकी...क्या निकाल कर हवा में घुमाता है...मरने वाले को पता भी नहीं चलता."

"ऐसा ही यह जीवन है बंदू," अविनीश भाई धीरे से फुसफुसाए और मेरे गले में हाथ डालकर मुझे सटा लिया.

मैंने सिर उठाकर देखा. वह सामने देख रहे थे... कुछ सोचते हुए... धीरे से बोले फिर, "तू अभी छोटा है... पर मेरी एक बात याद कर ले... मेरे बाद कभी समझेगा... संसार का सबसे बड़ा रणक्षेत्र मनुष्य के अंदर ही है. अनवरत कोई-न-कोई भयानक युद्ध चलता रहता है वहां. हम युद्ध में सैकड़ों, लाखों खून से लथपथ शव रोज गिरते हैं. सपनों के शव...भावनाओं, विचारों, आकांक्षाओं के शव. सब कुछ है वहां. भयानक उन्माद है...अपरिमित आनंद है...उत्सव है, मृत्यु है...जय...पराजय है. बाहर जो कुछ भी दिखता है वह सब तो अंदर की इस सृष्टि की छाया है. सत्य अंदर की यही सृष्टि है...और कितनी विराट, कितनी रहस्यमयी है यह. सैकड़ों जंगल पल रहे हैं वहां...अंधी गुफाएं हैं...उबलते ज्वालामुखी हैं, जाले हैं...सुरंगें हैं...हम जीवन भर इस जगत का सूत्र ही ढूंढ़ते रहते हैं, पर उसे कभी पकड़ नहीं पाते. हर क्षण बदलता...नष्ट होता, जन्मता. अद्भुत रहस्यमय लोक है यह और इसे समझने की कोशिश में ही हम एक-दूसरे को निरंतर कोई-न-कोई घाव देते या घाव चाटते जी रहे हैं. इन छायाओं को पकड़ने...छायाओं के बीच जीने को वास्तविकता समझने का भ्रम पाले...अपनी मृत्यु तक इसी तरह बिलकुल खाली हाथ पहुंचते..." एक सांस लेकर चुप हो गए अविनीश भाई.

मैं स्तब्ध-सा सुन रहा था. अविनीश भाई जैसे खुद से ही बोल रहे थे. बहुत देर तक सन्नाटे का एक सूखा, निचुड़ा हुआ टुकड़ा हमारे साथ चलता रहा.

एक मोड़ पर पहुंच कर अविनीश भाई रुक गए. मैं भी.

"क्या हुआ?" मैंने पूछा, "हम कहां जा रहे थे?

"पुल पर."

"फिर रुक क्यों गए?"

"वह यहीं आएगी."

"कौन?"

"मृत्यु."

"वह आएगी?" मैंने हैरान होकर पूछा.

"हां."

"फिर हमें क्यों लाए?"

"तुम हमारा कवच बनते हो...नैतिक और सामाजिक दोनों...तुम्हारा होना एक पारिवारिक दृश्य पैदा करता है, इसलिए."

तभी एक रिक्शा रुका और वह उतरी. मुझे देखकर मुस्करायी, फिर मेरे गालों को छुआ.

"पहचानते हो हमें?" वह बोली.

मैं झेंप गया.

उसने मुझे अपने साथ चिपका लिया. हम तीनों फिर चुपचाप सड़क के एक ओर चलने लगे. चलते-चलते मेरा मुंह अकसर उसके पेट से चिपक जाता!

जिसे मैं चुपचाप देखता था, अचानक ही वह छोटा खरगोश मेरे बिलकुल पास था आज. मैं उसे छू रहा था...उसकी गंध पी रहा था. कोमल, स्निग्ध, चिकना और चमकदार था वह...किसी भी सुंदर चीज से सुंदर. जीवित भी...जैसे अभी बोल देगा.. हिलता-कांपता. चलते हुए जब मुंह उससे छू जाता तो मैं सिहर उठता...हल्का गरम...खुशबू छोड़ता हुआ था वह. मैं उससे चिपका सिर से पांव तक एक तरल सुख में डूबा हुआ चल रहा था!

सड़क के दोनों ओर बंगलों की दीवारें खत्म हो चुकी थी. उनके अंदर से छनकर आती रोशनियां भी. अब कुछ नहीं था सिवा हमारे, खाली सड़क और चांद के. एक भारीपन हमारे साथ था. हम तीनों जैसे अपने-अपने कंधों पर अपनी गोपनीय दुनिया लिये चल रहे थे...एक दूसरे से बिलकुल असम्पृक्त. बीच-बीच में कभी मैं सिर उठाकर अविनीश भाई को देख लेता...कभी मृत्यु को.

थोड़ी देर में पुल दिखने लगा. दूर तक फैला, खाली-खाली-सा. कभी कोई गाड़ी उस पर से निकलती तो पूरा पुल थरथरा जाता. दोनों तरफ पैदल चलने वालों की अलग जगह बनी थी...रेलिंग के पास. कुछ दूर चलने के बाद हम रुक गए. रेलिंग से चिपककर...उस पर झुके हुए.

नीचे गंगा बह रही थी. ठंडी सफेदी में झिलमिलाती. तेज हवा से उसका पानी शोर कर रहा था. सामने धार में एक नाव बह रही थी... धीरे-धीरे लकड़ी से नाव को धकेलता बूढ़ा मांझी... एक बहती लाश पर बैठे हुए गिद्ध उसको नोच रहे थे. एक ओर रेती पर कुछ फसलें खड़ी थीं....कुछ नावें उलटी पड़ी थीं... कुछ कच्चे घर चमक रहे थे. चार बांस लगाकर बनाई हुई कपड़े की छतें हवा में फड़फड़ा रही थीं. दो-तीन लकड़ी की खाटें पड़ी थीं जिन पर लोग सो रहे थे. सब कुछ साफ... एक तिलिस्मी सफेदी में डूबा था. चांद बिलकुल हमारे ऊपर था. पूरा पुल...नदी...सृष्टि सब उसके जादुई फंदों में कसा था. शांति थी... भारी, सिहरन पैदा करती. सब कुछ दिव्य था...इस लोक से परे...इतर.

अविनीश भाई ने जेब से सिगरेट निकाल कर जलाई और रेलिंग पर झुक गए. मृत्यु ने फिर मुझे चिपका लिया. मैंने सिर घुमाकर देखा. वह छोटा खरगोश अब चांदनी में चमक रहा था. सहमते हुए मैंने धीरे से उस पर अंगुली रखी...उसकी खाल कांपी...मैंने चुपचाप अपनी नाक खाल के उस टुकड़े में धंसा दी...गंध को अंदर तक निगलते हुए. किनारे पर ऊंचे मिट्टी के टीलों से कभी कोई टुकड़ा नदी में गिर पड़ता तो सब एक झटके से टूट जाता. वह सब मेरे अंदर उतर रहा था. नदी...चांदनी...छोटा खरगोश. बहुत देर हम ऐसे ही खड़े रहे.

अचानक खाल का वह हिस्सा धीरे-धीरे

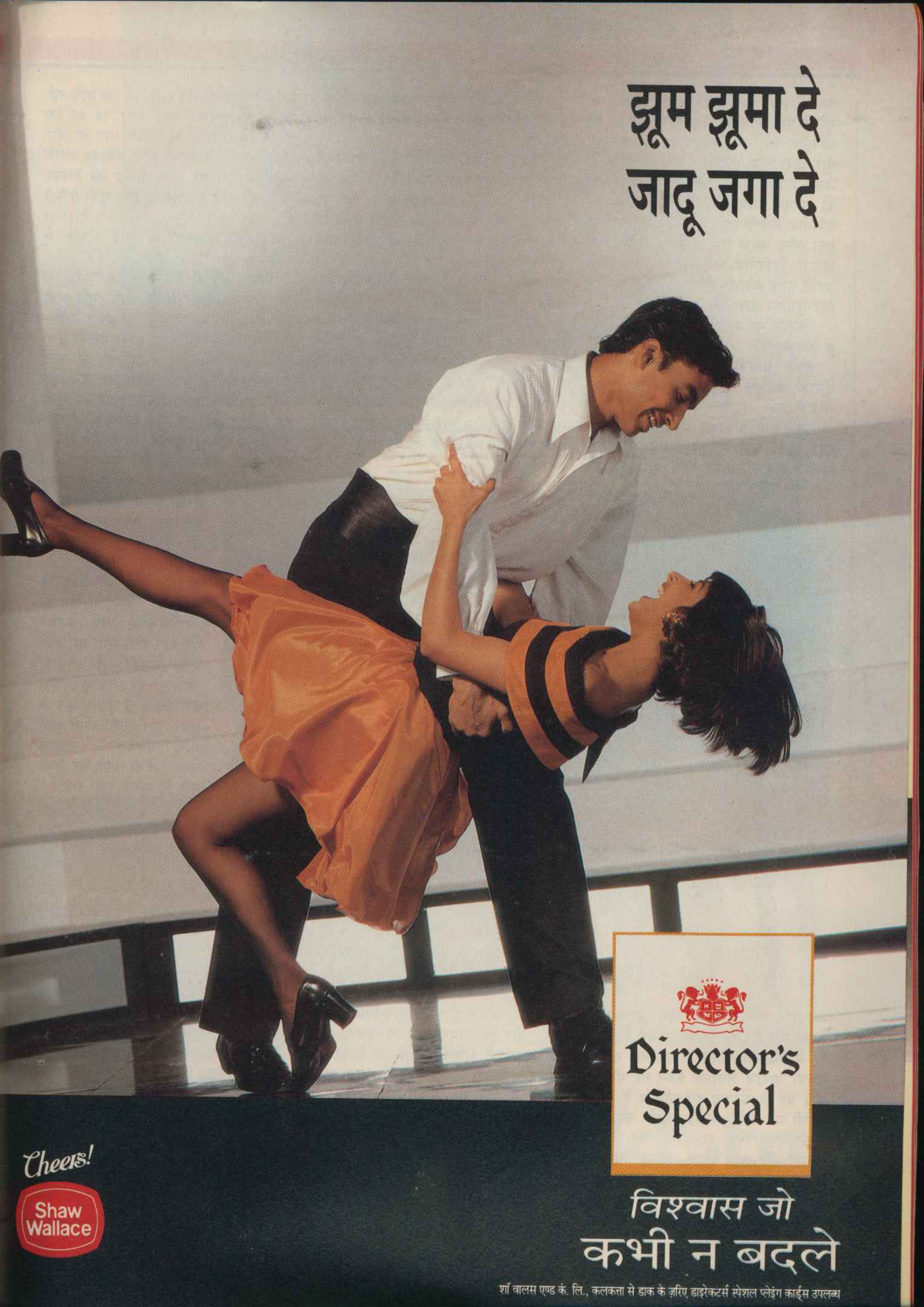

झूम झूमा दे
जादू जगा दे
Director's
Special
Cheers!
Shaw Wallace
विश्वास जो
कभी न बदले
शॉ वालस एण्ड कं. लि., कलकत्ता से डाक के ज़रिए डाइरेक्टर्स स्पेशल प्लेइंग कार्ड्स उपलब्ध

कांपने लगा. मैंने सिर उठाकर देखा. वह रेलिंग पर झुकी थी. उसके एक हाथ पर अविनीश भाई का हाथ रखा था और वह धीरे-धीरे हिल रही थी. मैं एक झटके से अलग हो गया. वह रो रही थी. अविनीश भाई को शायद मालूम नहीं था. मैं घूमकर अविनीश भाई के दूसरे हाथ की तरफ खड़ा हो गया और घबरा कर अविनीश भाई को हिलाया. अविनीश भाई ने मुझे देखा. मैंने उसकी तरफ इशारा किया. अविनीश भाई ने सिर घुमाकर देखा उसे.

''पागल मत बनो,'' अविनीश भाई धीरे से फुसफुसाए.

उसने अविनीश भाई की तरफ मुंह घुमाया. सचमुच रो रही थी वह. उसके होंठ धीरे से फैले.

''डरो मत...ये आनंद के आंसू हैं...गले तक पूरा आनंद भरा है,'' वह बोली, ''कितना सुंदर है सब...'' उसकी आंखें आधी बंद थीं.

''देखो,'' उसने चांद की ओर इशारा किया, ''मुझे पता है...सब उसकी साजिश है.''

मैं भय और हैरानी से उसे देख रहा था. उसकी आवाज अचानक बदल गई थी—जैसे कोई दर्द से कराहते हुए बोलता है. अपनी हथेली पर रखी अविनीश भाई की हथेली उसने अपने दोनों हाथों में पकड़ ली...उसे पागलों की तरह चूमा...अपनी आंखों से छुआया...जैसे मां पूजा की माला के दानों को छुआती थी.

अविनीश भाई चुपचाप उसे देख रहे थे. उसने अविनीश भाई की हथेली अपने गले पर रख ली.

''इस क्षण...क्या तुम मेरा गला दबा सकते हो?'' वह फुसफुसायी. उसकी आंखें लगभग बंद थीं...होंठ खुले थे. बदन कांप रहा था. अविनीश भाई मुस्कराए...और मैंने देखा कि अविनीश भाई ने सचमुच उसका गला दबाना शुरू किया. मैं भय से रोने और चीखने को हो रहा था. पर वह हंस रही थी. अविनीश भाई उसके गले पर अपनी उंगलियां कसते जा रहे थे...धीरे-धीरे उसके गले की नीली नसें मुझे दिखने लगीं...पर वह वैसी ही शांत थी, कोई पीड़ा, कोई छटपटाहट नहीं...उसी तरह आनंद से बंद आंखें, होंठों पर मुस्कराहट. मुझे लगा कि वह अब किसी भी क्षण मर जाएगी. अचानक अविनीश भाई ने अपना हाथ हटाया और झुक कर उसके गले को वह नीला हिस्सा चूम लिया.

''तुम पागल हो,'' वह फुसफुसाए.

''और तुम कायर,'' वह खिलखिलाई और एक झटके से अविनीश भाई से लिपट गई. उसने अविनीश भाई के गले की खाल अपनी दांतों में दबा ली. अविनीश भाई हल्के से कराहे. वह उसी तरह लिपटी थी उनसे जैसे पूरा खून चूस लेगी उनका...बोटी निकाल लेगी उनकी. उसके दांत अविनीश भाई के गले में धंसते जा रहे थे...अचानक चीखकर अविनीश भाई ने एक झटके से उसे अलग कर दिया.

वह अलग हुई तो मैंने देखा उसे. वह हांफ रही थी... बाल खुलकर उसके चेहरे पर आ गए थे...चांद पूरी तरह उसके चेहरे पर था और उसकी रोशनी में उसकी आंखें भयानक तरीके से चमक रही थीं...जैसे शिकार को देखकर शेरनी की आंखें चमकती हैं. होंठ खुशी से फैले थे...

''...जंगली''...अविनीश भाई दर्द से बुदबुदाए.

''हां... तुम्हारी जंगली,'' वह पागलों की तरह खिलखिलाकर हंसने लगी. मुझे लगा जैसे वह अभी एक पल में रूप बदल लेगी—किसी जादूगरनी की तरह अपनी असली सूरत में आ जाएगी...जैसे कहानियों में कोई दुष्टात्मा रूप बदलकर किसी का खून चूस लेती है...उसी तरह उसके चेहरे की नसें सूजी हुई थीं. मेरे अंदर का सारा खून बर्फ बन गया था. डर से मेरे पांव कांपने लगे थे. मैंने भय से इधर-उधर देखा...कोई नहीं था. पूरा पुल सन्नाटे में डूबा था. सब कुछ सफेद कफन जैसी चांदी से ढका था...मेरा छोटा खरगोश भी.

मुझे पता भी नहीं कि कब ऐसा हुआ. पर वह खरगोश अब अकसर मेरे साथ रहने लगा था. कभी मेरी पलकों पर, कभी उंगलियों की पोरों पर और कभी नसों में बहते खून के अंदर. रात होती...सपने आते और वह फुदकने लगता...कभी चांद पर कभी फूल के गुच्छे पर. रास्ते में चलते हुए वह कभी किसी सूखे टूटे पत्ते पर बैठ जाता...कभी किसी पत्ती की नोंक पर टिकी ओस की बूंद में होता और कभी मेरी आत्मा की सलवटों पर. मृत्यु धीरे-धीरे मेरे अंदर भी उतर रही थी. मैं चुप था...हैरान था.

एक दिन वह स्कूल के बाहर मिली मुझे. उसका चेहरा धूप से लाल था... हल्के पसीने में डूबा...माथे पर कुछ बाल चिपके थे. मैंने उसे देखा. वह मुझे ही ढूंढ़ रही थी. मुझे देखकर एकदम से वह मेरे पास आई.

''क्या हुआ... अविनीश कहां है?'' उसने पूछा. मैं उसे चुपचाप देखता रहा.

''दो दिन से मिला नहीं...''

''पता नहीं... मैं भी नहीं मिला उनसे.''

अचानक वह रुआंसी हो गई. उसका चेहरा फूल गया. आंखें धीरे-धीरे भीगने लगी. ''वह

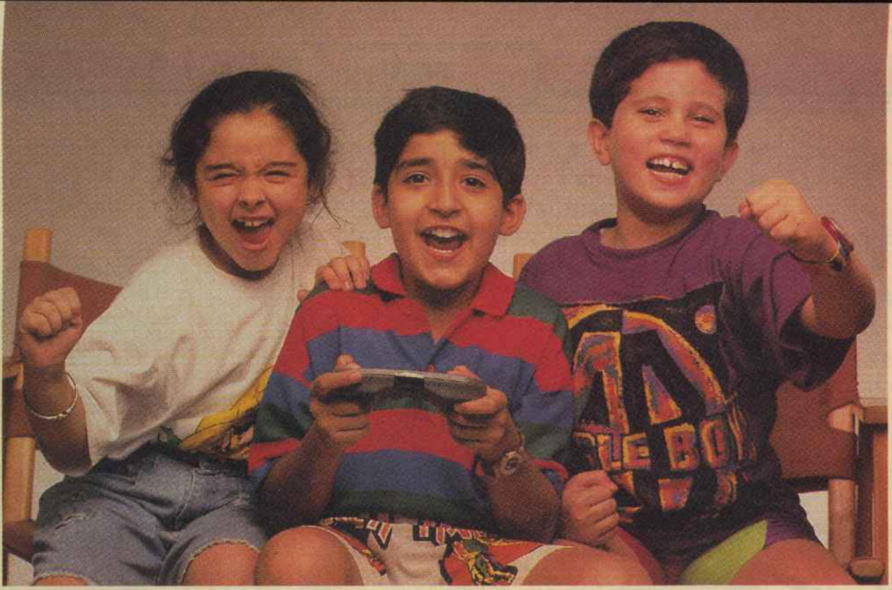

गोल्डस्टार ऐसा VCP लाए जो आपके बच्चों को गेम्स खिलाए !

पेश है घरेलू मनोरंजन की दुनिया में नया तहलका ! गोल्डस्टार वीडियो कैसेट प्लेयर-एवं-वीडियो गेम प्लेयर। वी.सी.पी. के रूप में इससे बेहतर दुनिया में कोई और नहीं। क्योंकि इसमें हैं ऑटो हेड क्लीनिंग और डिजिटल ऑटो ट्रैकिंग जैसे फ़ीचर्स। एकदम नवीनतम।

इसके स्लॉट में गेम-कार्ट्रिज डालें, और फिर देखें कि यह पलक झपकते ही कैसे रोमांचक वीडियो गेम-प्लेयर में बदल जाता है ! जो आपके बच्चे को (और आपको भी !) मनोरंजन की एक नई दुनिया में ले चलेगा। जी हां, बच्चों, बड़ों और पूरे परिवार के भरपूर मनोरंजन के लिए।

गेम कार्ट्रिज मुफ़्त

विश्व का पहला

VCP प्लस वीडियो गेम

Brought to India by :
BESTAVISION ELECTRONICS LTD.
6-B, Mathura Road, Jangpura, New Delhi-110 014.
Phone : 4631456 Fax : 91-11-4627350.
BRANCH SALES OFFICES: DELHI: 4631456, **SONIPAT:** 7282630, **LUDHIANA:** 844356, **LUCKNOW:** 79179, **GHAZIABAD:** 723450, **JAIPUR:** 517534, **CALCUTTA:** 349485, **BHUBNESHWAR:** 406732, **INDORE:** 468756, **PATNA:** 226183, **AHMEDABAD:** 441413 (PP), **GUWAHATI:** 541843, **BOMBAY:** 4090039.

GoldStar

140 देशों की पसंद
अब भारत में

Arms Communications/BT/76/7/94 Hn.

आया क्यों नहीं..." वह बुदबुदाई, "ऐसा तो नहीं होता."

"हमें नहीं पता."

"अच्छा रुको," उसने पर्स खोलकर एक कागज, कलम निकाला, "तुम उसे यह चिट्ठी देना." वह कागज पर कुछ लिखने लगी. मैंने इधर-उधर देखा. नीम के नीचे हम खड़े थे. स्कूल तेजी से खाली हो रहा था. बच्चे घरों को लौट रहे थे.

"लो," उसने कागज मोड़कर मेरी जेब में ठूंस दिया. फिर पर्स से मीठी गोलियों का एक पैकेट निकाला, "यह भी लो." वह धीरे से मुस्कराई. मैंने सिर हिलाया, "अरे लो." उसने मेरी जेब में वह गोलियां भी ठूंस दी और धीरे से झुककर मेरा गाल चूम लिया.

घर आकर मैंने बस्ता फेंका और सीधे ऊपर अविनीश भाई के कमरे की ओर भागा. अविनीश भाई पलंग पर लेटे थे...कंबल में दुबके. पूरे कमरे में अंधेरा था...सिर्फ ऊपर के रोशनदान से थोड़ी-सी रोशनी अंदर गिर रही थी. आहट सुनकर अविनीश भाई ने आंखें खोलीं. हल्के अंधेरे में मैंने उनके चेहरे को देखा...लाल हो रहा था जैसे कोई चीज अंगारे पर तप रही हो...मुश्किल से आंखें खोल पा रहे थे अविनीश भाई...

"क्या हुआ?" पलंग पर चढ़कर मैंने उनका माथा छुआ...भयानक तरीके से गरम था.

"तुम्हें तो बहुत तेज बुखार है."

"हां," अविनीश भाई ने मेरे कंधे का सहारा लिया और थोड़ा उठ गए. अधलेटे-से.

"खिड़की खोल जरा," उन्होंने इशारा किया. मैंने उठकर खिड़की खोल दी. दोपहर बाद की धूप का बड़ा-सा टुकड़ा अंदर कूद आया.

"स्कूल से सीधे आ रहा है क्या?"

"हां," मैंने जेब से चिट्ठी निकालकर अविनीश भाई को दी.

"क्या है?"

"उसी ने दी है."

"स्कूल आई थी?"

"हां... तुम उससे दो दिन से मिले नहीं... इसलिए.."

"कैसे मिलता... हालत देख रहा है."

मैंने फिर उनके माथे पर हाथ रखा, "नीचे मां को बताया?"

"हां," अविनीश भाई हंसे, "वह देख," उन्होंने कोने की मेज की ओर इशारा किया, वहां शीशी में दवा...कैप्सूल रखे थे. "सब ले रहा हूं."

"मैं खाकर आता हूं," मैं उठ गया.

"हां...फिर जरा सिर दबाना मेरा."

अविनीश भाई लेटे और...कंबल में दुबक गए.

दूसरे दिन वह फिर मुझे स्कूल के बाहर मिली...उसी तरह धूप में खड़ी पसीने से भीगती.

मुझे देखते ही तेजी से मेरी ओर आई.

"क्या हुआ...चिट्ठी दी तुमने?" वह बोली.

"हां...बीमार हैं अविनीश भाई ...बुखार है," मैंने कहा.

"बुखार..." वह बुदबुदाई, "सुनो...एक काम करोगे मेरा"...उसने मेरा चेहरा फिर अपने हाथों में दबा लिया...बिलकुल झुक गई मेरे ऊपर, "मुझे ले चलोगे अविनीश भाई के पास?" उसकी गरम सांस मेरे चेहरे पर टपक रही थी.

"...पर तुम्हें भी तो घर मालूम है."

"नहीं... तुम साथ चलो...मेरे अच्छे राजा," उसने मेरा माथा चूमा और मुस्कराई.

"चलो."

वह अचानक रुकी, "कोई पूछेगा तो क्या कहेंगे?"

"क्या कहूं?"

"कह देना तुम्हारी टीचर हूं," मैंने सिर हिलाया. वह मेरे साथ स्कूल के रिक्शा पर बैठ गई. एक हाथ बढ़ाकर उसने मुझे घेरे में ले लिया. मैंने उसे देखा. वह चुप थी, बिलकुल...आंखें गीली-सी थीं...जैसे कोशिश

करके आंसू रोक रही हो. बाल हवा में उड़ रहे थे. वह होंठ दबा रही थी...उसके होंठों के नीचे की खाल कांप रही थी. मैंने सिर घुमा लिया. भीड़-भाड़ वाली सड़क से हमारा रिक्शा गुजर रहा था.

"घर में कौन होगा?" उसने धीरे से पूछा.

"अविनीश भाई की मां, बहन...छोटा भाई... उनके पिता नहीं होंगे," मैंने अपनी सहज बुद्धि से उसको आश्वस्त करने के भाव से यह जोड़ दिया. वह इस बात से कुछ आश्वस्त भी हुई. फिर चुपचाप सामने देखने लगी. कुछ देर में रिक्शा गली के सामने रुका. हम उतर आए. उसने मेरा हाथ पकड़ लिया...कसकर. मुझे लगा उसकी हथेली पसीने से भीग रही है...भय या घबराहट से वह बेचैन थी...वह इस तरह क्यों डर रही है, मैं समझ नहीं पाया.

अविनीश भाई के कमरे में जाने के दो रास्ते थे. एक तो सीधा अविनीश भाई के घर से और दूसरा मेरे घर के आगंन के छोटे दरवाजे से. अविनीश भाई के घर से जाने पर नीचे सब मिलते. मेरे घर के आगंन से कोई नहीं...चुपचाप छोटे फाटक से होकर सीढ़ी चढ़कर ऊपर अविनीश भाई के कमरे में पहुंच सकते थे.

"चुपचाप चलें?" मैंने पूछा.

"तुम ऐसा कर सकते हो?" उसने मुझे देखा.

"हां...हमें कोई नहीं देखेगा," मैं धीरे से फुसफुसाया.

उसने राहत की एक लंबी सांस ली.

"आओ," मैंने उसका हाथ पकड़ा और अपने घर का दरवाजा खोलकर झांका. मेरे आने के समय मां दरवाजा खुला छोड़ देती थी. आंगन खाली था बिलकुल. मां रसोई में मेरे लिए खाना गरम करती होती थी. मैंने उसका हाथ खींचा और तेजी के साथ लगभग उसे घसीटता हुआ छोटे-से फाटक से ऊपर की सीढ़ियों पर आ गया. वह हांफ रही थी. सीढ़ियों पर ठिठककर गहरी सांसें लेने लगी. सीढ़ियों पर अंधेरा भी था. हमेशा रहता था. हम अभ्यास से दौड़ते हुए चढ़ जाते थे.

"धीरे-धीरे आओ," मैं फुसफुसाया.

उसने मुझे फिर चिपका लिया और मेरे सहारे से धीरे-धीरे चढ़ने लगी. पुराने तरह की अंधेरी सीलन भरी चौड़ी सीढ़ियों पर दबे पांव हम चुपचाप चढ़ने लगे. कुछ सीढ़ियां चढ़ने के बाद बाएं हाथ पर दरवाजे से अविनीश भाई का कमरा था. कमरे के दरवाजे पर मैंने हाथ रखा. अंदर कल की तरह ऊपर रोशनदान से हल्की रोशनी गिर रही थी. अविनीश भाई लेटे थे. दरवाजे पर रुक कर मैं फुसफुसाया,

"अविनीश भाई..."

अविनीश भाई ने मुझे देखा और उठ गए.

"आ," उन्होंने हाथ का इशारा किया. मैं दरवाजे से हट गया. वह एकदम से अविनीश भाई के सामने आ गई. अविनीश भाई उछल कर बैठ गए. वह वहीं दरवाजे पर खड़ी अविनीश भाई को देखती रही. एक क्षण के लिए कमरे में सन्नाटा छा गया. अंधेरे में रोशनदान से आती हल्की रोशनी कांप रही थी. तेज सांसें उछल रही थीं...उसकी...अविनाश भाई की और बेवजह मेरी भी.

वह चुपचाप अविनीश भाई को घूर रही थी. अविनीश भाई की दाढ़ी बढ़ गई थी...बाल उलझे थे, चेहरा सूख गया था...होंठों पर पपड़ी जमी थी और आंखें दर्द से थोड़ी बंद-सी थीं. मैं उसे देख रहा था. अब वह फिर बदल चुकी थी. उसके चेहरे पर एक लाजवाब मजबूती आ गई थी...आंखें बिलकुल जमी थीं अविनीश भाई पर. धीरे-धीरे पांव बढ़ाती वह अविनीश भाई के पास आई....कुछ क्षण चुपचाप खड़ी रही.

"मुझे छुओ," वह धीरे से बोली...उसकी आवाज ऐसी थी जैसे कोई सांप झाड़ी में सरसराता हुआ निकल गया हो.

"छुओ," उसने फिर कहा. वह एकदम पास आ गई, अविनीश भाई के. अविनीश भाई ने हाथ बढ़ाकर उसकी हथेली पकड़ ली. अविनीश भाई के छूते ही वह जैसे पागल हो गई. अविनीश भाई की हथेली अपने हाथों में दबा कर वह उनकी उगंलियां चबाने लगी...चूमने लगी...उसी तरह अपनी आंखों से छुआने लगी. फिर एकदम से वह अविनीश भाई पर गिर पड़ी...बेजान...लाश जैसी...उसकी दोनों आंखों से आंसू बह रहे थे.

वह रेलिंग पर झुकी थी. उसके एक हाथ पर अविनीश भाई का हाथ रखा था. मैं अलग हो गया. वह रो रही थी. "तुम पागल हो." वह फुसफुसाए. "और तुम कायर," वह खिलखिलाई.

मैं चुपचाप सहमा-सा दरवाजे की आड़ में हो गया. बस्ता अभी तक मेरी पीठ पर लदा था. मैं भी कमरे में था, वह यह भूल चुकी थी. बस, बेसुध-सी अविनीश भाई की देह पर हाथ फेर रही थी. अविनीश भाई थके, पस्त चुप लेटे थे. वह खेल रही थी उनसे...जहां चाहती जैसे चाहती. उनके बालों से, देह से...उन्हें सहलाती...चूमती...काटती...रोती हुई. उसके बाल खुलकर चेहरे पर बिखर गए थे. थोड़ी देर में वह हांफने लगी. अविनीश भाई ने उसे पलंग पर बैठा दिया.

"बैठ जाओ...कोई आ सकता है," वह बुदबुदाए.

वह एकदम से सामान्य होने लगी. पलंग पर बैठकर अपने बाल बांधने लगी. आंसू पोंछे उसने. मैं दरवाजे के पीछे खड़ा सहमा-सा चुपचाप उसे देख रहा था. रोशनदान की धूप उसके चेहरे के एक हिस्से पर गिर रही थी. गले के नीचे वह अंधेरे में डूबी थी, जैसे एक कटा हुआ सिर हवा में तैर रहा हो—धूप में चमक रहा हो.

"सुबह से कुछ खाया तुमने?" अविनीश भाई ने पूछा उससे.

"नहीं," उसने सिर हिलाया.

उसके होंठों पर पपड़ी जमी थी...सूखी चटकती हुई.

मुझे लगा उसने शायद पानी भी नहीं पिया है.

"कुछ खाओगी?" अविनीश भाई ने फिर पूछा, "बंदू ले आएगा."

"नहीं," वह उठ गई, "मैं चलूंगी..." उसने धीरे से सिर झुकाकर कहा, "तुम्हें देख लिया...बस..."

अब वह फिर बदल चुकी थी. संयत...शांत और समझदार-सी लगती हुई. अविनीश भाई पलंग से उतर गए और मेरे पास आए.

"इसे बाहर पहुंचा दो," धीरे से कहा उन्होंने. मैंने सिर हिलाया. अविनीश भाई ने उसके कंधे पर हाथ रखा और मुस्कराए.

"कल मैं आऊंगा."

उसने एक बार अविनीश भाई को देखा फिर सिर झुका लिया. मैंने उसका हाथ पकड़ा और सीढ़ी से चुपचाप उसी तरह छोटे दरवाजे से निकाल कर बाहर छोड़ आया.

आंगन उसी तरह खाली था.

•••

पतझर के बाद की नंगी शाखों पर नए पत्ते आ चुके थे. दिन लंबे, उबाऊ और धूल भरे होते थे. रातों का आसमान साफ, असंख्य तारों से चमकता रहता था. मेरी परीक्षाएं शुरू होने वाली थीं. मैं किताबों में डूबा रहता. अविनीश भाई भी किसी बड़ी परीक्षा की तैयारी में जुटे थे, रात-दिन पढ़ते.

इस बीच दो-तीन बार वह मेरे स्कूल से बाहर मिली. अब वह तभी मिलती जब उसे अविनीश भाई के घर आना होता. उसका भय धीरे-धीरे दूर हो गया था. पत्र देने या कुछ कहने की अपेक्षा वह सीधे मिलने ही आ जाती. मैं उसे अविनीश भाई के घर पहुंचाने का माध्यम बन गया था. उसी तरह स्कूल के रिक्शे पर हम बैठते फिर अपने घर आकर मैं चुपचाप दरवाजा खोलता और आंगन के छोटे दरवाजे

से उसे ऊपर सीढ़ियों पर पहुंचा देता. अब मैं उसको ऊपर कमरे तक छोड़ने भी नहीं जाता. अब सीढ़ियों पर चढ़ने में उसे मेरे सहारे की जरूरत भी नहीं होती. उन अंधेरी, घूमती, सीलन भरी पुरानी सीढ़ियों पर वह हमारी तरह अभ्यास से चढ़ने लगी थी. अकसर वह ज्यादा देर तक रुकने लगी थी. कभी-कभी मैं ऊपर देखने जाता तो अविनीश भाई के कमरे का दरवाजा बंद मिलता. मैं चुपचाप लौट आता. अविनीश भाई ही थोड़ी देर बाद ऊपर से मुझे आवाज देते... इशारा करते... वह सीढ़ियों से नीचे आती और मैं उसे घर के बाहर निकाल देता.

कभी वह पहले से मुझसे तय कर लेती या अविनीश भाई बता देते कि आज दोपहर को सोना मत...दो बजे वह आएगी. मैं भयानक लू और धूप में आंगन में घूमता रहता. मां अंदर चीखते-चीखते सो जाती...पर मैं कर्त्तव्यबोध और उत्तरदायित्व के महत्व को समझता हुआ झुलसता रहता. बिलकुल धीरे-से कोई दरवाजा खटखटाता. मैं दौड़ कर दरवाजा खोलता. वह धूल से भरी...पसीने से नहाई..सुर्ख चेहरा लिये खड़ी होती. थोड़ा-सा सिर ढके. मैं उसे जल्दी से सीढ़ियों पर धकेल देता...उस लंबी खाली दोपहर में वह बहुत देर तक अविनीश भाई के साथ रहती.

मैं कितनी ही देर खाली आंगन में घूमता रहता. एक नई तरह की बेचैनी से छटपटाता. मेरी उदासी के साथ-साथ चुपचाप फुदकता बस एक छोटा खरगोश होता.

उस दिन दोपहर से ही आसमान का रंग बदल गया था.

मृत्यु चुपचाप आई थी और हमेशा की तरह ऊपर अविनीश भाई के कमरे में चली गई थी. मां मुझे बाद में एक रिश्तेदार के घर पकड़ कर ले गई, इसलिए लौटने में देर हो गई थी. अंधेरा होने से पहले ही हम लौट आए थे. अभी समय था...तोते लौटे नहीं थे, इसलिए मैं छत पर पहुंच गया था. लेकिन जैसे ही पहुंचा वैसे ही एक तरफ से आसमान भूरा होना शुरू हो गया था...और देखते ही देखते भयानक आंधी उठने लगी. क्षण भर में ही आकाश की पतंगें उतर गई थीं. मैं चुपचाप बड़ी खाली छत पर बैठा आंधी देख रहा था. अद्भुत था सब मेरे लिए...चारों तरफ एक विशाल रेत का बवंडर उठ रहा था...रेत की एक दीवार बनती...मेरी तरफ दौड़ती और पार हो जाती. कागज के टुकड़े...मिट्टी के कण...पेड़ों के पत्ते...सब आसमान तक उछल रहे थे. टिनें खड़खड़ करतीं...खिड़कियों के खुले दरवाजे चीखते...हिलते...कांपते पेड़ जैसे वहशी हो गए थे. अंधेरे में सब कुछ भयानक, रहस्यमय और तिलिस्मी लग रहा था. मेरे अंदर एक खालीपन उतरने लगा. ठंडा...भारी और धीरे-धीरे नसों में लहू के साथ रेंगता हुआ. मैं वहीं मुंडेर पर लेट गया. धूल से ढका पूरा आकाश मेरी आंखों के आगे था... एक परदे में छुपता-निकलता. कुछ ही क्षणों में बिजली चमकने लगी... बादल गरजने लगे. मैं हैरान-सा देख रहा था वह जादू... वह दुनिया. आकाश पर तड़तड़ाती एक लकीर चमकती और आर-पार हो जाती.... आकाश का वह हिस्सा एक विराट चमक से भर जाता... हिस्सों में बंट जाता. बादल एक-दूसरे से टकराते, चीखते. चारों तरफ भयानक सन्नाटा था.... धूल थी, बिजली की चमक थी, बादल थे.

कुछ ही देर में बूंदें गिरने लगीं. आंधी की धूल उसके नीचे थम गई. सब कुछ साफ और नई महक से भर गया. तेज हवा के साथ मेरा पूरा शरीर बारिश से ढकने लगा. उस अंधेरी रात में छत पर अकेला लेटा मैं बारिश में भीग रहा था. मेरे चारों ओर सब कुछ कंपाने वाला, जादुई और सुंदर था. तेज हवाएं...भयानक पानी और आकाश पर कौंधता पीला फूल. धीरे-धीरे मेरी देह सुन्न होने लगी...एक बर्फ की नदी उतरने लगी अंदर. बारिश की बूंदों से और अधिक उफनती...गहरी होती. धीरे से आंख बंद कर ली मैंने...एक विराटता थी चारों ओर...अनंत...असीमित. उस महाशून्य में धीरे-धीरे मैं नष्ट हो रहा था...नष्ट हो रही थी मेरी संज्ञाएं...चेतना...मैं स्वयं...मेरा होना...सब कुछ खत्म हो रहा था....बस एक अंधकार था....तरल...कांपता....उस अंधकार में कौंधता एक सफेद टुकड़ा...एक छोटा खरगोश...चमकदार हल्के सुनहरे रोओं वाला. उस पर रुकी चांदनी...कभी बारिश की बूंदें...कभी धूप. घटता... बढ़ता... कभी पूरी देह बनता हुआ...कभी कोई मांस-पिंड.... कभी घाटी... कभी पर्वत... नंगा... निर्वसन.... बिलकुल साक्षात... मैं छू सकूं... चबा सकूं... इतनी दूरी पर..मेरी बेसुध... सुन्न देह पर नाचता... फुदकता.... मुझे रौंदता, मुझे चूमता...काटता...एक गंध के गुच्छे में डूबा.

धीरे-धीरे मेरी सांस रुकने लगी... एकदम से छटपटाकर उठ बैठा मैं... कुछ गहरी सांसें ली मैंने. फिर चारों ओर देखा. बारिश उसी तरह थी. मैं जहां लेटा था वहां पानी भर चुका था. हवा रुक गई थी...अब न बिजली थी, न बादलों का शोर. एक भयानक सन्नाटा था अब चारों ओर...अंधेरे में डूबा...गीला सहमा-सा. मेरा सिर भारी हो रहा था...बदन टूट रहा था. लड़खड़ाते हुए मैं उठा...मुंडेर से नीचे कूदा और छत से उतरकर नीचे सीढ़ी पर आ गया. अंधेरी चौड़ी सीढ़ियों पर मैं दीवार का सहारा लेकर उतर रहा था. अविनीश भाई के कमरे के आगे से निकला तो दरवाजा बंद था. मैं एक क्षण रुका...मृत्यु तो दोपहर को आई थी...इतनी देर कभी नहीं रुकती थी...फिर...? एक दरार से रोशनी की लकीर बाहर गिर रही थी. कांपते हुए मैं आगे बढ़ा, चुपचाप दरवाजे की दरार से आंख चिपका दी.

मृत्यु अंदर लेटी थी....नंगी, सफेद...बिलकुल. अविनीश भाई झुके हुए उसके पेट के मेरे छोटे खरगोश को चूम रहे थे. उसी रेत के सांप की तरह सिकुड़े...कुंडली मारे. उनकी जीभ घूम रही थी उस पर. मेरी चीख निकल गई. मैं लड़खड़ाकर पीछे हटा. मेरी देह का खून जम गया. पसीने में डूबा...मैं देर तक हांफता रहा फिर दौड़ते हुए नीचे उतर आया.

पूरी रात वह सांप मेरी आंखों में नाचता रहा... जीभ निकाले एक छोटे खरगोश को कुंडली में लपेटे हुए घूमता.

अगली दोपहर फिर भयानक सन्नाटा था. मृत्यु फिर आई. मैंने दरवाजा खोला. वह पसीने में भीगी थी...धूप से लाल. मुझे देख कर मुस्कराई वह. बीच के छोटे वाले दरवाजे से हम अंदर आए. सीढ़ियों पर अंधेरा था. एक क्षण ठिठके हम. फिर वह ऊपर जाने लगी. अचानक मैंने उसका हाथ पकड़ लिया. उसने मुस्करा कर मुझे देखा. मैंने आंखें झुका कर छोटे खरगोश को देखा. वह सांस ले रहा था...मुझे बुला रहा था. मैं जानता था कि वह मेरा है...उसकी चांदनी...बारिश...धूप...सब मेरा था. मैंने धीरे से उसे अपनी मुट्ठी में जकड़ लिया. एक क्षण वह कांपा...जैसे मेरी जकड़ से छूटना चाहता हो. मैं उसे देखता रहा फिर मैंने अपने होंठ उस पर रख दिए...उसे चूमा और अपने होंठ वहीं घिसता रहा.

वह एकदम से चौंकी. फिर धीरे से उसने अपने हाथों में मेरा सिर पकड़ा और अपने पेट में धंसा लिया...उस गंध के गुच्छे में मेरी सांस रुकने लगी. वह धंसता जा रहा था मेरे अंदर. छटपटाकर मैंने सिर उठाकर देखा. उसकी आंखें चमक रही थीं...जैसे उस रात पुल पर थीं...उसी आनंद से भरी...उसके होंठ हल्के खुले थे...हल्के से कराह रही थी वह. वह बदल रही थी... जादूगरनी की तरह. मुझे लगा बस अब वह मेरे गले में अपने दांत धंसाने वाली है...''तो यह छोटा खरगोश मेरा ही है...'' मैं बुदबुदाया...''सिर्फ मेरा...'' मैं एकदम से उससे अलग हुआ और उछलकर दरवाजे से बाहर निकल आया. पूरी ताकत से दौड़ता हुआ मैं गली के बाहर सड़क पर आ गया. रुककर मैंने मुंह उठाकर खूब गहरी सांसें लीं... और फिर उसी चबूतरे पर बैठ गया. कुछ देर बाद सिर उठाकर मैंने देखा.

सामने सांडे वाला उसी तरह सांप...गिरगिट बिछाए बैठा था. मैंने देखा आज रेत का वह सांप दूसरे सांपों के बीच बिलकुल निचुड़ा...सूखा पड़ा था. ■

कर्ल-ऑन रोमांटिक के साथ हनीमून कभी खत्म ही नहीं होता

गद्दे

हनीमून खत्म भी हो जाये तो जरूरी नहीं कि रोमांस भी खत्म हो जाये नये कर्ल-ऑन रोमांटिक गद्दे आपकी शादी का रोमांस हर रोज का रोमांस बनायें.

ये वे गद्दे हैं जो ज्यादा मुलायम, ज्यादा संवेदी और क्या आरामदायक बनाये गये हैं. ऊपर से साटिन की नर्म-शानदार टेपेस्ट्री चार चांद लगाये. आपके मूड के अनुसार रंग-धुँधला नीला. बादली गुलाबी. चौंधाता लाल. मस्ताना नीला और एक से बढ़कर एक.

ये देते हैं मस्तानी, सुहानी नींद. रात-दर-रात.

नए
Kurl-on®
रोमांटिक गद्दे
जिंदगी भर का प्यारा हमसफर

कर्नाटक कंज्यूमर प्रॉडक्ट्स लि०,
(महाराष्ट्र अपेक्स कॉर्पोरेशन लि० का सहायक निगम)
III तल, नार्थ ब्लॉक,
मणिपाल सेंटर, 47, डिकन्सन रोड,
बेंगलोर - 560 042
फोन : 5587132/168/235/262 फैक्स : 91-80-5587189

MASS/KCPL/084/94

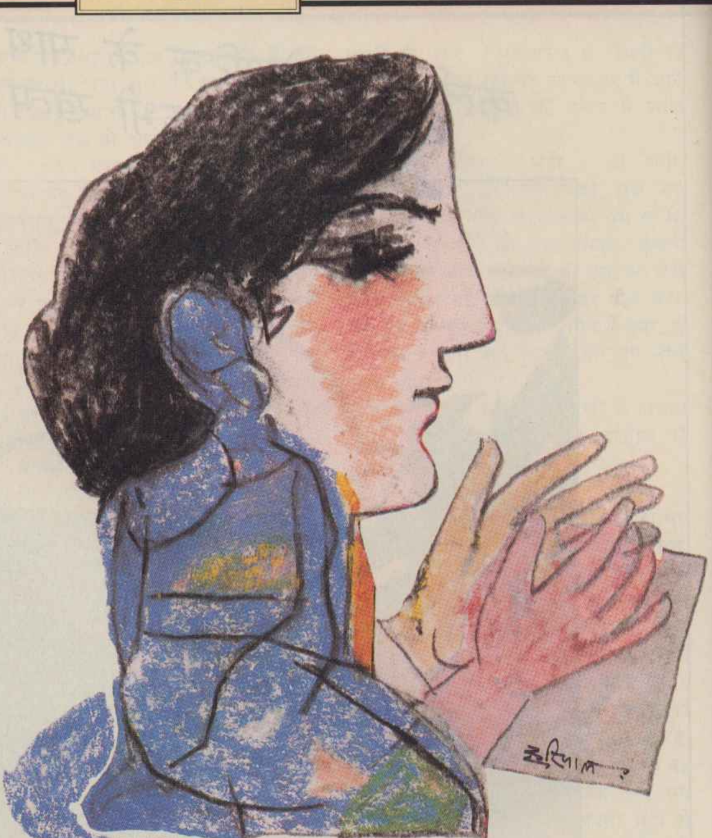

कन्फेशन

• संजीव • चित्र: हरिपाल त्यागी

शोषण के विरुद्ध उठने वालों स्वरों को चुप करने, उसके खिलाफ ताकतों को एकजुट करने के प्रयासों को कुचलने की साजिश इतनी बारीक होती है कि उसका पता चलते-चलते अकसर बहुत देर हो चुकी होती है.

"केलूडांगा कोलियरी के हमारे बहादुर मजदूर साथियो!" बहुत सधे हुए स्वर में पल्लवी दी ने भाषण शुरू किया. 'निजीकरण' के विरुद्ध आगामी सात तारीख से होने वाली लगातार हड़ताल के लिए श्रमिकों को मानसिक रूप से पूरी तरह तैयार करने की जिम्मेवारी उन पर डालकर पूरी तरह से निश्चित हो चुके थे दिल्ली में बैठे पति शीतल मुखर्जी. इस धुआंती समिधा को अपने भाषण से पूरी तरह धधका सकती हैं तो सिर्फ और सिर्फ पल्लवी दी. उन्हें मालूम है कि स्वर को कहां धीमा करना है, कहां तेज, कहां विनोद के पुट डालने हैं और कहां संवेदना को सहलाकर या टिटकारी देकर वांछित मनोवैज्ञानिक दबाव पैदा किए जा सकते हैं.

पृष्ठभूमि की संरचना करने के बाद उन्होंने उसे धीरे-धीरे आंच देनी शुरू की, "परिस्थितियों ने आज हमें जीवन-मरण के ऐसे नाजुक और निर्णायक मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया है जहां एक ही चीज बचती है—'करो या मरो'. सन् इकहत्तर में कोलियरियों का राष्ट्रीयकरण हुआ था, तब यह कहा गया था कि कोयला राष्ट्र की संपत्ति है, मगर आज वही सरकार उसे निजी मालिकानों को बेच रही है. हम पूछते हैं, क्या कोयला अब राष्ट्रीय संपत्ति नहीं रहा या आप लोग भेड़-बकरियां हैं जिसे पैसे लेकर वह किसी को भी बेच सकती है?"

चारों ओर से तालियां बज उठीं और 'सरकार मुर्दाबाद' के नारे लगने लगे.

"सरकार कहती है कि विदेशों से कोयला आयात करना उसके लिए कहीं ज्यादा लाभप्रद है, कि घाटे में चल रहे प्रतिष्ठानों का बोझ वह और नहीं ढो सकती, कि हमारे आका वर्ल्ड बैंक ने हमारे लिए पैसे देने से इनकार कर दिया है. एक निर्दोष मेमने को निगल जाने के लिए मगरूर भेड़िए के कितने-कितने बहाने! हालत यह है कि सूखते तालाब की मछलियों की तरह आज सारा केलूडांगा सतह पर किलबिला रहा है. हमारी नीलामी चल रही है और औने-पौने दाम में खरीदने के लिए देसी-विदेशी गीध मंडराने लगे हैं. हम यहां ऐलान करते हैं कि आपके प्रिय नेता शीतल मुखर्जी के जीते जी ऐसा हरगिज नहीं होने दिया जाएगा चाहे..." बोलते-बोलते सहसा पल्लवी दी की आंखों के आगे अंधेरा छा गया. जबान लड़खड़ा गई और वे वहीं भहरा गईं.

पहली उत्तेजना की जगह दूसरी तरह की उत्तेजना ने ले ली. सभा अपने आप भंग हो गई. जैसे-तैसे उन्हें गाड़ी में लादकर अस्पताल लाया गया.

चेक-अप करने के बाद डॉक्टर ने मुस्कराकर कहा, "घबराने की कोई बात नहीं, शीतल दा फिर बाप बनने वाले हैं."

"थर्ड सेंचुरी! हैट ट्रिक!" फोकला चटर्जी खुशी से उछल पड़ा.

"एक ईशू में शीतल दा एम.एल.ए. बने, दूसरे में एम.पी. और अब तीसरे ईशू में...? मिनिस्टर! हैट्स ऑफ."

नीम बेहोशी में सुनती हैं सारा कुछ पल्लवी दी. धीरे-धीरे खुलती हैं पलकें. सफेद दीवारें, सफेद एप्रॉन, सफेद चादर, सीने पर मंडराता सफेद फैन!

"कांग्रेचुलेशन मिसेज मुखर्जी! ये टॉनिक और दवाएं लिख दी हैं. बाकी, पत्तेदार हरी सब्जियां और पौष्टिक खुराक तो हैं ही एसेंशियल! टेंशन से बचें और टाइम-टू-टाइम चेकअप करा लिया करें. बल्कि हम खुद ही..."

पल्लवी दी अपने अशक्त हाथों से प्रेस्कृप्शन का कागज ऐसे थामती हैं, जैसे वह उनके पैदा होने वाली संतान का भ्रूण हो. नर्सें उन्हें सहारा देकर गाड़ी में बिठा रही हैं. मन थिर नहीं हो पा रहा है इस नई सूचना पर, 'यह बच्चा कैसे? शीतल ने तो...' अचानक हचके से व्याघात लगता है सोच को. गाड़ी शायद मजदूर धौड़े के पास गड्ढे में फंस गई है. ओह फिर वही अटपटापन. गाड़ी को घेरकर मजदूर-मजदूरिनों की भीड़ चापलूसी भरी टिप्पणियां करते हुए ऐसे घूरेगी जैसे अजायबघर देख रही हो. हालांकि अच्छी लगती है उन्हें ये टिप्पणियां मगर...

''पल्लवी दी को सुना...? कॉलेज के दिनों से ही अंगार हुआ करती थीं.'' कान खड़े हो गए हैं पल्लवी दी के, शायद कोई औरत बता रही है दूसरी औरत को.

''ये और अंगार?'' दूसरी बिचकी मारती है, ''हुंह! होगी कभी अंगार, यहां उस दलाल शीतल को गरम करने के सिवा हमने तो और कोई विशेषता नहीं देखी इस अंगार की.''

चिहुंक उठी हैं पल्लवी दी. भीड़ के धक्के पर चल पड़ी है गाड़ी. मुड़-मुड़कर ताक रही हैं, 'किसने कहा?' मगर गाड़ी के आगे बढ़ने के क्रम में धुंधलाता जा रहा है सारा कुछ. कौन थी मरदूद, जैसे खरोंचकर सचमुच का अंगार रख दिया हो उसने. पढ़ी-लिखी भी लगती है, उन्हें जानती भी है. कौन है यह?

नौकरानी गीता मझियाइन खाना लगा जाती है.

''सत्य और शिखा कहां है?'' अपने में खोयी हुई-सी पूछती हैं.

''उन्हें खिलाकर सुला दिया है मेम साब.''

जैसे-तैसे टूंग-टांगकर गट-गट पानी पीने लगती हैं पल्लवी दी. ''अरे आपने तो—'' बचा हुआ खाना देखकर पूछना चाहती है गीता, मगर मुद्रा देखकर सहम जाती है, ''वो...दिल्ली से साब का फोन आया था, बोला फोन करने को.''

''ठीक है.''

''फोन ठो को हियांई ले आएगा?''

''नहीं, तुम जाओ खाना खा लो और लाइट ऑफ कर सो जाओ.''

बेड पर लेटे-लेटे छत को निहार रही हैं बेमतलब-सी. इस आधी रात को मन बार-बार मुड़कर शाम वाली घटना की ओर क्यों देख रहा है? वे उस खयाल को झटककर तकिए में सिर गड़ाकर सो जाना चाहती हैं, मगर नींद क्यों नहीं आ रही? हां, याद आया, पहली पूछ रही थी, ''क्या यह वही पल्लवी जी हैं जो कॉलेज के दिनों में अंगार हुआ करती थीं?'' इसका मतलब है, वह उन्हें जानती है. स्मृतियों की अर्गलाएं खोलती, बंद करती हुई वे लौट आती हैं उन दिनों में... हां, उन दिनों वह कॉलेज के छात्र संगठन की सेक्रेटरी हुआ करती थीं और पिता साहा बाबू कामगार यूनियन के सक्रिय कार्यकर्ता! मां अपने पति और बेटी से हमेशा परेशान! बाप-बेटी में अगर बहस छिड़ जाती तो खाना-पीना तक भूल जाते दोनों. कौन-सा वर्ष रहा होगा? सन् सत्तर-इकहत्तर का. साहा बाबू कोलियरियों के राष्ट्रीयकरण के घोर समर्थक और पल्लवी दी ऐसे राष्ट्रीयकरण की मुखर आलोचक!

''तू नहीं समझेगी, सुन!'' साहा बाबू अपना अंतिम हथियार उठा लेते, ''रूस में रूसी क्रांति के पहले शाखालिन नामक एक स्थान था, जहां रूसी कैदियों को भूखा रखा जाता था. कोयले की खानों के मालिक कैदियों से बेगार करा के दुनिया भर का मुनाफा लूटते थे और रूसी सरकार को इसका पता भी नहीं था. अपने देश की हालत पर गौर करो, आज यहां सैकड़ों शाखालिन नहीं हैं? सी.आर. ओ. कैंप में पछांह और रायपुरिया मजदूरों को जिस तरह रखकर उनसे काम लिया जाता है, वह किस शाखालिन से कम है? जमीन राष्ट्र की, कोयला राष्ट्र का, श्रम राष्ट्र के मजदूरों का और मालामाल हो रहे हैं मालिक? राष्ट्रीयकरण से वह संपत्ति राष्ट्र की संपत्ति हो जाएगी, तब इन पर कुंडली मारकर बैठे सांपों को समाने के लिए बिल भी नहीं मिलेगा.'' वे भोले बच्चों-सा प्रतिशोध की भावना से भर उठते.

''अच्छा, सच-सच बताइए बाबा, स्वाधीनता के पहले भी आप लोग ऐसे ही बचकाने सपने देखा करते थे या नहीं?''

''तब जो न हो पाया, अब होगा. कोलियरियां, इस्पात, कपड़ा, बैंक, दवा, शिक्षा, सबका राष्ट्रीयकरण होना है,'' पिता का उत्साह हर व्यवधान के ऊपर मंडराता.

और जिस दिन कोलियरियों का सचमुच का राष्ट्रीयकरण घोषित हुआ, खुशी के अतिरेक में साहा बाबू को नींद तक न आई, हालांकि दूसरे ही दिन उनकी खुशी काफूर हो गई. रातोरात एटेंडेंस रजिस्टर आदि में लीपापोती हो चुकी थी, वर्षों पुराने मजदूरों के नाम रजिस्टर से गायब थे और काफी ऐसे नाम दर्ज हो चुके थे जिन्होंने कभी लठैती छोड़कर मजदूरी की ही नहीं, कइयों को गांव से बुला लाया गया था. साहा बाबू रिक्शे पर चोंगा बंधवाकर निकल पड़े थे. ''वर्षों के सताए हुए मजदूर साथियो! यह राष्ट्रीयकरण क्या हुआ, दलालों और गुंडों ने अपना उल्लू सीधा करना शुरू कर दिया. ये लुटावनराम, फोकला चटर्जी, मुश्तक़ीम और राजदेव सिंह कहां से आ टपके और लुटई, फेकू, हलीम और राजदेव दुसाध कहां चले गए? हम कामगार यूनियन की तरफ से ऐसे भ्रष्ट अफसरों और गुंडों को आगाह करते हैं कि वे या तो खुद सचाई को तसलीम करते हुए मजदूरों के हक को सम्मान दें वरना...''

अगली शाम को ही खून से सनी उनकी लाश लावारिस-सी सड़क पर पड़ी थी. काले बुरादों ने कितना लाल खून सोखा था, पता नहीं. बिलख-बिलखकर रोई थीं पल्लवी दी. रोते-रोते बेहोश हो गई थी मां.

पल्लवी दी ने उसी दिन कॉलेज छोड़ दिया. ठीक उसी मुकाम से उन्होंने पिता के अधूरे काम को फिर से शुरू किया, जहां उन्होंने छोड़ा था. धड़धड़ाती हुई मैनेजर और कस्टोडियन के कमरे में घुस जातीं और धांधली भरा रजिस्टर उनके मुंह पर मारकर चली आतीं. वे जिधर से गुजरतीं, लोग उठकर ताकने लगते, जिधर का रुख करतीं उधर ही हड़कंप मच जाता. सारी कोलियरी और सारी बस्ती उनकी थी. एक लीजेंड बन गई थीं पल्लवी दी.

दूसरी यूनियनों का दाना-पानी बंद! फिर एक दिन पुलिस आई, पल्लवी दी को वैन में बैठाकर ले जाने लगी. सारी बस्ती उमड़ पड़ी और वैन को घेर कर नारे लगाने लगी. लाचार पुलिस को छोड़ देना पड़ा उन्हें.

मैनेजर ने बुलाकर बाप की जगह नौकरी की पेशकश की, शर्त यह थी कि वे अब से कोई खुराफात नहीं करेंगी? पल्लवी दी ने मुंह टेढ़ा करके पूछा, ''कोई खैरात दे रहे हैं क्या? अरे पंद्रह-बीस हजार लेकर किसी को घुसा दें, वह आपका जीवन भर कुत्ता बना रहेगा. मेरी लड़ाई सिर्फ अपने लिए होती तो कब की हल हो चुकी होती. मेरी लड़ाई उस तमाम धोखाधड़ी और लूट के खिलाफ है, जिसे खत्म किए बिना यह बंद नहीं होने वाली. आपके पास इस बात का है कोई जवाब कि सैंतीस सौ की स्ट्रेंथ वाली इस केलूडांगा कोलियरी में चार हजार वर्कर कहां से आ गए? आप लोगों को शर्म भी नहीं आ रही कि सौ के लगभग पुराने मजदूरों की जगह भी आपने मिलते-जुलते नामों वाले दूसरे आदमी बहाल कर लिये हैं. कल को आपकी जगह कोई दूसरा बैठा दिया जाए इस चेयर पर तो आप क्या करेंगे? यह लूट और बेईमानी की संस्कृति किसी को नहीं बख्शती मिस्टर राय! न मजदूर बचेंगे, न प्रतिष्ठान, न देश, न दुनिया!''

''मेरे पास वक्त नहीं है, आप अपने डिमांड्स लिखित रूप में दे

सधे स्वर में पल्लवी दी ने भाषण शुरू किया, ''सन् 71 में खानों का राष्ट्रीयकरण किया गया था. कहा गया कोयला राष्ट्र की संपत्ति है... क्या अब वह राष्ट्रीय संपत्ति नहीं रहा?'' चारों ओर तालियां बज उठीं.

जाएं, हम उस पर विचार करेंगे," मैनेजर राय ने टरकाने वाली मुद्रा अख्तियार कर ली, "दूसरी यूनियनें चार्टर ऑफ डिमांड्स दे चुकी हैं."

"बरगलाने का ही नाम क्या प्रबंधन और यूनियन और न्यायालय है? हमने पहले ही लिखित रूप में डिमांड्स दे रखे हैं. ये रहा उसका रिसीविंग एक्नॉलेजमेंट! आपको अभी फैसला करना है—इसी वक्त!"

"हां अभी और इसी वक्त!" अपने समर्थन में किसी पुरुष कंठ को बोलता पाकर चौंक उठी थीं पल्लवी दी. देखा तो मान्यताप्राप्त यूनियन के सेक्रेटरी शीतल मुखर्जी दलबल सहित आ धमके हैं मैनेजर के ऑफिस में.

'पल्लवी दी जिंदाबाद!' फोकला चटर्जी ने आते ही नारा दिया.

'जिंदाबाद! जिंदाबाद!!'

'साहा बाबू अमर हैं.'

'अमर हैं! अमर हैं!!'

मैनेजर राय अवाक्! हैरत में बुदबुदाए, "आप तो..."

भोले मजदूर! छिन में गरम, छिन में नरम! कोलियरी के धौड़े-धौड़े में चर्चा रही, "आखिर शीतल बाबू को भी सपोर्ट करना पड़ा. अब मैनेजमेंट को झुकना ही पड़ेगा. राय का तो टिकट कटा ही समझो! रोज पट्टी पढ़ा रहा था स्साला! जांच कमेटी सात दिन में दूध का दूध और पानी का पानी कर देगी."

"हमने तो आपको बुलाया नहीं?" पल्लवी दी ने शीतल बाबू की परछाईं को देखते हुए कहा.

"आप क्यों बुलातीं? वो तो मेरा फर्ज था."

"लेकिन मैं अपने पिता के हत्यारों और मैनेजमेंट की पोसी यूनियन से बात नहीं करती."

"जिस दिन इत्मीनान हो जाए कि मैं निर्दोष हूं उसी दिन बात करें. अभी महज इतना ही देख लें कि हमारी चार्टर ऑफ डिमांड की पहली ही मांग है साहा बाबू के हत्यारों को गिरफ्तार करो. है या नहीं!"

दो यूनियनों का संयुक्त अभियान रंग लाया. सौ में से प्रायः पचास मजदूरों की बहाली हो गई, बाकी पचास ने अपने पैसे निकाल लिये. शीतल बाबू की तत्परता से पुलिस ने पुतलिया डंगाल से असलम और भीखू को गिरफ्तार किया, जिन्होंने पुलिस की पिटाई के बाद साहा बाबू की हत्या करने की बात स्वीकार कर ली. इस बीच पल्लवी दी को रात को उनके घर से किडनैप करने के लिए आए गुंडों के एक दल को फोकला चटर्जी के गश्ती दल ने गण धुलाई (जनता द्वारा सामूहिक पिटाई) करके पुलिस को सौंप दिया. इस तरह की क्रम-क्रम से हुई वारदातों में देर लगी पर पल्लवी दी का मान गलते-गलते गलने लगा.

शीतल बाबू ने एक दिन मीटिंग से साथ-साथ लौटते हुए कहा, "एक बात कहनी थी मगर आपने तो न बोलने की कसम खाकर दरवाजा ही बंद कर लिया है."

"कहिए," पल्लवी ने कहा.

"मैं एक पशु था पल्लवी, पशु!"

"क्या कहते हैं?"

"मुझे कन्फेश करने दो. आज तक नहीं, मगर तुम्हारे साथ काम करते-करते अब कन्फेश नहीं करूंगा तो मेरी आत्मा पर यह बोझ बना रहेगा. इसे पशु से इंसान बनाया तुमने. डर है, तुम्हारे बाद कौन संभालेगा मुझे."

चुपचाप चली जा रही थी पल्लवी. संयोग से आज वे दोनों ही अकेले थे. ऊंची-नीची जमीन, छोटी-मोटी झाड़ियां और जाड़े की शाम का सन्नाटा!

एक दिन साथ-साथ लौटते हुए शीतल बाबू ने कहा, "मुझे कन्फेश करने दो पल्लवी, नहीं तो मेरी आत्मा पर बोझ रहेगा. इस पशु को पशु से इंसान बनाया तुमने. डर है, तुम्हारे बाद कौन संभालेगा मुझे..."

"तुम कुछ तो बोलो."

"क्या बोलूं?"

"कुछ भी..."

पल्लवी दी ने बात को हल्का बनाते हुए कहा, "अगर यह चार्टर ऑफ डिमांड है तो छोड़ जाइए, हम इस पर विचार करेंगे."

"कब? मुझे आज और अभी चाहिए!" शीतल बाबू के होंठ फड़क रहे थे. अचानक उन्होंने पल्लवी दी के पांव पकड़ लिये, "पल्लवी, प्लीज! मैं सचमुच तुम्हें प्यार करता हूं. मैं एक उच्चकुल का ब्राह्मण अपनी जाति, अपना धर्म, अपनी संपूर्ण क्षमता तुम्हारे कदमों पर रख रहा हूं, स्वीकार लो तो धन्य हो जाऊं. इनकार न करना. मैं टूट जाऊंगा."

हो गई शादी. कई तरह से एक यादगार शादी. फोकला चटर्जी ने पी ली थी कि उसकी धोती के साथ शब्द भी लिथड़ रहे थे, "दो यूनियनें, दो शरीर, दो प्राण एक!" एक हिचकी से क्रम टूटा फिर शुरू हुआ, "दो नदियों, दो ज्योतियों का स... सं! 'गम' पर फिर हिचकी?, "अब देखते हैं, कौन साला आ-आ-ता है!"

सचमुच कोई सामने नहीं आया. मां भी नहीं. हां, शादी के प्रति अपनी मौन असहमति दर्ज करते हुए उसी शाम वे काशी चली गईं. पल्लवी दी को ठेस तो लगी मगर शीतल बाबू ने यह कहकर दिलासा दी, "मैं मना कर लाऊंगा, मैं!" हालांकि मां का कहीं अता-पता न चला. सिर्फ मरने के एक माह बाद काशी से एक सूचना भर आई. बहुत रोई थीं पल्लवी दी. शीतल बाबू ने समझाया, "ऐसे टूटने से काम नहीं चलेगा. मैं हूं न तुम्हारे साथ. फिर इतना बड़ा परिवार यह तुम्हारा पूरा कोयलांचल!"

विधानसभा का चुनाव सामने था. पल्लवी दी ने यूनियन के काम में खुद को झोंक दिया. क्वार्टर बने, सड़कें बनीं, नालियां बनीं, अस्पताल और स्कूल बने, इंसेंटिव जारी हुए. चर्चा थी कि अगर पल्लवी दी खड़ी हुईं तो बाकी लोगों की जमानत जब्त हो जाएगी. मगर नहीं! नामांकन भरने का समय आया तो पता चला कि उनके पांव भारी हैं. जमीन बनी हुई थी. शीतल बाबू एम.एल.ए. हो गए और पल्लवी को मिला मातृत्व—शीतल बाबू की पहली संतान 'सत्य' की मां!

"ये तो आपकी ही जीत है बोउदी. आप प्रेसीडेंट की तरह हुकुम भर दें, काम तो करेंगे हम—विधानसभा में शीतल दा, हियां यूनियन में हम!" फोकला चटर्जी अब 'देसी' से विलायती तक की दूरी पार कर चुका था.

"हम! माने दलाल फोकला चटर्जी अब यूनियन चलाएगा?" पल्लवी दी हैरान रह गईं.

"वैसे भी बोउदी, माइन्स ऐक्ट के अनुसार आप माइन के अंदर तो जा नहीं सकेंगी. आपको एक-ठो सजेशन देते हम. आप महिला सेल को देखिए न ! ओई तो सब गड़बड़ी का मूल है."

पल्लवी दी को पहली बार लगा कि वे शादी के जुए में काफी कुछ हार चुकीं. सत्य की देखभाल करें या यूनियन देखें. उन्होंने काम छोड़ा नहीं. जब भी आतीं, यूनियन और अफसरों में खलबली मच जाती. फिर भी फर्क तो पड़ा ही. फोकला चटर्जी उनकी सारी योजनाओं को दरकिनार करते हुए मैनेजमेंट का रबर स्टांप भर होकर रह गया था. वह ठेकेदारों से लेकर कोयले के ग्राहकों तक से पैसे लेने लगा है और कई बार पैसे की उगाही को लेकर दूसरी यूनियनों से मारपीट की नौबत तक आ गई है. यह सब वे आड़े-उलटे सुनतीं तो सबके सामने उसे फटकार देतीं. फोकला शीतल बाबू के आगे रोता, मगर शुकर था, शीतल बाबू पत्नी का ही पक्ष लेते.

"तुम इस चटर्जी को निकाल क्यों नहीं देते? वह सरेआम कहता फिरता है कि पैसे क्या मैं अकेले खाता हूं, साहब को भी देना पड़ता है. तुम्हारी और यूनियन दोनों की बदनामी!"

"मैं उस गधे को ऐसा सबक सिखाऊंगा कि सारी हेकड़ी गुम हो जाएगी. बस थोड़ा सब्र करो... इधर तुम कुछ ज्यादा ही हसीन होती जा रही हो," वे उन्हें घूरते हुए कहते.

"हटो भी. बरगलाने की कला कोई तुमसे सीखे," वह प्रकटतः यही कहतीं, मगर अंदर ही अंदर प्रशंसा से भीग जातीं.

"मुझे इस बार लड़का नहीं लड़की चाहिए, बेटी, तुम्हारी तरह तेजस्विनी!"

"पर मुझे नहीं! एक ही बच्चा पाल लें, वही बहुत है. फिर बाहर न देखूं तो तुम्हारे गण लोग यूनियन का सत्यानाश कर दें," पल्लवी दी कहतीं.

"कोई फर्क नहीं पड़ेगा. जैसे एक बच्चा संभालते हुए सारा कुछ संभाल रही हो, वैसे दो बच्चे संभालते हुए भी संभाल लोगी सारा कुछ! तुम 'ऑर्डिनरी' नहीं, 'एक्स्ट्रा ऑर्डिनरी' हो? यू कैन डू!"

और फिर पैदा हुई शिखा. भाग्यशालिनी रही बेटी. शीतल बाबू एम.पी. का चुनाव जीत गए. पल्लवी दी अब अपने बच्चे देखें, कि यूनियन? फिर इधर आए दिन कोई-न-कोई मीटिंग, समारोह, पार्टी! धीरे-धीरे पुरानी दुनिया से निकलकर वे एक नई ही दुनिया में समाती गईं. पुरानी दुनिया कटखनी थी, नई दुनिया में फूल ही फूल! थोड़ी-सी चर्बी, थोड़ी-सी ख्याति और थोड़ा-सा नशा!

'चाहते तो हैं बहुत कुछ करना, मगर क्या करें समय ही नहीं मिलता.' पल्लवी दी आईने के सामने खड़ी होतीं और एक संभ्रांत लाचारगी चेहरे पर पुत जाती. मगर यह दूसरों को सुनाने का रिहर्सल भर होता ताकि इसके बूते दूसरों की सहानुभूति अर्जित कर सकें. अब एलीट वर्ग की महिलाओं के सारे दांवपेंचों से वे वाकिफ हो चुकी थीं, जहां मन के भावों को छुपाकर ऊपर-ऊपर पॉलिश्ड बने रहना होता है. उन्हें इस बात का भान होता जा रहा था कि वे सभी की ईर्ष्या का केंद्र बनती जा रही हैं, हालांकि ऊपर-ऊपर से सभी चापलूसी करते हैं. मंजिल अब उनकी ठोकरों में थी. जो बात फोन कर देने भर से हो जाए उसके लिए आंदोलन का कटखनापन क्यों? कई बातें पार्टियों में हल होती हैं, राजनैतिक पार्टियों से नहीं. लायंस क्लब की सदस्यता की पेशकश को उन्होंने तीन बार ठुकराया ताकि उनका भाव बढ़े. चौथी बार ज्यादा कीमत वसूलकर उन्होंने स्वीकारा और इस भाव से स्वीकारा, जैसे उन्हें कृतार्थ किया हो.

मगर यह धौड़े वाली औरत की बिचकी भरी 'हुंह' और उस पर कोढ़ में खाज की तरह यह तीसरा बच्चा! दो बार तो चलो माना कि जैसे भी हो उनकी रजामंदी भी थी. सत्य और शिखा से यों भी उन्हें कोई शिकायत नहीं. मगर तीसरी बार भी—? यह तो छल है, सरासर विश्वासघात, जैसे अभिमन्यु को व्यूह बनाकर रिश्तों की वेदी पर प्यार के प्रपंच से मारा जाए. कहीं ऐसा तो नहीं कि यह सब सुनियोजित तरीके से शुरू से ही करता रहा था शीतल? अस्पताल के श्मशानी दृश्यों की रील फिर से खुलने लगती है, एक ईशू में शीतल दा एम.एल.ए. बने, दूसरे ईशू में एम.पी., तीसरे में... मिनिस्टर! 'और तुम पल्लवी?' कोई सवाल करता है मानो, 'हर बच्चे के साथ एक भ्रष्ट आदमी की पायेदान मात्र में रिड्यूस होती हुई—सिंपली ए स्केपगोट टू शीतल मुखर्जी.'

'नहीं, नहीं, ऐसा न कहो, मैं शीतल को तब न स्वीकारती तो वह फिर से पशु बन जाता. यही नहीं, उसने पांव पकड़कर कन्फेश किया था, भीख मांगी थी—मैं एक उच्चकुल का ब्राह्मण अपनी जाति, अपना धर्म, अपनी क्षमता, अपना सर्वस्व तुम्हारे कदमों पर रख रहा हूं, स्वीकार करो तो मैं धन्य हो जाऊं.'

'और तुमने उसे धन्य कर दिया! तुमने अपने पिता के हत्यारों को संदेह का लाभ देकर इल्जाम से बरी कर दिया. तुमने यूनियन के दलाल को गरीबों के मसीहा का तमगा दे डाला. तुम्हारी धधकती विद्रोही मुद्रा पर वह पानी डालता रहा और तुम उसे प्यार की फुहार बताती रहीं. वह तुम्हारा आकाश छीनता रहा और तुम इसे सुरक्षा मानती रहीं. क्रांतिकारी तेवर तुम्हारा, मगर इसे कैश किया किसने? समर्पिता हुई तुम, मगर रंग निखरा किसका? अखबार में छप रही उसकी जीवनी को तुमने नहीं देखा, कुलीन ब्राह्मण होकर भी शीतल जी ने एक दलित और बेसहारा कन्या से विवाह कर उसका उद्धार किया. दो नदियां मिलकर एक नहीं होतीं पल्लवी, एक नदी दूसरी का नाम तक सोख लेती है.'

'नहीं!' चीखना चाहती हैं पल्लवी दी, मगर आवाज गले में घुटकर रह जाती है.

पराजय का एहसास कुचले सांप-सा छटपटाते हुए फन पटक रहा है, 'ठीक है, मैं दिखा दूंगी कि...' हालांकि इसके आगे क्या होगा यह अभी स्पष्ट नहीं था. कसमसाते हुए बीतती है रात.

दूसरे दिन बच्चों को स्कूल विदा करने के बाद भी घर नहीं लौटतीं पल्लवी दी. कहां जाना है, कुछ पता नहीं. सामने अस्पताल आ गया है. एक भी डॉक्टर नहीं आया लगता है. मगर अस्पताल क्यों? क्या यहां आने के लिए निकली थीं वे? शायद नहीं.

ठीक है, आगे चल पड़ी हैं. नाला आ गया है. पत्थर-पत्थर पांव रखकर उस पार जाया जा सकता है. उस पार क्या है? बाजार. पर बाजार तो जाना नहीं उन्हें! भूले हुए इंसान की तरह यूं ही देखे जा रही हैं चारों ओर. ये क्या हैं? दारू की भट्ठियां! कब बंद कराया था इन्हें? कुछ याद नहीं आ रहा. मगर प्रबंधन, उनकी यूनियन और सबसे बढ़कर सुरक्षा बल के होते हुए ये हैं कैसे यहां?

पत्थर-पत्थर पांव जमाते हुए वे जा पहुंचती हैं ओपन कास्ट के मलबे के ऊपर. यहां से सारा परिदृश्य किसी फिल्मी लैंडस्केप-सा खिल रहा है.

पहले ऐसे ही बैठकर निहारा करती थीं न! हां, तब यह ओपन कास्ट न थी, महज एक टीला हुआ करता था यहां. कितने वर्षों पहले...?

तब ये रोप-वे की डोलियां मंथर गति से आती और जाती हुईं कितनी आत्मीय लगा करती थीं—मानो कोई संदेश लेकर आ-जा रही हों. अब तो 'रोबोट' देखकर भी वैसी उत्तेजना नहीं होती. पर अब ये डोलियां हवा में लटक रही हैं—अचल! कन्वेयर बेल्ट बंद है. कोई गति नहीं. ये टॉप गियर तब दो समानांतर फिरकियों की तरह कैसे नाचा करते थे! इनकी चाल फंस क्यों रही है? इतनी देर में सिर्फ तीन ही टब कोयले बाहर आए, फिर बंद!

पिट में न सही मगर 'ओपन कास्ट' में तो 'रेजिंग' होनी चाहिए. अपना भोथरा सूंड उठाए गैंडे की मूरत-सा खड़ा है पे-लोडर. जहां-तहां पुतलों-से खड़े, बैठे या आ-जा रहे हैं लोगबाग? रास्तों पर भीड़, बाजार में भीड़, दारू की भट्ठियों पर भीड़, परिसर में भीड़, ताश-जुए में गोल बांधे भीड़. यह भीड़ है किस मर्ज की दवा? पता करना होगा, क्या बात है.

नीचे उतरती हैं, मगर जैसे-जैसे आगे बढ़ती हैं, उनके पांव मानो झाड़ियों में उलझते चले जाते हैं. मैनेजर का वही कमरा है, कभी बिला-हिचक धड़ल्ले से घुस जाया करती थीं. मजदूरों के वैसे ही दल हैं, उन्हें देखते ही साथ हो लेते, और नहीं तो यूनियन ऑफिस तो उनका अपना है. मगर नहीं, एक नामालूम-सा गतिरोध है अंदर भी, बाहर भी.

धीरे-धीरे एक अजीब-सी झेंप उन्हें घेरती जा रही है. कुछ लोग उन्हें देखकर हंसते हुए कानाफूसियां कर रहे हैं. कब तक खड़ी रहेंगी ऐसे. साहस कर ताश खेल रहे एक दल के पास जा खड़ी होती हैं, "ड्यूटी में नहीं हैं आप लोग?"

"ड्यूटिए में हैं. पंखा बंद नू है," ताश में सिर गड़ाए जवाब आता है.

"कब से बंद है?"

"बंद तो आगे से हुआ लेकिन उसका पहिले पंप बंद था, उसका पहिले बिजली फेल, कभी कुछ, तो कभी कुछ!"

उन्हें मजदूरों से बात करता देख व्यस्त भाव से चला आ रहा है मैनेजर शर्मा, "मैडम आप? ऑफिस में आइए न?"

"नहीं! वो तो यूं ही गुजर रही थी कि इन्हें बैठा देखकर पूछ लिया कि काम क्यों बंद है, पता चला पंखा, पंप...?"

अपना हेल्मेट उतारकर कालिख से अंटे हाथों को देखते हुए बताता है शर्मा, "वही तो ठीक कराकर आ रहा हूं. आजकल सप्लाई भी तो बंद है, काम कराना कितना कठिन है, क्या बताएं मैडम!" अचानक उन्हें मजदूरों का ख्याल आया, "सिन्हा साहब नहीं बोले कि ब्रेकडाउन ठीक हो गया है. जाओ, काम पर जाओ!"

"कहां के सिनहा साहेब अउर कहां के मंडल बाबू, हुंह? किरकेट का मैच देखने इस्कुटरी घुमाए और चल दिए," कहते हुए अलस भाव से उठते हैं मजदूर. बिना बताए ही बहुत कुछ समझ जाती हैं पल्लवी दी. सामने फोकला चटर्जी आ रहा है किसी के साथ. अर्जुन के पेड़ की ओट हो गई हैं.

"जगदा बाबू इस स्ट्राइक को किसी भी कीमत पर सफल होना चाहिए, नहीं तो सबको दिन में तारा लौकने लगेगा."

"इहो बताने का है—लेकिन फोकला दा," अचानक स्वर फुसफुसाहट में ढल जाता है, "हमरा दस लाख रुपइयवा...? शीतला दा को देखिए कितना हेल्प किया हम."

अपमानित अहं लिये चली जा रही थीं पल्लवी दी. अचानक उस मुकाम की शिनाख्त करना चाहती हैं जहां उनके पिता की हत्या हुई थी. कोई शिनाख्त नहीं मिलती उस मुकाम की. हर मुकाम एक जैसा, जिस पर उनकी बौनी परछाईं है.

"यहां पेमेंट के लिए पैसा नहीं है और आप..."

"हमरा रुपिया निकलवा दीजिए दादा, नहीं तो हम लुट जाएंगे."

"रुपये से रुपया निकलता है जगदा बाबू. दू ठो मजूर मरा था दबकर. लाखों का कोलियरी का जो नुकसान हुआ वो अलग. याद है?"

पल्लवी दी को याद आता है, घटिया खूंटे-खंभे के चलते छत की चाल गिर गई थी पिछले साल, जिससे दो मजदूर दबकर मर गए थे. सप्लायर यही जगदा बाबू थे. तो इस वारदात में उनके रुके पड़े पैसों का मोल-भाव चल रहा है फोकला से ?

पल्लवी दी पर नजर पड़ते ही अचकचा जाता है फोकला, फिर झेंप झाड़ने के लिए हंस पड़ता है, "क्या बात है बोउदी, गर्भधारिणी सीता माता आज जंगल-जंगल कहां भटक रही हैं? अभी तो हमारे राजा रामचंद्र ने उन्हें वनवास नहीं दिया?"

"वैसे ही चली आई थी. देखती हूं सब कुछ ढीला-ढाला है."

"ढीला-ढाला...? असल बात बोलेगा, किसी में उत्साह नहीं है. इसको तो आप ही टाइट कर सकता. कितना अच्छा स्टार्ट लिया था कल आप, लेकिन.... चलिए वो भी तो खुशी का बात है. वोई मीटिंग को आज रखा है. शीतल दा बोला फोन पे, बस एइ मीटिंग को आप संभाल दीजिए, मजदूरों का ढीला कल-पुरजा दुरुस्त हो जाए फिर आप कंप्लीट रेस्ट करेगा, बाकी वो संभाल लेंगे आके."

"ऐ फोकला बाबू!" किसी उद्धत आवाज पर चौंकती हैं, देखती हैं तो एक बूढ़ा मजदूर है. कालिख और पसीने से लथपथ हाफपैंट और भीगी गंजी में वह बिलकुल हास्यास्पद लग रहा है, बिदकाने वाला भी, "अकेले ई बूढ़ा फेकू सिंह के नाम लिखा है कोलीवरी? और आपके उनियन के रंगरूट मौज करने आए हैं?"

फोकला धीरे से उसके कान में कहता है, "आगे-पीछे देख के बात कर बूढ़ा फेकू. ठंड रख, बूढ़ा ठंड!"

फेकू सिंह इस बार आंख उठाकर देखते हैं उन्हें. आंखों से आंखें मिलती हैं. तेईस वर्षों का अंतराल थरथरा रहा है. पल्लवी दी सोचती हैं, फेकू सिंह क्या पूछेंगे, यही कि हमें पहचान रही हो न बेटी, हमने कभी तुम्हारे बाप के साथ मिलकर राष्ट्रीयकरण के लिए लड़ाइयां लड़ी थीं, कि मेरे ही नाम पर काबिज हुआ यह फोकला, तुमने लड़ाइयां लड़ी न होतीं तो हमें दोबारा नौकरी न मिलती.

लेकिन नहीं राख में कोई चिनगारी नहीं है, फेकू सिंह उलटे उन्हें सलाम कर रहे हैं, "माफ कीजिए, हम आपको न देख पाए," फिर जमीन में ताकने लगते हैं, जैसे कुछ खो गया हो उनका. आंखें नीची किए हुए ही बोलते हैं. कंठ भरा हुआ है, "बहोत पावर है आपका, हो सके तो केलूडांगा के हम मजूरों को बरबादी से बचा लीजिए."

"काहे फिकर करता फेकू, बोला न हम, जब तक शीतल दा दिल्ली में है, एक भी आदमी के पेट पे लात नहीं मार सकता कोई साला!" पीठ थप-थपाकर ढाढस दे रहा है फोकला.

कितने अधिकार-दर्प से बोलता है फोकला—और कितनी दूरी से बोलते हैं फेकू सिंह! नकली सीधे केंद्र में आ गया है और असली हाशिये पर. उन्हें अफसोस होता है, इस नजर से अब तक क्यों नहीं देख पाई चीजों को. नहीं, अपराधियों के इस अभयारण्य से निकलना ही होगा अब.

●●●

"मुझे एबॉर्शन कराना है," अस्पताल पहुंचकर सी.एम.ओ. के सामने सीधे आकर खड़ी हो जाती हैं पल्लवी दी.

"आ... प?" अवाक् हो जाता है डॉक्टर, "बैठिए तो सही."

"मैं यहां बैठने नहीं आई."

"मगर इतनी जल्दी...? फिर...?"

"फिर?"

"वो कुछ नहीं, वी.आइ.पी. का मामला है, जरा मिस्टर मुखर्जी से भी पूछना पड़ेगा न!"

"क्यों, बच्चा मेरे पेट में है कि मिस्टर मुखर्जी के?"

"आप भी मिसेज मुखर्जी...!"

The grandest interiors are recognized in the humblest plywoods.

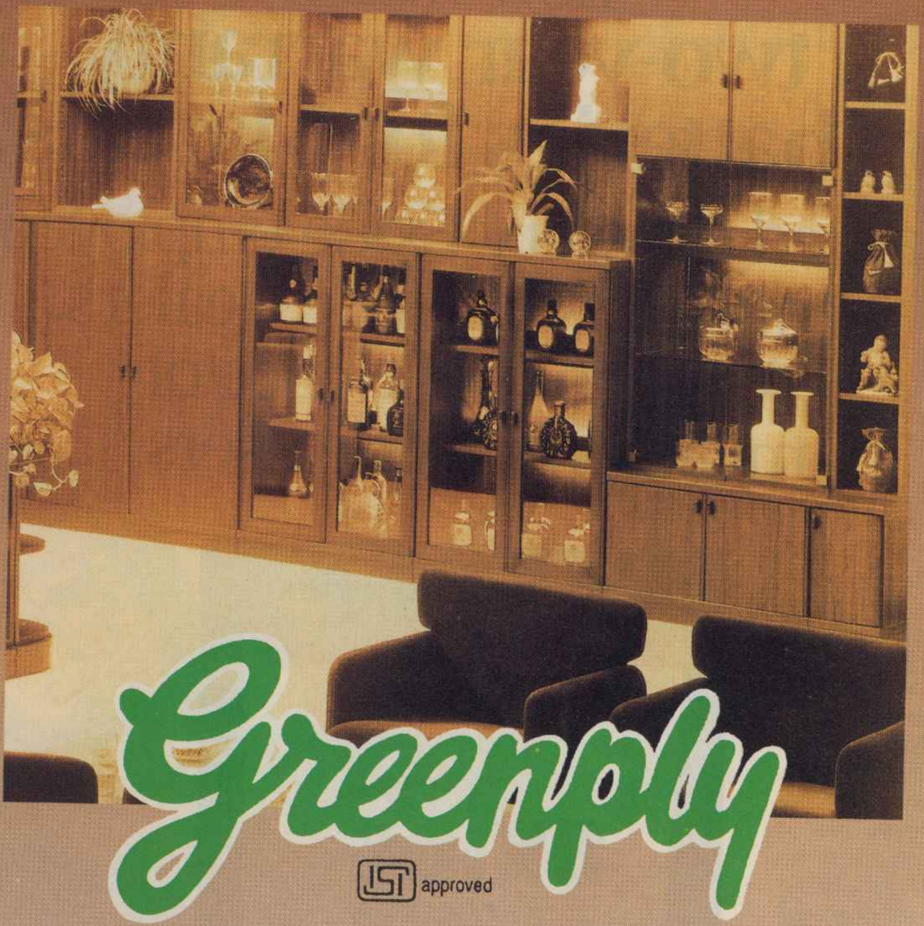

ISI approved

Superbly finished Greenply. Veneers of uniform thickness. Bonded to perfection. Boiling water proof. Totally resistant to termite, fungi and rot. Greenply can be crafted into any form and shape.

Green

GREENPLY INDUSTRIES LIMITED

16A, Shakespeare Sarani, Calcutta-700 071

✆ 242-2175, 242-1956 Fax 91-033-242-0825

BRANCHES :

□ AHMEDABAD ✆ 433513, 433613 □ BANGALORE ✆ 6621275, 6621276
□ BOMBAY ✆ 6118320, 6104651 □ CALCUTTA ✆ 242 2175, 242 1956
□ DELHI ✆ 7532163, 738862 □ GUWAHATI ✆ 521675 □ MADRAS ✆ 585118, 568826
□ PATNA ✆ 661111 □ TINSUKIA ✆ 21833, 21808, 22816

REDOAK/GP/94

EXIDE FREEDOM

now with

a two-year warranty on batteries for Marutis.

Backed by every Exide employee.
Thousands of Exide dealers.
And the confidence of
millions of Exide users.

- Rib-free, non-breakable separators, bonded with texturised glassmat, for freedom from short-circuits and protection against bumps and vibrations.
- Twice the usual top-of-plate electrolyte for freedom from frequent topping.
- Integrated, high-technology design for freedom from starting problems.

EXIDE FREEDOM. India's second freedom movement.

A PRODUCT OF CHLORIDE INDUSTRIES LIMITED

Trikaya Grey.Cal.CIL250.94

"नो मिसेज मुखर्जी. आइ एम पल्लवी साहा, ओनली पल्लवी साहा!" चीख उठती हैं पल्लवी दी, "टेल मी यस और नो."

"एक्सक्यूज मी मैडम, आइ एम हेल्पलेस!" तिरछे होंठों पर एक उदास हंसी, सिर गिरगिट की तरह हिल रहा है.

"मुझे मालूम था. ओ.के. रिलैक्स!" बाहर निकलते हुए उन्हें याद आता है, इसी अस्पताल को बनवाने के लिए उन्हें कितनी लड़ाइयां लड़नी पड़ी थीं मैनेजमेंट से. कोलियरी हो, यूनियन हो, अस्पताल हो, आज इस मुकाम पर आ गए हैं सारे के सारे प्रतिष्ठान!

अपमानित अहं लिये चली जा रही हैं सूनी राह पर. चिनचिना रही है देह अक्तूबर की दोपहर की धूप में. सड़क पर चलते हुए रुककर अचानक उस मुकाम की शिनाख्त करना चाहती हैं, जहां उनके पिता की हत्या हुई थी. सिर पर मध्याह्न का सूरज है, पांवों के नीचे चिक-चिक करते कोयले के काले चूरे से भरी सड़क. कोई शिनाख्त तक नहीं मिलती उस मुकाम की. हर मुकाम एक जैसा, जिस पर उनकी बौनी परछाईं है. बस इस परछाईं भर रह गया है तुम्हारा वजूद पल्लवी, इसी में चाहो तो बाप को ढूंढ़ लो,

चाहो तो मां को, या फिर खुद को?

"मम्मी...!" पुकारते हुए उनके दोनों बच्चे सत्य और शिखा आकर उनसे लिपट जाते हैं. पीछे-पीछे चली आ रही है गीता मझियाइन. शायद उन्हें ढूंढ़ने निकले थे सभी. खुद में खोयी अजनबी निगाहों से घूरने लगती हैं बच्चों को. शायद यही है अब उनका वजूद. पर इसमें तो शीतल भी है. कितना शीतल है, कितनी वे खुद? कितनी उनकी हार है. और अपराधिनी मां-सी वे बच्चों को सीने से लगा फफक-फफककर रोने लगती हैं.

फिर वही शाम, वही मैदान, वही लोग, वही पल्लवी दी और मुद्दा भी वही. लेकिन कल और आज के दरम्यान तेइस वर्षों का काल प्रवाह गुजर चुका है. कंठ भर आया है, आंख भर आई है, स्वर निर्वेद है. वे कौन होती हैं दिशा निर्देश देने वाली, वे तो इस जन अदालत में सिर्फ कन्फेश कर सकती हैं, सिर्फ कन्फेश.

"साथियो! अच्छा हुआ कल टल गया. आज हम आवेशमुक्त माहौल में ज्यादा स्वस्थ ढंग से बात कर सकते हैं. आपको पता होगा, सभ्यता के शुरू में जब एक कबीला दूसरे कबीले से जीतता तो जीतने वाला हारने वाले को काटकर खा जाया करता. बाद में सीधे काटकर खा जाने के बजाय उन्हें गुलाम बनाकर काम लेना ज्यादा उपयोगी लगा. तब से आज तक यही चला आ रहा है. कुछ लोग झटके से मारे जाते हैं, कुछ जबह करके तड़पा-तड़पाकर धीरे-धीरे! मेरे बाप जैसे लोगों को झटके से मारा गया और मुझ जैसों को जबह करके...! यह सही है कि जबह करने वाले क्रूर और मगरूर हैं, मगर हमारा-आपका दामन भी बेदाग नहीं है. टटोलकर देखिए, अपने गले के गिर्द कस रहे कई-कई हाथों में शामिल दो हाथ आपके खुद के भी होंगे, हाथ जो हमें बचा सकते थे?

"मेरे पिता रूस की शाखालिन कोयला खानों का उदाहरण देकर बताते नहीं थकते थे कि राष्ट्र की संपत्ति किसी व्यक्ति विशेष के लाभ और कैदियोंनुमा श्रमिकों के शोषण के लिए न होकर पूरे राष्ट्र की हो और शोषण-मुक्ति का बायस बने, इसीलिए राष्ट्रीयकरण कितना जरूरी है. आज कहां हैं पिता? कहां है शाखालिन? कहां है रूस? और कहां है केलूडांगा...? किसने सोख लिया उस पवित्र संकल्प का जीवन रस?

"गौर करें, राष्ट्रीयकरण होने के साथ ही ये क्षेत्र लूट और लिप्सा के चरागाह बनते चले गए. अघोषित निजीकरण की यह प्रक्रिया तो तभी से चल रही है. आज फर्क सिर्फ यह आ गया है कि राष्ट्रीयकरण की आड़ में इस अघोषित निजीकरण की लड़ाई इस घोषित निजीकरण से शुरू हो गई है. हमारी लड़ाई इस घोषित और अघोषित दोनों तरह के निजीकरणों के विरुद्ध जब तक नहीं होगी, राष्ट्रीयकरण का कोई अर्थ नहीं रह जाता?"

सभा में चिमगोइयां उठने लगीं. फोकला चटर्जी उठकर बदहवास-सा बाहर जाने लगा, मगर पल्लवी दी जैसे इन सबसे अप्रभावित शब्द-शब्द पर जोर देकर बोले जा रही थीं—"इस विपर्यय के लिए हम भी कम जिम्मेवार नहीं. समर्पित लोगों का इतना बड़ा जत्था कहां जाने को निकला था और कहां जा पहुंचा? आप भी कम जिम्मेवार नहीं, किसका साथ देना था और किसे दे बैठे? हम सभी प्रतिज्ञाच्युत और लक्ष्यभ्रष्ट लोग हैं. कम-से-कम खुद को मैं कसूरवार मानती हूं... और आज खुले मन से यह स्वीकार करती हूं कि जब तक लूट, लिप्सा और परजीवियों का उच्छेद नहीं होता, सब बेकार है, सब कुछ! किसी पाखाने पर पड़ा हुआ स्वच्छ भोजन भी स्वच्छ नहीं रह जाता, उसी तरह भ्रष्ट हाथों में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ चीज भी अपनी श्रेष्ठता गंवा बैठती है. जाति अगर जागरूक रही तो अपनी मुक्ति कभी भी लड़कर हासिल कर लेगी और नहीं तो मुक्ति पाकर भी उसे सुरक्षित नहीं रख सकती. सवाल सिर्फ यहां आकर टिकता है कि आप जागरूक हैं या नहीं."

बोलते-बोलते वे माइक से सरकते हुए नीचे गिरने लगीं मानो रस्सा पकड़कर किसी गहरे कुएं में उतरती जा रही हों, एक बड़े प्रश्नचिह्न की तरह. शायद ब्लीडिंग बहुत पहले ही शुरू हो चुकी थी—बाहर की भी, अंदर की भी. ■

वाइनोलियम से मेरी आमदनी बढ़ती है।
यह देखने में सुन्दर है, टिकाऊ है तथा पैसों
का पूरा मूल्य देता है।

BIRLA
JUTE & INDUSTRIES LIMITED

विभागीय स्टोरों, बुटिकों, साड़ी की दुकानों, सैलूनों, खेल सामग्री की दुकानों में जहाँ मर्जी हो - इन आकर्षक डिजाइनों को बिछा दीजिए।

और खो जाइए उस प्राचीन शान-शौकत की दुनियाँ में। क्योंकि वाइनोलियम आपके दुकान की शोभा में चार चाँद लगा देता है। यह आपके दुकान को रोशनी से भर देता है, जिससे आपके माल जगमगाने लगते हैं। यह आवाज को अपने अन्दर समा लेता है। दाग-धब्बों, मिट्टी, कीचड़, जूते के निशान तथा धूल आदि को साफ करना काफी आसान है। आपकी पसंद के अनुरूप डिजाइनों एवं रंगों की एक वृहद् शृंखला।

वाइनोलियम - लगाने में जल्दी, सफाई और रखरखाव में आसान। सचमुच आपके पैसों की पूरी आदायगी। निःसंदेह।

बिड़ला वाइनोलियम

अमेरिकन फ्लोर कवरिंग जो कंगोलियम कॉर्पोरेशन ऑफ यूएसए
के तकनीकी सहयोग से अब भारत में निर्मित.

बिड़ला जूट एण्ड इंडस्ट्रीज लिमिटेड

यूनिट : बिड़ला वाइनोलियम

पंजीकृत एवं प्रधान कार्यालय : 9/1, आर.एन. मुखर्जी रोड, कलकत्ता 700 001
फोन : 220-1680, 220-2380, 220-4370 (प्रत्येक में 10 लाइनें)
टेलेक्स : 021 7099 BJMC IN, 021 2568 BJIL IN, फैक्स : 033 248 7988
कलकत्ता शोरूम : 7, जवाहरलाल नेहरू रोड, कलकत्ता 700 013, फोन : 248 6168

CC/BV-3/94HIN

आकर्षक फर्श - साथ निभाए वर्षों वर्ष

हास्य-व्यंग्य

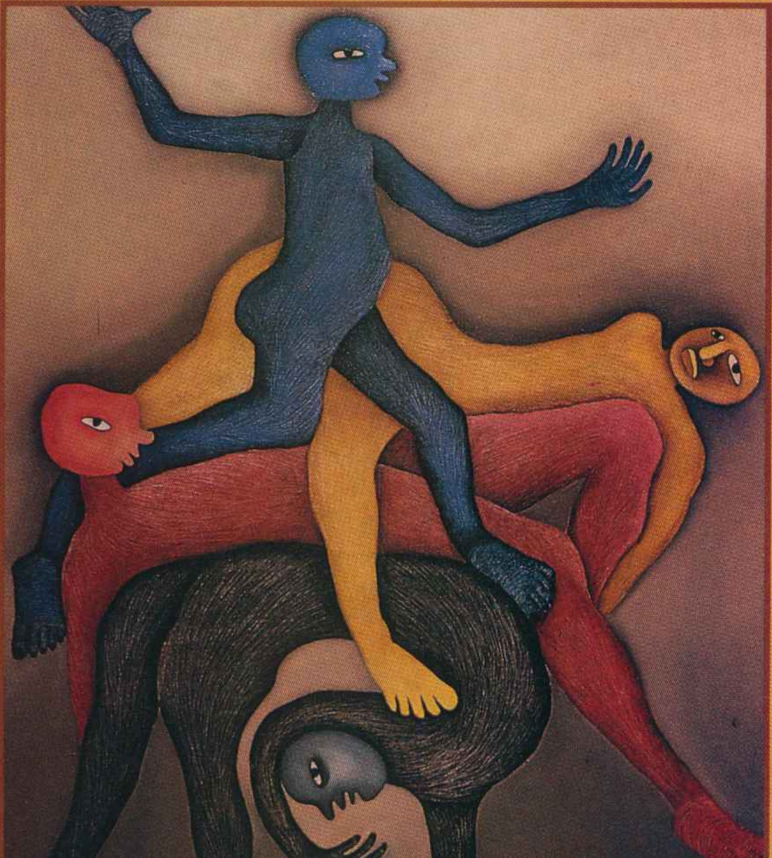

रवींद्रनाथ त्यागी
मनोहर श्याम जोशी
ज्ञान चतुर्वेदी

धूप के धान

• रवींद्रनाथ त्यागी • कार्टून: जयंतो

धूप का जादू न जाने कितने कवियों की वाणी की एक साथ याद दिलाने लगता है. दमकती धूप को देख व्यंग्यकार को मेघदूत की यक्षिणी से लेकर मिस्र की महारानी क्लियोपेट्रा के दमकते स्वर्ण जैसे वर्ण की याद क्यों न आए?

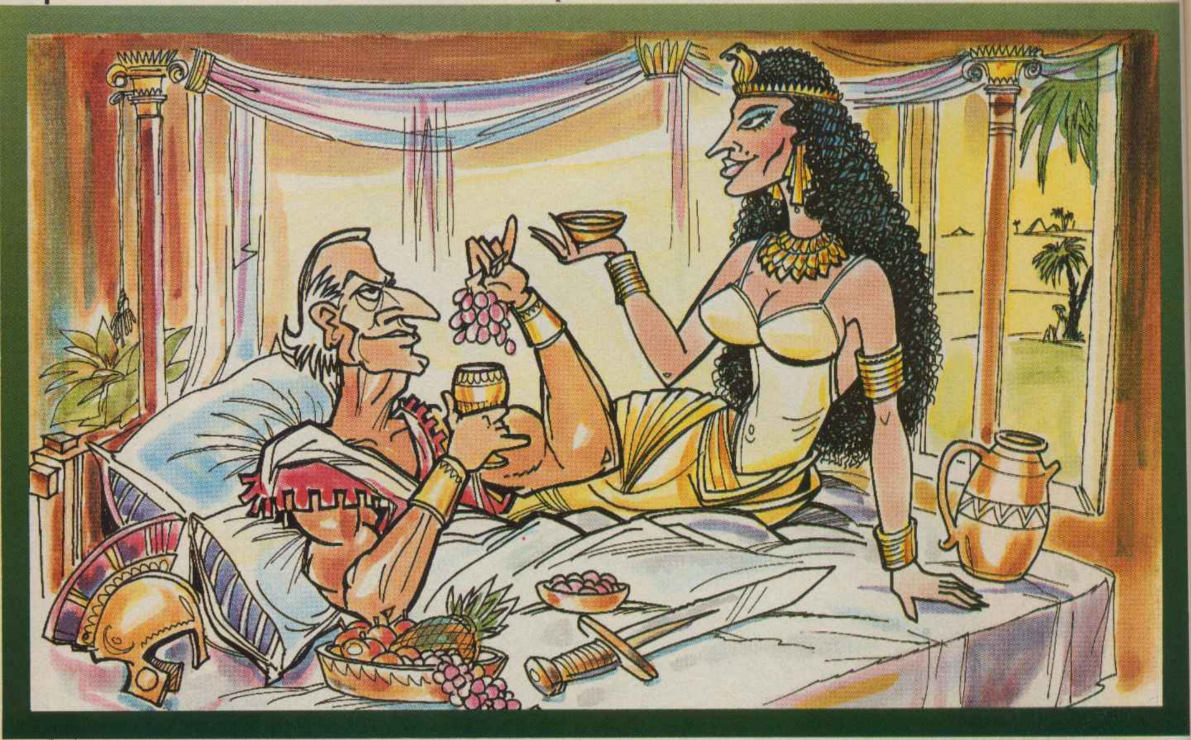

देहरादून सचमुच एक रूपवती नगरी है. यूं तो यहां नीले पर्वतों की श्रेणियां हैं, गहरे हरे रंग के घने वनों से ढके क्षितिज हैं, पग-पग पर धोखा देने वाली रंग-बिरंगी सड़कें हैं और धान के पीले-पीले खेतों से ढकी घाटियां हैं पर यहां का प्रमुख आकर्षण जो है वह यहां की वर्षा ही है. पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में (जिसका काफी भाग देहरादून की जिला जेल में ही लिखा गया था) स्वीकार किया है कि देहरादून सचमुच वर्षा के राजा इंद्र की सर्वप्रिय नगरी है. वर्षा की पवित्र ऋतु यहां प्रायः बारह महीने चलती है और फिर जो वर्ष का शेष भाग बचता है उसमें शेष सारी ऋतुएं प्रकट होती हैं और काफी जिम्मेदारी से अपना-अपना काम करती हैं. वर्षा जब शुरू होती है तो सचमुच बेहद सुंदर लगती है और आपको '*बादल घिर आए, गीत की बेला आई* ' जैसी मार्मिक पंक्तियां याद आने लगती हैं. मगर जब यही वर्षा ज्यादा खिंच जाती है तो आपको अपने आप पता लगने लगता है कि वर्षा के दिन को 'दुर्दिन' क्यों कहते हैं. टेलीफोन खराब हो जाता है, बिजली भाग जाती है और अखबार और डाक का आना भी बंद हो जाता है. प्रियाहीन न होते हुए भी मेरा मन डरने लगता है और मेघदूत को खड्डु की दिशा में फेंकने की पवित्र प्रवृत्ति फिर जोर दिखाने लगती है. वर्षा में मुझे सबसे ज्यादा डर दीमक नामक उस छोटे-से कीड़े से लगता है जिसकी संतति 'चंद्रकांता-संतति' से भी ज्यादा होनहार होती है और जिसके दर्शन कर मुझ जैसे 'भूतनाथ' को भी अभूतपूर्व भय लगने लगता है. वैसे, मैंने अपने जीवन में सदा ही प्रत्येक आकर्षक रमणी को एक तिलिस्म ही समझा और मेरा यह विश्वास प्रायः ठीक ही निकला. रमणी शायद मुझे छोड़ दे पर दीमक मेरी किताबों को कभी नहीं छोड़ेगी.

वर्षा थमने के बाद धूप का निकलना प्रायः उतना ही निश्चित होता है जितना कि प्रत्येक कन्या का अपने विवाह के बाद गर्भवती होना होता है. बादलों के फटने पर जो धूप निकलती है वह उबटन लगी किसी गौरवर्णा युवती के अंगों की भांति एकदम निखरी हुई होती है. धूप का यह जादू आपको न जाने कितने कवियों की वाणी की एक साथ याद दिलाने लगता है. पंत जी ने ऐसी ही धूप में लेटने के बाद कहा होगा कि '*सोने के तार सा खिंच गया है दिन*' और गिरिजाकुमार माथुर ने जो 'धूप के धान' बोए या काटे थे वे भी किसी ऐसे ही दिन बोए या काटे होंगे. 'धान' से प्रेम बाकी कवियों को भी रहा और 'धूप' से ज्यादा रहा.

'सुजलां सुफलां मलयजशीतलां' कहने के बाद *'शस्य श्यामलां'* कहने वाले और आनंदपूर्वक किसी मठ में बिराजने वाले *'गर्दभ-स्तोत्र'* के कवि बंकिमचंद्र से लेकर *'स्वर्ण-शस्य अंचल धरती का लहराया'* कहने वाले 'निराला' तक और 'कनक-शस्य' के कवि नरेंद्र शर्मा से लेकर *'हम जिए न जिए दोस्त/तुम जिओ एक नौजवान की तरह/खेत में झूम रहे धान की तरह'* लिखने वाले केदारनाथ अग्रवाल जैसे सभी सौंदर्यवादी कवि वर्षा में भी धान की दुकान के ही बाहर लाइन लगाकर खड़े रहे. हां, अज्ञेय ने एक बार अपनी एक प्रेयसी की तुलना जरूर बाजरे की कलगी से की और अपने एक गीत में निराला ने भी मूंग और उड़द की चर्चा की. *'कनक-कनक ते सौ गुनो'* कहने वाले बिहार के कवि बिहारीलाल ने अपना या अपनी प्रेयसी का स्तर कभी भी गेहूं से नीचे नहीं आने दिया. ठाकुर प्रसाद सिंह ने *'कचमच धूप, हवाएं सन सन/आछी के वन'* कहकर धूप का जितना बढ़िया खाका खींचा उतना ही विचित्र वर्णन धूप का केदारनाथ अग्रवाल ने तब किया जब उन्होंने लिखा कि *'धूप नहीं वह/बैठा है खरगोश पलंग पर/जिसको छूकर/ज्ञान हुआ मुझको/जीने का.''* अब यह भी कोई बात हुई कि एक अदद खरगोश है जो पलंग पर बैठा है और कवि जी हैं जो उसे देख-देखकर जल्दी-जल्दी कविता लिख रहे हैं क्योंकि खरगोश बड़ा पाजी जानवर होता है और इसका कुछ पता नहीं कि वह कवि की कविता को बीच में ही छोड़कर कब अंतर्धान हो जाए. अरे! ओ मेरे कवि बंधु, पलंग पर बिठाना ही था तो किसी ऐसी चीज को बिठाते जिससे कि पलंग की शोभा बढ़ती. खरगोश को वहां बिठाने पर तुम्हें या खरगोश को क्या मिला? तुमसे श्रेष्ठ तो देहरादून के वे होनहार कवि ही हैं जो बराबर बासमती 'चावल' पर ही कविता लिखते हैं और इसी कारण 'चावला' कहलाते हैं.

वर्षा के बाद धूप बिखर गई. अब डाकिए की प्रतीक्षा करूंगा, हालांकि वह बिजली या टेलीफोन (या दोनों) का बिल ही लाएगा, और कुछ नहीं. मेरे बरामदे से पर्वतों की नीली श्रेणियां अब फिर चमकेंगी. मित्र आएंगे, विभिन्न साइजों की गप्पें मारी जाएंगी और 'निराला' की *'बहुत दिनों बाद खुला आसमान, खुश हुआ जहान'* पंक्तियों वाली कविता फिर पढ़ी जाएगी. इसी कविता में, आगे चलकर नयनों के बाण चलाने वाली चंद हसीन ग्राम-बालाओं की चर्चा की गई है और थोड़ा-सा वर्णन *'तगड़े-तगड़े पहलवानों'* का भी किया गया है. शृंगार और पौरुष का जो अद्वितीय संगम 'निराला' के कृतित्व में है, वैसा शायद और कहीं नहीं है. निराला जी स्वयं भी तो पहलवान थे जिन्होंने एक बार पंत जी को भी कुश्ती के लिए ललकारा था. 'कुश्ती' का पुल्लिंग 'कुश्ता' होता है. शहंशाह शाहजहां की मृत्यु जो हुई थी वह कुश्ता खाने के कारण ही हुई थी. उसकी प्रिय बेगम मुमताज़महल चौदह वर्ष तक लगातार गर्भवती रही थी.

इस दमकती हुई धूप को देखकर मुझे 'मेघदूत' की यक्षिणी की याद फिर सताने लगी जिसके रूप का वर्णन कालिदास ने *'तन्वी, श्यामा, शिखरदशना, पक्वबिम्बाधरोष्ठी'* कह कर शुरू किया. इस पंक्ति में जो 'श्यामा' शब्द है उसका सही अर्थ जानने में मेरी आधी उम्र निकल गई. 'श्यामा' का प्रत्यक्ष अर्थ 'सांवली' या 'कृष्णवर्णा' हो सकता था पर कालिदास जैसे रससिद्ध कवि अपनी प्रिय नायिका को उस रूप में कैसे देख सकता था? उसे क्या गौरवर्णा रमणियों की कमी थी? मैंने राजा लक्ष्मण सिंह से लेकर बाबू श्यामसुंदर दास (बी.ए.) तक जितने भी बड़े विद्वानों के अनुवाद हैं, वे सब देखे. सबमें से 'श्यामा' शब्द का सही अर्थ कोई भी नहीं जानता था. कुछ ने तो 'श्यामा' का अनुवाद 'श्यामा' ही किया है. और कुछ मतिमान लोगों ने अपने अनुवाद में 'श्यामा' का जिक्र ही नहीं किया है. बहुत दिनों बाद मैत्रेयी देवी की 'टैगोर बाइ फ़ायरसाइड' नामक श्रेष्ठ पोथी पढ़ने को प्राप्त हुई और उसमें रवींद्रनाथ ठाकुर की वाणी पढ़ने को मिली जिसमें यह बताया गया है कि संस्कृत में 'श्यामा' का अर्थ उस स्त्री से है जिसका कि रंग उस स्वर्ण की भांति दमकता है जो कि प्रज्ज्वलित अग्नि में पिघलाया जा रहा हो.

इसी प्रकार गीता के अठारहवें अध्याय के चौदहवें श्लोक में 'दैव' शब्द का प्रयोग किया गया है. इस शब्द का भी सही अर्थ जानने के लिए मैं बहुत भटका मगर सब दिशाओं में निराशा ही हाथ लगी. अंत में चलकर मैं लोकमान्य तिलक की प्रख्यात पुस्तक 'गीता-रहस्य' की शरण में गया मगर मैंने पाया कि तिलक जैसे महान ज्ञानी पुरुष ने भी 'दैव' का अर्थ 'दैव' ही लिखा है, और कुछ नहीं. (मेरे पास इस पुस्तक का सप्तम संस्करण है जिसके प्रारंभ में बताया गया है कि लोकमान्य तिलक के पुत्रों के साथ कोई भयंकर मुकदमेबाज़ी चली थी जिसके फलस्वरूप इन पुत्रों में से एक ज्ञानी पुत्र ने आत्महत्या कर ली थी. पिता द्वारा किए गए गीता के भाष्य का पुत्रों पर ऐसा तात्कालिक प्रभाव पड़ेगा, यह कोई नहीं जानता था.)

मिस्र की महारानी क्लियोपेट्रा भी दमकते स्वर्ण जैसा ही वर्ण रखती थी. यदि वह वैसी न होती तो आप ही बताइए कि वह पवित्र रमणी अपने छोटे-से क्षणभंगुर जीवन काल में दस हजार प्रेमियों की हम-बिस्तर कैसे हो सकती थी? इतिहासकारों का कहना है कि क्लियोपेट्रा की नाक यदि कुछ और लंबी होती तो विश्व का इतिहास कुछ और ही होता. इस साम्राज्ञी के उन दस हजार प्रेमियों में रोम का महान सम्राट जूलियस सीज़र भी बाकायदा शामिल था. विलियम शेक्सपीयर ने इस सारी घटना का अत्यंत संक्षिप्त वर्णन करते हुए मात्र इतना ही लिखा है कि ''क्लियोपेट्रा सीज़र को तलवार से हटाकर पलंग तक ले गई.'' इस परम पवित्र घटना के समय सम्राट जूलियस सीज़र क्लियोपेट्रा से उम्र में मात्र तीस वर्ष बड़ा था. बारह वर्ष की आयु में ही अपना कौमार्य भंग करवाने वाली रूपसी क्लियोपेट्रा मात्र इक्कीस वर्ष की कन्या थी और जूलियस सीज़र इक्यावन वर्ष का अधेड़ था. सादा जीवन, उच्च विचार.

अब मैं क्लियोपेट्रा को सम्राट जूलियस सीज़र के हवाले करता हूं और फिर उसी धूप को कस कर पकड़ता हूं जिसे मैंने किसी भूतपूर्व प्रेमिका की भांति बीच में ही छोड़ दिया था. जैसे देश में उप राष्ट्रपति व उप राष्ट्र-कवि होते हैं, ठीक उसी प्रकार मेरे बंगले में एक उपवन है. धूप निकलने पर उसमें विचरण करने में जो सुख मिलता है वह मुझे कभी अपनी किसी उप-पत्नी के साथ भी नहीं मिला. इस वाटिका में मालती की लता है, केले के गाछ की छटा है और शेष जो विभिन्न प्रकार के वृक्ष या उपवृक्ष हैं, उनकी भी घटा है. यूकिलिप्टस, चीड़, सिल्वर ओक, पापलर जैसे पहाड़ी वृक्षों के साथ-साथ शीशम, आम, जामुन, अमरूद, लीची, नाशपाती और अनार जैसे मैदानी वृक्ष भी खुशी-खुशी खड़े हैं और कलावती नाम की कन्या की भांति यौवन को प्राप्त कर रहे हैं. देहरादून की जलवायु ऐसी है कि यहां फल वाले वृक्षों पर भी फल कम और पत्ते ज्यादा आते हैं. एक बड़ा वृक्ष 'फ़जरी' आम का है, हालांकि हम सब लोग उसे 'लंगड़ा' आम ही कहते हैं क्योंकि इसके ऊपर चढ़कर चोरी से आम तोड़ने की प्रक्रिया में आसपास के कई संभ्रांत किशोर लंगड़े हो चुके हैं. पारसी थियेटर के बादशाह आगा हश्र कश्मीरी को उनके एक शरारती मित्र ने एक बार 'बनारस का लंगड़ा' कह दिया था क्योंकि आगा साहब बनारस के ही थे और वे ही थोड़े-से लंगड़े भी थे. बनारस शहर सदियों से ही रांड, सांड, सीढ़ी, संन्यासी, लंगड़ा आम, साड़ियां और जर्दे के लिए मशहूर रहा. बाद में चलकर यह नगर भारतेंदु हरिश्चंद्र, देवकीनंदन खत्री, मुंशी प्रेमचंद, बाबू श्यामसुंदरदास, जयशंकर 'प्रसाद', रामचंद्र शुक्ल व आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के कारण भी प्रसिद्ध रहा पर ये

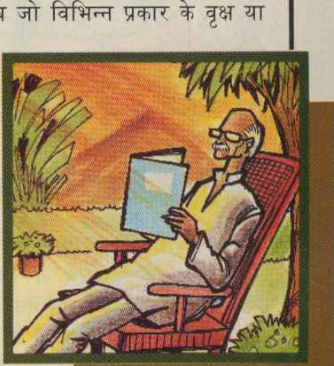

महारानी क्लियोपेट्रा का वर्ण वैसा न होता तो वह पवित्र रमणी अपने छोटे-से क्षणभंगुर जीवन काल में दस हजार प्रेमियों की हमविस्तर कैसे हो सकती थी?

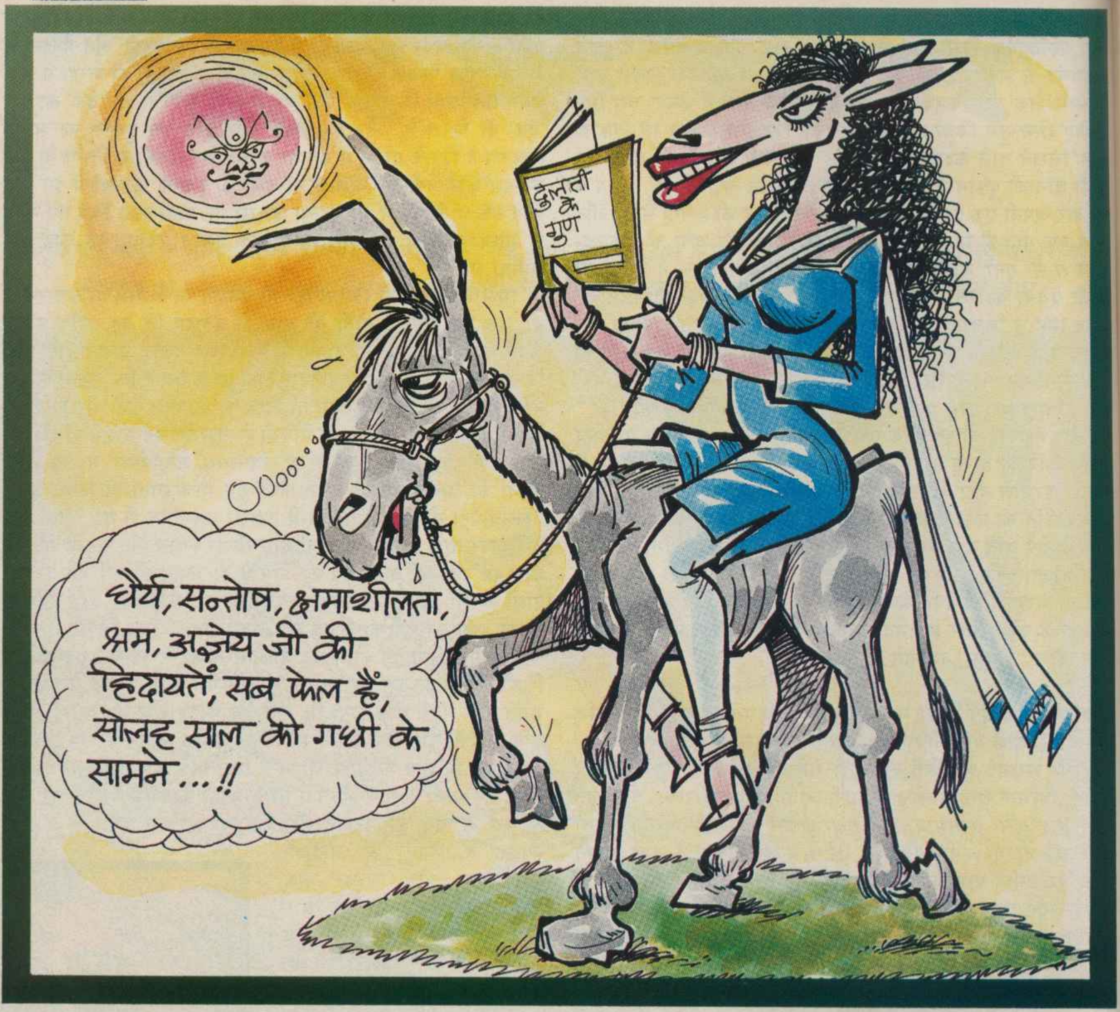

सारे विद्वान भी वहां के सांड और ज़र्दे वगैरह का स्तर नहीं छू पाए. सारे 'उत्तर प्रदेश' में 'बनारस' व 'हाथरस' के अतिरिक्त और कोई 'सरस' नगर है ही नहीं. बाकी सब नगर तो मात्र 'नीरस' हैं. बिस्मिल्लाह खान की वह शहनाई और हाथरस की वह 'खुरचन' और कहां मिलेगी?

उपवन में भ्रमण करने के पश्चात् मैंने उस मिस्त्री को तलब किया जिसने लगभग दस वर्ष पूर्व मेरा यह बंगला बनाया था जो प्रत्येक वर्षा में काफी बेतकल्लुफ़ी के साथ चूता है. मिस्त्री साहब तशरीफ लाए और अंदर और बाहर का मुकम्मल मुआयना करने के बाद कॉफी और सिगार पीते हुए कहने लगे कि बंगले के चूने का एकमात्र कारण यह है कि बंगला अभी नया है और यह इसी कारण चूता है. मैं इन मिस्त्री महोदय को भली-भांति जानता हूं और मुझे पता है कि पांच वर्ष बाद ये अपना मौजूदा अंदाज बदल देंगे और कहा करेंगे कि अब बंगला इस कारण चूता है क्योंकि अब यह पुराना होने लगा है. आदमी बड़े दिलचस्प हैं. एक दफ़ा मैंने इनकी कुशलता के बारे में कुछ संशय प्रकट किया तो कहने लगे कि आगरे का मक़बरा ताजमहल और बंबई का होटल ताजमहल इन्हीं के बुजुर्गों ने एक साथ ही बनवाया था. मैंने इनकी वाणी श्रवण की और फिर मैं प्रसिद्ध इतिहासकार पुरुषोत्तम नागेश को याद करने लगा जिनकी खोज के अनुसार, उपरोक्त दो इमारतों के अलावा दिल्ली की कुतुब मीनार और लालकिला और कलकत्ता के फोर्ट विलियम व विक्टोरिया मेमोरियल इत्यादि जितनी भी महान इमारते हैं, वे सब कभी हिंदू सम्राटों के प्रासाद होते थे. मैं मिस्त्री महोदय से विदा लेता हूं और अशोक व गुलमुहर के वृक्षों पर एक या दो अदद दृष्टिपात करता हूं. प्राचीन काल में अशोक के वृक्ष पर यदि कोई रूपवती रमणी पदाघात करती थी तो वह फूलों से लद जाता था. एक ये मेरे लॉन पर लगे अशोक के वृक्ष हैं जिन पर कस कर पदाघात करने से कई सुंदरियों के चरण और अशोक के वृक्ष—ये दोनों तो टूट गए पर फूल फिर भी नहीं खिले. सरल भाषा में, मुझे तो 'अशोक' ने 'शोक' ही दिया और कुछ नहीं. और मेरा यह गुलमुहर भी बड़ा भाग्यहीन है. एक वह गुलमुहर होता था जिसके बारे में कभी बच्चन जी ने यह सूचना दी थी कि *'सुधियों में संचित सांझ कि जब/रतनारी प्यारी साड़ी में/ तुम मिलीं प्रिये गुलमुहर तले'* और एक यह मेरा अभागा गुलमुहर है जिसके नीचे मुझे अपनी पत्नी के अतिरिक्त और कोई देवी या महादेवी कभी नहीं मिली.

वर्षा तो बंद हो गई पर भूमि अभी गीली ही है. *'उदित अगस्त पंथ जल सोखा'* वाली स्थिति अभी नहीं आई और इसी कारण इस गुलमुहर को श्राप देते-देते मैं फिसलने लगा. यदि वे अमलतास व रबर के वृक्ष पकड़ने को न होते तो मैं निश्चयपूर्वक इस समय सर्वांग-आसन करता

हुआ मिलता. ग्वाल कवि का नायक भी अपनी नायिका के ऊपर यही योगासन किया करता था. रीतिकाल भी क्या महाकाल था जिसने न जाने कितने दिग्गज विद्वानों और दिग्विजयी नायकों को सदा के लिए भस्म कर दिया. मुझे अश्लीलता से जो विरक्ति हुई, वह हिंदी के रीति-काव्य को पढ़कर ही हुई. शृंगार रस से जरूर थोड़ी-बहुत अनुरक्ति है मगर उसका मूल कारण प्रभु के प्रति मेरी भक्ति भावना ही है जो कि भागवत्, सूरदास, विद्यापति, जयदेव व बांग्ला के वैष्णव भक्त कवियों की वाणी सेवन करने के कारण दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है. 'प्रेमयोग' तो 'भक्तियोग' का ही दूसरा रूप है—भगवान रजनीश की यह वाणी एकदम सच है. मीरा व चैतन्य महाप्रभु इसके जीते-जागते प्रमाण हैं. *'ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय'* (कबीर).

वर्षा हटने के कुछ दुख भी हैं. मेरे सामने एक हाइकोर्ट के अवकाशप्राप्त जज रहते हैं जो कभी इंडियन सिविल सर्विस के सदस्य थे. उनकी प्रिय पत्नी एक अंग्रेज महिला हैं जो मुल्क के आजाद होने के इतने वर्ष बाद भी अपने इस देसी पति को एक 'नेटिव' ही मानती हैं. जज साहब की सारी हरकतें मुझे पसंद हैं मगर वे जो प्रत्येक शाम को मेरे पास बैठक जमाने आ जाते हैं, वह मुझे प्रायः खलता है. आदमी बढ़िया हैं और हमेशा सच बोलते हैं, सच के सिवा कभी भी कुछ नहीं बोलते. एक दिन बता रहे थे कि जो आइ.सी.एस. अफसर प्रत्येक दृष्टि से नाकारा होते थे, हकूमते-बरतानिया सिर्फ उन्हें ही न्यायपालिका में भेजती थी, सब को नहीं. मेरे साथ लगातार पांच वर्ष बैठने के बाद अब उनकी साहित्य में इतनी गति अवश्य हो गई है कि अब वे उपन्यास और नाटक के बीच जो अंतर होता है, उसे भलीभांति समझने लगे हैं. वर्षा के चले जाने के बाद अब उनका आवागमन फिर शुरू हो जाएगा और मेरी शाम फिर खलास होने लगेगी. मच्छरों की जनसंख्या भी अब बढ़ेगी क्योंकि अभी तक वे निरोध का प्रयोग नहीं करते. संख्या का बढ़ना सांख्य-दर्शन के भीतर आता है, योजना कमीशन के क्षेत्र के भीतर नहीं. मेरे पड़ोस में दो भद्र पुरुष निवास करते हैं जो पहले किसी राजवंश के उत्तराधिकारी होते थे. इन भूतपूर्व राजपुत्रों में से एक को गाय पालने का शौक है और दूसरों को कुत्ते पालने का. एक प्राचीन संस्कृति के भक्त हैं तो दूसरे नए फैशन के अनुयायी हैं. एक की धेनु दिन भर नंगी रहती है तो दूसरे की पत्नी सारा दिन अधनंगी रहती है. वर्षा बंद होने के कारण राजवंश की ये धेनुएं फिर से मेरे ही गेट के सामने गोबर किया करेंगी. दूध राजपुत्र के लिए और सुनहरा गोबर मुझ साहित्यकार के लिए. भूल-चूक लेन-देनी.

मेरी पत्नी अब मुझे फिर से दिन में तीन बार बाजार भेजना शुरू करेगी. बाजार पैदल ही जाना पड़ेगा क्योंकि वह एक ऐसी जगह स्थित है जो न तो दूर ही है और न उतना पास ही है. रिटायर होने से पहले मैं भारत सरकार का एक उच्च अधिकारी था और अब मैं अपनी पत्नी का मात्र चपरासी ही हूं. पहले एक हाथ में कलम रहती थी और दूसरे हाथ में या तो टेलीफोन का रिसीवर या सुंदर स्टेनोग्राफर का गौरवर्ण कपोल. अब एक हाथ में सब्जियों से भरा थैला रहता है और दूसरे में इस्तरी किए गए कपड़ों का बंडल. भगवान यदि मुझे सहस्रबाहु भी बनाते तो भी मेरी प्रिय पत्नी मेरे किसी भी हाथ को कभी खाली नहीं रहने देती. और इतना भार उठाने के बावजूद वह सुमुखि मेरे प्रति कभी कोई आभार प्रकट नहीं करती. और तो और, अब बरामदे के गमलों में पानी भी मुझे ही देना पड़ेगा. आवारा कुत्ते और गधे अपना विचरण अब फिर से शुरू कर देंगे. कुछ भुक्तभोगियों का कहना है कि कुत्ते के काटने पर आपको ठीक उसी कुत्ते की साइज की सुई से इंजेक्शन दिए जाते हैं. एक पशु विशेषज्ञ का कहना है कि पागल हमेशा कुत्ता ही होता है, कुतिया जो है वह कभी भी पागल नहीं होती. उसे अगली पीढ़ी के निर्माण में सदा इतना व्यस्त रहना पड़ता है कि पागल होने के लिए समय ही नहीं बचता.

गधों की चर्चा जरा विस्तार से करूंगा. गधे का धैर्य, संतोष, क्षमाशीलता व श्रम करने की शक्ति देखकर मैं सचमुच हीन भावना से ग्रस्त हो जाता हूं. सच्ची बात तो यह है कि जब भी मैं किसी ऐसे परमहंस व्यक्ति को देखता हूं जिसमें कि ऊपर बताए गए गुण होते हैं तो उसे भी मैं, बिना किसी शर्त के, गधा ही स्वीकार कर लेता हूं. 'अज्ञेय' ने अपनी कविता में एक 'धैर्य-धन गदहे' की चर्चा की है. वैसे भी उन्होंने काफी गधों को साहित्य में जमाया जिनमें से कुछ ने तो उन्हें एक या दो अदद दुलत्तियां भी मारीं. प्रयोगवाद में कलम से लेकर जूते तक सब कुछ चला. लोदी वंश के संस्थापक बहलोल लोदी के पिता गधों के व्यापारी थे. मुल्ला नसीरुद्दीन ने बड़े-बड़े पद पाए पर सवारी उन्होंने हमेशा गधों की ही की. गधे की कुछ शक्तियां तो मात्र देखने ही लायक हैं, लिखने लायक नहीं. इन्हीं कारणों से संसार की प्रायः सभी भाषाओं में गधे को लेकर न जाने कितनी कहावतें गढ़ी गईं. 'न वेश्या सती, न गदहा जती.' 'तू तो गधी कुम्हार की, तुझे राम से क्या काम?' कहने से कुम्हार कभी गधे पर नहीं चढ़ता. ऐसे गए जैसे गधे के सिर से सींग. गर गधी के कान में कह दूं कि हूं तुझ पर फ़िदा, तो यकीं कामिल है कि वह खेत खाना छोड़ दे. जब खुदा मेहरबान होता है तो गधा पहलवान होता है. रॉबर्ट लुई स्टीवेंसन ने एक गधी पर बैठकर सारे यूरोप की यात्रा की थी. संस्कृत के एक सयाने कवि के अनुसार कुमारी गधी भी सोलह वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने पर अप्सरा की ही भांति आचरण करती है, *'प्राप्ते तु षोड़षे वर्षे, गर्दभीचाप्सरायते.'* मेरे एक अप्सरावादी मित्र के अनुसार सच्ची स्थिति तो यह है कि सोलह वर्ष की कच्ची आयु में तो अप्सरा भी गधी जैसी ही नासमझ होती है. इनमें से सच्चा मत क्या होगा, यह मैं नहीं जानता. मैं तो अपना निश्चित निर्णय तभी दे सकता हूं कि जब सोलह वर्ष की एक कुमारी गधी और उसी आयु की एक कुमारी (या विवाहिता या विधवा) अप्सरा मेरे पास किसी सरकिट हाउस में कम से कम एक सप्ताह तक छोड़ी जाएं. मैं सारी उम्र एक 'सिविल-सर्वेंट' ही रहा हूं और मैं तो जो कुछ भी करूंगा वह शास्त्र-सम्मत ढंग से ही करूंगा. मैं 'गधा-पचीसी' में विश्वास नहीं रखता.

'अज्ञेय' ने अपनी कविता में एक 'धैर्य-धन गदहे' की चर्चा की है. वैसे भी उन्होंने काफी गधों को साहित्य में जमाया जिनमें से कुछ ने तो उन्हें दुलत्तियां भी मारीं.

सच्ची बात यह है कि मैं जितना वर्षा से दुखी था, ठीक उतना ही दुखी मैं 'सीढ़ियों पर धूप' में बैठकर हूं. मैं शायद उन्हीं भाग्यशाली लोगों में से हूं जो दुखी रहने में ही सुखी रहते हैं. फारसी के महान कवि 'हाफ़िज' के शब्दों में मैं भी बराबर यही सोचता रहता हूं कि *'जन्नत के खेतों में चांदनी की फांक सी हंसिया/याद आती है फ़स्लों के बोते और काटते वक्त/ऐ, मेरी किस्मत, सूरज के उगने के बाद भी/क्यों तू अब तक सोती ही रही?'* लिथुआनिया में सत्ता पलट जाने के बाद करोड़ों रुपयों के करंसी नोट अब बेकार हो गए हैं और उनका उपयोग अब 'टायलेट-पेपर' के रूप में किया जा रहा है. नानक दुखिया सब संसार. अड़सठ वर्ष का जागीर सिंह—जो कभी हवाई जहाज़ से लेकर हजामत के ब्लेड तक सारी चीज़ें नाश्ते में लिया करता था—आज अपना पेट भरने के लिए अपने मेडल बेच रहा है. मेरा दीवा एक नाम, दुख बिच पाया तेल. मगर ऐ नौजवान लेखको! तुम हिम्मत मत हारो. गधे पर सवार जज साहब को मेरा मगज़ खाने दो, क्लियोपेट्रा पर सवार सम्राट जूलियस सीज़र को विश्व का इतिहास रौंदने दो पर तुम पुरुषार्थ का कोड़ा लेकर प्रारब्ध के टट्टू की सवारी गांठना मत छोड़ो. देहरादून की घाटी में चाहे वर्षा का अंधेरा हो या धूप की मशाल जली हो—इससे मुझ पर भी कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए. कुछ भी हो, खेल चलते रहना चाहिए. द शो मस्ट गो ऑन.... ■

जनता-नेता रैप

• मनोहर श्याम जोशी • कार्टून: जयंतो

टीवी का लोकप्रिय टॉक शो, आमंत्रित जनता और दबंग पत्रकार एंकरमैन के प्रश्नों की झड़ी. मगर घाघ नेता जी कभी हार जाएं 'क्वेश्चन डजंट अराइज'.

समाचार-विचार की अखिल भारतीय चैनल 'खबरदार' का 'लोगो' आता है और विलायती तालवाद्य कचहरी पर उसका 'हस्ताक्षर लहरा' बजाया जाता है—
बैंड: डेंग-डढेंग-टेंग-टेंग-टेंग.

उद्घोषक: नमस्कार! आपकी आंखें लगी हैं समाचार-विचार की चैनल ख...ख..ख.... 'खबरदार' पर. सावधान, होशियार! प्रस्तुत है हमारा सुपरहिट गाता-बजाता, धमाकेदार राजनैतिक शो—जनता-नेता रैप.

(स्टुडियो में बैंड फिर वही लहरा बजाता है—डेंग-डढेंग-टेंग-टेंग-टेंग और फिर आलीशा, बाबा सहगल और साथी बैंड की संगत टाइटल सांग प्रस्तुत करते हैं. कैमरा स्टुडियो में आमंत्रित जन-प्रतिनिधियों पर घूमता है.)

गायकवृंद: पब्लिक आओ, पूछती जाओ. मत घबराओ, मत शरमाओ. आओ-आओ क्वेश्चन लाओ.

अलीशा: जल्दी-जल्दी, आओ-आओ, सवालों की झड़ी लेके. बात कड़वी लेके. कोई सोटा-छड़ी लेके, घोटालों की घड़ी लेके.

बाबा सहगल: स्कैंडल कोई बड़ी लेके, आओ-आओ इन्हें जताओ. सच नहीं बोलोगे तो बड़ी मार खाओगे. चुनाव अगला तुम श्योर हार जाओगे.

(कैमरा स्टुडियो में आमंत्रित नेता प्रोफेसर हर्षद भंटाडारकर पर जाता है, जो आकर अपनी गद्दी संभालते हैं.)

हर्षद: नेता जी कभी हार जाएं क्वेश्चन डजंट अराइज, नेता जी इज पावरफुल ऐंड जनता जी इज वाइज.

(कैमरा बैंड और गायकों पर जाता है).

अलीशा: वेलकम गद्दीनशीं, इन दिस सवालिया सरजमीं. सवाल जहां बहुत, पर जवाबों की कमी.

बाबा सहगल: आइए जनाब, आप हैं लाजवाब, रहते हैं लाजवाब, करते हैं लाजवाब. काजल की कोठरी में साफ इनका बदन, साफ इनका हिसाब.

अलीशा: आप आ गए, जनता भी आ गई, मगर शो के एंकरमैन कहां गए भई?

(एंकरमैन प्रमोद हूहा आता है और बैंड लहरा बजाता है—डेंग-डढेंग-टेंग-टेंग-टेंग.

गायकवृंद: हियर कम्स प्रमोद हूहा, मशहूरो मारूफ परकतरू चूहा. नेता लोग इनसे डरते हैं, डर के जेब इनकी भरते हैं. फ्रेंड्स गिव हिम अ बिग हैंड, ही इज लीडिंग दिस बैंड.

(श्रोता तालियां बजाते हैं और प्रमोद हूहा आकर हर्षद के पास कुर्सी ग्रहण करता है.)

प्रमोद: हाजिर हूं दोस्तो, नाजिर हूं दोस्तो! हर नेता से लड़ूंगा, आपकी खातिर मैं दोस्तो!

गायक: नेता से लड़ेगा, नेता से भिड़ेगा. युद्ध यहां घमासान छिड़ेगा. गिव हिम अ बिग हैंड, मोस्ट डेयरिंग जर्नलिस्ट ऑफ दिस लैंड.

(पब्लिक फिर तालियां बजाती है. इस बार हर्षद भी तालियां बजाता है. फिर प्रमोद हाथ उठाकर श्रोताओं से तालियां बंद करने का आग्रह करता है.)

प्रमोद: धन्यवाद. जनता-नेता रैप में एक बार स्वागत है मेरे तमाम चाहने वालों का, उनका भी जिनकी मुहब्बत उन्हें स्टुडियो में खींच लाई है और उनका भी जो अपने घरों में टेलीविजन सेटों के आगे बैठकर मुझ पर अपनी नजरे-इनायत कर रहे हैं. दोस्तो, इस देश में जब भी ये सवाल उठता है कि जवाब क्या है, तब जवाब ये मिलता है कि क्यों साहब सवाल क्या है? आप सवाल दोहराते हैं तो वो फरमाते हैं अरे भई कमाल है, भला ये भी कोई सवाल है? इन छोटी बातों में न उलझिए, न उलझाइए. हमें बहुत काम हैं, अब तशरीफ ले जाइए.

(बीच-बीच में श्रोता हंसते रहते हैं और उनकी हंसी पर पहले से रेकॉर्ड की हुई हंसी हावी रहती है.)

प्रमोद: है नहीं ये बात हंसने की दोस्तो, पानी में चुल्लू भर डूब मरने की दोस्तो. सियासत में नहीं संवाद जनता और नेता में, उन्हीं को जोड़ने इस शो में यारब आज हम निकले. कस के निकालें अरमां, फिर न कहिए कम निकले. तो प्रोग्राम करते हैं शुरू, आपसे हैं रू-ब-रू....

(कैमरा हर्षद भंटाडारकर पर जाता है.)

प्रमोद:....देश के नेता शीर्षस्थ, सबसे अधिक विवादास्पद, आपके चहेते हर्षद भंटाडारकर जी यहां आए हैं सब मुखौटे उतार कर. गिव हिम अ बिग हैंड, ही इज लीविंग दिस लैंड.

(कैमरा हर्षद और प्रमोद दोनों पर रहता है. प्रमोद के साथ-साथ श्रोता भी ताली बजाते हैं. प्रमोद हाथ उठाकर तालियां बंद करवाता है.)

प्रमोद: हर्षद जी आज आपको मैं छोड़ूंगा नहीं, जनता की लड़ाई लड़ने से मुंह मोड़ूंगा नहीं. पूछूंगा टेढ़े सवाल, कर दूंगा बुरा हाल.

हर्षद: सवालों से मैं घबराता नहीं हूं. समस्याओं से मैं कतराता नहीं हूं. ये प्रमोद हूहा करते हैं हंसी-ठठ्ठा, है जाता वक्त मेरा जवाब देने में ही क्योंकि मैं हूं जिम्मेदार, मानता हूं जवाबदेही. जो आप पूछेंगे, बताऊंगा. नहीं समझे तो फिर समझाऊंगा.

प्रमोद: समझाएंगे आप, समझेंगे वो लेकिन आफ्टर द ब्रेक, वेन वी कांटिन्यू द शो.

पहला विज्ञापन: हर्षद भंटाडारकर स्वस्थ मनोरंजन को प्रोत्साहन देने के लिए "1942: अ लव स्टोरी" देखने गए होते हैं कि सहसा राष्ट्र पर संकट छा जाता है. अंधेरे सिनेमाघर में वह अपनी सेक्रेटरी द्वारा इसलिए आसानी से पहचान लिये जाते हैं कि डिटर्जेंट विशेष की कृपा से उनकी सफेद गांधी टोपी की चमकार अंधेरे पर प्रहार करती होती है.

दूसरा विज्ञापन: प्रमोद हूहा 'जनता-नेता रैप' कार्यक्रम टेप कराते हुए अपने को बहुत ही शिथिल महसूस करता है और ऐसा लगता है कि रिकॉर्डिंग कैंसिल करनी पड़ेगी. लेकिन एक चाकलेट विशेष खा लेने से उसमें गजब की स्फूर्ति आ जाती है और वह ताक-धिना-धिन करता हुआ जनता और नेता के साथ रैप करने लगता है.

तीसरा विज्ञापन: विश्व मुद्राकोष का प्रेसिडेंट स्टार टीवी के मालिक से भारत के उज्ज्वल भविष्य के बारे में चंद बातें करता है और उसके साथ-साथ देश की तरक्की की झांकियां आती हैं जिनमें से नेता बिरादरी भी झांकती रहती है.

(परदे पर फिर स्टुडियो आ जाता है. प्रमोद श्रोताओं को संबोधित करता है.)

जबरदस्ती मेरे मुंह में मत डालिए ये लाइन, मैंने कभी नहीं कहा कि एवरीथिंग इज फाइन. समस्याएं हैं और मैं उनसे मुंह मोड़ता नहीं. उनसे जूझने को ही, गद्दी छोड़ता नहीं. ...विवादास्पद हूं क्योंकि विवादों से रहता हूं दूर.

प्रमोद: वेलकम बैक टु जनता-नेता रैप. सवाल-जवाब का सिलसिला आज करेंगी शुरू, झुमरी तलैया की मिस झुमरू.

(श्रोताओं के बीच में से अधेड़ मिस झुमरू उठती हैं और बहुत लजाते-सकुचाते अपनी बात कहती हैं).

झुमरू: माननीय हर्षद जी, आप बहुत वो हैं, आइ मीन कंट्रो... मेरा मतलब है....

(प्रमोद उसकी मदद को आता है.)

प्रमोद: कंट्रोवर्सियल हैं. विवादास्पद!

(मिस झुमरू राहत महसूस करती हैं).

झुमरू: विवादों से आप घिरे हैं भरपूर, फिर इस्तीफा क्यों नहीं देते हुजूर.

प्रमोद: और देशों में नेता छोटी-छोटी बातों पर करते हैं रिजाइन. लेकिन आप जैसा जताते हैं कि एवरीथिंग इज फाइन.

हर्षद: जबरदस्ती मेरे मुंह में मत डालिए ये लाइन, मैंने कभी नहीं कहा कि एवरीथिंग इज फाइन. समस्याएं हैं और मैं उनसे मुंह मोड़ता नहीं. उनसे जूझने को ही, गद्दी छोड़ता नहीं. झुमरी तलैया की झुमरू बहना, तुम्हारे प्रश्न पर मुझे ये कहना कि विवादास्पद के रूप में मैं इसलिए हूं मशहूर क्योंकि मैं विवादों से सदा रहता आया हूं दूर. पचड़ों में पड़ता नहीं, गुटबंदी करता नहीं. बस काम से रखता हूं मैं अपना काम, मेरे तो आदर्श हैं भगवान श्री राम. माफ करना प्रमोद, तुम्हारे हूहा मीडिया ने रोल प्ले किया है बहुत ही गंदा. विवादों और घोटालों के सहारे चलाया है अपना धंधा. पॉलिटिक्स का कर दिया है बहुत बुरा हाल. और पब्लिक का गिरा दिया है मोराल.

झुमरू: आपका मतलब है, सब झूठे हैं आरोप?

प्रमोद (व्यंग्य से): जी हां, मीडिया ने रचा है विवादों का घटाटोप, काम कभी कोई गलत हुआ नहीं हर्षद जी के राज में. फर्क कोई आया नहीं नेशन के मिज़ाज में. करप्शन हुआ नहीं, क्राइम बढ़ा नहीं, रायट हुए नहीं, इन्फलेशन चढ़ा नहीं.

हर्षद: बात भले आपने है व्यंग्य में कही, आंकड़े बता रहे हैं यही सही. अर्थव्यवस्था सुधरी है, विदेशों में हमारी अच्छी छवि उभरी है. ओ झुमरी तलैया की झुमरू बहना, मेरा तो आपसे है ये कहना कि क्राइम, करप्शन और बेहिसाब भोग, कलयुग में कहां नहीं फैला इनका रोग. मेरी सरकार पर जो लगे हैं अभियोग, मैंने जंचवाएं हैं बिठाकर जज लोग. गुनहगारों को सजा देने का हमेशा किया है वादा, थोड़ी कहता हूं समझ लेना ज्यादा. मैं घिरा ही इसलिए हूं विवाद में कि मेरे लिए पहले आता है देश, और विवाद बाद में.

प्रमोद: आपके पहले भी विवाद, आपके पीछे भी विवाद. इसी तरह ये गद्दी किए रहे आबाद... और अब करेंगे दूसरा सवाल, घाटमपुर के श्री रामलाल.

(दबंग दिखने वाला रामलाल उठता है).

रामलाल: इतना बड़ा घोटाला हुआ हर्षद जी के राज में, आयोग बिठलाया गया हर्षद जी के राज में. आयोग की रिपोर्ट पर हुआ नहीं अमल, खोयी रकम मिली नहीं—न सूद, न असल. छोटे-छोटे चोर तक पा रहे हैं सजा, इतने बड़े चोर कैसे कर रहे मजा?

प्रमोद: इतना तो आप मुझसे ही ले लें ज्ञान, कि छोटे चोर पकड़ना होता है आसान. और बड़े चोर पकड़ते हुए यों निकलते हैं प्राण कि कहीं उनके साथ खुद भी न होना पड़े कुरबान.

हर्षद: बीच में मत कीजिए कांय-कांय-कांय, यों मत बोलिए आंय-बांय-टांय. सुनिए श्री रामलाल जी, मुझसे क्यों करते हैं ये सवाल जी? इसका जवाब देते तो हैं आपकी पार्टी के गुरु, जिनके राज में ये घोटाला हुआ शुरू.

रामलाल: हम नहीं हैं किसी भी दल में, लेकिन आप तो जुड़े थे उनकी भी सरकार से, फिर भी कभी कोई ऐक्शन नहीं लिया किसी भी प्रकार से.

हर्षद: ऐक्शन हमने लिया है, विवरण रिपोर्ट में दिया है. कुछ नहीं किया ऐसा कहना तो रांग है, ऐक्शन हमने लिया खासा स्ट्रांग है.

प्रमोद: इतना स्ट्रांग कि किसी की गद्दी हिली नहीं.

रामलाल: किसी एक मंत्री को भी सजा मिली नहीं.

हर्षद: मंत्रियों पर टेक्निकल जिम्मेदारी श्योर है लेकिन ये कहीं भी साबित नहीं हुआ कि कोई भी मंत्री किसी भी रूप में अपराधी या चोर है. देखिए सिर्फ दुश्मनों की ही अटकल पर देने लगें सजा, तो हो जाएगा अंधेर.

रामलाल: इसको कहते हैं अंधेर पर अंधेर. दुश्मन कहते हैं आप अपने ही बैठाए आयोग को, चोर आप ही को बता रहे हैं प्रतिपक्ष के

लोग तो.

हर्षद: मेरे राज में कभी न होगा अंधेर. जांच अभी जारी है, तलाश अभी जारी है. मेरी बस यही जिम्मेदारी है कि दोषी मिलने पर उसे दिलाऊं सजा, खजाना लूटने का चखाऊं मजा. लोकतंत्र है, हर कोई स्वतंत्र है. प्रतिपक्ष चाहे कुछ भी कह ले, लेकिन इतना तो समझ ले कि बिना देखा चोर होता है, बराबर बाप के.

रामलाल: यानी कि आपके.

हर्षद (हाथ जोड़कर): जी हां आपके.

प्रमोद (हंसकर): आप ये कहना चाहते हैं कि हम सब हैं चोर?

हर्षद: ऐसा तो आपका मीडिया मचाता है शोर. हाथ जोड़ता हूं बातें करके ऐसी घटिया, मत खड़ी कीजिए इस देश की खटिया.

प्रमोद: हर्षद जी को चोर कहना ये आरोप बेबुनियाद है. आप जरा ये भी देखिए कि आयोग की सत्तर सिफारिशें मान ली गईं, बीस हैं विचाराधीन और कुल पांच पर विवाद है.

रामलाल: सांच को नहीं है आंच, असली सिफारिशें वही हैं पांच. मैं....

प्रमोद: अब रहने दें, छोड़ दें फ्लोर. अगले प्रश्नकर्ता दतिया के राजकिशोर.

(रामलाल फिर भी कुछ कहना चाहता है लेकिन राजकिशोर उसे बैठा देता है और खुद सवाल करता है).

राजकिशोर: माननीय महोदय आपके जो पोते और नाती हैं, बहुत ही चपरकनाती हैं. मचाते हैं दंगा, कराते नाच नंगा. लूटते हैं, खसोटते हैं, करते हैं बलात्कार, मच रहा चहूं और हाहाकार. विदेशी बाला को कर दिया रेप...

हर्षद: वो तो है मिसप्रिंट, वो तो है मिस्टेक. रेप नहीं किया, किया था रैप डांस, अ केस ऑफ रूमांस. एक मामूली-सा मामला, जिसे विरोधियों ने दे दी तूल है, उनकी अंग्रेजी कमजोर है, इसलिए हुई भूल है.

राजकिशोर: लेकिन महोदय उस लड़की ने तो लगाया यही इल्जाम है.

हर्षद: देखिए मिस्टर आपका क्या नाम है, राजकिशोर, उस बच्ची की भी है इंग्लिश कमजोर. ठीक से पूछने पर उसने मंजूर की नादानी कि कह बैठी रेप, कहना चाहती थी छेड़खानी. छेड़खानी की मेरे पोते ने, इसका मुझे बहुत अफसोस है लेकिन क्या बताएं इस यंगर जनरेशन को नहीं रह गया किसी बात का होश है. स्कूलों में नैतिक शिक्षा का अभाव है, फिल्म-टीवी का बढ़ता हुआ दुष्प्रभाव है.

प्रमोद: शिक्षा, फिल्म, टीवी, सब आपके ही है हाथ, अपने परिवार के भी आप ही हैं नाथ. फिर कैसे बिगड़ गई इतनी है बात कि पोता रेप कर बैठा एक फोरिनर के साथ.

हर्षद: आपने भी रेप कहा?

प्रमोद: जी नहीं रैप. केस डायरी कहती है कि मामला छेड़खानी का है, आपके पोते के जोशे जवानी का है.

हर्षद: थैंक्यू प्रमोद. मैंने कर लिया नोट कि इस मामले में मेरी भी नैतिक जिम्मेदारी है, सचमुच मुझसे हो पड़ी भूल बहुत भारी है. जुट गया मैं देश और समाज के सुधार में, देखा ही नहीं हो रहा क्या घर में, परिवार में. बेटों ने कॉलेज से मुंह मोड़ा तो पोतों ने कॉलेज ही छोड़ा. जिस समय मैंने देश की जिम्मेदारी संभाली, मेरे घर से गुजर चुकी थी मेरी घरवाली. बच्चों की ठीक से नहीं हो पाई रखवाली. आर्थिक सुधार की थी इतनी ज्यादा अपेक्षा कि शिक्षा, फिल्म, टीवी की मुझसे हो गई उपेक्षा. मनमानी की ये आ पहुंची है सीमा, कि श्रद्धेय माताओं, बहनों, और नेताओं की इज्जत का बना रहे हैं कीमा. सेंसर से सख्ती बरतने को कह दिया है, स्कूलों में नैतिक शिक्षा पीरियड रख दिया गया है.

राजकिशोर: नीति का सबक सबको बाद में सिखाना जी, पहले अपने नाती को सजा तो दिलाना जी.

प्रमोद: पाए वो सजा, और देवें आप इस्तीफा, सारे प्रतिपक्ष की आज यही मांग है, सदन में, सड़क में खींच रहे टांग हैं.

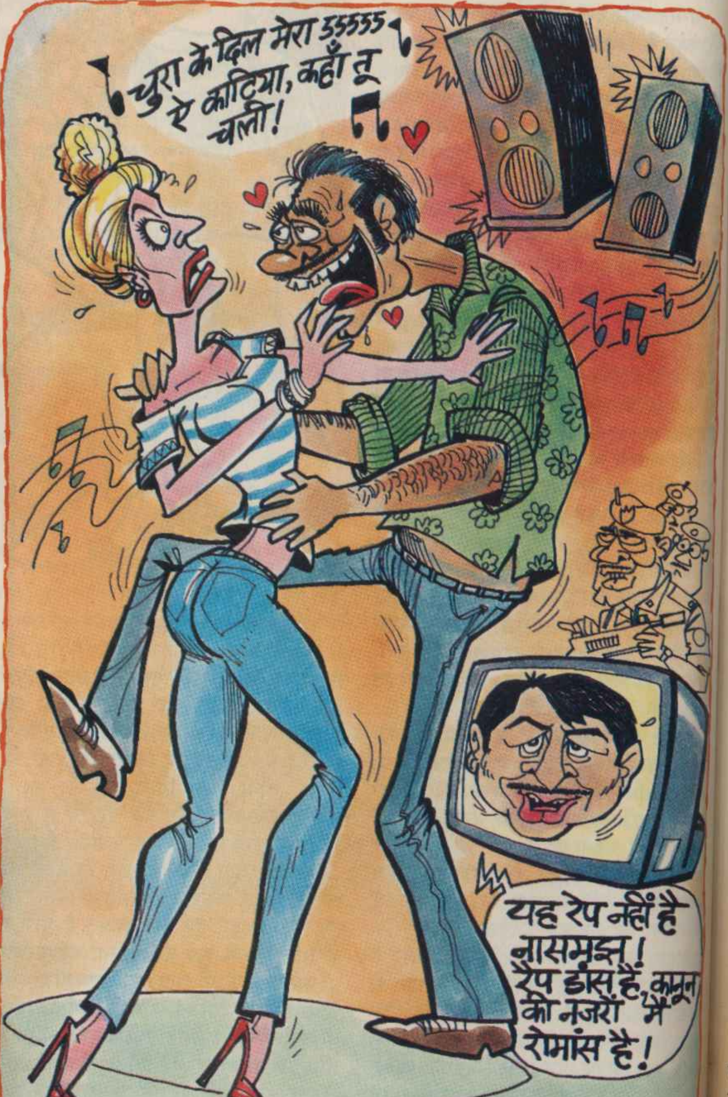

हर्षद: इशारे से ही कह सकने वाली बात है, देश में अब सक्रिय विदेशी हाथ है. मुझे कुर्सी से हटाने के बहाने, निकले हैं वे इस देश को हिलाने. प्लीज अपोजिशन, मानो मेरा सजेशन. अगले चुनाव तक शासन मेरा झेलो, विदेशी हाथ के हाथ में मत खेलो. रेप और रैप का फैसला होगा वोट से, देश की छवि मत बिगाड़ो स्कैंडल की चोट से.

प्रमोद: यू मीन खुफिया एजेंट है वो विदेशी बाला, नाती पर आपके जादू जिसने डाला?

राजकिशोर: बातें न बनाइए जनाबे आला सचमुच फितना है आपकी बिटिया का लाला. सजा देंगे कब उसे? देश की इज्जत का सवाल है.

हर्षद: अजी कमाल है. हां! सजा देगा कानून. मैं क्यों लूं उसे हाथ में?

राजकिशोर: क्षमा करें कुछ दम नहीं है आपकी इस बात में.

प्रमोद: जबान पर आप दें लगाम, कानून को करने दें काम. अब सवाल पूछेंगे रणमण के राधेश्याम.

(राधेश्याम उठता है).

राधेश्याम: क्या यही हैं समाजवादी लक्षण? कि आर्थिक आधार पर आप करते नहीं आरक्षण?

हर्षद: आर्थिक और सामाजिक दोनों आधार, लेकर चलेगी हमारी सरकार. नौकरियों, दाखिलों में पच्चीस प्रतिशत आरक्षण, पाएंगे अब सभी जातियों के निर्धन.

प्रमोद: ये आपने कैसे कर डाला वादा? इस तरह तो आरक्षण हो जाएगा सौ प्रतिशत से ज्यादा!

हर्षद: वादा किया है तो अवश्य निभाएंगे, आवश्यकता हुई तो आरक्षण दो लाख प्रतिशत तक ले जाएंगे.

प्रमोद: लगता है पीकर आप आए हैं भांग?

हर्षद: नहीं, मैं इस देश की दलित, पिछड़ी गरीब जनता की ओर से कर रहा हूं मांग. दो लाख प्रतिशत कर दो आरक्षण, अगले दो हजार वर्ष तक संपन्न सवर्ण का कहीं न हो चयन. दो हजार वर्ष से करते आए हैं मजा, अब दो हजार वर्ष तक उन्हें दी जाए सजा.

प्रमोद: हर्षद जी ने बात बहुत बड़ी कह डाली, इसी खुशी में हो जाए ताली.

(प्रमोद हूहा ताली बजाता है, उसके साथ दर्शक भी).

दर्शक: हर्षद भंटाडारकर जिंदाबाद.

प्रमोद: प्लीज बंद करें नारे, समय है कम सवाल हैं बहुत सारे. अब पूछेंगी अगला क्वेश्चन उल्हासनगर की गीता जानकी रमन.

गीता: आपका कई अफसर लोग बोला है आपका खिलाफ में कि आप इंटरवीन किया है माफिया का बिहाफ में. जिन लोगों ने आपकी बात नहीं माना, आप उनको सुरू कर दिया सताना. और....

(गीता वाक्य पूरा नहीं कर पाती. हर्षद उसे व्यंग्य से देखता है और प्रमोद सहायता करता है).

प्रमोद: और माफिया लोग का कम्प्लेंट पर इन्क्वायरी बिठवाना.

> **आज के शो में भाग लेने वालों को मेरी ओर से भी एक उपहार, कोई अपना एक काम करवा लेने का अधिकार– तबादला, तरक्की, लाइसेंस या नौकरी. फोन या फ्लैट, आइ मीन दिस ऐंड दैट. किसी दिन कोठी पर आके उठाएं सवाल.**

हर्षद: माफिया वाला है तो क्या इंसान नहीं है? शिकायत में उसकी कोई जान नहीं है? क्या उसकी मुसीबत नहीं होती मुसीबत? इन्क्वायरी ही बताएगी कौन सही है, कौन गलत.

गीता: उन अफसर लोग आप पर लगाया है चार्ज कि आपको मंगता है माल, माफिया लोग मचाता रहे धमाल.

हर्षद: मीडिया इस मुल्क का करता है कमाल. जो उछाले कीचड़, उसे देता है उछाल. मैं तो देखकर रह गया हूं दंग कि अफसर जो करते हैं अनुशासन भंग, मीडिया उन पर चढ़ाता है शहीदों का रंग. जो सरकारी नौकर बोलता है सरकार के विरोध में, उसको तो लाना ही पड़ेगा होश में. नहीं तो कैसे चलेगी सरकार?

गीता: लेकिन ये सब अफसर लोग तो हैं ईमानदार.

हर्षद: वो क्या हैं ये तो इन्क्वायरी बताएगी, सारी बात आपके सामने आ जाएगी.

गीता: वही मैं पूछी कि उन लोग पर आप इन्क्वायरी कायकू बिठाई, जिन लोग ने माफिया का किया था सफाई?

प्रमोद: मैं जानता हूं कि इसका आपको बहुत गम है, लेकिन समय हमारे पास बहुत कम है. अदालत के फैसले का कीजिए इंतजार, मत बेकार में बढ़ाइए तकरार. अब बस एक को ही करने दिया जा सकता है प्रश्नोत्तर, बाकी को डाक से भिजवाने होंगे उत्तर. तो अंत में मैं दे रहा हूं आवाज, उठें गया के पंडित चोखे महाराज.

(धोती-कुर्ताधारी पंडित चोखे महाराज उठते हैं).

चोखे: संस्कृत में कहा है कि बस एक लज्जा यदि दो तुम त्याग, खुल जाएंगे फौरन तुम्हारे भाग. जीत लोगे तुम फिर तीनों ही लोक, न रहेगा कोई कष्ट, न रहेगा कोई शोक. श्रीमान इस बारे में आपका क्या ख्याल है? मेरा तो बस इतना ही सवाल है.

हर्षद: देखिए संस्कृत की महिमा तो है जानी-मानी. मानव ने इसी में सुनी थी देववाणी. धर्म और नीति का इसी में सार है, जो नहीं संस्कृत में, सब बेकार है. संस्कृत को इसीलिए महत्व दे रही है सरकार, टेलीविजन पर भी शुरू कर दिए हैं संस्कृत समाचार. और अब मैं आपको करना चाहूंगा नमस्कार. विदेश उड़ने के लिए मेरा प्लेन है तैयार.

(हर्षद नमस्कार करके उठने लगता है. प्रमोद उसे फिर बैठाता है).

प्रमोद: एक मिनट सर, जरा घोषित करने दें पुरस्कार. इस शो में भाग लेने वाले सभी लोगों को दिया जाता है—एक साल तक मुफ्त अखबार. तीन तीसरे इनाम मनपसंद एम.पी. के साथ एक भागमभाग दिन और एक रंगारंग शाम. दो द्वितीय पुरस्कार कलर टीवी विथ वी.सी.आर.. और पहला इनाम हांगकांग का मुफ्त टिकिट और वहां दो रात और तीन दिन का मुफ्त कयाम.

अब पिछले शो के विजेताओं के नाम थर्ड प्राइज—विनायक राव (सिकंदराबाद), प्रज्ञावती (नसीराबाद) और कमल किशोर (पटना).

सेकेंड प्राइज—गुरमीत सिंह (सतना), साधना वर्मा (लखनऊ).

और फर्स्ट प्राइज—गुलाम हैदर (फाफामऊ).

किस प्रश्नकर्ता का आज सबसे अच्छा रहा प्रदर्शन? प्लीज हमें लिख भेजें आप फौरन. आपकी राय से विजेताओं का होगा चयन. हमारा पता 'जनता-नेता रैप, पोस्ट बॉक्स नंबर 77, बंबई-400001'

हर्षद: आज के शो में भाग लेने वालों को मेरी ओर से भी एक उपहार, कोई अपना एक काम करवा लेने का अधिकार. तबादला, तरक्की, लाइसेंस या नौकरी. फोन या फ्लैट, आइ मीन दिस ऐंड दैट. किसी दिन कोठी पर आके उठाएं ऐसा सवाल, समाधान करा दूंगा मैं तत्काल. यही मेरा संदेश जनता के नाम. काम की बात करो, रखो काम से काम. तभी देश में खुशहाली होगी व्याप्त.

प्रमोद: इसी के साथ आज का शो होता है समाप्त.

(प्रमोद नमस्कार करता हुआ उठता है और बैंड और गायकों की ओर इशारा करता है. बैंड धुन छेड़ता है. नाच-गाना शुरू होता है जिसमें सभी लोग भाग लेते हैं.)

गायक: सा रे गा मा पा धा नी, नेता दीवाना, जनता दीवानी.

गेटिंग टूगैदर रैपिंग टूगैदर. मेकिंग पॉलिटिक्स, मेकिंग माल-पानी.

उद्घोषक: इस शो के प्रायोजक प्रॉक्टर ऐंड गैंबुल, नेस्ली और रूपर्ट मर्डोक. ऐंड विद दिस वी साइन ऑफ. ■

आशिकों के तीन नाम

● ज्ञान चतुर्वेदी ● कार्टूनः जयंतो

अलीपुरा में किसी कन्या से प्रेम जाहिर करने के जितने तौर-तरीके थे उन्हें आजमाने से नहीं चूके हमारे आशिक छुट्टन.

बिन्नू को देखने तालबेंहट वाले आ रहे हैं. उनको स्टेशन से लाने का महत्वपूर्ण कार्य परिवार के सबसे तिकड़मी पुत्र छुट्टन को देकर गुच्चन भैया निश्चिंत हो गए थे. पर उन्हें पता नहीं था कि किस्मत को कुछ और ही मंजूर था. राष्ट्रकवि आनंद बख्शी का एक मशहूर गीत है कि "मैं देर करता नहीं, देर हो जाती है."

छुट्टन के साथ यही हुआ.

वे रेलवे स्टेशन के लिए निकले थे, मगर देर होती गई. जेब में अम्मा से झटका हुआ एक रुपया लेकर वे जब निकले तो किसी रईस से कम महसूस नहीं कर रहे थे. अपनी गली से निकल वे दूसरी गली में घुसते हुए गंधाते पानी के एक डबरे पर छलांग लगा ही रहे थे कि उन्हें गली के दूसरे सिरे पर वह दिखी.

वह, यानी बिब्बो.

बिब्बो से उन्हें प्यार था. प्यार से तात्पर्य यह कि वे उससे प्रेम करते थे और बिब्बो को अभी यह बात पता भी नहीं थी. छुट्टन पिछले चार माह से बिब्बो पर यह प्रेम प्रकट करने को आतुर थे. अलीपुरा में किसी कन्या पर प्रेम जाहिर करने के कुछ स्वीकृत तौर-तरीके थे, जिनको बारी-बारी से आजमाने की छुट्टन ठान चुके थे. इन तरीकों में सर्वाधिक लोकप्रिय तथा आजमाया नुस्खा था, काला चश्मा पहनकर तथा चटकीले (हो सके तो लाल रंग का, वरना जो भी रंग आंखों में बरछी-सा चुभ सके, उस रंग के) रुमाल को गले में फांसी की तरह बांधकर लड़की की गली का चक्कर लगाना. बिब्बो के केस में छुट्टन को यह फायदा भी था कि वह ऐन बगल की गली में रहती थी और इस कारण, बिना किसी विशेष परिश्रम के, उनकी गली के कितने भी चक्कर काटे जा सकते थे. छुट्टन की काया यूं ही बम-खटाखट थी और वे बहुत परिश्रम करने के चक्कर में नहीं पड़ना चाहते थे, विशेष तौर पर प्रेम के क्षेत्र में. फिर उनका यह तर्क भी इस संदर्भ में काबिले-गौर था कि यदि सारी ऊर्जा यार की गली के चक्कर मारने में ही खर्च हो जाएगी, तो वास्तविक प्रेम हो जाने पर संपन्न की जाने वाली अंतरंग गतिविधियों के लिए ताकत कहां से आएगी, जबकि शिलाजीत इत्यादि बेचने वाले विद्वानों से प्राप्त ज्ञान के अनुसार इन महती कार्यों में घोड़े के बराबर शक्ति की दरकरार होती थी. फिर भी, जितनी बार हो

सके, वे कनछेदी पनवाड़ी से स्थायी रूप से उधार लिये काले चश्मे को लगाकर बिब्बो की गली से गुजर जाया करते थे.

अलीपुरा में लड़की पर प्रेम प्रदर्शन करने का एक अन्य तरीका यह भी था कि लड़की घर से निकले तो उसके पीछे लग लो और स्कूल या कॉलेज तक, यानी कि जहां तक वह जाती हो, प्रतिदिन जाओ. कुछ ही दिनों में वह जान जाएगी कि यह जो कुत्ते की तरह मेरे पीछे-पीछे आता है, मुझे प्यार करता है. ऐसी स्थिति में या तो आपका प्यार चल निकलेगा, या अगले दिन ही, घर से स्कूल के बीच कहीं आप पिट-पिटा जाएंगे, जो प्यार की कठिन राह में मामूली बात है. परंतु बिब्बो के संदर्भ यह तरीका अपनाने में कठिनाई यह थी कि दसवीं कक्षा में ही दो दफे फेल हो जाने के बाद बिब्बो की मां ने उनकी चुटिया पकड़कर घर बिठा लिया था और कहा था कि घर का काम सीखो, जो शादी के बाद काम आएगा, तुम्हारे लच्छन पढ़ने-लिखने वाले हैं नहीं. सो, बिब्बो का घर से बाहर आने का कोई निश्चित समय नहीं था और छुट्टन को मचान पर लटके शिकारी की तरह प्रतीक्षा करनी पड़ती थी. दस बार वे उस गली से निकलते थे, तो एकाध बार बिब्बो छज्जे पर गीले बाल सुखातीं, या चबूतरे पर मूंगफली खातीं या गली में पड़ोस के घर से दही का जामन लेने कटोरी लेकर जाती दिख जाती थीं. इतने कम समय में, जब बिब्बो मात्र कुछ मिनटों के लिए ही प्रेम-प्रकटन हेतु उपलब्ध होती थीं, तब एक ही साथ बहुत से जरूरी कार्य छुट्टन को संपन्न करने पड़ते थे, जिसमें कई बहुमूल्य मिनट नष्ट हो जाते थे. जैसे ही वे बिब्बो को देखते, तुरंत जेब से काला चश्मा निकालकर नेत्रों पर धारते, फिर जल्दी से जेब से कंघी निकालकर बाल काढ़कर उन्हें कंघी से ही दबाकर चिरैया जैसा फुग्गा बनाते और फिर बिब्बो को तिरछी नजरों तथा भूखी मुद्रा में घूरते गली को पार कर जाते. कभी बिब्बो उनको देख लेतीं, कभी नहीं भी देख पातीं. मूंगफली छीलने, गन्ना चूसने, गीले बालों को झटकने या जुएं वाली कंघी बालों में फिराने जैसे कार्यों में बिब्बो व्यस्त रह जातीं और उनको खबर ही नहीं हो पाती कि छुट्टन इतना ढेर सारा प्यार उनकी गली में बिखरा कर निकल गए हैं.

> **अ**पने घर से दस-बारह कदमों की दूरी पर थीं बिब्बो और उनका पिछवाड़ा छुट्टन की तरफ था. छुट्टन ने तेज कदम बढ़ाए. उन्होंने देखा कि बिब्बो के पुष्ट नितंब उनके हर कदम के साथ बड़े खतरनाक अंदाज में गतिमान थे, चुटिया नागिन-सी लहरा रही थी...

अलीपुरा में जाहिर-इश्क का वह तरीका तो खैर अन्य शहरों की तरह ही पॉपुलर था, जिसके तहत लड़की को प्रेम-पत्र लिखकर उसमें अपना दिल काढ़कर भेजा जाता है. छुट्टन ने बीच में विचार भी किया था कि बिब्बो को एक प्रेम-पत्र लाल स्याही से लिखकर ठोक दें, जिसकी शुरुआत कानपुर की मशहूर नौटंकी की उस हरदिलअज़ीज ग़ज़ल की उन सारगर्भित पंक्तियों से हो जिनमें लोकशायर प्रेमिका का आह्वान कर रहा है कि, ''चल पुलिया की ओट, ले ले दस का नोट और हो जाए एक-एक चोट.'' प्रेम-पत्र का अंत वे यूं करना चाहते थे कि लिखता हूं अपने खून से स्याही न समझना, और इसी भावना को वे लाल स्याही से प्रेम-पत्र लिखकर व्यक्त करना चाहते थे. अब यह बात अलग थी कि 'ले ले दस का नोट और चल पुलिया की ओट' पढ़कर यदि बिब्बो वास्तव में ही छुट्टन से दस का नोट मांग लेती तो उनकी स्थिति शर्मनाक हो जाती. पर वे जानते थे कि कविता कविता होती है और मात्र अपनी भावना प्रकट करने का जरिया होती है. बिब्बो शब्दार्थ पर न जाकर भावार्थ को पकड़ लेंगी, यह जानते थे छुट्टन. परंतु एक बार प्रेम-पत्र लिखकर देने के बाद बात हाथ से निकलने जैसी हो सकती थी तथा यही पत्र बिब्बो के बाप के जरिये अंततः गुच्चन भैया तक पहुंचाया जा सकता था. यही डर था, जो छुट्टन को यह तरीका अपनाने से रोके था.

लड़की को देखकर आंख मारना भी एक तरीका था. इस तरीके में करना यह होता था कि लड़की को ताकते रहना पड़ता था और ज्यों ही वह आपकी ओर देखे, तो आपको अपनी बाईं या दाहिनी, जो भी आंख लड़की के करीब पड़ रही हो, दबानी होती थी. लड़की ने यदि आपको भेंगा नहीं समझ लिया, तो वह आपका मंतव्य समझ जाती थी—ऐसा मानना था लोगों का. छुट्टन ने यह विधि इसीलिए नहीं अपनाई क्योंकि इसे काला चश्मा पहनकर संपन्न नहीं किया जा सकता था, जबकि छुट्टन का दृढ़ विश्वास था कि काले चश्मे में वे बड़े मारक, लगभग शशि कपूर-से लगते थे. उनके पनवाड़ी मित्र कनछेदी की भी यही राय थी कि वे काले चश्मे में बड़े बंबास्टिक दिखते हैं. छुट्टन ने झांसी जाकर, इसी काले चश्मे में अपनी एक फोटो भी निकलवाई थी, जिसके बारे में वे स्वयं कहते थे कि बहुत सुंदर आई थी.

इसके अलावा, बिब्बो से प्रेम को परवान चढ़ाने हेतु छुट्टन ने इसी बीच अन्य विधियों पर भी गहन विचार मंथन किया था. वशीकरण मंत्र सीखने, अभिमंत्रित अंगूठी को वीपीपी द्वारा मंगाने (जिसके विषय में चालू विज्ञापन में यह दावा किया गया था कि इसे पहनने वाले की बांहों में सात तालों में बंद तथा सात समंदर पार की माशूका भी आकर गूलर-सी गिर जाएगी) तथा पूजापाठ की शक्ति द्वारा भी बिब्बो पर वांछित असर पैदा करने की असफल कोशिश छुट्टन ने की थी. कभी-कभी तो यह दुष्ट विचार भी उनके मन में आता था कि क्यों न एक दिन बिब्बो को जबरन ही उठा लिया जाए और सारा प्रेम एक ही दफे में प्रकट कर दिया जाए. परंतु, कुछ तो अपने प्रेम की पवित्रता का ख्याल करके और उससे भी ज्यादा हिम्मत की कमी के कारण वे रह जाते थे. फिर उनके एक मित्र श्री अभयदेव जी ऐसे ही एक प्रयास के बाद जेल के बंबे का पानी पी रहे थे. क्या यह नागरिक को संविधान द्वारा दिए गए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का अपमान नहीं था? ऐसी स्वतंत्रता का अर्थ ही क्या था, जिसमें वे बिब्बो पर अपने प्रेम को अभिव्यक्त करने के सबसे डायरेक्ट-ऐक्शन से मात्र इसीलिए वंचित रह जाएं क्योंकि ऐसा करने में जेल में चक्की तथा थाने में जूते का भय था?

इन्हीं कारणों से वे 'प्रतीक्षा करो और देखो' की नीति पर चल रहे थे.

जनकवि आनंद बख्शी के ही एक अन्य मार्मिक गीत की पंक्तियां हैं कि 'महबूब का बस, लेते हुए नाम.' कुछ ऐसा ही छुट्टन के साथ हुआ. वे अपनी गली से बिब्बो की गली में घुसे. शायरी तथा फिल्मी गीतों में ऐसी गली को मेहबूब की गली, यार की गली, तेरी गली आदि नामों से नवाज़ा गया है. छुट्टन के मेहबूब की गली में दोनों तरफ बजबजाती नालियां बह रही थीं, सुअर घूम रहे थे, कुत्ते गीली जमीन पर छांह में अलसा रहे थे और भीनी-भीनी बदबू वाली बयार बह रही थी. बहरहाल, थी तो वह यार की गली ही, सो छुट्टन को अच्छी लगनी ही थी. फिर उनकी अपनी गली कीचड़, मच्छर, कुत्तों, नालियों, सुअरों आदि के विषय में इस गली से इक्कीस ही थी. खैर, तो बात 'मेहबूब का बस लेते हुए नाम' की चल रही थी. जैसे ही छुट्टन बिब्बो की गली में घुसे, कि उनके मन में मेहबूब का नाम आया और तभी गली के दूसरे सिरे पर उन्हें बिब्बो दिखलाई दीं. इधर नाम होंठों पर आया कि उधर बिब्बो नजर आईं. बिलकुल वही व्याकरणसम्मत स्थिति कि इधर मोहन स्टेशन पहुंचा कि उधर ट्रेन प्लेटफार्म पर लगी.

बिब्बो शायद पड़ोसी के घर से शक्कर का कटोरा उधार लाकर अपने घर की दिशा में चली जा रही थीं.

बिब्बो की चाल में एक अजीब कशिश थी.

वे 'हौले-हौले' चलती थीं, पर बीच-बीच में उन्हें तेजी से चलना पड़ता था, क्योंकि गली में नाली, गाय का गोबर तथा बाल-गोपालों द्वारा की गई टट्टी के ढेरों से बच कर चलना होता था. परंतु उनकी मूल चाल 'हौले-

हौले' ही थी. वे अभी अपने घर से दस-बारह कदमों की दूरी पर थीं और उनका पिछवाड़ा छुट्टन की तरफ था. छुट्टन ने तेज कदम बढ़ाए. उन्होंने देखा कि बिब्बो के पुष्ट नितंब उनके हर कदम के साथ बड़े खतरनाक अंदाज में गतिमान थे. बिब्बो की चुटिया पीठ पर नागिन-सी लहरा रही थी. उत्तेजित छुट्टन, जो काला चश्मा इसी बीच धार चुके थे, तेजी से लपककर चलने लगे. वे अभी भी गली के उस छोर से काफी दूर थे, जहां बिब्बो हौले-हौले अपने दरवाजे के पास पहुंच रही थीं. एकबारगी तो उनका मन किया कि भागकर पहुंचने का प्रयास किया जाए, परंतु गली के कुत्तों के मूड का कुछ ठीक नहीं था. वे जुलूस की भांति पीछे आ सकते थे. वे बहुत तेज चले. तेज कदमों से वे बिब्बो के निकट पहुंचने को ही थे कि बिब्बो के घर के दरवाजे तथा बिब्बो के बीच गोबर के दो बड़े ढेर आ गए. किसी एक्सपर्ट 'गोबर-जंपर' की भांति बिब्बो ने दो लगातार लंबी और ऊंची कूदें मारी और अपने घर में प्रवेश कर गईं.

छुट्टन ठगे-से खड़े रह गए.

हाय, कितने करीब आकर दामन छूट गया! ऐसी स्थिति के लिए शायद लोककवि आनंद बख्शी ने कहा है कि 'आते-जाते रस्ते में राही छूट जाता है.' विधि की विडंबना, किस्मत का खेल, और माथे पर लिखा भवितव्य कि छुट्टन तथा बिब्बो के बीच आज गोबर आ गया और सब कुछ गुड़गोबर हो गया. इसके बार छुट्टन बड़ी देर तक बिब्बो के दरवाजे के आसपास मंडराते रहे. संभावना थी कि बिब्बो फिर बाहर आतीं. उनकी मां का गली के सभी घरों से उधार का अटूट रिश्ता था और संभावना पूरी थी बिब्बो कटोरा या थैला लेकर पुनः निकलें.

छुट्टन देर तक खड़े रहे.

स्टेशन के लिए देर हो रही थी, परंतु बिब्बो फिर बाहर नहीं आईं. छुट्टन आहत भावनाएं लिये बिब्बो की गली से निकल गए. जाते-जाते उन्होंने बिब्बो की मां को लानतें भेजीं, जिसने ऐसे कोमल अवसर पर बिब्बो को पुनः बाहर भेजकर किसी के घर से चाय की पत्ती, प्याज, थोड़े से आलू, लहसुन या हरा धनिया आदि लेने नहीं भेजा था. लानतें भेजकर छुट्टन चल दिए.

अगली गली में ही पनवाड़ी मित्र कनछेदी की दुकान थी.

कनछेदी इस समय लकड़ी के पटियों से बनी अपनी खोखेनुमा दुकान के आसपास बाल्टी से पानी लेकर छिड़काव कर रहे थे. उनका विश्वास था कि ऐसा करने से दसों दिशाओं से उड़ रही धूल बैठ जाएगी तथा ऐसी तेज गरमी में उनकी दुकान एयरकंडीशंड हो जाएगी.

"कहो राजा, कितें से आ रहे और कितें कों जा रहे?"

राजा या 'राज्जा' अलीपुरा की भाषा में विशेष अर्थ रखता था. आशिकों के तीन नाम—राजा, बाबू, पहलवान, ऐसा मानना था यहां.

"यहीं टेसन तक," छुट्टन ने बताया.

"तालबेंहट वालों को लेबै?"

"हओ?"

"बरफ निकार के दे दें? धरी है पाछें. बोरा में दबी."

"तुम तो साइकिल निकार दो. टेसन जाना है. लेट हो रहे हैं."

"कौन-सी गाड़ी से पधारबो हो रहो है?"

"कौन-सी पचास गाड़ियां आ रही हैं अलीपुरा. वही, मानिकपुर पैसिंजर...."

"टेम तो हो रहा है मानिकपुर का."

"तभी तो. साइकिल निकारो, तो निकलें"

"साइकिल तो दारी पड़ी है पंक्चर... कल संझा से."

"मरवा दिया, पहलवान."

"अब का करें राजा, गरमी ही दारी ऐसी हचक के पड़ रही है कि क्या कहें. फिर आप घर से निकले भी ऐन मानिकपुर के टेम पे. तनिक पहले निकलना था."

"निकले तो पहले ही थे, पर..."

"बिब्बो दिख गईं का?"

"सही कह गए हो पहलवान."

"छोड़ो भैया ये टंटा...कुछ शरीर-वरीर बनाओ."

"यार, बिब्बो के साथ कौन-सी पहलवानी करनी है?"

"बड़ी पहलवानी लगती है, बाबू. आपने वह सचित्र असली कोकशास्त्र पढ़ो के नईं, जो हम झांसी के टेसन से पूरे दो रुपैया खर्च करके खास आपके वास्ते लाए थे?"

"पढ़ा था राजा, पढ़ा था. तभी तो बिब्बो के लिए मछरिया-से तड़प रहे हैं."

"मिलेगी भैया, बिब्बो प्राप्त होंगी आपको."

"सच्ची?"

"तुम्हारी सौं...सच्ची, दिल कहता है हमारा."

"रजनी के केस में भी तुम्हारा दिल कहता था, पर क्या हुआ? डमा दे गई न?"

"पर बिब्बो मिलेंगी."

"चलो...ऐसा हो जाए तो बजरंगबली पर अठन्नी की बरफी चढ़ाएंगे."

"वो भी आप हमसे उधार लेंगे?"

"अब राजा, अपनी भाभी के लिए इतना खर्च करने की तो तुम्हारी भी बनती है."

"अरे, आप लोगन के लिए हमारी जान हाजिर है."

"फिलहाल तो साइकिल चाहिए."

"सो सुसरी पंचर धरी है."

"यार टेसन को अबेर हो गई तो गुच्चन पटक के मारेंगे."

"अब बड़े भाई हैं तो कुटाई तो करेंगे ही. वरना बड़े भैया क्या और काहे के?"

"यार, तुम साइकिल दिलवाओ किसी की भी. ऐसी धूप में दो मील पैदल जाने में तो अपनी मैया की..."

तभी नई नकोर साइकिल पर इसी ओर आते रम्मू दिखे.

जब तक छुट्टन उन्हें आवाज देकर बुलाते, वे स्वयं किर्र-किर्र करते कनछेदी की दुकान तक आ पहुंचे और नितंब टेढ़े करके, एक टांग गीली जमीन पर टिकाकर साइकिल की सीट पर ही बैठे-बैठे रुक गए. बिन्नू के भाइयों से बनाकर रखने का कोई अवसर वे चूकते नहीं थे, विशेष तौर पर छुट्टन के साथ, क्योंकि छुट्टन भी उन्हीं की तरह चालू, सड़कछाप, लंपट, तिकड़मी तथा आशिक मिजाज थे. कमीने को कमीने से राह होती है—रम्मू ऐसा मानते थे. इसी कारण वे छुट्टन को देखकर रुक गए. काला ऐनक, पैरों में चमकता सैंडिल—शक्ल से तो खैर वे लगते ही थे, परंतु अपनी संपूर्ण धज में भी वे ऐसे बनिये के लौंडे लगते थे, जिसके पास ढेर-सा फालतू पैसा हो. रम्मू भी छुट्टन की तरह सींक सलाई थे और एक हड्डी तथा दो पसली की काया वाले थे, जिसे मुहल्ले वाले तथा मित्रगण हस्तमैथुन की उनकी आदत का सीधा दुष्परिणाम मानते थे. रम्मू की हाथों की नसें उभरी हुई थीं, चेहरा समोसे जैसा तिकोना था, आगे के दो दांत बाहर निकले थे और रंग दबा हुआ था. चेहरे पर बचपन में हुई चेचक के दाग तथा असमय ही सफेद हो चले बालों के कारण भी उनकी शक्ल में एक खास तरह का उचक्कापन

> पनवाड़ी मित्र कनछेदी की दुकान पर खड़े थे साइकिल के जुगाड़ में छुट्टन कि रम्मू दिख गए. रम्मू भी छुट्टन की तरह सींक सलाई थे और एक हड्डी तथा दो पसली की काया वाले थे, जिसे मुहल्ले वाले तथा मित्रगण हस्तमैथुन की उनकी आदत का सीधा दुष्परिणाम मानते थे.

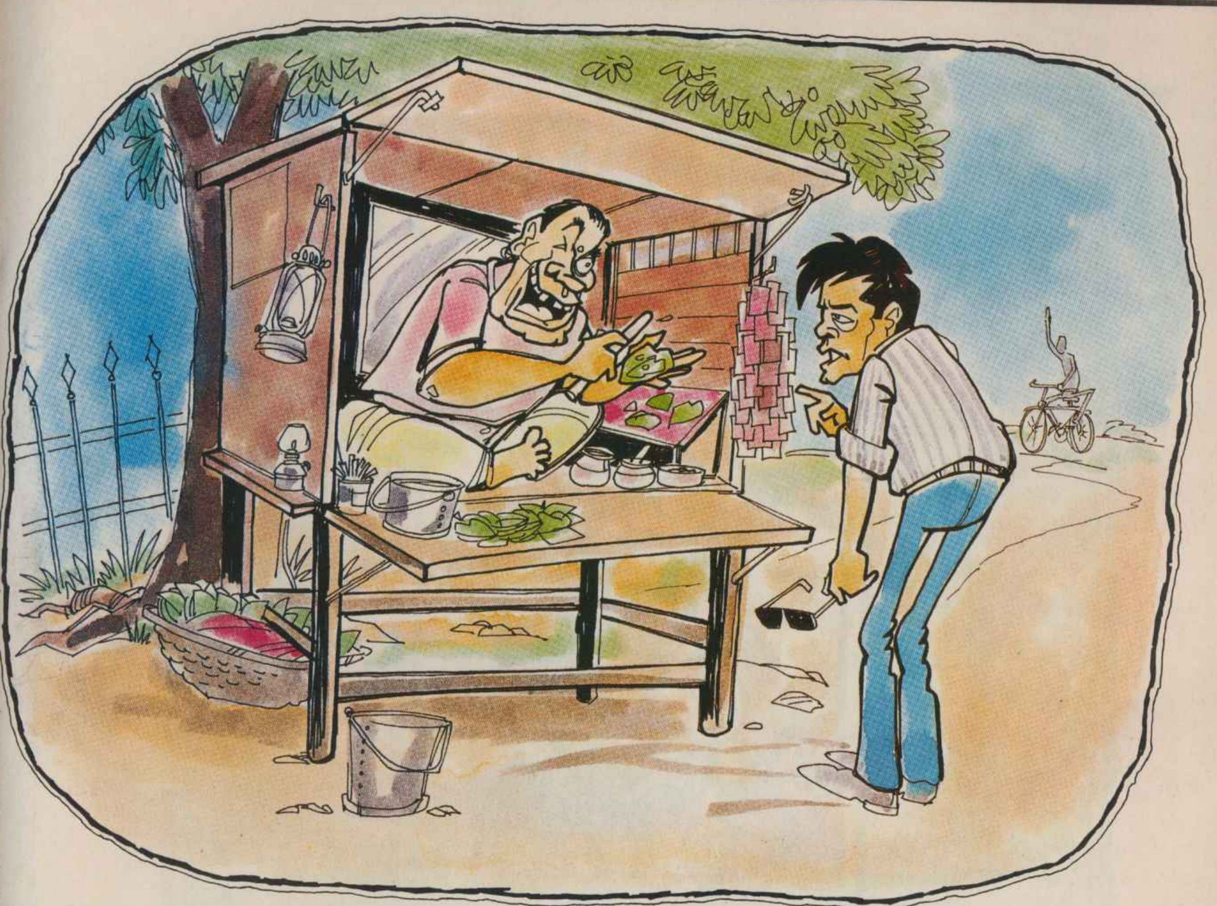

नजर आता था. इन सीमाओं के भीतर रहते हुए, रम्मू जितने सलीके तथा झांकी सजाकर रह सकते थे, रहते थे.

उनकी साइकिल को देखकर छुट्टन की आंखें चमक उठीं.

"कहां जा रहे हो रम्मू बाबू?"

"घर जाएंगे. कोई काम?" रम्मू ने आशापूर्वक पूछा. वे चाहते थे कि छुट्टन उन्हें अपने घर का कोई काम थमा दें, तो इस बहाने से 'बिन्नू-दर्शन' का संयोग बिठाया जा सके.

बिन्नू को देखने आने वाले हैं, यह तो उन्हें खैर पता ही था पर इस कारण से वे आम प्रेमकथाओं के नायकों की भांति तड़प रहे थे, जबकि बिब्बो से उनका प्रेम विशुद्ध शारीरिक कारणों से था. सुबह से बिन्नू को न देख पाने की बेचैनी उनकी बची-खुची पतली काया को भी खाए जा रही थी.

"काम तो क्या, बस, थोड़ी साइकिल चाहिए थी."

"ले जाइए गुरु.." कह कर रम्मू तुरंत साइकिल से उतर गए और लपक कर हैंडिल छुट्टन के हाथों में थमाकर अलग खड़े हो गए और बोले, "और भी कोई काम हो तो बताइए."

छुट्टन के तिकड़मी दिमाग को याद आया. वे बोले, "कनछेदी, वो बरफ तो निकाल दो बोरा में से."

"वे तो आप ले जाने वाले थे लौटते में?"

"रम्मू ले जाएंगे."

सुनकर रम्मू प्रसन्न हो गए. प्रसन्नता में फैली मुस्कान के प्रभाव से उनका तिकोना चेहरा चौकोर-सा हो गया. कनछेदी ने उन्हें घूरकर देखा और फिर बरफ का ईंट बराबर टुकड़ा पकड़ा दिया. बरफ को एक हाथ में ही पर्वत-सा उठाए, अपने दुबलेपन की सीमाओं में जितना बजरंगबली हुआ जा सकता था, उतना होकर रम्मू लपककर पतली गली में भागते चले गए. थोड़ी दूर जाकर उनकी स्पीड और तेज हो गई. शायद, गोबर पर पांव फिसल पड़ने से ऐसा हुआ.

बहरहाल, उन्होंने आश्चर्यजनक तेजी पकड़ी और 'यह जा, वह जा' करते इस गली से निकल गए. गली में पर्याप्त गोबर था, जिससे उनकी गति में निरंतर तेजी आती गई.

कनछेदी चिंतित मुद्रा में उस दिशा में देखते रहे, जहां अद्‌भुत कौशल से रम्मू एक हाथ में बर्फ उठाए, बिना मुंह के बल गिरे भागे जा रहे थे.

"आदमी हरामी है," कनछेदी बोले.

"छोड़ो राजा, कौन साला हरामी नहीं है. तुम तो गदा-छाप का एक बिंडल इधर आने दो."

छुट्टन ने शान से रुपया निकालकर कनछेदी की हथेली पर धरते हुए कहा.

"बरफ के पैसा भी काट लें का, राजा?"

"अब चूतियाई की बातें तो तुम करो न. बरफ डालो उधारी में या जहां डालना हो वहां, और अठन्नी इधर करो बिंडल के साथ."

कनछेदी ने यही किया.

छुट्टन ने बीड़ी सुलगाई और 'गड़बड़-रामायण' की ये लोकप्रिय पंक्तियां कनछेदी को सस्वर सुनाते हुए साइकिल में पैडल मारा कि "आगे चले बहुरि रघुराई, पीछे लक्षमन बिड़ी जलाई."

कनछेदी छुट्टन की इन्हीं अदाओं पर तो मरते थे. ■

● *शीघ्र प्रकाश्य व्यंग्य उपन्यास का अंश*

क्या अपने आईने में आप बदशक्ल दिखते हैं?

तो आपको इसके लिए कॉस्मेटिक सर्जरी की ज़रूरत नहीं; ज़रूरत तो है नए आईने — **मोदीगार्ड मिरर** की। आयातित क्वालिटी के ग्लास से बना, लहरों से बिल्कुल मुक्त। विशेष 'कर्टेन कोटिंग' प्रक्रिया से पीछे एक समान पेंटिंग और आधुनिक तरीके से की गई सफाई से यह चले ज़्यादा और साफ़ रहे सदा। इसकी सबसे बड़ी बात है **मोदीगार्ड** की क्वालिटी का आश्वासन। जी हां हर आईने के पीछे छपी है उसकी मोटाई।

अब अपने आप को देखिए हुबहू— सालों साल रहे ज्यों का त्यों, सदैव।

MODIGUARD
MIRROR

BMA/GGL/2017

कविताएं और ग़ज़लें

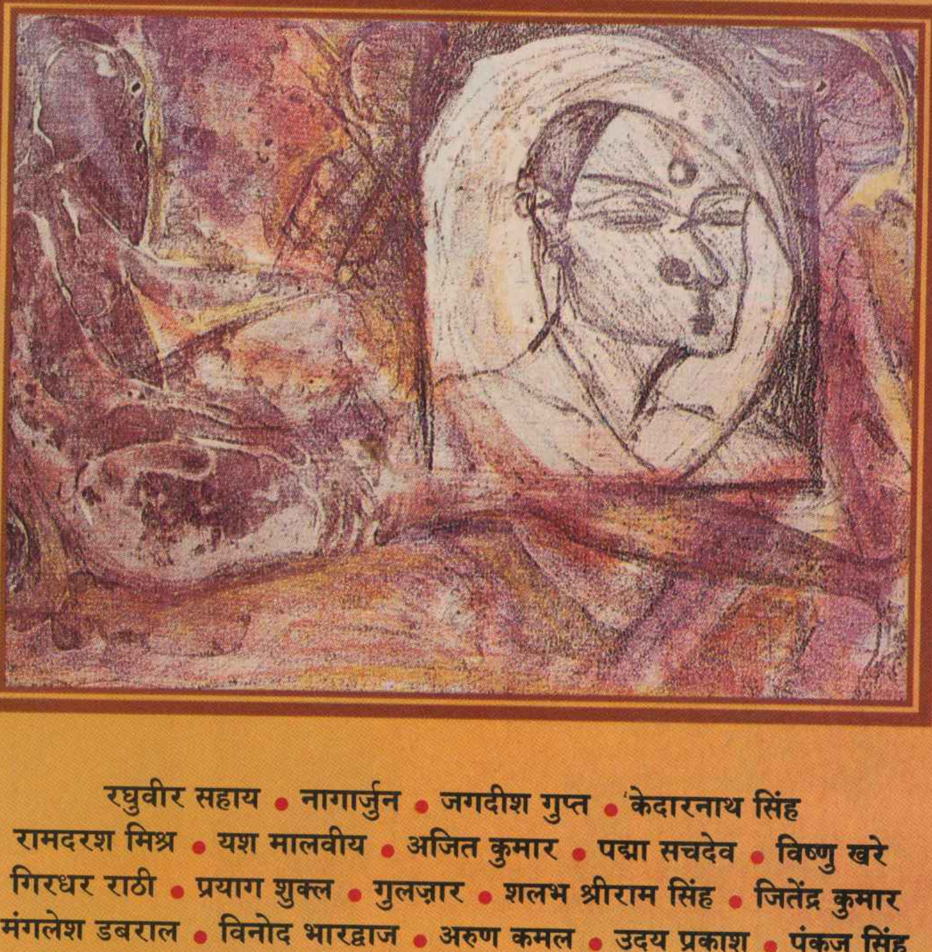

रघुवीर सहाय • नागार्जुन • जगदीश गुप्त • केदारनाथ सिंह
रामदरश मिश्र • यश मालवीय • अजित कुमार • पद्मा सचदेव • विष्णु खरे
गिरधर राठी • प्रयाग शुक्ल • गुलज़ार • शलभ श्रीराम सिंह • जितेंद्र कुमार
मंगलेश डबराल • विनोद भारद्वाज • अरुण कमल • उदय प्रकाश • पंकज सिंह
विनय दुबे • चंद्रकांता • विमल कुमार • संजय चतुर्वेदी • कुमार अंबुज
हरिमोहन • स्वप्निल श्रीवास्तव • एकांत श्रीवास्तव • बद्रीनारायण
मिथिलेश श्रीवास्तव • हेमंत कुकरेती • कात्यायनी • शहंशाह आलम
दिनेश कुशवाह • कृष्ण मोहन झा

सूर्यभानु गुप्त • ज़हीर कुरेशी • ज्ञानप्रकाश विवेक • हरजीत सिंह
एहतेराम इस्लाम • महेश अनघ

EVERYTHING FOR THE DINING TABLE EXCEPT FORKS & KNIVES FROM BDM

JAMS
- APPLE
- APRICOT
- PINEAPPLE
- MIXED FRUIT
- MIXED FRUIT (WITH PIECES)
- PLUM
- MANGO

APPLE PRODUCTS
- SEV SUDHA PLUS (Apple Concentrate)
- APPLE JUICE NATURAL
- SEV SUDHA (Clarified)

PICKLES
- MIXED • MUSHROOM
- LEMON GINGER • MANGO

SQUASHES
- ORANGE
- LEMON
- LITCHI
- MANGO
- GINGER APPETIZER
- LEMON JUICE CORDIAL

SYRUPS
- ROSE
- KHAS
- SANDAL

JUICES
- PINEAPPLE
- MANGO
- TOMATO

TOMATO PRODUCTS
- KETCHUP
- TOMATO PUREE
- TOMATO JUICE
- BAKED BEANS IN TOMATO SAUCE

For trade enquiries

Shivambu International

Admn. Office : 104, Tilak Bazar, Delhi-110006; **Works** : Mahesh Nagar, P.O. Oel, Distt. Una, H.P.-177206

● **रघुवीर सहाय** की अप्रकाशित कविताएं

● चित्रः मनु पारेख

चिड़िये के सामने

सबेरे दिन निकल आने पर
मुझे अपने दरवाज़े पर फुदकती चहचहाने को मानो तैयार
पर अपने को मेरी उपस्थिति से रोकती चिड़िया दिखी
मैंने विचित्र लाल हरी चिड़ियां, घर के बनावटी बाग में
नहीं पाली थीं
कि उनका फुदकना तेज देख कर अपने को प्रकृति के पास
पुनरुज्जीवित
करने का एक आदर्श मैं विकृत आधुनिकता
के सामने रख सकूं
मेरे लिए इन्हीं सच्ची चिड़ियों का फुदकना ही सार्थक है
चाहे वह गोरैया का ही क्यों न हो
उनका जो मेरे लिए उतना ही असली है जितना कि मैं हूं

(30.4.89)

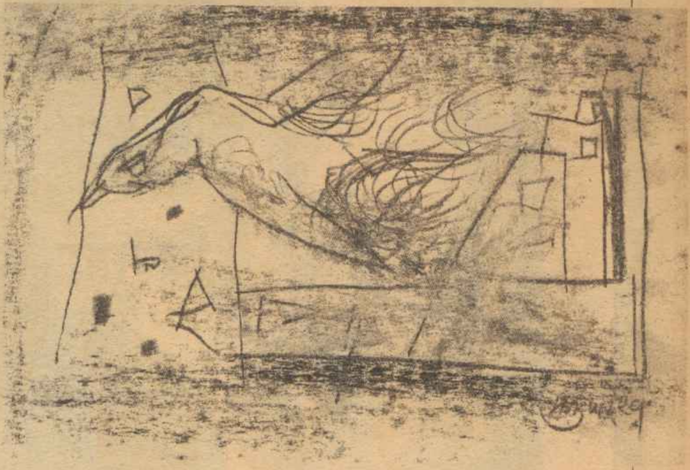

हम जानते हैं

हम जानते हैं कि पतन अनेक रूप धरकर हमें क्षय कर रहा है
और ये भी जानते हैं कि बदलना तो सभी कुछ एक साथ होगा
पर समाज को एक साथ बदलने के लिए
एक बड़ा व्यापक बहुआयामी आदर्श और
उतना ही स्पष्ट कार्यक्रम चाहिए. वह नहीं है इसलिए
जनता जाग्रत नहीं हो सकती तब जनता को सिर्फ उत्तेजित करने के
प्रयत्न हम करते हैं— व्यापक पतन को विरोध के खंडों में बांटकर और
हर खंड विरोध को अकेला और भ्रष्ट करता जाता है.

(17.4.88)

खाने से पहले

सामने थाली देखकर
पहले मैं ईश्वर को धन्यवाद करता था
आज मुझे अपमान याद आता है.

प्राकृतिक मृत्यु

कैसा इतिहास है कि ठीक जिस समय एक आदमी
अन्याय के तंत्र को चुनौती देता हुआ
उलझे हुए लोगों की भीड़ से सामने आता है
गोली चलती नहीं
प्राकृतिक मौत से वह मारा जाता है.

मां

मैं अपनी मां की भावना करता हूं तो मुझे वह
नाचती हुई नहीं
बाग में बेलें छांटने की मजूरी करती दीखती है.

उसका रहना

रोज सवेरे उठ कर पाते हो उसको तुम घर में
इस से यह मत मान लो कि हरदम वह मौजूद रहेगी

उपन्यास लिखना

तुम्हारे जीते जी ही मैं लिख सकता उपन्यास तो लिखता
क्योंकि ब्यौरे मुझे याद नहीं रहते हैं
और तुम कुछ भी लिखती नहीं
सिर्फ याद रखती हो.

मेरा कृतित्व

मैं अपनी सारी कविताओं को जोड़कर रख दूं
बीच बीच में रख दूं पत्र, गद्य में फुटकर टीपें
कहानियां बीस तीस
सब को मिला कर एक बन जाएगा समाज?—
नहीं नहीं एक घुमड़ता हुआ दर्द एक खालीपन बोझ भरा

साभारः **विमलेश्वरी सहाय**

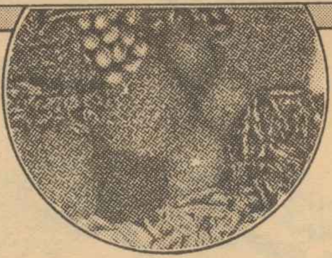

विशुद्ध मसाले

बेजोड़ फार्मूला

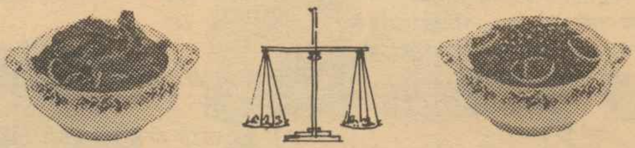

अशोक मसाले अधिक विश्वसनीय होते हैं, जिन पर एगमार्क की मोहर लगी होती है। इनका फार्मुला बेजोड़ और संतुलित होता है। हम हमेशा अपने ग्राहकों के स्वास्थ्य के प्रति सावधान रहते हैं। अपने पारखी प्रतिनिधियों से अच्छे मसाले खरीदवाकर सही अनुपात में सम्मिश्रण तैयार कराते हैं। मसालों के वास्तविक स्वाद तथा सुगंध को बरकरार रखने और प्रदूषण से मुक्त रखने के लिए हम पालिस्टर पाऊच में पैकिंग कराते हैं, जिससे स्वाद और महक लम्बे अरसे तक बरकरार रहते हैं। प्राकृतिक गुणवत्ता और उत्कृष्टता अशोक मसाले की सदाबहार रहने वाली विशेषता है।

अशोक मसाले

प्राकृतिक सम्पदा के धनी

अशोक सेल्स कं. प्रा. लि.
51/53, नया गंज, कानपुर -208001
फोनः 365677, 363706 फैक्सः 91-512-317611

naa/ASC/94

● नागार्जुन
● रेखांकनः हरिपाल त्यागी

इगोर इंदुश्कि राहुलोविच्

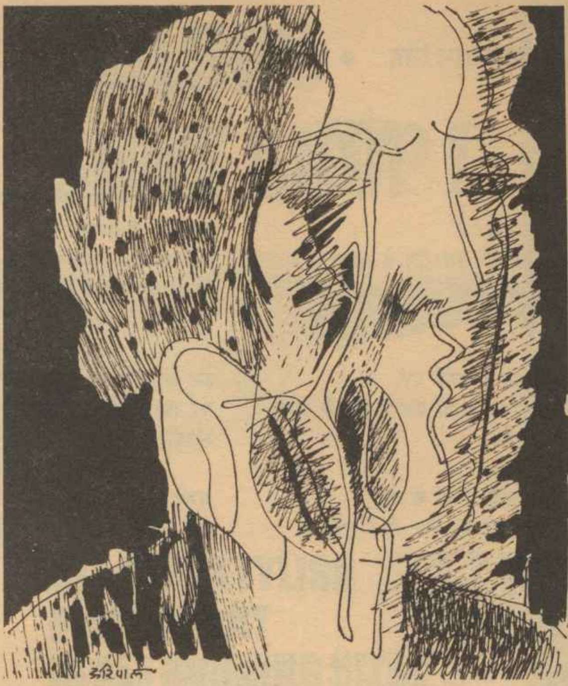

*हाय, हाय, इस दर्म्यान
किसी ने तुम्हें याद नहीं किया!
तुम्हीं बाकी बचे रहे चर्चित होने से!*

*इतना कुछ हुआ, इतना कुछ हुआ!
तुम्हीं कैसे छूट गए?
तुम्हीं क्यों शेष बचे?
इगोर इंदुश्कि राहुलोविच्!*

*'38 में तुम पैदा हुए
मां की गोद में पले-बढ़े
पढ़-लिखकर सयाने हुए
लाइब्रेरियन की ड्यूटी पर लगे
लोवा-नदी-तटवर्ती लेनिनग्राद में
अपनी मां की निगरानी में
वक्त गुजरने लगा, सोवियत जनता के मध्य*

*दूसरा विश्वयुद्ध चला
अपने महानगर के घेराव को
तुम्हारे शैशव ने
बहादुरी और धीरज से झेला
इंदुश्की इगोर तुम साक्षी हो
विश्वयुद्ध के उस अग्निवर्षी दौर के!*

*तेरे पापा इस दर्म्यान दो बार
लेनिनग्राद जाकर तुम्हारे साथ रहे
वहां वो बौद्ध दर्शन और भारत-तत्व के
गहन अनुशीलन में लगे
शोधार्थियों का मार्गदर्शन करते रहे
और खुद भी
'मध्य-एशिया' वाले महाग्रंथों के लिए
सामग्री जुटाते रहे!*

*इगोर इंदुश्की, तेरी मां लोला इवानोव्ना
सच्चे अर्थों में अपने पति की अर्धांगिनी थी!
हम '71 में तीन सप्ताह के लिए सोवियत भूमि गए
तब, तुम्हारी मां से मिलना चाहा था
तुम्हारे अपार्टमेंट के उस कमरे तक पहुंचे थे
एक युवती अपने रूम से बाहर निकल के बोली:
"इवानोव्ना आपसे नहीं मिलेगी
वो रूखी और चिड़चिड़ी हो गई है
हिंदुस्तान का जिक्र आते ही
वो गुस्से में आ जा जाती है
'हां, 5 शाम को आओ तो उसके बहू-बेटे से
मिलोगे, तब वे इवानोव्ना के कानों में
जोर-जोर से बोलकर कहेंगे:
ये इंदुश्की तूरिस्त हैं.
तुम्हें सलाम करने आए हैं
इस पर लोला चीख के बोलेगी
सिर हिलता रहेगा—
इनकार की मुद्रा में—
"न्येत्-न्येत् (ना-ना) हमारा
वहां कोई नहीं है, तुम वापस जाओ
हटो सामने से..."
और हम तब वापस आ गए थे.
सेर्गेई (हमारा दुभाषिया) बोला:
चलिए, यहां से निकलिए
बाहर कहीं चाय लेते हैं.*

●●●

*एल्तासिन की हुकूमत के इस जमाने में
इगोर-परिवार को राशन तो मिल जाता है?
उनके बच्चों के स्कूल तो वक्त पर खुलते हैं?
अपने पिता के नाम पर लगने वाले
इन समारोहों-सभाओं-गोष्ठियों की खबरें
क्या इगोर-परिवार तक नहीं पहुंची होंगी?* ■

● केदारनाथ सिंह ● चित्र: मंजीत बावा

गूंज

यह जो मेरा घर है
जहां जीने के पूरे समारोह के साथ
मैं रहता हूं बरसों से
मेरा नहीं है.

हालांकि बाहर दरवाजे पर
एक ध्वज की तरह जो फहरा रहा है नाम
वह मेरा ही है!

खुद से एक लंबी बहस के बाद
मैंने बड़े डाकघर को भेज दी है सूचना
कि अब से इस घर का पता
उन सबका पता हो
जिनका कोई पता नहीं.

यही सूचना मैं बारिश, हवा
और कबूतरों के पास भी भेजना चाहूंगा
अगर मेरा डाकघर इसमें
मेरी जरा भी मदद करे.

इस घर में एक गूंज है
एक बरसों पुरानी
थकी हुई गूंज
जिसे छिपाने से कोई फायदा नहीं.

उसके बारे में सारे वृद्धजन
और मेरी भाषा के लगभग सारे पंचांग
चुपचाप हैं सहमत हैं
कि वह मेरे समय की बर्फ पर
किसी हिममानव के पैरों के
चलने की आवाज़ है.

इस आवाज़ की ठंडक
मेरे शहर को लोगों को
अच्छी लगती है.

अभी पिछली ही शाम
मैंने अपनी गली के एक गीत में
उस आवाज़ की हल्की-सी धमक सुनी
और मेरी शिराएं अब तक
झनझना रही हैं.

चकित हूं मैं
मुझे लग गए जीवन के कितने बरस
इस सीधी-सी बात तक
चलकर पहुंचने में
कि मेरे समय का नायक
कोई योद्धा
या प्रेमी नहीं
एक अदृश्य और असाध्य हिममानव है
जो अपने ही वजूद के
न होने के ताप से
आहिस्ता-आहिस्ता गल रहा है. ■

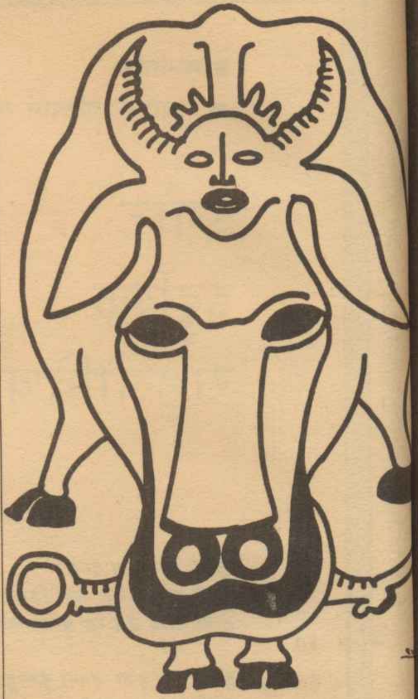

● जगदीश गुप्त

● रेखाचित्र: जगदीश गुप्त

कौन है पीठासीन?

क्या उसे खबर नहीं है
प्रतिक्षण जो होता है
देश-परिवेश में
क्रूरताएं, हत्याएं
उग्रकर्मी बर्बरताएं
अप्रत्याशित
कैसे बदल जाता है
घटना-चक्र!
होकर निरापद, कौन रचता है
षड्यंत्र!
जाने-अनजाने, बिके विज्ञापनों में,
विष बोते हैं समाचार!
प्रतिदिन कितनी भाषाओं में
छपते हैं अख़बार!
अंधा है पीठासीन
बहरा है पीठासीन
लंगड़ा है पीठासीन
उतारो इसे पीठ से
पीठ पर लदा है
जाने कबसे? ■

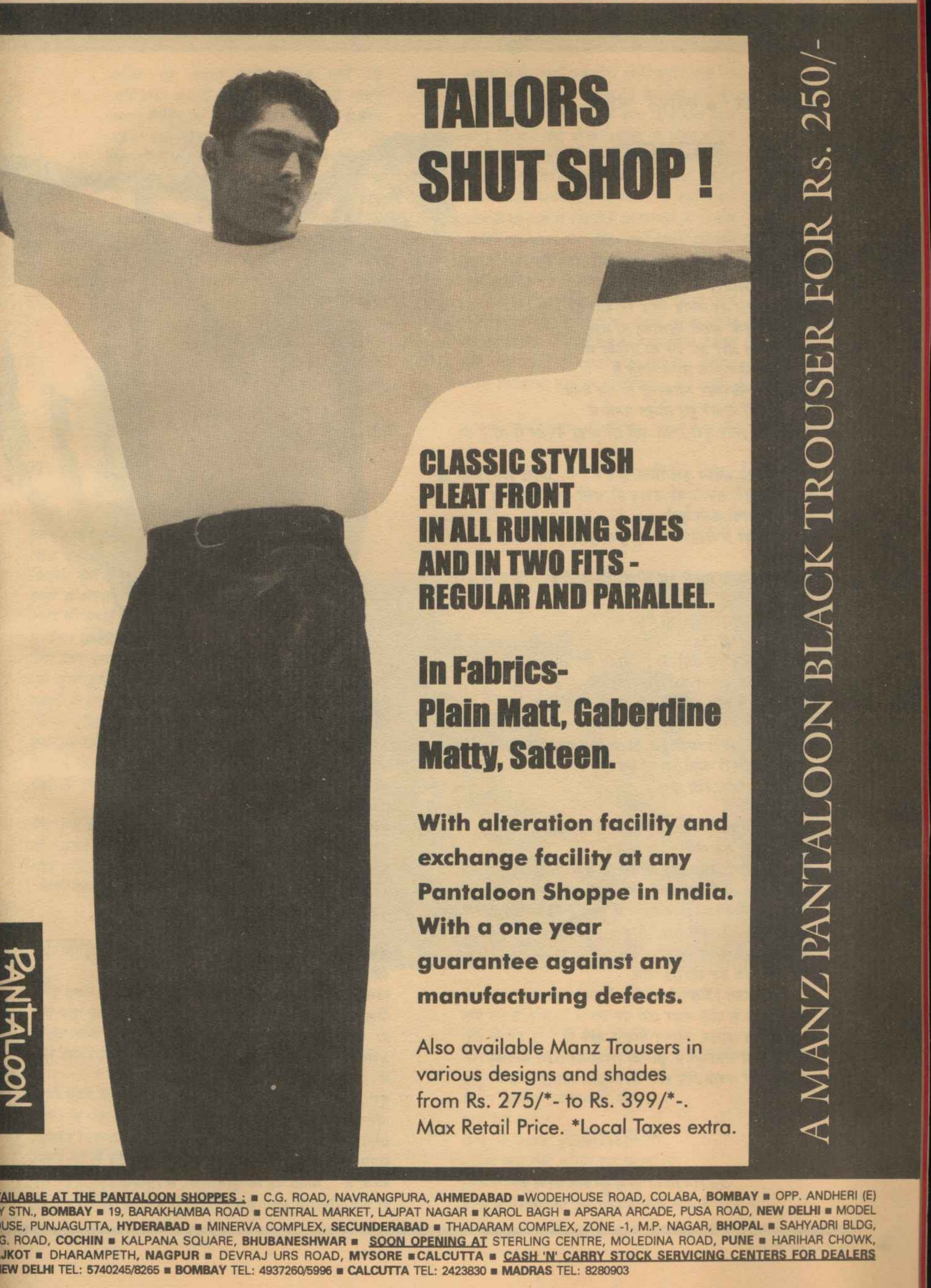
TAILORS
SHUT SHOP!
CLASSIC STYLISH
PLEAT FRONT
IN ALL RUNNING SIZES
AND IN TWO FITS -
REGULAR AND PARALLEL.
In Fabrics-
Plain Matt, Gaberdine
Matty, Sateen.
With alteration facility and
exchange facility at any
Pantaloon Shoppe in India.
With a one year
guarantee against any
manufacturing defects.
Also available Manz Trousers in
various designs and shades
from Rs. 275/*- to Rs. 399/*-.
Max Retail Price. *Local Taxes extra.
PANTALOON
A MANZ PANTALOON BLACK TROUSER FOR Rs. 250/-
AILABLE AT THE PANTALOON SHOPPES : ■ C.G. ROAD, NAVRANGPURA, AHMEDABAD ■ WODEHOUSE ROAD, COLABA, BOMBAY ■ OPP. ANDHERI (E)
Y STN., BOMBAY ■ 19, BARAKHAMBA ROAD ■ CENTRAL MARKET, LAJPAT NAGAR ■ KAROL BAGH ■ APSARA ARCADE, PUSA ROAD, NEW DELHI ■ MODEL
USE, PUNJAGUTTA, HYDERABAD ■ MINERVA COMPLEX, SECUNDERABAD ■ THADARAM COMPLEX, ZONE -1, M.P. NAGAR, BHOPAL ■ SAHYADRI BLDG,
G. ROAD, COCHIN ■ KALPANA SQUARE, BHUBANESHWAR ■ SOON OPENING AT STERLING CENTRE, MOLEDINA ROAD, PUNE ■ HARIHAR CHOWK,
JKOT ■ DHARAMPETH, NAGPUR ■ DEVRAJ URS ROAD, MYSORE ■ CALCUTTA ■ CASH 'N' CARRY STOCK SERVICING CENTERS FOR DEALERS
EW DELHI TEL: 5740245/8265 ■ BOMBAY TEL: 4937260/5996 ■ CALCUTTA TEL: 2423830 ■ MADRAS TEL: 8280903

• विष्णु खरे • रेखांकन : कविता नायर

इम्तहान

उत्तर पुस्तिका जब भर चुकी होती है
और तुम सप्लीमेंट्री में
बचे हुए सवाल का जवाब लिख रहे होते हो
तब जाकर तुम्हें अपनी लिखावट ही नहीं
अपना जवाब और उसे देने का तरीका भी
कुछ कम संकोचजनक लगने लगते हैं
और तुम आख़िरकार स्वीकारते हो उस वक्त
कि मेन कॉपी के भरे हुए सोलह पन्नों में
कितना कुछ अगर पूरा ग़लत नहीं तो थोड़ा गैरज़रूरी तो है ही

घड़ी देखते हो अंतिम कुछ मिनट बचे हैं
जबकि आख़िरी सवाल का जवाब ही अभी पूरा नहीं हुआ है
जिसे यदि जल्दी ख़त्म करो
तो पिछलों को रिवाइज़ करने का कुछ वक्त मिल जाएगा
यह सोचकर
जल्दी नहीं करना चाहते हुए भी हो ही जाती है

और अब आख़िरी उत्तर भी वैसा नहीं रहा
जैसा लग रहा था
पिछले पैरे और इस वाले की लिखावट तक में
देखने वाला हल्का-सा फ़र्क देख लेगा
देर हो चुकी है अब नहीं मिलेगी दूसरी सप्लीमेंट्री
कुछ नहीं कर सकते अचानक इतने कम वक्त में इसके सिवा
कि पहले के आंसरों में से कुछ काटने कुछ जोड़ने की सोचो
और इस आख़िरी समेत पिछले सब ऐसे पढ़ो
जैसे किसी और ने दिए हों

वह भी करके दुबारा देखते हो कोई तसल्ली नहीं
बल्कि बर्फ़ीला शक होने लगता है अब
कि हम आख़िरी समेत कोई भी सवाल सही समझ पाए या नहीं
भरते हो सप्लीमेंट्री पर अपना रोल नंबर जो तुम्हारा नहीं लगता
बांधते हो उसे मेन कॉपी से ट्वील के तागे से कि घंटी बजती है और
इनविजिलेटर की रस्मी हिदायत गूंजती है
टाइम इज़ अप प्लीज़ स्टॉप
इसके पहले कि वह दोहराई जाए
तुम सिपुर्द करते हो अपनी कॉपी
और दरवाज़े के पास बाहर फ़र्श पर
अपने किताब-काग़ज़ उठाकर निकल जाते हो
कमरे में अन्य आवाजों के कुर्सियां सरकाकर उठने से पहले
जिन्होंने सही जवाब दिए होंगे उनके खुश सवालों से बचते हुए.

चमगादड़ें

उस दिन छिंदवाड़ा में सुरेंद्र के घर के आंगन से शाम के आसमान में दर्जन भर चमगादड़ों की उड़ान को देखकर ही याद आया कि दिल्ली के आकाश में छब्बीस बरस में इन्हें कभी नहीं देखा और यह भी कि कितनी मार्मिक लग सकती है उनकी यह कतार बल्कि हमेशा ही वैसी रही है मेरे पहले पंद्रह बरस की शामों में   जबकि समानधर्मा उल्लुओं के सिवा बाकी सभी जा रहे होते हैं अपने बसेरों को तब ये निकलती हैं उनके और धरती के कई प्राणियों के लिए अशुभ जैसा कुछ बन कर   अजीब है कि सजातीय होते हुए भी उल्लू झुंडों में तो क्या अकेले भी उड़ान में नजर नहीं आते सिर्फ उन्हें बैठे या झपटते देखा गया है   क्या इसलिए कि उल्लू अलग अलग कोटरों में रहते हैं और ये इकट्ठा उलटी लटकी रहती हैं और वहां भी अकसर आपस में या स्वगत ही चिंचियाती हुई   बहरहाल इन दो निशाखग प्रजातियों का तुलनात्मक अध्ययन नहीं हो रहा और सवाल यह भी नहीं है कि अम्बिकापुर में गोपी के घर के पीछे वाले उस पेड़ से उस शाम पहले एक और फिर बीवि यों चमगादड़ों का सस्वर पहले अपने उस पेड़ की परिक्रमा करना और फिर सुनिश्चय से छोटी छोटी टोलियों में अलग अलग दिशाओं में उड़ जाना उनके व्यवहार के कौन से नियम निश्चित करता है   बल्कि यह कि चूंकि अंधेरे में सिर्फ ये ही नहीं निकलतीं बहुत कुछ और भी विचरता है

बल्कि यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि अधिकांश असली सृष्टि तो रात में ही बाहर आती है और वह इतनी है कितने तरह के कीट पतंग पक्षी चौपाये बहुपाये सरीसृप कि सारे राडारों और इन्फ्रा रेड कैमरों के बावजूद सिर्फ चमगादड़ें इस व्यापार को जान पाती रही होंगी

लेकिन जानने वालों को और जो उन्होंने जाना है उसे हम कितना कम जान पाए हैं ज्ञान की अन्य शाखाओं की तरह प्राणिशास्त्र के ग्रंथ भी दिन के संदर्भ में ही लिखे गए लगते हैं और सिर्फ उजाले में देख पाने वालों द्वारा लिहाज़ा बहुत सारा पारावार अदेखा चला जाता है दिन के कथित तथ्यों को रात के लिए भी वैध समझना भ्रामक है आखिर चमगादड़ों को भी हम

सिर्फ देख पाते हैं उनके स्वैच्छिक लटकने पर और शाम को उनकी उड़ानें देखते भी हैं तो लगता है वे उनकी आत्माएं होंगी शरीर अब भी वहीं लटके हुए हैं और बड़ के नीचे रात को लौटते हुए ऊपर डगालों के बीच जाने क्या दिख जाए या हमें देख ले के आतंक से मुक्त होकर ऊपर टार्च फेंकते भी हैं तो वाकई वे वहीं नजर आती हैं रोशनी से कुनमुनाती हुईं तो खयाल आता है कि चमगादडें तो लिखने से रहीं अपने और वे जो रात में देखती हैं उसके बारे में और उनकी वह भाषा हम समझ नहीं पाएंगे जो हमें सुनाई तक नहीं देती लेकिन जो हमसे टकराकर उन्हें हमसे बचने में मदद देती है उन तक लौटकर

लिहाज़ा आंगन के फर्श पर इनके किसी शिशु को चिपका पड़ा देखकर ही संतोष करना होगा जिसने बारिश में अपने डैने गीले कर लिये थे फिर भी अपने दांतों से सबको डरा रहा था हमारी तरह स्तनपायी होने के बावजूद ■

● रामदरश मिश्र ● रेखांकन : सुबाचन यादव

चलो दरवाजा खोल दें

बंद कमरे में मैं था, तुम थीं
बिजलियों की रंगारंग आभा में तैरती
हमारे सपनों की मोहक दुनिया थी
हम कितने खुश थे.....
आज न जाने कैसे क्या हुआ कि
खिड़की खुल गई
कमरे में झरझरा कर बरस पड़ी
सुबह की नहाई हुई धूप
सुगंधित हवा का एक झोंका
कंपा गया सारा सजा हुआ ठहराव
एक खुला हुआ आकाश
आंखों में उतर आया
जिसमें पंछियों के परों और स्वरों की
लय उग रही थी
पास से लेकर दूर तक
पेड़ों की पुकार व्याप्त थी

मैंने तुम्हें देखा
और तुमने मुझे
और साथ-साथ बोले-
"चलो दरवाज़ा खोल दें."

आदत

मैंने अपने खुले आंगन में
यहां-वहां कुछ फूल उगाए हैं
शायद उनकी भाषा हवाओं तक पहुंचे
और हवाएं दिशाओं तक

उसने सोने-चांदी के पहाड़ पर
बारूद के पेड़ लगाए हैं
जिनकी विषाक्त सांसों से
झुलस गई हैं हवाएं
ऐंठ गई हैं वनस्पतियां
टूट गए हैं चिड़ियों के पंख
तेजाब-सा खलबला रहा है नदियों का पानी
जल गए हैं मौसमों के रंग
और वे एक दूसरे में समा गए हैं
और आदमी एक प्यासा शोर बन कर रह गया है
तुम व्यंग्य से मुस्करा रहे हो कि
मैं इस भयावह हकीकत के बीच
फूल उगा रहा हूं
मित्र, मैं जानता हूं अपनी कमजोरी
लेकिन क्या करूं अपनी इस आदत का
जिसने पक्के मकान के आंगन में
थोड़ी-सी कच्ची जमीन छोड़ रखी है. ■

● अजित कुमार

● रेखांकन: जगदीश चंदर

कोट

*कोट का यही अर्थ और उपयोग
समझ में आता है
कि वह एक पहनावा या कोटर है
जिसके अंदर
कुछ देर कोई रह सके,
न कि जिसमें कोई हो सके.*

*मौक़ा पड़ने पर
आप उसे बदल भी सकते हैं
टाइ-पैंट-कमीज़ से मिलाते या अलगाते.*

*शायद वह ज़रूरी हो जाड़े-पाले में
—यों तो भरी गरमी में भी
कुछ लोग उसे लादे रखते हैं—
मगर कंबल का क्या मुक़ाबला
जो लगभग रजाई-सी देता है सुरक्षा
और उतना चीकट भी नहीं होता, बहुधा.*

*तो भी कोट में एक बात है ज़रूर—
कभी-कभी, मसलन फोटो खिंचाते
या गर्मजोशी से हाथ मिलाते समय
आपकी शान को बढ़ाता—
बशर्ते कि वह नई चाल का हो.*

*आप यह तर्क नहीं दे सकते कि
पिछली चाल चक्कर काटकर
अगली चाल बन जाती है,
नई काट में कोई बात
ऐसी मिलेगी अवश्य
जो आप वाली उस काट में
हो ही नहीं सकती.
जानता हूं,*

*किन्हीं का जीवन कोट के बिना भी
निभ ही गया,
मैंने कई कोट पहने,
उतारे, फेंके, फाड़े...
उन्हें अपना रक्त-मांस-मज्जा
बल्कि चेहरा
बनाने की ज़रूरत समझे बिना.*

*शैली या शिल्प यदि
कोट या त्वचा नहीं,
यदि वह व्यक्ति है
तो यह मानने में हर्ज क्या
कि व्यक्ति भी
सदैव एक-सा नहीं होता...*

*हरे, नीले और पीले का
कोई इंद्रधनुषी संगम—
दिखे कभी फीका, बदरंग या भोंडा...
तो दिखे.*

कचरा

*कचरे में फूल!
आह, यह कैसी भूल.*

*हम तो चाहते थे पाना
कचरे के ढेर में सोना.*

*बहुतों को वह मिल भी चुका है
मसलन गटर से गैस...
एफ्लुएंट से बिजली...*

*हम भी क्यों न ऐसा करें
इन फूलों का अचार डाल
एक्सपोर्ट के ज़रिये
विदेशी मुद्रा कमा लाएं!*

*फूल यदि फूल ही रह गए
मूल्य-वृद्धि क्योंकर होगी?*

काश

*काश, हम ऐसा जीवन जिएं
मृत्यु का हो जो अस्वीकार
मृत्यु जब आ ही जाये पास
सहज हो उसका अंगीकार.*

*न तो हम उस पर इतराएं
न ही हम इससे कतराएं
गुंथे हों उन दोनों के बीच
मुक्त हों उन दोनों के साथ.*

*हाथ पर हाथ, हाथ में हाथ—
—काश, हम ऐसा जीवन जियें!* ■

● मदन कश्यप ● रेखांकन: अर्पणा कौर

तुम्हारा हाथ थामे-थामे

*तुम्हारा हाथ थामे-थामे
पार कर लूंगा तमाम सारे दुर्गम रास्ते
जंगल की छाती पर
उगती चली आएंगी पगडंडियां
कंटीली झाड़ियां
नरम दूब की तरह तलुए सहलाएंगी
अंधेरे को चीरती चली जाएगी तुम्हारी हंसी
पर्वत के शिखर से शिखर पर लगाऊंगा छलांग
तुम्हारा हाथ थामे-थामे*

*सागर की लहरों पर स्केटिंग करूंगा
डॉल्फ़िन के मुंह से छूटे फौवारे के साथ
ऊंचे उछल जाऊंगा
इतना तेज भागूंगा
कि पीछा करते नसें फट जाएंगी कार्ल लुईस की*

*महानाग थोड़ा-सा झुका देगा फण
और उस पर पांव रख कर
फांद आऊंगा क्षीर समुद्र
दूसरे हाथ से महावराह का दांत पकड़कर
झूल जाऊंगा अंतरिक्ष में
तुम्हारा हाथ थामे-थामे*

*दौड़ूंगा तो छोटी पड़ जाएगी पृथ्वी
उड़ूंगा तो कम पड़ेगा आसमान
डुबकी लगाऊंगा प्रति पदार्थों के काले सुराख में
और एकदम साबुत बच निकल आऊंगा*

● मंगलेश डबराल

● रेखांकन: सिद्धार्थ

गुमशुदा

शहर के पेशाबघरों और अन्य लोकप्रिय जगहों में
उन गुमशुदा लोगों की तलाश के पोस्टर
अब भी चिपके दिखते हैं
जो कई बरस पहले दस-ग्यारह साल की उम्र में
बिना बताए घरों से निकल थे
पोस्टरों के अनुसार उनका कद मंझोला है
रंग गोरा नहीं गेहुंआ या सांवला है
हवाई चप्पल पहने हैं
चेहरे पर किसी चोट का निशान है
और उनकी मांएं उनके बगैर रोती रहती हैं
पोस्टरों के अंत में यह भी आश्वासन रहता है
कि लापता की खबर देने वाले को दिया जाएगा
यथासंभव उचित इनाम

तब भी वे किसी की पहचान में नहीं आते
पोस्टरों में छपी धुंधली तस्वीरों से
उनका हुलिया नहीं मिलता
उनकी शुरुआती उदासी पर अब तकलीफें झेलने की ताब है
शहर के मौसम के हिसाब से बदलते गए हैं उनके चेहरे
कम खाते कम सोते कम बोलते
लगातार अपने पते बदलते
सरल और कठिन दिनों को एक जैसा बिताते
अब वे एक दूसरी ही दुनिया में हैं
कुछ कुतूहल के साथ
अपनी गुमशुदगी के पोस्टर देखते हुए
जिन्हें उनके परेशान माता-पिता जब-तब छपवाते रहते हैं
जिनमें अब भी दस या ग्यारह
लिखी होती है उनकी उम्र.

बार-बार कहता था मैं

ज़ोरों से नहीं बल्कि
बार-बार कहता था मैं अपनी बात
उसकी पूरी दुर्बलता के साथ
किसी उम्मीद में बतलाता था निराशाएं
विश्वास व्यक्त करता था बगैर आत्मविश्वास
लिखता और काटता जाता था यह वाक्य
कि चीज़ें अपने सबसे बुरे दौर से गुजर रही हैं
बिखरे कागज़ संभालता था
धूल पोंछता था
उलटता-पलटता था कुछ क्रियाओं को
मसलन ऐसा हुआ होता रहा
होता तो क्या होता.
होना चाहिए था हो सकता था.

दिल्ली में एक दिन

उस छोटे से शहर में एक सुबह
या शाम या किसी छुट्टी के दिन
मैंने देखा पेड़ों की जड़ें
मजबूती से धरती को पकड़े हुए हैं
हवा थी
जिसके चलने में अब भी
एक रहस्य बचा था

सुनसान सड़क पर
अचानक कोई प्रकट हो सकता था
आ सकती थी किसी दोस्त की आवाज

कुछ ही देर बाद
इस छोटे से शहर में आया
शोर कालिख पसीने और लालच
का बड़ा शहर. ■

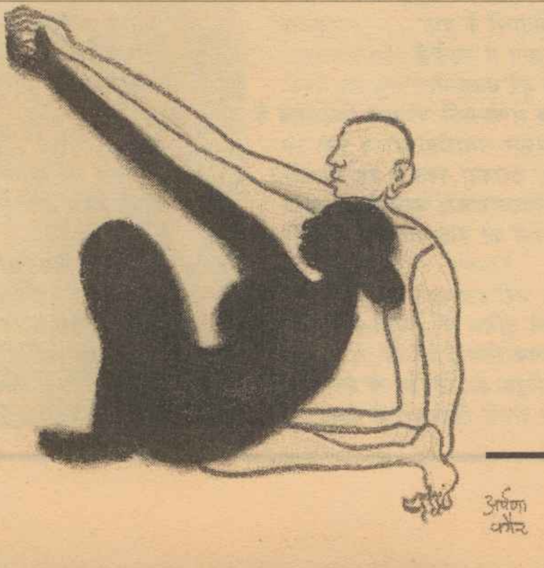

तुम्हारा हाथ थामे-थामे!

सातों नदियों के जल
तुम्हारी आंखों में
सातों सुरों का सारांश
तुम्हारे स्वर में
सातों छंदों में तुम्हारे अक़्स
मैं पार कर लूंगा
सातों द्वीप
सातों समुद्र
सातों लोक
सातों आसमान
तुम्हारा हाथ थामे-थामे! ■

अपने समय में

● गिरधर राठी
● रेखाचित्र: हरिपाल त्यागी

यह एक दौड़ है, अंधी दौड़.

रेफ़री न कोई.

न कोई पाबंदी न लिहाज न मुरव्वत;
हर एक है अपने बूते पर—

कोनों-अतरों में अदृश्य आले हैं
तस्वीरें खिंचती हैं दूर-दूर जाती हैं
दम फूलता है तो होती गुंजार
कोई लड़खड़ाए तो फूटती है किलकार

यह एक दौड़ है, अंधी दौड़
दौड़ता है कौन-कौन साथ यह पता नहीं
दौड़ना कहां तक है यह भी पता नहीं.

शीर्षकहीन-१

कौन, जो बतलाए सच?

एक मार जो पड़ी उन पर

एक दुलार जो रहा गोपन
इन्हीं के बीच कहीं मेरा उल्लास
और उनका संताप
इन्हीं के बीच वह मरुत-मेघ
इंद्रधनुष
इन्हीं के बीच कहीं झूमती हैं
हरी-भरी डालें
फूलता मौलिश्री
उड़ते हैं सेमल के फ़ाहे

यह बर्फ़ वह शृंगार वह रति
वह मेरा सब
इन्हीं के बीच कहीं
दबी-नुची सिसकारी
आह

उड़ान में लपकते गिद्धों की
धसान
भेड़ियों के नुकीले दांतों की
ठसक
एक नई महाशक्ति के
नए सरताज की

कौन, जो बतलाए सच?

शीर्षकहीन-२

सूख नहीं पाए अभी
धब्बे लहू के
धुले नहीं हैं अभी हाथ

चीत्कारें शांत नहीं हुई हैं अभी
मिलाने लगे हैं हम हाथ
उन्हीं हाथों से,
लेने लगे हैं अंकवार
हत्यारों को,
कंधे हमारे
छिले जा रहे हैं
उन्हीं के कंधों से

सूखे नहीं हैं अभी
खून के फव्वारे ■

कविता पाठ

● विनोद भारद्वाज
● रेखाचित्र: बृज गोयल

शाम का हल्का-सा अंधेरा है
और एक तेज आंधी में
कुछ 'कोर्स' में पढ़ाई जाने वाली
कविताओं के पृष्ठ
परेशान से उड़ते हैं
इस बुरे वक्त में
कुछ अच्छे कवि भी याद किए जाते हैं
पुरस्कार समारोहों में
बड़ा डरावना वक्त है यह मेरे दोस्त
कविता पर कोई बात नहीं करता
कवियों को कोई याद नहीं करता

धूल भरी इस शाम में
अपने धूमिल की धुंधली-सी याद आती है
मलयज दिखाई देते हैं
इलेक्ट्रिक क्रेमेटोरियम में एक दोपहर
कुछ दोस्तों-रिश्तेदारों ने जिन्हें
चुपचाप विदा किया था

'मोचीराम' कविता को
एक जबरदस्त ताकत और
अनोखे आत्मविश्वास से पढ़ने वाला कवि
धूमिल
ब्रेन ट्यूमर के ऑपरेशन के बाद
चुप है
कमजोर
चुपचाप बड़े ध्यान से देखता हुआ
अपने बगल वाले बिस्तर पर पड़े लड़के को

पच्चीस जूनियर डॉक्टर
इस निरीह लड़के को घेरे
उसके सरदर्द के बारे में
बारीक जानकारियां नोट कर रहे हैं
और बेचैनी के बीच मर जाता है
धूमिल

● **प्रयाग शुक्ल**

● रेखाचित्रः परमजीत सिंह

चंद्रभागा में सूर्योदय

सागर तट भर जाता.
स्त्रियां, लड़कियां, बूढ़े, बच्चे,
युवा
स्वागत में सूर्य के
बांधकर टकटकी दूर क्षितिज
रेखा पर,
लहरों के पार वहां—
देखते
उत्फुल्ल भोर में.

वह उगा
वह उठा
धरती के भीतर से
पानी के भीतर से—
गोल सूर्य
अरुणाभ!

धीरे
धीरे
धीरे
ऊपर को
ऊपर को,
और अधिक
और अधिक!
उग आया!!

हूलू ध्वनि!

फेनिल चंचल लहरें
हहरातीं लहरातीं टकरातीं
नील मग्न
तट पर.

सूर्य उगा!
सूर्याकार.
अद्‍भुत
सुंदर सतेज!

आभार
आभार
आभार!

(ओडीसा में कोणार्क के निकट चंद्रभागा में अद्‍भुत सूर्योदय देखने के लिए सागर तट पर दूर-पास से लोग रोज पहुंचते हैं.) ■

उसके माथे पर कई सारी कीलें हैं
अदृश्य कीलें
जिन्हें एक बूढ़ा मोची
अपनी कांपती उंगलियों से
पहचानने की कोशिश कर रहा है

राजकमल!
राजकमल चौधरी!!
किसी धूल धूसरित किताब
या संग्रह से बाहर निकलो
मेरे प्रिय कवियो!
सर्वेश्वर
कोई पुरस्कार नहीं है इस नाम से
कैसे याद करेंगे
लोग जन्मदिन पर आपको?

धूमिल!
लखनऊ के किंग जॉर्ज मेडिकल
कॉलेज के इस बिस्तर से उठो
और गरज कर सुनाओ

आज यहां तुम 'मोचीराम' को
तुम्हारी बगल में लेटा
यह कमजोर लड़का निराश हो चुका है
डॉक्टरों के इस खतरनाक दल से
वह तुम्हारी कविता सुनना चाहता है

कलकत्ता के सोनागाछी की एक वेश्या
लेटी है चुपचाप बिस्तर पर
राजकमल की 'कंकावती' को आज वह
पढ़ना चाहती है देर रात तक

वह दाढ़ी वाला लड़का
दौड़ रहा है
उस जंगल की तरफ
सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं को
जोर-जोर से पढ़ता हुआ

एक विचित्र कविता पाठ होगा आज
शर्त यह है कि
कोई श्रोता कवि नहीं होना चाहिए. ■

● उदय प्रकाश

● चित्रः अमितभ दास

ईलू-ईलू

हजारों साल पहले के कुछ मरे हुए आदमी
जिनके बारे में यह भी संदेह है
कि वे कभी पैदा भी हुए थे
एक दिन अचानक तय करने लगेंगे
कि कैसे रखनी चाहिए पुरुषों को अपनी मूंछें
भले नागरिकों को नहीं खानी चाहिए
कौन-कौन सी सब्जियां
स्त्रियों को साड़ी कहां से बांधनी चाहिए
अपनी देह और पति की दौलत पर
कितना होना चाहिए उनका हक़

सैकड़ों साल पहले का कोई मरा हुआ आदमी
एक दिन बोट क्लब की जनसभा में देगा भाषण
कि लोकतंत्र में ठीक-ठीक कौन सी खामियां हैं
लोगों को खरीदने चाहिए
किन-किन कंपनियों के शेयर
अखबारों को मिलनी चाहिए कितनी स्वतंत्रता

मरे हुए आदमी का चेहरा दिखेगा
हर भद्र ड्राइंगरूम में
पार्कों में कटआउट, चौराहों पर मूर्तियां,
औरतें पहनेंगी उसी के लॉकेट
खिलौने बिकेंगे बाज़ार में
जिनमें चाभी देने पर सुनाई देंगी
मरे हुए आदमी की दंत्यकथाएं

विद्वान गाएगा मरे हुए आदमी का गान
संत करेगा कीर्तन, भिखारी मांगेगा भीख
उसी के नाम पर

पसीने में भीगते, एक-दूसरे के लिए विकल
और कांपते दो उत्तप्त शरीरों की संध में से
झांकेगा
अचानक मरे हुए आदमी का चेहरा
यह बताता हुआ कि कौन-सी जड़ी बूटी और
कौन-सा आसन उपयुक्त है
इस पवित्र मानव संबंध के लिए
कि किन-किन तिथियों में नियमानुसार स्त्री को
कितना-कितना जलाया जाना उचित है
मरे हुए आदमी की अगुआई में होंगे
प्रदर्शन
मरे हुए आदमी की आंखों में से देखा जाएगा
भविष्य
चुनावों में लगातार जीतेंगे मरे हुए आदमी

एक दिन यह भी होगा

वही समझा जाएगा जीवित
जिसने पहन रखे होंगे मरे हुए आदमी के कपड़े
मरे हुए आदमी का चेहरा लगाए नौजवानों से ही
लड़कियां कहेंगी—ईलू-ईलू

सम्मानित होंगे वही कवि
जिनकी कविता में होंगे
मरे हुए आदमी के सबसे सुंदर बिंब!

ढेला

वह था क्या एक ढेला था
कहीं दूर गांव-देहात से फिंका चला आया था
दिल्ली की ओर
रोता था कड़कड़डूमा, मंगोलपुरी, पटपड़गंज में
खून के आंसू चुपचाप

ढेले की स्मृति में सिर्फ बचपन की घास थी
जिसका हरापन दिल्ली में हर साल

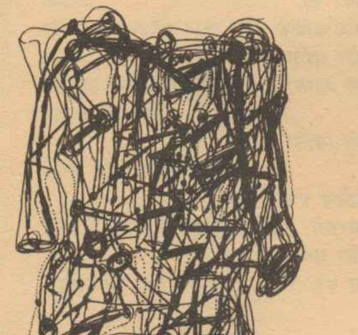

और हरा होता था
एक दिन ढेला देख ही लिया गया राजधानी में
लोग-बाग चौंके कि ये तो कैसा ढेला है
कि रोता भी है आदमी लोगों की तरह
दया भी उपजी कुछ के भीतर
कुछ ने कहा कैसे क्या तो करें इसका
नौकरी पर रखें तो क्या पता किसी का
सर ही फोड़ दे
ज़्यादातर कांच की हैं दीवारें और इतने कीमती
इलेक्ट्रॉनिक आइटम

कुछ ने कहा विश्वसनीयता का भी प्रश्न है
ढेले की जात कब किस दिशा को लुढ़क जाए
क्या पता किसी बारिश में ही घुल जाए

एक दिन एक लड़की ने पढ़ी ढेले की कविता
और फिर
आया उसे खूब ज़ोर का रोना
ढेला भीतर से कांपा कि आया उसके भी
जीवन में प्यार
आखिरकार
उस रात उसने रात भर जाग-जागकर लिखी
एक कविता
कि दिल्ली में भी है
दुनिया के सबसे बड़े बैलून से भी ज्यादा बड़ा
एक दिल
जहां एक दिन फिरते हैं ढेले के भी दिन

लेकिन अगले दिन वह भागा
और फिर भागता ही रहा
जब लड़की ने अपने प्रेमी से कहा—
'संभालकर उठाओ और रख दो इस बेचारे को
गुड़गांव के किसी खेत में
या टिकट देकर चढ़ा दो छत्तीसगढ़ एक्सप्रेस में
और भूल जाओ
उसी तरह जैसे राजधानी की सड़क पर हर रोज
हम भूल जाते हैं कोई-न-कोई
दहशतनाक दुर्घटना.'

आदमी लोगो, सुनो!
इस ढेले के भी हैं कुछ विचार
ढेले को भी करनी है बाज़ार में ख़रीदारी
इस कठिन समय में ढेले का सोचना है
उसको भी निभानी है कोई भूमिका

भाई, कोई है?
कोई सुनेगा ढेले का मूल्यवान प्रवचन
कोई अख़बार छापेगा
लोकतंत्र और मनुष्यता के संकट पर
ढेले के विचार

भाई, कोई है,
जो उसे उठाए
उस तरह जिस तरह
नहीं उठाया जाता कोई ढेला. ■

आपका बेटा भी ऐसा हो सकता है!

अपनाइए चिलड्रन्स कॉलेज एंड कैरियर फ़ंड

यु टी आई के चिल्ड्रन्स कॉलेज एंड कैरियर फ़ंड में निवेश, पढ़ाई-लिखाई का बढ़ता हुआ खर्च भी जुटाए, और आपके बच्चे के कैरियर के सपनों को सच बनाए.

वि शि ष्ट ता एं :

- खुली अवधि-वाली योजना.
- 15 वर्ष की उम्र तक के बच्चों के लिए विशेष योजना.
- प्रति यूनिट रु. 10/-.न्यूनतम निवेश राशि रु.2000/- और इसके बाद रु.1000 के गुणकों में
- इस फ़ंड से होने वाली वृद्धि बोनस यूनिट के रूप में समय-समय पर निवेशकर्ता के खाते में जमा की जाएगी.
- वर्ष में दो बार आंशिक रकम निकालने की सुविधा- 18 वर्ष की उम्र में 50% और अतिरिक्त 10% हर वर्ष, 23 वर्ष की उम्र तक.
- दूसरे बच्चे को नामांकित करने की सुविधा.

CHILDREN'S COLLEGE AND CAREER FUND
UNIT PLAN-93

क्योंकि आपके बच्चे के भविष्य की ज़िम्मेदारी है आप पर.

UNIT TRUST OF INDIA

भारतीय यूनिट ट्रस्ट

आपके बेहतर कल के लिए.

म्युच्युअल फंड और सिक्योरिटी निवेश के साथ बाज़ार का जोखिम होता है तथा सिक्योरिटी बाज़ार को प्रभावित करनेवाले घटकों एवं शक्तियों के अनुसार योजनाओं के एन ए वी घट-बढ़ सकते हैं पिछला कार्यनिष्पादन अनिवार्यतः भावी परिणामों का द्योतक नहीं है. चिल्ड्रन्स कॉलेज एंड कैरियर फंड केवल योजना का नाम है और यह किसी भी रूप में योजना की गुणवत्ता, उसके भविष्य की संभावनाओं या आमदनी की ओर इंगित नहीं करता है. निवेश करने से पूर्व ऑफर डॉक्यूमेंट पढ़ने की कृपा करें.

ADROIT-470 HIN

● शलभ श्रीराम सिंह ● रेखाचित्र: मनमोहन गुलाटी

जहाज़ का आख़िरी कप्तान

आकाश की स्पर्धा में उद्वेलित
समुद्र के अनन्त विस्तार को
निहारता अपने जहाज़ के डेक पर खड़ा है
कप्तान
खड़ा है यात्रा से जुड़े प्रश्न-प्रतीक की तरह

उस झंडे के नीचे
जो जहाज़ और कप्तान की पहचान बना
हवाओं की शरारत पर खिलखिला रहा है.

जहाज़ कप्तान का सत्य है
झंडा कप्तान का सपना
कप्तान अपना नहीं है इस वक़्त
अपने आप में भी नहीं.

खड़ा है
सोचता हुआ कि जहाज़ यह
कितने-कितने कप्तानों को
'अलविदा' कह चुका है
'अलविदा' कह चुका है कितने-कितने
बंदरगाहों को
किनारों-टापुओं और पड़ावों को
'अलविदा' कह चुका है.

अंधेरों और उजालों की
अनगिनत इबारतों को पढ़ता,
अपनी खामोशी में जहाज़ यह
गा चुका है इतने सारे गीत
कि उनकी स्वरलिपियां गड्डमड्ड हो गई हैं
गड्डमगड्ड हो गई हैं
उन तमाम समुद्री चिड़ियों की आवाज़ें
जो इस जहाज़ के साथ उड़ती रही हैं
पिछली यात्राओं में
गड्डमड्ड हो गया है लहरों का संगीत
जिसकी धुनों पर जहाज़ यह
नाचता रहा है अकसर.

जहाज़ यह
जो कि अपने आप में एक दुनिया है
अपनी हलचलों में
मुखर आत्मसंवाद की तरह
आत्मानुवाद की तरह जीवन के
पढ़ा जाता हुआ
सोते-जागते, चलते-फिरते
जाता हुआ
तटों के वनस्पति तारों से
पृथ्वी और सितारों की ओर साथ-साथ
बताता हुआ उनको—
यात्राएं केवल यात्राएं रह जाएंगी
पुरातत्वावशेषों में संसार के.

बताता हुआ उनको कि युद्धों के भीतर से
फिर-फिर निकलेगा जीवन
युद्धों में वापस जाने के लिए.
प्यार करता हुआ घृणा के बावजूद
इंसान बनने की कोशिश करेगा आदमी.

बताता हुआ कि
प्यार के हाथ ज़िंदा कर सकते हैं
मुर्दा सरज़मीनों को
प्यार के होंठ
पत्थरों को धड़कना सिखा सकते हैं

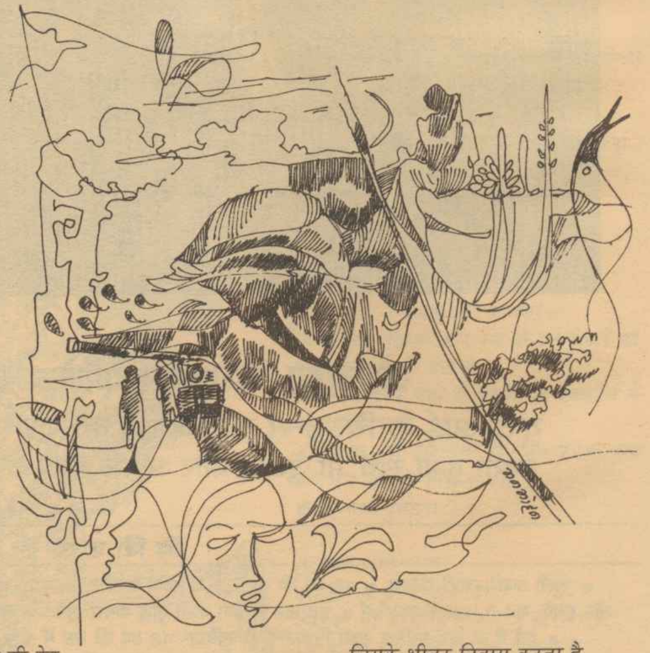

प्यार की देह
पठारों को बसंत का आईना बना सकती है.

खड़ा है कप्तान
सोचता हुआ कि कितनी-कितनी बार
कितने-कितने रूपों में सामने आया है
ज्वारों का यह उद्दाम संसार
अपने सील और ह्वेल सेनापतियों के साथ
साथ मूंगा-मोती-सीपी और शंख की सौग़ात के
काई और शैवाल की विनम्रता के साथ.

सोच रहा है
अपनी उस दुनिया के बारे में कप्तान
जहां सभ्यताओं के विकास-क्रम में
मार दिया गया है मन को
कला-संस्कृति और धर्म को
मार दिया गया है
मार दिया गया है व्यवसाय की
सौंदर्य-साध को.
प्रेतनर्तन के
बेताल आयोजन में शामिल
उसकी दुनिया
हत्या और बलात्कार के हाहाकार में
खोज रही है अपनी आरती की धुनें.

जहाज़ की एक-एक रिपिट-वेल्डिंग और
इस्पाती प्लेटों को देखता
लोहे की आस्था के बारे में
सोच रहा है कप्तान
लोहे-सी उम्मीद जगाता.
अपने हाड़-मांस से बने शरीर के भीतर
जो फूल की पंखुड़ियों से भी ज्यादा नाज़ुक है
जिसके भीतर निवास करता है
उसका भावुक आत्मन्.

खड़ा है कप्तान
समझता हुआ अच्छी तरह
कि जहाज़ यह जर्जर हो चुका है
चरमरा चुका है इसका ढांचा.

अपनी अंतिम यात्रा में
अंतिम पड़ाव की ओर बढ़ते
इस जहाज़ के अंतिम यात्रियों के बारे में
सोच रहा है कप्तान
अर्पित करता हुआ शुभकामनाएं

उदास होता हुआ लगातार.

उसकी उदासी में
समुद्र की भयावह लहरों से टकराता
उसका जहाज़ अब भी चल रहा है
सुनाई पड़ रही है उसको
अब भी सायरन की आवाज़
इंजिन की घरघराहट सुनाई पड़ रही है अब भी.

अपने परिचय पत्र के साथ कप्तान
जहाज़ के भीतर हिस्सों की
पड़ताल कर रहा है,
पूछ रहा है यात्रियों का हाल-चाल.
गंभीरता से सोचता हुआ
उनकी असुविधाओं के बारे में.

इस जहाज़ का
सबसे छोटी उम्र वाला
सबसे ज्यादा भरोसेमंद
कप्तान हैं यह.
भरोसा करता आया है इस पर
जहाज़ का एक-एक पुर्जा

कप्तान पर भरोसा करता उसका यह जहाज़
अपनी आखिरी यात्रा में
समुद्र की हर गहराई का दुश्मन रहा है
दुश्मन रहा है उसके हर विस्तार का
हर खामोशी का दुश्मन रहा है उसकी.

यात्रा और यात्रा और यात्रा के बाद
जहाज़ की चाल धीमी होती जा रही है
धीमी होती जा रही है
इंजिन की घरघराहट
सायरन की आवाज़ धीमी होती जा रही है.

हमेशा-हमेशा के लिए
गिराया जा रहा है जहाज़ का लंगर
उतारा जा रहा है उस पर लगा झंडा
आख़िरी बार खड़ा है जहाज़ के डेक पर
उसका आख़िरी कप्तान
अपने जहाज़ के बारे में सोचता हुआ
इससे बेख़बर कि एक नया जहाज़
उसकी प्रतीक्षा में है. ■

● **मिथिलेश श्रीवास्तव** ● रेखाचित्र: कविता नायर

बाज़ार के ख़िलाफ

मैं अपनी नज़रें संभ्रांत ग्राहकों को लुभाने में
व्यर्थ नहीं करता हूं. उनके आने पर फ़क से
बत्तियां जला देने का रिवाज़ इस दीर्घा में नहीं है.
नहीं है कोई चलन यहां उनके इर्द-गिर्द मंडराने का
और दूसरों की चीज़ों की कमियां गिनने और गिनाने का.
उदास रंग उन्हें पसंद नहीं आता, तो नहीं आए
कैनवस का रंग चटकदार मैं नहीं बनाता
मैं नहीं बनाता हवाई किले, किलों में क्रीड़ा और क्रीड़ा में रति-गति.

ढहे किले को देखकर वे लोग बिदकने लगते हैं
मैं उसे जादुई किले में नहीं बदल सकता. कहानियों
की परियों को कैनवस पर नहीं उतार सकता.
घर ढूंढ़ता हुआ आदमी उन्हें उचक्का लगता है और
उसकी रुकी हुई छाया से वे डर जाते हैं
घर ढूंढ़ते आदमी को मदारी बनाने से मैं इनकार करता हूं

मैं इनकार करता हूं कि मैं जो भी बना रहा हूं
बेचने की खातिर बना रहा हूं.

घर से दूर

पीछे वह छोड़ आया था एक लंबी सड़क
आगे थी एक और लंबी सड़क
कोई घर नहीं था जिधर से वह आ रहा था
जिधर वह जा रहा था उधर भी कोई घर नहीं था
सड़क पक्की थी लेकिन उस पर धूल की कई परतें थीं
कई सड़कों से गुजरने के निशान जैसे
जिनको पहचानना मुमकिन नहीं था!

धूल जो पैरों पर थी वह पहचान नहीं थी लेकिन उसे
घर पहुंचकर ही धोया जा सकता था

कुछ और लोग थे सड़क पर. सिर खुजलाते.
बार बार लौटते. पलटते. और उसी सड़क से गुजरते.
और सड़क से मुक्ति के उपाय पूछते.

कोई पूछता था कुछ देर बाद बदल जाने वाली तारीख
कोई पूछता था किसी घर किसी पेड़ किसी छाया के बारे में
कोई पूछता था इतनी दूर कैसे आ गए किसके सहारे

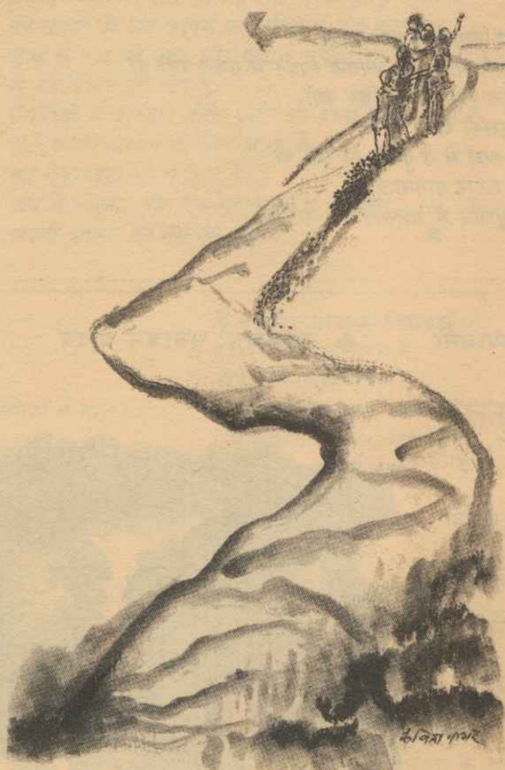

कुछ लोग कुछ नहीं पूछ रहे थे. चलते चले जा रहे थे.
कभी हाथ भांजते कभी पैर पटकते कभी सिर खुजलाते.
जैसे उन्हें मालूम था कि रास्ते में जो मिल रहा था
वहां खंभा था बिजली या टेलीफोन या स्ट्रीट लाइट का. ■

● जितेंद्र कुमार ● रेखाचित्रः सुबाचन यादव

अपनी ही आत्मा से बलात्कार

जब ठंड से मेरे अंग सिकुड़ गए
मैंने जीवन को काव्य की ओर मोड़ लिया
एक गंजे की भावुकता मेरी नस नस में समाई थी
एकांत चीकट कमरों में
झुकी आती छत के अदृश्य कोनों में बीड़ियों का धुआं लटका था
मैं उसमें सपनों और जुगनुओं को खोज रहा था
हल्के हल्के तिरता वह अनेक रहस्य रच रहा था
जब आत्मा शरीर में थी वह आग मुझमें जलती रही
सड़कें लोगों से भरी थीं और लोग वासनाओं से
पर मुझे तो उस वक्त रात सोने की जगह भर की तलाश थी...
कभी कभी हम अजीबोगरीब यात्राएं करते हैं
जब वे एक जगह से दूसरी नहीं
अच्छाई से कमीनेपन की ओर होती हैं...
पास ही एक छोटी लड़की अपनी रानों
को अपने शरीर पर रखे मां को पुकार रही थी
जैसे वे पुरुष हों
और अपने में उलझी आत्मा पानी सी रिस रही है.

वह आदिम जंगलों में घूमने आई थी
वहां वे काली जांघें एक लयबद्ध स्पंदन में उफन रही थीं
मुझे ताज्जुब हुआ कि आखिर क्यों
झील को इसकी खबर न हुई
एक हल्के स्पर्श से वे दुहरी हो रही थीं
पत्थर सी कठोर वासनाउत्सुक
अपने भरपूरपन में अलसाई वह लेटी थी
वह स्त्री
एक गुफा सी नीरव और शांत
सोचती नहीं केवल सहती है
वे उसे उसके सौंदर्य की प्रवंचना कहते हैं
विचारवान पुरुष केवल अंग है
उसका वह अपने अहम् की तरह प्रदर्शन करता फिरता है
स्त्री सहज ही उसे अपने बदन पर लिये घूमती है
जैसे वह उसके बदन का कोढ़ हो...
स्त्री अपना बदला मरुस्थल बीच मरीचिका बन लेती है
पर वह पानी सी कोमल और नाजुक भी होती है
इसीलिए हर मरीचिका में निरंतर खोजी जाकर भी
हताश वही होती है
अपनी शीतल छाया और जल का पारावार लिये
वह कोई छद्म नहीं रचती
मरुस्थल का छद्म तो आंख रचती है, वह पुरुष की होती है.

कहते हैं जब मैं मरा मेरा सामान सोने के भाव बिका
एक गिरे मकान में मैं अनुचित कर्म में पकड़ा गया था
पर उस तरह पकड़े जाकर मैंने गांधी को पहचान लिया
इसीलिए मेरी आज यह गत हुई है
पर इतनी 'कृपा' ही क्या कम है प्रभु
कि मेरी नौकरी बची हुई है?
मेरी नौकरी बचाना प्रभु
उससे बड़ी सुविधा रहती है
हम बिना हिचक एक गरीब की तरह रह सकते हैं
मेरा जीवन बचाना न बचाना प्रभु, मेरी 'पवित्रता' बचाना
मैं बिना सोचे समझे ऐसे शब्द कहे चला जा रहा हूं
जिनका अर्थ भी मुझे नहीं मालूम
पर जो लगता है खतरनाक है
तू तो वही बचाना प्रभु जिसका अर्थ तुझे मालूम हो
मैं गोश्त की जगह हड्डी की बात कहूंगा
तू भी जो बचाएगा प्रभु
उसकी भी वही गत होगी

● कात्यायनी ● रेखाचित्रः सुबाचन यादव

सुसंस्कृत, भद्र और जिम्मेदार नागरिक होने के बारे में कुछ उद्दंड, गैर-जिम्मेदाराना विचार

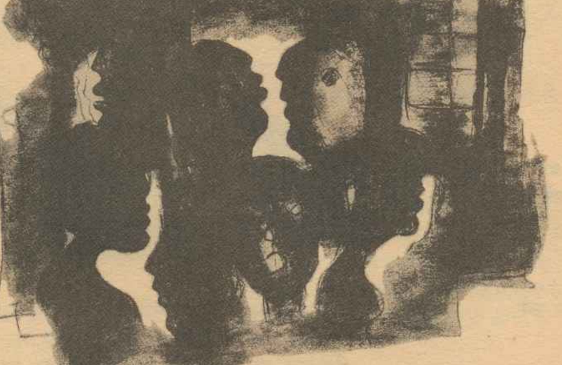

जो कुछ भी जैसे घटित हो रहा है
उसका आदी बनाने के लिए जरूरी है
स्वाभाविक चीजों को अस्वाभाविक
महसूस करने का आदी बनाना.
और इसके उलटा भी.
और भी बहुत कुछ, जैसे कि
सहज-सी चीजों को रहस्यपूर्ण बनाना
जरूरतों को गैरजरूरी बताना
और गैरजरूरी चीजों को जरूरत बनाना.
तब जहां लड़ने की जरूरत होगी
वहां चाहत नहीं
जहां चाहत होगी
वहां जरूररत नहीं.
आश्चर्य करेंगे हम
जब तक उजले दुःख या धूसर मटमैली खुशी
के होने पर
मृत्यु से डरेंगे तब तक
और जीवन से भी.
और जीते भी रहेंगे मरने के मुआफिक,
हर क्षण मरने के बारे में सोचते हुए.
स्वर्णिम अतीत पर गहरी आस्था होगी हमारी

पर बेकार तंग मत हो जा सो जा
मैंने तुझे नाहक ही पुकारा, अकेले में मन घबरा रहा था.....
वरना तो क्या मुझे पता नहीं कि तू कब किसका होके रहा है

पता नहीं मैं किस से बात कर रहा था
सुबह से मेरे सिवा कोई तो आया नहीं?

मेरे पास अब दर्शन बघारने का भी वक्त नहीं बचा है
मेरा केवल ठोस चीजों से ताल्लुक है
कठोर मानव उपस्थिति.
पर जब मुझे इस बात का घमंड होने लगा कि मैं दमदार हूं
वह एंटी अल्कोहलिक क्लीनिक में जा मरा

मैं सब कुछ साफ-साफ कहना चाहता हूं
पर सवाल यह कि मैं कहना क्या चाहता हूं?
मैं एक मृत्युहीन जीवन जी रहा हूं
वह उसमें रोज बरोज होने वाली एक घटना है
मेरे हाथ कांप रहे हैं और मेरे शरीर में आत्मा
एक मृत तरल पदार्थ सी थिर हो गई है
उसकी अनिवार्यता से ही मेरे हाथ कांप रहे हैं
मैं इसके पार जाना चाहता था
आंखें डूबने लगती हैं, सांसें भारी पड़ रही हैं
यह एक त्वरित आकांक्षा
सहसा किसी को जल सा सहज करने की आकुलता
पर उसमें भी अब चातुर्य का अनिवार्य जुड़ गया है
मृत्यु के बाद भी घृणा और प्रेम के चक्कर में
मैं यह जीवन जी रहा हूं
उंगलियों में बारंबार होती ध्वनि की वजह से
मुझे अपनी आत्मा की याद आती है
वह एक वेश्या की धरोहर है
अब मैं लौटूंगा और एक गहन जाग्रत नींद में
अपनी आत्मा की ध्वनियां सुनूंगा. ■

अनिश्चित भविष्य के प्रति
सतत् आशंकित होंगे हम.
सुसंस्कृत, भद्र और जिम्मेदार
नागरिक होंगे हम.
द्वंद्वमुक्त सोच होगा द्वंद्वयुक्त जीवन में
या सोच का द्वंद्व मुक्त होगा
जीवन के द्वंद्व से.
सत्ता के लिए होंगे हम
अहानिकर, विश्वसनीय.
और अधिक समझदार हुए तो
सन्निकट, पुरस्करणीय.

सिटकिनी

खासी परेशानी होती है
इस छोटी-सी दुष्ट चीज के बारे में
सोचते हुए
जो हमेशा बाध्य करती है
मुझे अपने बारे में सोचने के लिए.

वैसी ही एक बेहद पुरानी चीज
जो बहुत कम बदली,
हर स्थिति के मुताबिक
खुद को ढाल लिया,
बहुत थोड़ी सी कुछ तब्दीलियों के साथ
जीवित रही
अपनी पुरातन मौलिकता
और अतिप्राचीन इतिहास के साथ
जैसे कि तिलचट्टा;.
कुंडों और तालों ने
बहुत अधिक बदला है
अपने आपको.
सिटकिनियां कमोबेश वैसी ही रहीं.
जैसी वे थीं.
बस कुछ और सुंदर
और सुगढ़ हो गईं
कुछ और नाजुक
ज्यादा से ज्यादा छोटी,
ज्यादा से ज्यादा प्रभावी.

पर इसलिए नहीं, बल्कि
इसलिए बुरी होती हैं सिटकिनियां
कि वे हमेशा दरवाजों-खिड़कियों पर
भीतर से लगाई जाती हैं.
ताले-कुंडे बाहर-भीतर
दोनों तरफ लगाए जा सकते हैं,
सिटकिनियां दरवाजों को
सिर्फ भीतर से बंद करती हैं.
इनकी मदद से
हम खुद को कैद करते हैं.
बंद दरवाजों के पीछे.
सिटकिनियां हमारी खिड़कियों से
रंगों-गंधों का
प्रवेश वर्जित करती हैं.
यह छोटी-सी दुष्ट चीज
हमें अकेला करती है.
छोड़ देती है हमें जीने के लिए
हमारी तुच्छता और कायरता के साथ तनहा.
सबसे अधिक परेशानी पैदा करने वाली
बात शायद यह है
कि सिटकिनियों के खिलाफ लड़ाई
खुद अपने ही खिलाफ
एक कठिन लड़ाई है. ■

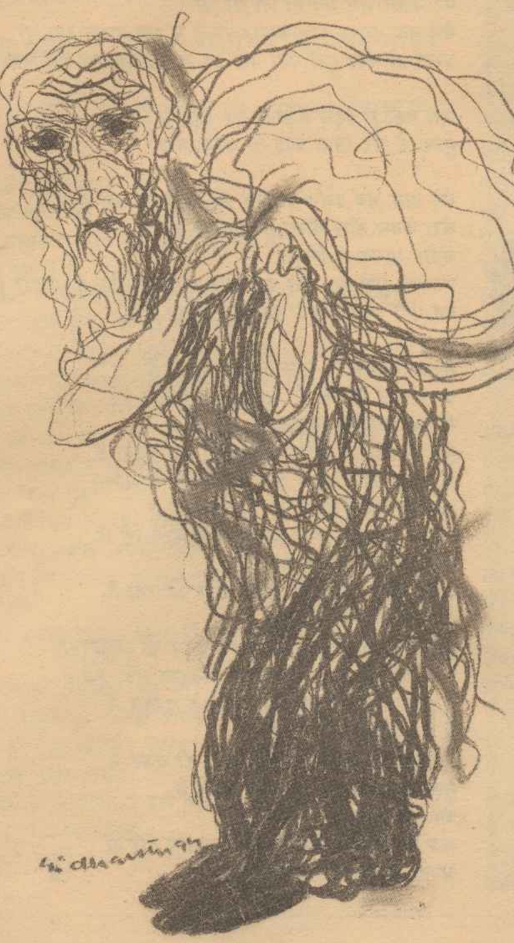

● अरुण कमल ● रेखाचित्रः सिद्धार्थ

हाट

एक दिन पिता ने मुझे बुलाया और कहा—
अब तुम जवान हो गए हो और मैं बूढ़ा
दिसावर जाओ और कमाओ खाओ,
मां ने चलते समय बताशे दिए—
खाकर पानी पीना

बाजार में बहुत सन्नाटा था
सारा संसार कांच के पार
पानी में झिलमिल मूंगे का द्वीप
और मैं इस पार शीशे से नाक सटाए घूमता,
एक जगह जूते दिखे हिरण की खाल के और
कुमार गंधर्व की भरी हुई बोली
अचानक मुझे अमरावती दिखी नमक की डली
जो झलकी फिर विलीन हो गई
दाल की मंडी जिधर

मेरे पास न पूंजी थी न पण्य
मैं बटखरा भी न था कि हाट के आता काम
न पाप कमाया न पुण्य न ही रहा अक्षत
दिन भर घूमता ढली देह लिये लौटा धाम

लेकिन वहां जहां घर था मेरा घर नहीं था
अट्टालिका थी लौह कपाट और द्वारपाल—
यहां घर था मेरे पिता थे मां थी
मेरा घर

द्वारपाल हंसे,
तुम किस जन्म की बात कर रहे हो?

अगहन

(एक)

खेत पीले
हरा पेड़
आकाश नीला
बगुले सफेद

(दो)

चुप
कर देते हैं
पके धान से भरे खेत
जैसे बाढ़ की नदी
जैसे किसी सुंदर युवती का बैठक में
सहसा प्रवेश
जैसे पहाड़ी चढ़ाई पर ट्रक की धीर गति
और गंभीर स्थिर रोशनी
लगातार ऊपर उठती.

एक चेहरा

एक चेहरा गड़ा इस चेहरे में
किसी प्राचीन साम्राज्य की स्वर्णमुद्रा
एक बोल चुके चेहरे की प्रतिध्वनि
उड़ते पक्षी की गिरी हुई छाया

अचानक जैसे खोजबत्ती-सा घूमता है
वह चेहरा
धूल और रोशनी का खंभ दूर जा बिखरता
खूब लंबी परछाइयां गाढ़ी
गहरी सांसें भारी
सूखी जर्जर पंखुड़ी सूंघ पहचानता हूं—
पुआल में खेले पांवों पर
पानी पड़ने की चुनचुनाहट
चुंबन के बीच सहसा
पसीने के नमक का स्वाद

एक घड़ीघंट बजता
एक चेहरा कांपता हुआ अनेक थरथराते
एक भंवर अंटका हुआ. ■

● एकांत श्रीवास्तव ● चित्रः मोना राय

निर्वासन

डूबती शाम सब घर लौटते हैं
मैं घर से निकलता हूं
एक अंतहीन धूसर के रास्ते पर
कहीं भी न जाते हुए
सब जगह जाना चाहता हूं
चाहता हूं कि मेरी कमीज़ से आए
सब जगहों की खुशबू
सब जगहों की धूल से
मैली हो मेरी कमीज़

अंधकार के इस महावन में
मेरे साथ है
कहीं दूर से आती
वह एक दिये की टिमटिमाहट
मेरे साथ हैं वे सब जन
जो डूबती शाम घर से निकलते हैं
रोज़ी-रोटी की मार से
क्या हुआ
जो हम हत्यारों की आंखों की सीध में हैं
क्या हुआ जो हम सामने हैं
एक हिंसक
और आदमखोर भूख के
हम यहीं धूनी रमाएंगे
यहीं दिया जलाएंगे
यहीं बिछाएंगे अपने बिछौने
हम घर छोड़कर
पृथ्वी पर रहने आए हैं.

दुनिया के हाट में

मैं ज़मीन नहीं बेचता
बेचता हूं हृदय
अपनी छाती से काटकर
जिस पर गिरकर छिले मेरे घुटने
उस धूल और इस रक्त का प्यार
मैं बेचता हूं
मैं बेचता हूं पानी में डूबी
धान की जड़ों की गीली सुगंध
अपनी सांसों से छीनकर
मैं पेड़ की तरह कटकर गिरता हूं
दुनिया के हाट में बेमोल
मेघ की तरह बरसकर होता हूं खाली
मैं ज़मीन नहीं बेचता
बेचता हूं आंखें
जल और स्वप्न से भरी
अपनी दो अदद आंखें. ■

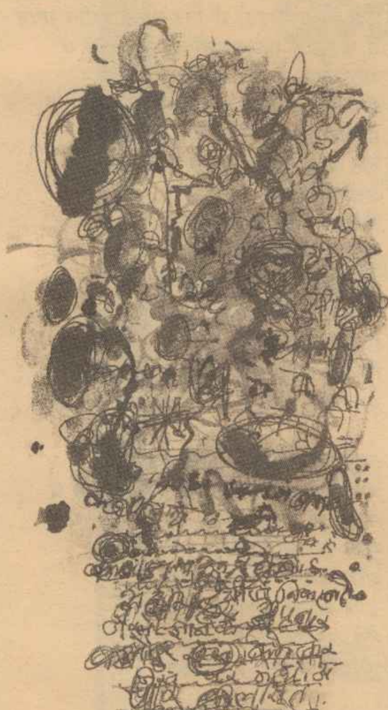

● **विमल कुमार**

● रेखाचित्रः जगदीश चंदर

रंग-प्रसंग

दफ़्तर से लौटते हुए
मैंने एक दिन देखा
गली में मेरा वर्षों पुराना घर
भूरे रंग का दिख रहा था
मैं जब पहुंचा पास उसके
तो देखा दरवाज़ा
गहरे पीले रंग का था
और भूरा रंग गायब हो चुका था
मेरी छोटी-सी लड़की ने
दरवाज़ा खोला
और मैं घर के अंदर दाखिल हुआ
पत्नी थी रसोई में
मेरी बाट जोहती
बच्चे थे किताबें खोलकर
कुछ पढ़ते
मैंने छत और दीवारों को
गौर से देखा
वहां हल्का नीला रंग था
और दरवाज़े से पीला रंग
चुपचाप निकल चुका था
वह हवा में तब तक
विलीन हो चुका था
खाना खाते हुए
मैं एक बार फिर अपने घर को
देख रहा था
वह भी मेरी तरह थका हुआ था
दरवाज़ा बंद कर
बत्ती बुझाकर
जब हम लोग सो गए
तो हल्का नीला रंग अनुपस्थित था
कमरे में काला रंग धीरे-धीरे
फैल रहा था
बिस्तर पर पड़े पड़े
मैं अपने घर को देख रहा था
और रंगों की आवाजाही के बारे में सोच
रहा था
सोचते-सोचते
आंख लग गई
सुबह नींद टूटी
तो देखा मुझे भूरा रंग जगा रहा था
तब तक पीला रंग भी आ चुका था
दरवाज़ा खोलकर
नीला रंग खिड़की के पीछे से आ रहा था
काला रंग दूर से लपकता आवाज़ दे रहा था
मैं इतने सारे रंगों को एक साथ देखकर
घबरा-सा गया
उधेड़बुन में फंस गया
फिर कुछ सोचता हुआ उठा
और उनमें से एक रंग के कंधे पर
हाथ रख दिया
यह देखकर बाकी रंग एक-एक करके
चुपचाप चले गए
कमरे से बाहर
मैं जानता था
यह मेरे जीवन का एक खतरनाक फैसला है
बाकी रंग जब कभी रास्ते में मिल जाएंगे
मेरी पत्नी और बच्चे
मुसीबत में घिर जाएंगे
क्योंकि उनके चेहरे का रंग बदल सकता है. ■

● विनय दुबे ● रेखाचित्रः परमजीत सिंह

जो जहां है वहां से भाग रहा है

निर्झर बह रहा है एक
सात आसमानों के पार
और दहक रहा है बसंत
यहां पानी की सतह पर एक शहर है
नींद से बोझिल पलकों में
घूमता हुआ परियों के साथ-साथ

दूर दूर तलक बिखरी पड़ी है धूप
पहाड़ घूम रहे हैं हवाओं को चीरते हुए और
जो जहां है वहां से भाग रहा है

जीटी एक्सप्रेस के जनरल डिब्बे में
डिब्बे की भीड़ में
भीड़ के हाथों छातियों पैरों नथुनों सांसों
पीठों पुट्ठों बक्सों थैलियों
और महकते बसाते शरीरों में
पिछले एक घंटे से दबा खड़ा हुआ मैं
उसे याद कर रहा हूं

वह कि जिसे महसूस करता हूं मैं
अपने कमरे के बीच किताबों में
किताबों के बीच सतरों में
सतरों के बीच शब्दों में
शब्दों के बीच खाली जगहों में
और खाली जगहों के बीच अर्थों में

वह कि डूबा रहता हूं मैं
जिसकी स्मृतियों में सुबह-शाम
सड़कों बाजारों घरों पास-पड़ोसों में

ग्रीष्म ऋतु आ रही है
रेलवे लाइन के दोनों तरफ कहीं-कहीं
दूर-दूर तक दहकने लगे हैं पलाश
मार्च का दूसरा पखवाड़ा है.....
खेतों में गेहूं कट रहा है
और यहां वहां बंधा पड़ा है पूलों में

मैं उसे याद कर रहा हूं
कि बसंत का महीना है
और वह लहरा रही होगी खेतों में
आम के बौर और नई-नई पत्तियों में

अभी बाकी हैं दसेक मिनट
होशंगाबाद पहुंचने में जीटी को
कि नर्मदा ब्रिज पर पहुंच रही है ट्रेन

एक निर्झर बह रहा है मेरी नसों में
नर्मदा के पानी के नीचे मैं पवित्र हो रहा हूं

हटिए श्रीमान हटिए कि पिछले एक घंटे से
आप मेरे पैर पर पैर रखकर खड़े हैं
और मैं आपको बर्दाश्त कर रहा हूं

हटिए कि आप देश के प्रधानमंत्री हों
या गोंदरमऊ के ग्रामीण

हटिए कि एक निर्झर बह रहा है मेरी नसों में
और मुझे उतरना है
हटिए कि होशंगाबाद आ गया है. ■

आसपास शाम के वक्त

आसपास हवाएं गूंजती हैं
सुदूर आकाश में ऊपर
बहती है एक पहाड़ी नदी
डलहौजी के ऊपर
ऊपर देवदारु
देवदारु के ऊपर
ऊपर एक चील
चील के पीछे-पीछे मैं
लाल स्कूटर पर सवार

नीचे बौरों से लदा आम का एक वृक्ष
कॉटेज नंबर तीन में सुगंध बिखेर रहा है
मैं डूब रहा हूं और सुन रहा हूं आहट शाम की
जहां एक दिन विदा ले रहा है

आसपास हवाएं गूंजती हैं
और उभरती है एक स्त्री घाटियों में
ग़ायब होता जाता है आकाश
नीचे खेतों में फूली सरसों लहरा रही है
नदी की गहराइयों में तिर रहे हैं रंगीन सपने
मैं भरता हूं एक मछली को हथेलियों में
और लहर में लौट जाता हूं
गंगा के पार शाम उतर रही है
मैं गली विश्वनाथ में घूम रहा हूं
रात धीरे-धीरे बढ़ती है मेरी तरफ़
अंधेरा गहराता जाता है
छिपकली एक झपटती-सी
दूर एक भूंकता भगे कुत्ता
पेड़ पीपल का फड़फड़ाता है
कि तवील और अंधेरी रात का सफ़र
कि घुटती है सांस
कि बोगदों में एक नहीं कई-कई बोगदों में
मुझे पंद्रह साल छै महीने हो गए हैं रहते

सुदूर वन-प्रांतर में कभी मैदानों में
चांदनी रातों में कभी मकानों की छतों से
लड़कियों के साथ-साथ
सुबह के उतरते उजालों में
और तालाब के ऊपर-ऊपर
ऊपर आत्मा के वैभव-लोक में
मैंने आवाज़ दी थी
समुंदरों के पार तक जाकर

अंधेरी रात का सफ़र
एक महल सात खंभों वाला है
राजा एक सात रानियों वाला
बैठा दिल्ली में राज करता है
और एक मकड़ी बड़ा-सा एक
जाला बुन रही है. ■

कर्म ही आराधना!

यकीनन, भारत के वृहत्तम एवं समूची दुनिया के दस वृहद्
इस्पात उत्पादकों में से एक - सेल के कारखाने में
शक्ति की आराधना करते हुए हजारों हजार कर्मी
विभिन्न क्षेत्रों एवं विभागों में कार्यरत हैं।

इनकी साधना व आराधना है कि किस प्रकार इस्पात की
सुदृढ़ शक्ति को मानव समाज के विकास में
सफलातापूर्वक उपयोग किया जाय।

इसी आराधना के बल पर आज सेल एक
समृद्धशाली भविष्य की ओर अग्रसर है।

पूजा के उपलक्ष में सेल की हार्दिक शुभकामनाएं।

केन्द्रीय विपणन संगठन
स्टील अथॉरिटी ऑफ इण्डिया लिमिटेड
विश्वास सहित औद्योगिक विकास

Contad : CMO : 9421

● कुमार अंबुज ● रेखाचित्रः कविता नायर

साध्वियां

उनकी पवित्रता में मातृत्व शामिल नहीं है
संसार के सबसे सुरीले राग में नहीं गूंजेगी उनकी पीड़ा

अप्रमेय की खोज में सबसे सरल प्रमेय से छली गईं
वे भी वैसी ही स्त्रियां हैं
जिनसे हो सकती थी वसंत में हलचल
रो सकता था जिनके वियोग में पृथ्वी के बराबर का एक हृदय
बन सकती थीं वे भी दुनिया की सबसे तेज धाविकाएं
कर सकती थीं नए आविष्कार उपजा सकती थीं अन्न
वे हो सकती थीं बारिश के बाद की धूप
काम से लौटते बच्चों के लिए वे हो सकती थीं ममता का अनथका कंठ
जिसकी लोरी से दुनिया के सारे बच्चों को आती है नींद

मगर अब वे सिर्फ कुओं की नीर हैं
या तुलसी की पत्तियां
धार्मिक-तेज ने सोख लिया उनके जीवन का मानवीय-ताप
वे इतनी पूजनीय हैं कि अस्पृश्य हैं
वे इतनी स्वतंत्र हैं कि एक पवित्र पुस्तक में कैद हैं

उनका जन्म एक उल्लसित अक्षर की तरह हुआ था
और एक प्राचीन दग्ध-वाक्य में बुझ गया.

क्रूरता

धीरे-धीरे क्षमाभाव समाप्त हो जाएगा
प्रेम की आकांक्षा तो होगी मगर जरूरत न रह जाएगी
पाने की बेचैनी और खो देने की पीड़ा झर जाएगी
क्रोध अकेला न होगा वह संगठित हो जाएगा
एक अनंत प्रतियोगिता होगी जिसमें हम
पराजित होने के लिए नहीं
अपनी अद्वितीय श्रेष्ठता के लिए युद्धरत होंगे

तब आएगी क्रूरता

पहले हृदय में आएगी और चेहरे पर न दीखेगी
फिर धर्म-ग्रंथों की व्याख्या में घटित होगी
फिर इतिहास में और फिर भविष्यवाणियों में
इधर वह जनता का आदर्श हो जाएगी
विलाप का कोई अर्थ न रह जाएगा
दूसरी मृत्यु थाम लेगी पहली मृत्यु से उपजे आंसू
पड़ोसी सांत्वना नहीं देगा एक हथियार देगा

तब आएगी क्रूरता और हमारी आत्मा को आहत नहीं करेगी
फिर वह चेहरे पर भी दीखेगी लेकिन अलग से न पहचानी जाएगी
सब तरफ एक जैसे चेहरे होंगे
सब अपनी-अपनी तरह से क्रूरता कर रहे होंगे
और सभी में गौरव-भाव होगा
वह संस्कृति की तरह आएगी उसका कोई विरोधी न होगा
कोशिश सिर्फ यह होगी कि किस तरह वह अधिक सभ्य
और अधिक ऐतिहासिक हो
बहुत संभव है कि वह आए और लंबे समय तक हमें पता ही न चले

बस, धीरे-धीरे क्षमाभाव समाप्त हो जाएगा. ■

● पंकज सिंह ● रेखाचित्रः सिद्धार्थ

पूछो इस नाटक का नाम

बेचैन भागती नदियां रेत में दम तोड़ देती हैं
चीखों से बिंधे हैं मटमैले दिन
पेड़ लगातार पत्ते गिरा रहे हैं
अंधेरा हो चला है पूजनीय आलोक

अपार्थिव आभा से दीप्त अभिनेता कहता है—
बेमानी हैं मुखौटे अब

चेहरे हैं उनसे ज्यादा कामयाब
ढंक जाती है जरा से अभ्यास के बाद
कोई भी कुटिलता, कैसी भी घृणा
करुणा भरी मुस्कान की गाढ़ी ओट में.....

अकस्मात प्रकट होती हैं रंग ब रंगी रोशनियां
यहां से वहां तक फैल जाता है कोई नया तमाशा
जो सोचते हैं नहीं रहना है महज दर्शक
तय करना चाहते हैं अपनी कोई भूमिका
उन्हें धकेल दिया जाता है समय के हाशिये पर
जहां चलती हैं हू-हू करती आंधियां
कोई नहीं सुनता किसी की आवाज़
पागल हवाओं के शोर में
शब्दों के बीच की खाली जगह में
भरा है हिंस्र पशुओं का उल्लास
चंद्रोदय के क्षीण प्रकाश में चमकती हैं
इधर उधर बिखरी हड्डियां

चिल्लाता है उन्माद में नाचता पारंगत पतंगबाज़—
तुम ढहो चिंता के कुम्भीपाक में
रहो पड़े कुंठा में
ध्वस्त कर डाले मैंने सारे के सारे दुर्ग
पूरा आसमान खाली है
मूर्खो, काट चुका हूं सबकी पतंगें
मेरी पतंग के पुछल्ले हैं अब इंद्रधनुष
दर्ज करो यह अभूतपूर्व समाचार...

सावन की बारिश में गिरता है ख़ामोशी पर खून
मूसलाधार खून ख़ामोशी में
ख़ामोशी पर
कोई विदूषक लुढ़का ले आता है एक तोप
लोग समझ नहीं पाते इस हरकत का
मानी मतलब
पर लिखता है सराहना में चश्मा ठीक करता
संपादक—
अमुक जी ले आए तोप!
हर चीज़ का अपना समय होता है
आएगा इस तोप का भी समय
कितना मर्मस्पर्शी है यह प्रयास
इसकी कथित निरर्थकता तो प्रमाण है
ऊसर दिमागों का
उधर ही स्वर्णिम भविष्य है, पाठको
जिधर जाएगी यह लुढ़कती हुई

कुछ न हुआ तो इसमें घोंसले बनाएंगे
सांस्कृतिक पंछी
शालीन उदासी और हताशों के तिनकों से
संयोगवश जिनसे भरा है
हमारा वध्य प्रदेश....

चित्रकार बना रहे हैं सपनीली पृष्ठभूमियां
पा रहे हैं पारितोषिक, सम्मान और दोशाले
भांति-भांति के शिल्पी व्यस्त हैं
नाना प्रकार की प्रविधियां जुटी हैं
संगीत और ध्वनि प्रभावों की रचना में

वाद्यवृंद गूंज रहे हैं दसों दिशाओं में
गवैये अनथक गा रहे हैं
और पा रहे हैं पारितोषिक सम्मान और दोशाले

नहीं मालूम हो पाता यह कोई आरंभ है
या कलाओं का अंतिम संस्कार

पता नहीं किन अंधेरे कुओं में बंद हैं आत्माएं
काया की कारा से परे
सहूलियत के सांचे ढला विवेक है
सलीके हैं, नुस्खे हैं
बच निकलने के कारगर तरीके हैं

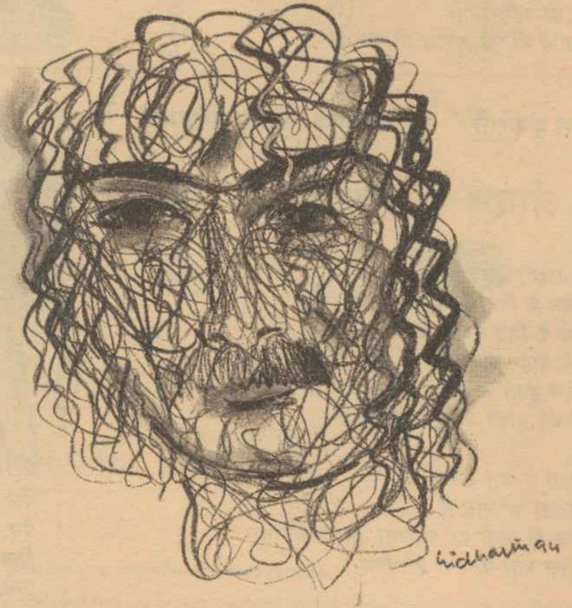

ईमान की जगह चीथड़े हैं

इन्हीं चीथड़ों से
बनाई जाती है राष्ट्रीय पोशाक
जिसे पहनकर भद्रजन जाते हैं
शांतिवार्ताओं और शोक सभाओं में
समयहीन सुख वैभव में विचरती हैं
भद्र महिलाएं
अंतहीन प्रेम की भंगिमाएं पसारे
लताओं-सी लिपटी
राजकाज वाले समाज में गुनगुनी गुनगुनाती
जिनमें कहीं नहीं दिखता
कोई मां सा चेहरा
बहनों के पीले मुख उदास
किसी दुख की छाया अपमान के छींटे

चोर सिपाही से सिपाही संतरी से
संतरी मंत्री से मंत्री राजा से कहता है—
बुझा दी गई है सारी आग
हटाई जा चुकी लाशें

कोतवालियों के रोजनामचे खाली हैं
बाकी बची है थोड़ी-सी धरपकड़
सो तो चलती ही रहती है...

किसी से न कहें कि नींद में सुनते हैं हम
अपना ही रोना
खिड़की से बाहर शायद अपनी ही कराह
किसी विस्मृत नदी के किनारे
अपने ही पैरों की छप छप ध्वनियां
प्यास की तड़प के अनगिन मुहानों पर

●

देखो तो सचमुच जो सुंदर था सब नष्ट
किया जा चुका? उतनी ही है तुम्हारी दुनिया
महज वही जितने में है घटाटोप
अभिनेताओं का विदूषकों का पतंगबाज़ों का?

हो सकता है अभी लगती हो नामुमकिन
उम्मीद-सी कोई भी चीज़
मगर देखो तो
बिला गया
समारोहों की मायावी धुंध में
बगुलों के विमर्श में
सब कुछ?

उनसे भी पूछना ये सवाल
जो अनमने लगें
आसानी से मन की न बताएं
उनसे भी जो इंतज़ार में हों खामोश
छोटे मोटे सुख दुख सहेजे
ज्यों फ़कत घास पात.....

पूछो इस नाटक का नाम ■

● पद्मा सचदेव

अक्षर

शांति वाले सफेद कबूतर
सारे ही बुजुर्ग उड़ा गए हैं
अब हमारे पास सिर्फ काले कबूतर हैं
जिनके बच्चे पैदा होते ही बिल्ली खा जाती है
अपनी नस्ल चुकती देख कर
कबूतर अब बच्चे पैदा नहीं करते
बिल्ली के डर से वो धरती को छूते ही नहीं
आकाश पर उड़ते रहते हैं
क्योंकि वो नहीं जानते
आकाश में भी एक सुराख हो गया है
जो किसी दिन भी बिल्ली बन कर
धरती को निगल जाएगा

कबूतरों के बचने की कोई आशा नहीं है
हो सके तो अक्षर बचा कर रखो
अक्षरों में ही संभली रहेगी
आपकी जीते रहने के लिए की गई कोशिश
अक्षर ही आपकी संस्कृति संभाल कर रखेंगे
पर ठहरो
सुनो, कबूतर क्या कह रहे हैं
क्या आकाश में उड़ते-उड़ते हम बच जाएंगे
या कि आप अक्षरों को बचा लोगे
अगर अक्षर बच भी गए
तो उन्हें बांचेगा कौन? (डोगरी से अनूदित) ■

● हेमंत कुकरेती ● रेखाचित्रः अशोक प्रजापति

जीवन में जगह

जब आदमी अकेला था
अकेलेपन के निर्वासन में औरत को उसने
सहवास के लिए तैयार किया
गुफा के बाहर वह सूरज के साथ प्रगट हुआ
अब दिन डूबने का भय
उत्सव था उसकी अरण्य स्मृतियों में

वह पानी से जल सकता था
तैर सकता था आग में
आकाश को पृथ्वी पर उतारना उसका खेल था
वह सीख गया था हवा को पीना

यह आदमी के अपने नजदीक आने का अनुभव था
वह औरत के साथ नहीं होता
तो खुद से डरकर भाग जाता हमेशा के लिए

नष्ट होने को है
प्रेम करने वाली मनुष्य की जाति
जिन औरतों की स्मृतियों में वह बची रहेगी
उन्हें जीवन में जगह दो

इस संग्रहालय में
समय का द्वार कभी बंद नहीं होता ■

● कृष्ण मोहन झा

महान समय में

आकाश बना है नीरवता से
संकल्प से बनी है धरती
नदियां इच्छाओं से बनी हैं
मैं बना हूं धूल से.

अब मैं चाहूं भी
तो खुद को कितना बचा सकता हूं
उन ज्ञात-अज्ञात सुरंगों से आने वाले अंधड़ से
जो मेरी देह को कुछ और मलिन
और मेरी आत्मा को कुछ और संकरा बना देता है!

हरेक दिन
जब यह समय
अपनी धूसर कमीज़ और थके कंधों पर
रात का लबादा चढ़ा लेता है
मैं किसी स्याह परत के नीचे
जाने किस चेहरे की याद में सुबकने लगता हूं...

एक महान समय में
जब अंतरिक्ष को शव की तरह
प्रयोगशालाओं में परखा जा रहा हो
जब किसी प्रॉपर्टी-डीलर के जूते की हुमच
दूसरे ग्रह के जीवों की टोह रही हो नींद
यह कितना बचकाना और हास्यास्पद है
कि मैं
इसी वक्त का आदमी
एक नन्हे सुख में खनक उठता हूं
एक छोटे दुख में रो पड़ता हूं! ■

RPG ENTERPRISES

HMV

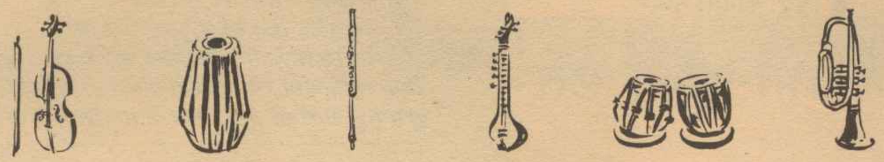

He could play

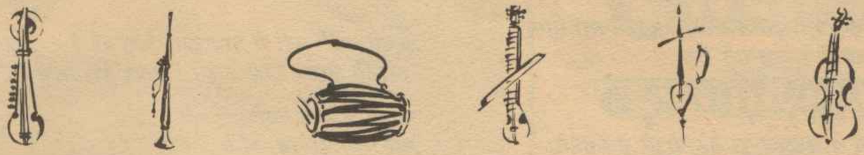

on 19 instruments.

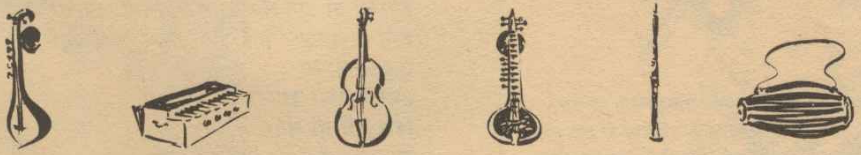

One of them being your mind.

True, many have greatness thrust upon them. And then, there are those who are born to greatness.

The young Allauddin Khan was a case in point. So richly endowed was he with talent and passion in equal measure, that he ran away from home at the age of seven, in pursuit of his destiny. And never looked back.

In time, he founded the Maihar Gharana. The Gharana to which connoisseurs attribute the chastest traditions in Hindustani classical music. What is not quite as well-known is the other institution he founded: the Maihar Band, the first experiment in the rendition of Hindustani classical music by an orchestra.

But then, such contradictions were commonplace in the life of the Ustad. He would read the namaz five times a day and yet remain an ardent devotee of Goddess Kali.

Call him traditionalist or call him innovator, the Ustad's sublime music defies categorisation. Which brings us to the Chairman's Choice Great Gharanas series. Released on digitally-cleaned, twin-cassette packs and double CDs, it will feature the Kirana, Patiala, Agra, Rampur-Sahaswan, Imdadkhani and Atrauli-Jaipur Gharanas, drawn from HMV's nine decades of recorded music.

Of course, it'll also feature the Maihar Gharana, in its very first volume.

So do pick it up on your next visit to your music store.

You'll be certain to experience the Ustad's mastery over the 19th instrument.

Your mind.

Chairman's Choice

GREAT GHARANAS

Trikaya Grey. Cal. HMV. 189.94

● चंद्रकांता ● चित्रः कविता नायर

भूर्ज पत्रों वाली छत

लो झांक आई/यादों की खिड़की से/
भूर्ज पत्रों वाली छत!
जिस पर इतिहास रचे गए/हज़ारों साल पहले!
नदी किनारे सिर तान खड़े/उस घर की छत/
जो अंकोरती थी बाहें पसार/नीले आकाश का पिघला सोना/
और तित्तरखंभी बदली के/कजलाते रंग!
उस छत पर/उमगती दूब में/उचक-उचक
सिर उठाते थे/पीले डेज़ी के फूल!
छुप्पम छुप्पी खेलते थे/आकाश पर बैठे/पोपले मुंह हंसते/
बूढ़े चांद के साथ!

और हम रोपते थे/नन्हे हाथों/मिट्टी के गर्भ में/
तोरी-कुम्हड़े के बीज!
चांद पर टेक देने लंबी सीढ़ी/'जैक एंड बीनस्टाक' वाली.
बेपरवाह/कि पहुंचेगी नहीं हमारी सीढ़ी/चांद तक.
कि खुरची मिट्टी की राह/पिघलती बर्फ बनाएगी/
जलाशय कमरों में! अक़्ल के कच्चे थे!
हम चहक उठते देख/जो मिट्टी की कोख से सिर निकालता—
गुलाबी-बदन कुम्हड़ा!
कितना बड़ा आविष्कार था वह!
टुनटुनाते हैं/घंटियों से कानों में/बुजुर्गों के स्वर!
डांट/डपट/ और 'बच्चे ही तो हैं' संवाद!
आह! पत्थरों के जंगल में कैसे/महक उठी है केसर?
हज़ारों योजन लांघ/छू सकता है आदमी
नरगिस की सफेद गंध! कैद कर सकता है/महक मिट्टी की/
यादों के कैमरे में/बस! एक क्लिक
कैसे मान लूं/कि छिन गई है/मुझसे मेरी मिट्टी?
अभी-अभी/सांस के साथ/जो महक उठी है/वही भूर्जपत्री गंध/
जिस पर इतिहास रचे गए/जहां पीले डेज़ी के फूल
छुप्पम छुप्पी/खेलते थे/बूढ़े चांद के साथ/अभी-अभी तो...! ■

● यश मालवीय

हाथ ऊपर दिख रहे हैं

डूबते गहरी नदी में हाथ ऊपर दिख रहे हैं
हम कि शायद आज के इस दौर पर कुछ लिख रहे हैं

पत्थरों के बीच उठते
स्वर कहीं पर दब गए थे
हम नयों में पुराने थे
औ' पुरानों में नए थे

इसलिए ही ठाठ से बाज़ार में पलथी जमाकर
शान से अशआर सारे मुफ़्त ही में बिक रहे हैं
एक ख़तरा सा
हमारी शक्ल पर भी तिर रहा था
हिल रही थी भीत,
मलबा आइनों पर गिर रहा था

झेलकर ही आज इस निष्कर्ष पर पहुंचे जहां पर
आंच अपनी है, स्वयं की आंच ही में सिंक रहे हैं

बुन रहे थे जाल जैसा
यंत्रणा के छंद झूठे
क्रूर कुहरा था
हमारे बीच के थे सेतु टूटे

सल्तनत का छद्म दस्तावेज़ है धुंधला हुआ फिर
नींद से छिटके वही, जो स्वप्न प्रासंगिक रहे हैं

सोचने पर बंदिशें थीं
हर तरफ थे सिर्फ़ ताले
मौन छत थी,
और छत पर दूर तक थे तने जाले

हम बहुत अस्थिर हुए फिर सभ्यता विकसित हुई जब
अब ख़बर है ये मगर अपने कहे पे टिक रहे हैं

बहुत भौतिक सी, हमारी याद पर
काई जमी थी
पर कहीं भीतर भिगोती
एक खुशबू की नमी थी

हम अलौकिक रास्तों से वास्ता भी रख न पाए
इसलिए ही जिंदगी से जुड़ सके लौकिक रहे हैं

रोशनी की एक रेखा थी
मगर गहरी नहीं थी.
लालिमा भी पूर्वी आकाश पर
ठहरी नहीं थी

हम उजाला बांटने फिर आ गए हैं बस्तियों में
बात है ये और कूड़ेदान पर ही फिंक रहे हैं. ■

गृ · ह · स्वा · मि · यों

आप एक बड़ा जोखिम ले रहे हैं!

एक पल भी निगाह चूकी नहीं कि माचिस की जलती हुई तीली कहीं गलत जगह पर जा गिरी। परिणाम? भयंकर अग्निकांड! आपका सभी मूल्यवान सामान— टी.वी., वी.सी.आर., क्रॉकरी, ज़ेवरात, फ्रिज, स्टीरियो, महंगे कपड़े— पलक झपकते ही राख का ढेर बन जायें।

आप जोखिम क्यों लें? अपने कीमती सामानों का नेशनल इन्श्योरेंस की हाउसहोल्डर्स पॉलिसी के तहत मामूली सा वार्षिक प्रीमियम देकर बीमा करायें। कोई दुर्घटना या चोरी या क्षति होने पर आपके घर समेत तमाम सामानों की लागत की क्षतिपूर्ति होगी।

जल्दी करें, कहीं ज्यादा देर न हो जाये। अधिक जानकारी के लिये हमसे आज ही सम्पर्क करें।

नेशनल इन्श्योरेंस कम्पनी लिमिटेड

(भारतीय साधारण बीमा निगम की एक सहायक कम्पनी)

3, मिडिलटन स्ट्रीट, कलकत्ता-700 071

मैं हाउसहोल्डर्स पॉलिसी की विस्तृत जानकारी चाहता / चाहती हूं।

निम्नलिखित पते पर

☐ अपना प्रतिनिधि

☐ विस्तृत पुस्तिका भेजें

नाम ....

पता ....

....

इस पॉलिसी में इन सामानों का बीमा भी शामिल है :

जेवरात और कीमती सामान (सकल जोखिम), काँच, प्लेट, घरेलू उपादानों की टूट-फूट, टी.वी. सेट, पैडलदार साइकिल, सार्वजनिक देयता, डकैती, सेंधजनी, लूट या चोरी तथा अन्य व्यक्तिगत दुर्घटना।

Sobhagya/NIC/2/92

● स्वप्निल श्रीवास्तव ● रेखाचित्रः मोना राय

कबाड़िये

कबाड़िये अपने कबाड़ से
अद्‌भुत चीजें निकालते हैं
जैसे ज्ञान के पत्थर, धर्म की तलवारें
और एक कमजोर ढाल
जिस पर उनका माथा अकसर
शर्म से झुका रहता है
वे एक अनंत अंधेरी सुरंग की तरफ
लौट रहे हैं
वहां उनके अभिशप्त पूर्वजों की
आत्माएं, चमगादड़ की तरह
लटकी हुई हैं
पवित्र बहेलिए अमृत से बुझे हुए
तीर उनकी तरफ तान रहे हैं
वहां आदिकाल से कीर्तन
चल रहा है
आठवीं शताब्दी के धर्माचार्य
मुक्ति हेतु मंत्रोच्चार कर रहे हैं
ऐसे कलुषित आत्माओं को
मोक्ष मिलता है
ऐसे होता है स्वर्गारोहण

कबाड़ियों की हिकमतों से कोई
पार नहीं पा सकता
क्योंकि वे सनातन ऐतिहासिकता में
जीते हैं
उनके तहखानों में ईसा पूर्व के परिधान
और विशिष्ट जाति का गर्व
छिपा रहता है
मरम्मत किए हुए पुराने दांत
और खुदाई में बरामद दाढ़ियां
पहने हमारे सामने आते हैं
मुंह से बेसाख्ता निकल जाता है
—देखो कबाड़िये आ गए
हंसते समय उनके जबड़ों में
इतिहास का बर्बर काल दिखाई
देता है

वे कौतुक कौतुक में हमारी तरफ
जादू की छड़ी बढ़ाते हैं
और हमें एक स्वर्णिम अतीत
में बदल देते हैं. ■

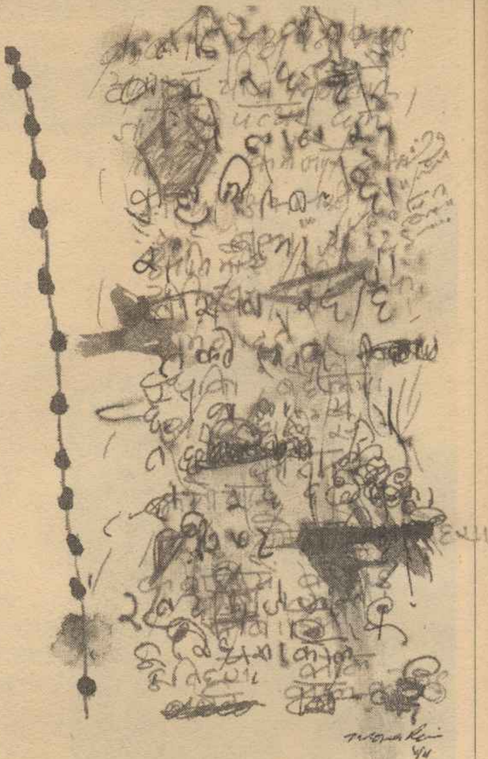

● बद्रीनारायण ● रेखाचित्रः सिद्धार्थ

रावण का गीत

सीता को हरा तो क्या हुआ
राम जी की बोली, रावण ने हर ली
राम जी की भाखा, रावण ने हर ली
राम जी की उपमा, रावण ने हर ली
छीन लिया रावण ने राम जी का व्याकरण
धन रे रावण! धन! धन!

सपने में काली गाय

कल मेरे सपने में आई
काली गाय
सुबह मैंने स्वप्न विचारकों से कहा
कि इस सपने पर करो विचार
किसी ने कहा—
पृथ्वी थी.
जब पृथ्वी पर बढ़ जाता है अत्याचार
तो वह गाय की शक्ल में
कवियों के सपनों में आती है
किसी ने कहा—
जब कवि अपनी पत्नियों से इतर
कई लड़कियों से प्रेम रचाते हैं
तो कवियों के सपनों में
उनकी पत्नियां
गाय बन आती हैं
पर मैं तो अभी कुंआरा हूं यार!
उनमें एक था मोटा स्वप्न विचारक
उसने आंखें बंद करते हुए कहा—
कोई कुछ भी समझ नहीं पा रहा है
जब दुनिया के कई हिस्सों में
एक साथ राज बदलना होता है
तो कवियों के सपनों में गाय आती है
पता नहीं क्या है—

पर मेरे सपने में
आई थी एक काली गाय.

विदाई

पहचान में नहीं आ रहा था कि
दोनों में से कौन किसको
विदा करने आया है
दोनों अत्यंत आकर्षक थे,
अत्यंत आधुनिक
पर उनमें एक बात प्राचीन थी कि
दोनों रो रहे थे. ■

सैनी हर्बल हेयर ऑयल

गंजेपन तथा सुन्दरता में अन्तर

बालों को बढ़ाता है

हल्के बालों को घने बनाता है

बालों का झड़ना रोकता है

बालों को रूसी-रहित रखता है

कम चिकनाई वाला तेल

बालों को चमकदार रखता है

कोई दुष्प्रभाव नहीं

दिल्ली,
राजस्थान, पंजाब,
हरियाणा, महाराष्ट्र,
जम्मू और कश्मीर
में उपलब्ध

सैनी हर्बल्स प्रा. लि.

17,19,20 कनिष्क शॉपिंग कॉमप्लेक्स,कनिष्क होटल,
अशोक रोड, नई दिल्ली। फोन: 3722279,
3711629. टेलेक्स: 63421, 62012 डीबीएसडी इन
फैक्स: 91-11-3312830

समय प्रात: 9 बजे से सायं 8 बजे तक
(पूरा सप्ताह खुला)

सभी प्रमुख दवा-विक्रेताओं व विभागीय स्टोर्स के पास उपलब्ध।

AKSHARA/SH-2585D

● संजय चतुर्वेदी ● रेखांकन: सुबाचन यादव

जन्म पत्र

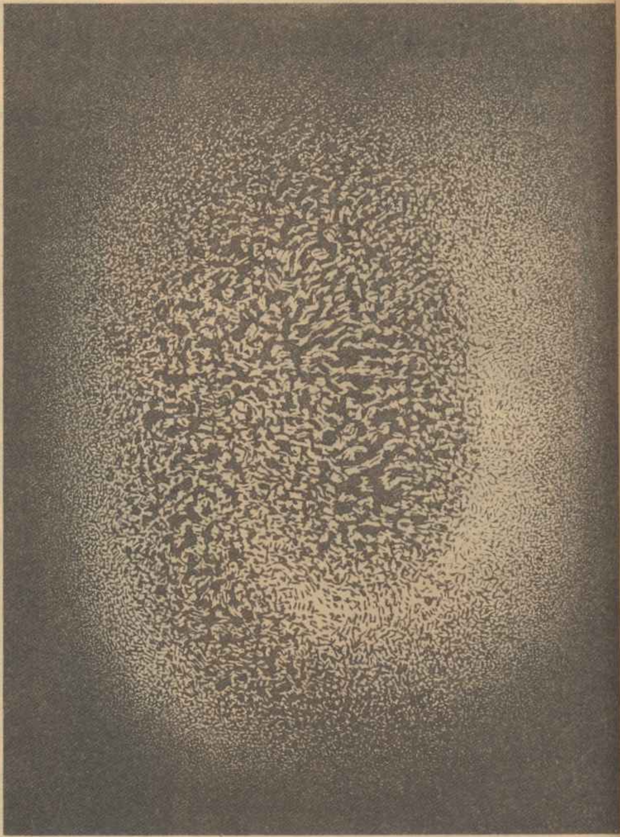

जातक जब इस संसार में आया
विनी मेन्डेला और इमेल्डा मारकॉस में फर्क करना मुश्किल हो चुका था
और पचासी प्रतिशत ज़मीन पर पंद्रह प्रतिशत गोरों के बाज़ार ने
नेल्सन मेन्डेला का प्यार की दुनिया में स्वागत किया
दोनों के पास दूसरा कोई रास्ता भी बाकी नहीं था
रवान्डा की लाशें झील में इकट्ठा होने लगी थीं
विचारों पर हरकतुल हथियार थी
कश्मीर में कभी हरकतुल अंसार थी कभी हरकतुल सरकार
लाखों लोग अपने ही देश में शरणार्थी थे
बुद्धिखोरों में मक्कार चुप्पी थी
या फिर उन्होंने ज़ोर ज़ोर से बताया
यह हरकतुल संसार है इसे सांप्रदायिक न मानें
ये और बात है कि एक संप्रदाय के बहुजन
मैदानी इलाकों में पिकनिक मनाने को आमादा हैं

हिंदुस्तान में कम्युनिस्ट एक दूसरे पर थूकने में मशगूल थे
और एक अख़बारनुमा माफ़िया के लफंगों ने
जनता के सामने औरतों को पीट डाला
और कुछ लोगों को अचानक मालूम हुआ
नागरिक कितना निहत्था है
और कस्बे में भले आदमी की तरह रहना
अपराधी की तरह रहने से अधिक दुश्वार है
और अपनी बुनियादी इज़्ज़त को बचाना
एक रोज़ाना की लड़ाई है
और रोज़ाना लड़ना दंडनीय है
एक दरोगा चेक से रिश्वत लेकर मुस्करा रहा था
कि यह उसकी मॉडर्न सेंसिबिलिटी थी
और हम पिटकर भी अपनी जीत मानते थे
यह हमारी मॉडर्न सेंसिबिलिटी थी
अपराधी हमारे पैर पर खड़े होकर पेशाब कर रहे थे
और कवियों ने एक कार्यशाला का आयोजन किया
लौकियों की मोहौब्बत और कद्दू के गीत की गहराइयां

जिनके पास सब कुछ था
वे अपराधी हो चुके थे
जिनके पास बहुत कम था
उन्हें कानून से डरना सिखाया जा रहा था
अस्पतालों में बीमारों की फजीहत थी
सड़कों पर बेकारों को नसीहत
देश के चकलों में फंसी चालीस प्रतिशत स्त्रियां
अठारह साल से कम उम्र की थीं
और मुट्ठी भर लोगों की परचेज़िंग पावर बढ़ाकर
जादूगर हमें लिबर्टी की ओर ले चला
आठ आने की दवा अस्सी रुपये में मिलती थी
और अस्सी करोड़ रुपये एक फोन पर मिल जाते थे
भारतीय संस्कृति की कुछ ख़ास चीज़ें
कुछ ख़ास लोगों में कुछ ख़ास तरीके से बिकती थीं
और पद्मख़ोरों की हरामख़ोरी के लंबे इंतज़ाम थे
दिल्ली में इंडिया एक सेंटर था
जो इंटरनेशनल था
उधर प्रधानमंत्री ने बिल क्लिंटन से हाथ मिलाया
और अचानक हमने सुस्मिता सेन के बारे में जाना
जो पिछले दस सालों में बदहाल देशों से आई सातवीं विश्व सुंदरी थी
जादू इंसान की अक्ल पर क़ादिर था
और मुफ़लिसों के पिछले दरवाज़े से धड़ाधड़ हूरें निकल रही थीं
कि सेक्स और संस्कृति
आर्थिक बदलाव में
स्ट्रक्चरल एडजस्टमेंट का हिस्सा थे
कि सेक्स में सही होना बहुत ज़रूरी था
कि सेक्सी होना
सेक्स में सही होना था
और कितनी बार ऐसा लगता था
कि राजनीति में सही होने का कोई मतलब नहीं रह गया है
और सेक्स में जो विचार है उसको क्या हो जाता है
और इंद्र के किले अगर मजबूत हो गए
तो कामदेव एक भड़ुआ बनकर रह जाएगा

बहुजन के नाम पर लफंगई
और क्रांति के नाम पर दलाली स्थापित संस्थाएं थीं
नौकरशाही में अचानक नायक पैदा होने लगे थे
एक बददिमाग़ और बदज़बान आदमी
जो तिकड़म और कॉलगर्ल चरित्र की वजह से शीर्ष तक पहुंचा था
धीरे-धीरे सारे हिंदुस्तान को कॉलगर्ल बता चुका था

मझोली समझ के मझोले लोगों को लगा यह आया हीरो हमारा
और उन्हें ठीक ही लगा
एक लगभग अनजान युवती की गरदन पकड़कर
उसे प्रधानमंत्री बनाने की कोशिशें हो रही थीं
एक निर्वस्त्र और प्रजापीड़ित राजा
अपनी तिकड़म में मार खाने के बाद
अब सुकरात के समाधिलेख की प्रूफ रीडिंग कर रहा था
ख़ून की अंतिम बूंद तक जनता की सेवा करने का ऐलान
करिश्मा कपूर ने किया

मानव समाज में समझदारी की ऊटपटांग स्थिति थी
कुछ दिन पहले बिना किसी व्यापक दबाव के
पोप ने गैलीलियो से माफी मांगी
और पवित्र पुस्तकों की पुनर्व्याख्या होनी चाहिए ऐसा कहने पर
मुल्लाओं ने एक औरत की मौत का फरमान जारी कर दिया
ब्राज़ील के ख़िलाफ़ जो भी खेलता था
खेल को जेल बनाकर खेलता था
और गालियां ब्राज़ील को पड़ती थीं
जैसे कि दूसरों के खेल में भी सकारात्मक तर्क का प्रवेश
ब्राज़ील की ही जिम्मेदारी थी
मुशायरा मंच के पीछे होने लगा था
और कवियों के चेहरे देखकर लगता था
जैसे मुशायरा लूटने में शाइरी लुटी हो
धीरे-धीरे विचार की जगह ख़बरें ले चुकी थीं
और ख़बरों की जगह विज्ञापन

यह माना जाने लगा था
कि विचार दो घंटे में पुस्तकालय से प्राप्त किए जा सकते हैं
और यह भी माना जाने लगा था
कि उनसे दूर रहना कॉस्ट इफ़ेक्टिव रहेगा
फिर भी दक्षिण अफ्रीका के अधिकांश लोगों ने
गजब का धीरज और समझदारी दिखाई
और दुनिया के तमाम लोगों को निराश कर दिया

सुखों और उम्मीदों से भरी इस वसुंधरा पर फैला समर्थ मानव समाज
जो अन्य प्राणियों पर कब्जा कर चुका था
और जिसे सितारों से कोई ख़ास ख़तरा नहीं था
प्लास्टिक को लेकर चिंतित था
जो पर्यावरण में प्रदूषण
और गरीबों के पैर में चप्पल बनकर आई थी
समेकित संसार में जब संचार ने विश्व को एक गांव बना दिया था
बहुजन अभिजन के लिए प्रदूषण थे
अभिजन बहुजन के लिए
इनका पेट फाड़कर निकला मध्यवर्ग
दोनों के लिए प्रदूषण बन चुका था
और ऐसे में जातक ने सांस ली
उसके माता पिता के पास यह बता पाने की प्रचलित सुविधा नहीं थी
कि रास्ता इधर से है
प्रज्ञा और प्रचुरता के साथ पुरखों से उसे प्रदूषण मिला
उसके हाथों में कुतुबनुमा
पैरों में चप्पलें थीं. ■

● दिनेश कुशवाह ● रेखांकन: रामबली प्रजापति

विजयी कहाए हुए जो

वे आग से डरते थे
डरते थे पानी से
उन्हें घातक लगते थे प्रभंजन
उन्होंने इन्हें देवता कहा
और पालतू बना लिया.

यहां तक कि उन्होंने
अपने कब्जे में ले लिया
सारे तीर्थों का पानी
फिर लगाया कर
आग-हवा-पानी पर
अन्न से लेकर स्त्री धन तक
जिसे दिए बिना आप
नहीं घुस सकते देवताओं की नगरी में.

वे शब्द से डरते थे
उन्होंने उसे ब्रह्म कहकर
अपना बना लिया
और दूसरों की जीभ काटने लगे
यहां तक कि अपने ही भाइयों
के मुंह से छीन लिए शब्द
और बना दिया उन्हें चापलूस परजीवी
दयनीय और घिघिआता हुआ.

वे किताब से डरते थे
उन्होंने किताब को आसमानी बना दिया
ताकि दूसरे
किताब पढ़कर भी ताकें आसमान.

वे कर्म करने वालों से नहीं
फल मांगने वालों से डरते थे
इसलिए अमृत के बंटवारे में
दूसरों को बांटते रहे विष

वे राजा से डरते थे
यानी कि जंगल के शेर से

उन्होंने उसे ईश्वर कहा
और पालतू बना लिया
तब उन्होंने छोड़े
लोगों पर अपने शिकारी कुत्ते
और हुलस-हुलस कर
हंसता रहा राजा.

सिर्फ भगवान से नहीं डरे वे.

हमारा जरूर कुछ-न-कुछ
लगता है भगवान
आज भी मुस्कराकर कहते हैं वे
एक तानाशाह की तरह
भीतर से डरे हुए. ■

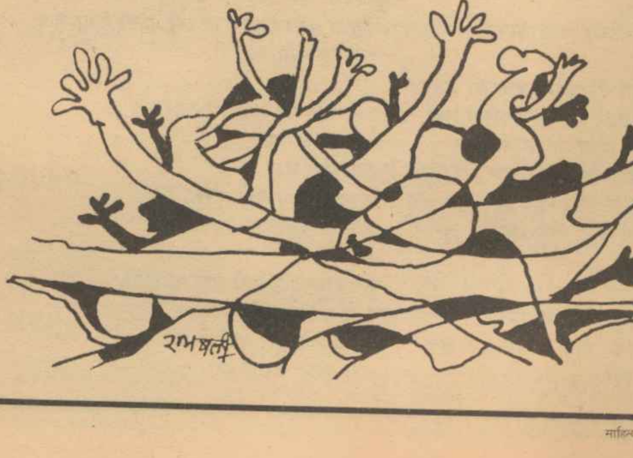

● हरिमोहन ● चित्र: अर्पणा कौर

पानी चाहिए हमें

एक-दूसरे का हाथ थामे
हवा में घूम रहे शब्द
पुकारते:
कोई है? कोई है?

(अजब कंट्रास्ट था
काले थिर अंधेरे में
थरथराता एक पीला फूल!)

पूछा मैंने: चलोगे इस अंधेरे से बाहर?
दुनिया में?
(वह चुप)
बारीक तार के भीतर से घुसकर पहुंच गया
चुंबक पुते तल में.
दिखाई दिया मॉनीटर पर

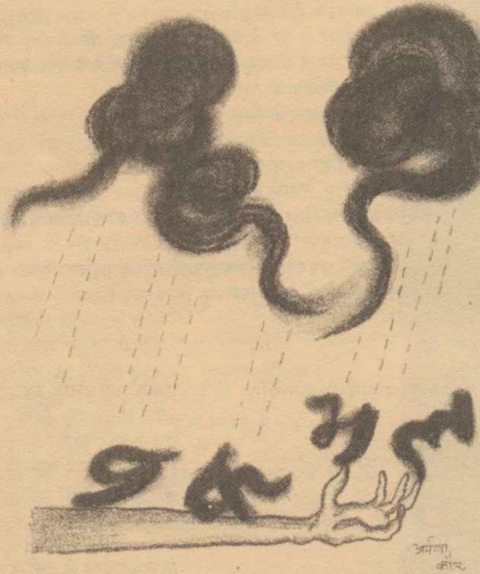

शब्द एक हुआ प्रकट अचानक
बदहवास, घबराया; बोला:
पानी चाहिए हमें: पानी दो.

मैं उतरा अपने भीतर. देर तक टटोलता रहा
पानी. एक बूंद ही सही. पर, मेरे भीतर का
कुआं खाली था.
बाहर आया जब; देखा, शब्द गायब.

आए मेरे एक मित्र वैयाकरण. शब्द तो अमर-
अजर है—अक्षर ब्रह्म. मर नहीं सकता शब्द.
पद-च्युत हो गया होगा. वाक्य से बाहर.
आए पत्रकार. हंसे: यह भी खबर हुई भला!
शब्द? शब्द तो मरते ही रहते हैं दिन-रात.
जैसे आदमी, जैसे फूल, कीड़े-मकोड़े
या जैसे सत्य.

एक दिन यों ही एक किताब पलटते
अचानक किताब के अंधेरे में मिल गया शब्द
छिपा बैठा था डरा.

विज्ञापित मुस्कान में
भरपूर मुस्कराता.
उसकी मुस्कराहट के ठीक पीछे
खड़ी थी उसकी आत्मा दुःखी.
फिर वह दिखा.
मरते आदमी के गले में फंसा घरघराता.
(आदमी और शब्द से बेहतर तो रंग थे!)
पिचका हुआ हकला आदमी. फंसा हुआ शब्द.
चले गए लांग शॉट में.

उसी रात मेरे सपने में उतरा
पैराशूट के सहारे
ठीक वही शब्द.
झिंझोड़ते हुए मुझे बोला:
चलो मैं तैयार हूं. जागो. उठो.
यह जिंदगी,
यह दुनिया ऐसे ही नहीं बदलेगी.

वह अपनी पूरी वर्दी में था.
मेरी क्रीज खराब थी.

तब मैंने जाना
मरा शब्द नहीं
मैं था.

शब्द हो या आदमी
जिन्हें जीना होता है,
वो एक दिन
पा ही लेते हैं पानी. ■

● शहंशाह आलम

कुम्हार अकेला शख़्स होता है

जब तक एक भी कुम्हार है
इस पूरी पृथ्वी पर
और मिट्टी आकार ले रही है
समझो कि मंगल कामनाएं की जा रही हैं

कित्ता अच्छा लगता है
जबकि मंगल कामनाएं की जा रही हैं
और इस बदमिज़ाज व खुर्रा औरत-सी
सदी में भी
कुम्हार काम भर मिट्टी ला रहा है

कुम्हार जिस समय बीड़ी पीता है
बीवी उसकी आग तैयार करती है
इतिहासकार इतिहास के बारे में
चिंतित होते हैं
श्रेष्ठजन अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने में
भिड़े होते हैं
अंधकार चीरने हेतु अपने को तैयार करता है
कवि

कुम्हार अकेला शख़्स होता है
जो पैदल पुलिस के साथ शिकारी कुत्तों की
भीड़ देखकर न तो बौखलाता है
न ही उत्तेजित होता है

हालांकि उसको पता है
उसके बनाए बर्तन, खिलौने, कैमरामैन
पुरुष-समूह, अंतरिक्ष यात्री
अबाबीलें व दूसरी चिड़ियां
सब सब
मौक़े की तलाश में हैं
किसी अन्य ग्रह पर चले जाने के लिए

कुम्हार अकेला शख़्स होता है
जो नेपथ्य में बैठी उद्घोषिका से कहता है
हम मिट्टी से और मिट्टी ही के रंग वाली
पृथ्वी से प्रेम करते रहेंगे. ■

आइए!
वर्ष का भव्य आयोजन–
द्वीप पर्यटन महोत्सव-95
(16 से 25 फरवरी)
देखने के लिए पधारिए.

आगामी फरवरी को मनमोहक भारतीय नृत्य, पेशेवर लोगों द्वारा जादूई शो, कठपुतलियों के तमाशे तथा स्थानीय प्रतिभाओं सहित भारत के विभिन्न भागों से आए कलाकारों का गायन इस द्वीप समूह के विशेष आकर्षण होंगे.

और इसके साथ ही
इस द्वीप समूह के असाधारण सौंदर्य
वंडूर में ताड़ के पेड़ों से घिरे
रेतीले समुद्र तट पर अनूठे सूर्यास्त
दुस्साहसी जल क्रीड़ाओं तथा सुरक्षित जल क्रीड़ाओं
के अतिरिक्त
द्वीप समूह की सच्ची धर्मनिरपेक्षता का एहसास करें.

राज्य पर्यटन विभागों, पर्यटन निगमों,
टूर ऑपरेटरों,
ट्रेवल एजेंटों और विभिन्न संगठनों का स्वागत है.

सूचना, प्रचार एवं पर्यटन निदेशालय
अंडमान-निकोबार प्रशासन
पोर्ट ब्लेअर
फोन : (091 3192) 20933, 20694
फैक्स : (091 3192) 20933, 20656

Come One Come All
Watch the Spectacular
Event of the Year
Island Tourism Festival, 95
(16th to 25th Feb.)

Come February, Islands will be Witnessing Great Attractions of Dances of India, Magic Show by Professionals, Master Puppeteers, Renowned Singers from Mainland, & Local Talents

And also feel
the Rare Beauty of these Islands
Unique Sunset at Wandoor
Palm Fringed Sandy Beaches
Adventure Water Sports and Safe Water Sports
And
True Secular Colour of these Islands

State Tourism Departments, Tourism Corporations, Tour Operators, Travel Agents and Individual Organisations are Welcome.

Directorate of Information, Publicity & Tourism.
Andaman & Nicobar Administration, Port Blair
Telephone: (091 3192) 20933/20694
Fax: (091 3192) 20933/20656

• गुलज़ार • रेखाचित्रः अमिताभ दास

खिलौने

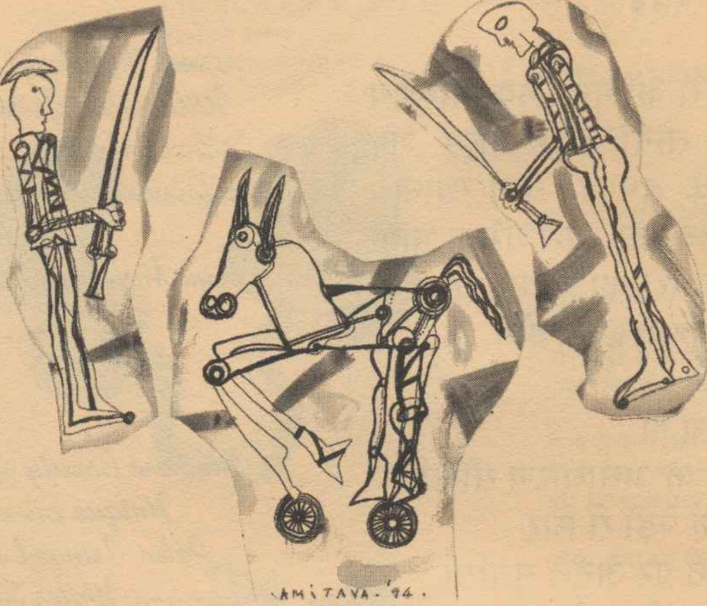

मनू अकसर यही सब पूछती है दाई मां से, "मां—
खिलौने भी बड़े होते, उन्हें भी उम्र लग जाती—तो क्या होता?"
बिना दांतों की दाई मां, मगर हंसती हैं अपने पोपले मुंह से,
"कई लगंड़ा के चलते घर में, और टुंटे सिपाही पहरा देते
धज्जी धज्जी वर्दियां पहने,
तुम्हे क्या याद है गुस्से में कैसे सब खिलौने तोड़ देती थी,
तुम्हारे बैंड वालों के फटे पंजर कहां रखते?"

मनू फिर पूछती, "दय्या, ये मेरे शेर भालू इनका क्या होता?"
"ये खा जाते हमें या हम इन्हें पिंजरों में बंद रखते"
"अगर ये भाग जाते जंगलों में तो?"
"वहां जाकर भी उनसे खेलते चढ़कर मचानों पर
हम उनकी गरदनें भरवा के दीवारों पे टंगवाते!"
"मेरी इन भोलीभाली दुलहनों, गुड़ियों और उनकी डोलियों का,
और कहारों का तो कुछ होता—?"

मुंदी आंखों में दाई अंगुलियों से देर तक सपने मसलती है
"कहां तक डोलियों के रेशमी पर्दों में रहती दुलहनें मन्नू?
कहारों ने तो आधे रास्ते में छोड़ दी थीं डोलियां उनकी
उन्हें बाहर निकलना था—
खिलौनों की तरह फिर से कई हाथों गुज़रना था,
बरहना सर भटकना भी था लड़ना भी—"

रुंधी आवाज़ से कहती हैं दाई मां—
"तुम्हें दिखता नहीं क्या, हर तरफ बिखरे हुए सारे खिलौने हैं,
सभी इक दूसरे की जिंदगी से खेलते हैं जिसकी चलती है!"

दि थर्ड वर्ल्ड

जिस बस्ती में आग लगी थी कल की रात,
उस बस्ती में मेरा कोई नहीं रहता था!

औरतें बच्चे, मर्द कई, और उम्र रसीदा लोग सभी, वो,
जिन के सर पे जलते हुए शहतीर गिरे.
उनमें मेरा कोई नहीं था!
स्कूल जो कच्चा पक्का था, और बनते बनते ख़ाक हुआ,
जिसके मलबे में वो सब कुछ दफ़न हुआ, जो उस बस्ती का
मुस्तक़बिल कहलाता था,
उस स्कूल में—
मेरे घर से कोई कभी पढ़ने न गया, न अब जाता था,
न मेरी दुकान थी कोई —
न मेरा सामान कहीं!

दूर ही दूर से देख रहा था,
कैसे कुछ खुफ़िया हाथों ने जाकर आग लगाई थी, !!

जब से देखा है दिल में ये खौफ़ बसा है,
मेरी बस्ती भी वैसी ही एक तरक्की करती बढ़ती बस्ती है,
और तरक्कीयाफ़्ता कुछ लोगों को ऐसी कोई बात पसंद नहीं!! ■

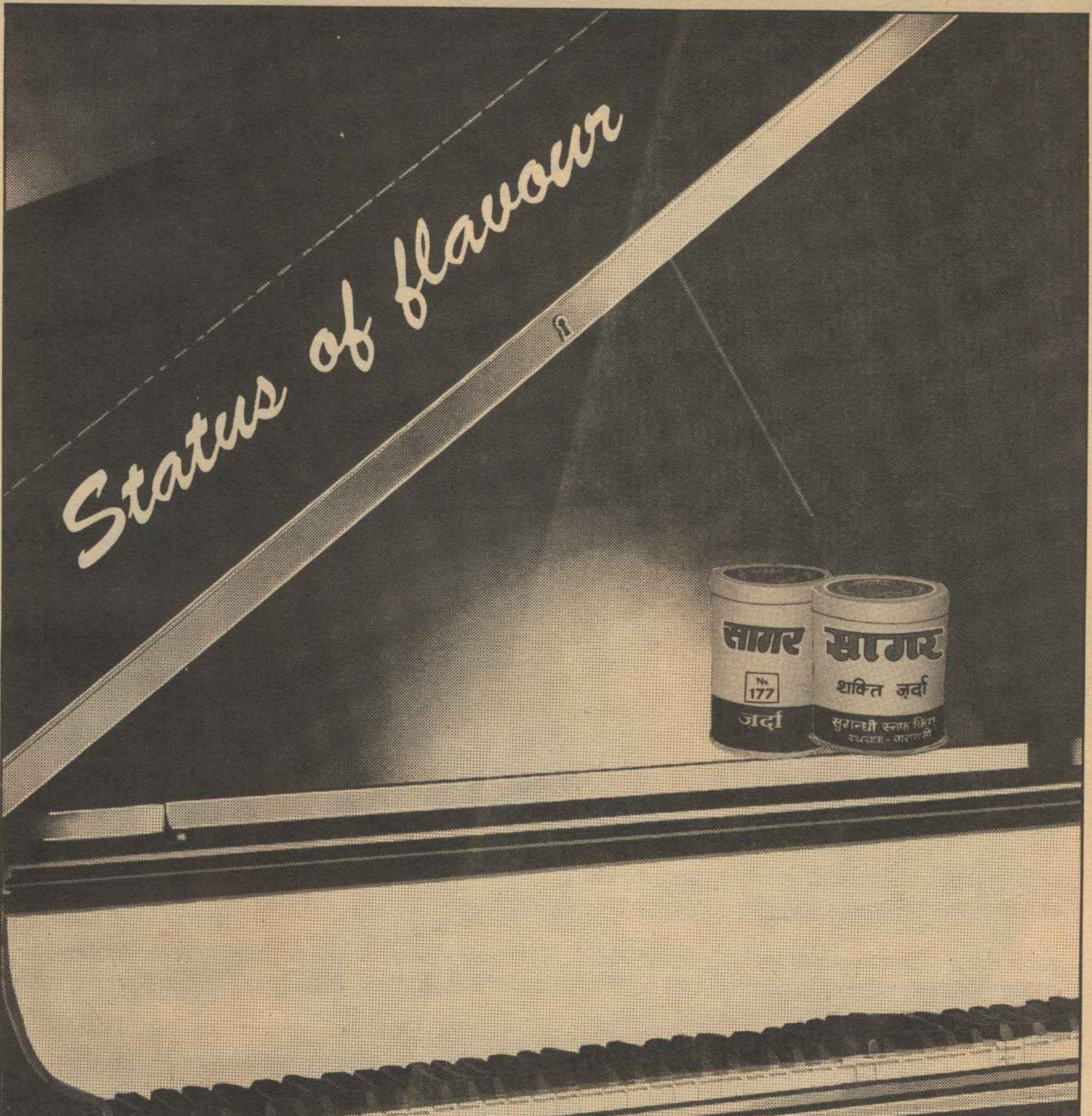
Status of flavour
सागर
No. 177
ज़र्दा
सागर
शक्ति ज़र्दा
सुगन्धी स्नफ किंग
रथयात्रा - वाराणसी
Manufactured by
SUGANDHI SNUFF KING
S.A. 15/147 Mawaiya-Ashapur
Varanasi
Statutory Warning : Tobacco chewing is injurious to health.

Kapooria

● **हरिमोहन** ● चित्रः अर्पणा कौर

पानी चाहिए हमें

एक-दूसरे का हाथ थामे
हवा में घूम रहे शब्द
पुकारतेः
कोई है? कोई है?

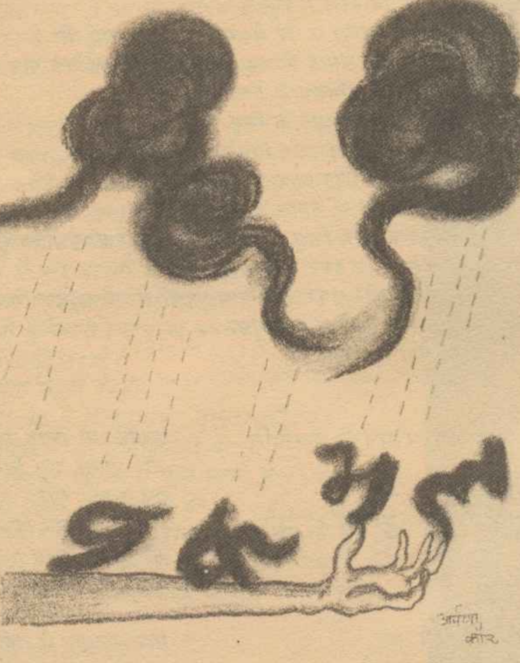

शब्द एक हुआ प्रकट अचानक
बदहवास, घबराया; बोलाः
पानी चाहिए हमें: पानी दो.

मैं उतरा अपने भीतर. देर तक टटोलता रहा
पानी. एक बूंद ही सही. पर, मेरे भीतर का
कुआं खाली था.
बाहर आया जब; देखा, शब्द गायब.

आए मेरे एक मित्र वैयाकरण. शब्द तो अमर-
अजर है—अक्षर ब्रह्म. मर नहीं सकता शब्द.
पद-च्युत हो गया होगा. वाक्य से बाहर.
आए पत्रकार. हंसेः यह भी खबर हुई भला!
शब्द? शब्द तो मरते ही रहते हैं दिन-रात.
जैसे आदमी, जैसे फूल, कीड़े-मकोड़े
या जैसे सत्य.

एक दिन यों ही एक किताब पलटते
अचानक किताब के अंधेरे में मिल गया शब्द
छिपा बैठा था डरा.

(अजब कंट्रास्ट था
काले थिर अंधेरे में
थरथराता एक पीला फूल!)

पूछा मैंने: चलोगे इस अंधेरे से बाहर?
दुनिया में?
(वह चुप)
बारीक तार के भीतर से घुसकर पहुंच गया
चुंबक पुते तल में.
दिखाई दिया मॉनीटर पर

विज्ञापित मुस्कान में
भरपूर मुस्कराता.
उसकी मुस्कराहट के ठीक पीछे
खड़ी थी उसकी आत्मा दुःखी.
फिर वह दिखा.
मरते आदमी के गले में फंसा घरघराता.
(आदमी और शब्द से बेहतर तो रंग थे!)
पिचका हुआ हकला आदमी. फंसा हुआ शब्द.
चले गए लांग शॉट में.

उसी रात मेरे सपने में उतरा
पैराशूट के सहारे
ठीक वही शब्द.
झिंझोड़ते हुए मुझे बोलाः
चलो मैं तैयार हूं. जागो. उठो.
यह जिंदगी,
यह दुनिया ऐसे ही नहीं बदलेगी.

वह अपनी पूरी वर्दी में था.
मेरी क्रीज खराब थी.

तब मैंने जाना
मरा शब्द नहीं
मैं था.

शब्द हो या आदमी
जिन्हें जीना होता है,
वो एक दिन
पा ही लेते हैं पानी. ■

● **शहंशाह आलम**

कुम्हार अकेला शख़्स होता है

जब तक एक भी कुम्हार है
इस पूरी पृथ्वी पर
और मिट्टी आकार ले रही है
समझो कि मंगल कामनाएं की जा रही हैं

कित्ता अच्छा लगता है
जबकि मंगल कामनाएं की जा रही हैं
और इस बदमिज़ाज व खुर्रा औरत-सी
सदी में भी
कुम्हार काम भर मिट्टी ला रहा है

कुम्हार जिस समय बीड़ी पीता है
बीवी उसकी आग तैयार करती है
इतिहासकार इतिहास के बारे में
चिंतित होते हैं
श्रेष्ठजन अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने में
भिड़े होते हैं
अंधकार चीरने हेतु अपने को तैयार करता है
कवि

कुम्हार अकेला शख़्स होता है
जो पैदल पुलिस के साथ शिकारी कुत्तों की
भीड़ देखकर न तो बौखलाता है
न ही उत्तेजित होता है

हालांकि उसको पता है
उसके बनाए बर्तन, खिलौने, कैमरामैन
पुरुष-समूह, अंतरिक्ष यात्री
अबाबीलें व दूसरी चिड़ियां
सब सब
मौक़े की तलाश में हैं
किसी अन्य ग्रह पर चले जाने के लिए

कुम्हार अकेला शख़्स होता है
जो नेपथ्य में बैठी उद्घोषिका से कहता है
हम मिट्टी से और मिट्टी ही के रंग वाली
पृथ्वी से प्रेम करते रहेंगे. ■

आइए!
वर्ष का भव्य आयोजन—
द्वीप पर्यटन महोत्सव-95
(16 से 25 फरवरी)
देखने के लिए पधारिए.

आगामी फरवरी को मनमोहक भारतीय नृत्य, पेशेवर लोगों द्वारा जादूई शो, कठपुतलियों के तमाशे तथा स्थानीय प्रतिभाओं सहित भारत के विभिन्न भागों से आए कलाकारों का गायन इस द्वीप समूह के विशेष आकर्षण होंगे.

और इसके साथ ही
इस द्वीप समूह के असाधारण सौंदर्य
वंडूर में ताड़ के पेड़ों से घिरे
रेतीले समुद्र तट पर अनूठे सूर्यास्त
दुस्साहसी जल क्रीड़ाओं तथा सुरक्षित जल क्रीड़ाओं
के अतिरिक्त
द्वीप समूह की सच्ची धर्मनिरपेक्षता का एहसास करें.

राज्य पर्यटन विभागों, पर्यटन निगमों,
टूर ऑपरेटरों,
ट्रेवल एजेंटों और विभिन्न संगठनों का स्वागत है.

सूचना, प्रचार एवं पर्यटन निदेशालय
अंडमान-निकोबार प्रशासन
पोर्ट ब्लेअर
फोन : (091 3192) 20933, 20694
फैक्स : (091 3192) 20933, 20656

Come One Come All
Watch the Spectacular
Event of the Year
Island Tourism Festival, 95
(16th to 25th Feb.)

Come February, Islands will be Witnessing Great Attractions of Dances of India, Magic Show by Professionals, Master Puppeteers, Renowned Singers from Mainland, & Local Talents

And also feel
the Rare Beauty of these Islands
Unique Sunset at Wandoor
Palm Fringed Sandy Beaches
Adventure Water Sports and Safe Water Sports
And
True Secular Colour of these Islands

State Tourism Departments, Tourism Corporations, Tour Operators, Travel Agents and Individual Organisations are Welcome.

Directorate of Information, Publicity & Tourism.
Andaman & Nicobar Administration, Port Blair
Telephone: (091 3192) 20933/20694
Fax: (091 3192) 20933/20656

● गुलज़ार ● रेखाचित्रः अमिताभ दास

खिलौने

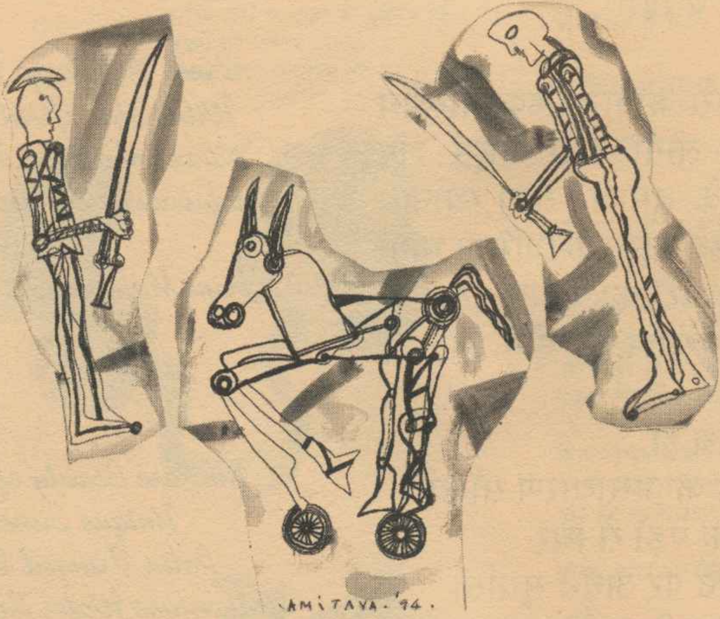

मनू अकसर यही सब पूछती है दाई मां से, "मां—
खिलौने भी बड़े होते, उन्हें भी उम्र लग जाती—तो क्या होता?"
बिना दांतों की दाई मां, मगर हंसती हैं अपने पोपले मुंह से,
"कई लगंड़ा के चलते घर में, और टुंटे सिपाही पहरा देते
धज्जी धज्जी वर्दियां पहने,
तुम्हे क्या याद है गुस्से में कैसे सब खिलौने तोड़ देती थी,
तुम्हारे बैंड वालों के फटे पंजर कहां रखते?"

मनू फिर पूछती, "दय्या, ये मेरे शेर भालू इनका क्या होता?"
"ये खा जाते हमें या हम इन्हें पिंजरों में बंद रखते"
"अगर ये भाग जाते जंगलों में तो?"
"वहां जाकर भी उनसे खेलते चढ़कर मचानों पर
हम उनकी गरदनें भरवा के दीवारों पे टंगवाते!"
"मेरी इन भोलीभाली दुलहनों, गुड़ियों और उनकी डोलियों का,
और कहारों का तो कुछ होता—?"

मुंदी आंखों में दाई अंगुलियों से देर तक सपने मसलती है
"कहां तक डोलियों के रेशमी पर्दों में रहती दुलहनें मन्नू?
कहारों ने तो आधे रास्ते में छोड़ दी थीं डोलियां उनकी
उन्हें बाहर निकलना था—
खिलौनों की तरह फिर से कई हाथों गुज़रना था,
बरहना सर भटकना भी था लड़ना भी—"

रुंधी आवाज़ से कहती हैं दाई मां—
"तुम्हें दिखता नहीं क्या, हर तरफ बिखरे हुए सारे खिलौने हैं,
सभी इक दूसरे की जिंदगी से खेलते हैं जिसकी चलती है!"

दि थर्ड वर्ल्ड

जिस बस्ती में आग लगी थी कल की रात,
उस बस्ती में मेरा कोई नहीं रहता था!

औरतें बच्चे, मर्द कई, और उम्र रसीदा लोग सभी, वो,
जिन के सर पे जलते हुए शहतीर गिरे.
उनमें मेरा कोई नहीं था!
स्कूल जो कच्चा पक्का था, और बनते बनते ख़ाक हुआ,
जिसके मलबे में वो सब कुछ दफ़न हुआ, जो उस बस्ती का
मुस्तक़बिल कहलाता था,
उस स्कूल में—
मेरे घर से कोई कभी पढ़ने न गया, न अब जाता था,
न मेरी दुकान थी कोई —
न मेरा सामान कहीं!

दूर ही दूर से देख रहा था,
कैसे कुछ खुफ़िया हाथों ने जाकर आग लगाई थी, !!

जब से देखा है दिल में ये खौफ़ बसा है,
मेरी बस्ती भी वैसी ही एक तरक्की करती बढ़ती बस्ती है,
और तरक्कीयाफ़्ता कुछ लोगों को ऐसी कोई बात पसंद नहीं!! ■

Status of flavour
सागर
No. 177
ज़र्दा
सागर
शक्ति ज़र्दा
सुगन्धी स्नफ किंग
रथयात्रा - वाराणसी
Manufactured by
SUGANDHI SNUFF KING
S.A. 15/147 Mawaiya-Ashapur
Varanasi
Statutory Warning : Tobacco chewing is injurious to health.

Kapooria

● सूर्यभानु गुप्त
● रेखाचित्रः सुबाचन यादव

पानी

आंखों में पड़े छाले, छालों से बहा पानी.
इस दौर के सहरा में, ढूंढ़े न मिला पानी.

दुनिया ने कसौटी पे, ताउम्र कसा पानी.
बनवास से लौटा तो, शोलों पे चला पानी.

पर्वत के ज़ुबां फूटी, इक शोर उठा पानी,
मंज़र पे बना मंज़र, पानी पे गिरा पानी.

बेआब न थे इतने, हम दौरे-ग़ुलामी में,
बतलाए कोई जोशी, किस देश गया पानी.

बंदे से खुदा बनते, देखा है उन्हें हमने,
जो लोग कराते हैं, पानी से जुदा पानी.

मंदिर हो कि मस्जिद हो, गिरजा हो कि गुरुद्वारा,
आज़ाद रहे जब तक, लगता है भला पानी.

देखा है जिन आंखों ने, इक जलते हुए वन को,
रहता है उन आंखों में, हर वक्त हरा पानी.

जब प्यास अंधेरों के, घर बैठ गई जाके,
जलते हैं दिये जैसे, सहरा में जला पानी.

हर सिम्त मुक़ाबिल थीं बस धूप की तलवारें,
पर आखिरी क़तरे तक, सहरा में लड़ा पानी.

फूलों से लगी लेने, अब काम बमों का भी,
इस दर्जा सियासत की, आंखों का मरा पानी.

सैलाब ने हर घर की, तस्वीर बदल डाली,
रुकने को किसी घर में, पल भर न रुका पानी.

हर लफ्ज का मानी से, रिश्ता है बहुत गहरा,
हमने तो लिखा बादल, और उसने पढ़ा पानी.

तन भी न बचा कोरा, मन भी न बचा कोरा,
इस बार के सावन में, क्या जम के गिरा पानी.

उस पार हर इक युग में, महीवाल का डेरा था,
कच्चा था घड़ा जिसका, काटे न कटा पानी.

सहरा भी अगर आया, प्यासा न गया दर से,
पुरखों के ज़माने का, अफ़साना बना पानी.

बस खून के प्यासे हैं, ये खून के रिश्ते भी,
क्या इनको गरज़ इससे, कब खून हुआ पानी.

घर छोड़ के निकलें तो, निर्वाण मिले हमको,
कब धूप को पहने बिन, बनता है हवा पानी.

इक मोम के चोले में, धागे का सफर दुनिया,
अपने ही गले लग के, रोने की सज़ा पानी.

वीरान हम इतने थे, जंगल न कोई होगा,
इक शाम पहनने को, यादों ने बुना पानी.

हम जब भी मिले उससे, हर बार हुए ताजा,
बहते हुए दरिया का, हर पल है नया पानी.

जन्नत थी मगर हमको, झुक के न उठाना थी,
कंधों पे रहा चेहरा, चेहरे पे रहा पानी.

हर एक सिकंदर का अंजाम यही देखा,
मिट्टी में मिली मिट्टी, पानी में मिला पानी. ■

● हरजीत सिंह

दो ग़ज़लें

एक बड़े दरवाजे में था छोटा सा दरवाजा और
अस्ल हकीकत और थी लेकिन सबका था अंदाजा और

जब तक इसकी दरारों को इस घर के लोग नहीं भरते
तब तक इस घर की दीवारों भुगतेंगी खमियाजा और

मैं तो पहले ही था इतने रंगों से बेचैन बहुत
मेरी बेचैनी देखी तो उसने रंग नवाज़ा और

कितने सारे लोग यहां है अपनी जगह से छिटके हुए
चेहरे और लिबास भी और है हालत और तकाजा और

खुशबू रंग परिंदे पत्ते बेलें दलदल जिसमें थे
उस जंगल से लौट के पाया हमने खुद को ताजा और

(दो)

कागज पे बन चुके हैं इतने पुलों के नक्शे
नदियों पे बिछ न जाएं अब काग़ज़ों के नक्शे

कल एक हादसे में दीवार ढह गई वो
जिस पर टंगे हुए थे आबादियों के नक्शे

नक्शे नहीं बताते कैसे बने इमारत
होते हैं और ही कुछ कारीगरों के नक्शे

वो जंग की बुराई सबको बता रहे थे
यूं सोच में थे उनकी कुछ सरहदों के नक्शे

फिर भी बहुत से शहरी क्यों रोज भटकते हैं
हर मोड़ पर लगे हैं सब रास्तों के नक्शे ■

अपने सभी सपने हमारी विभिन्न योजनाओं के द्वारा पूरा करें

हमारी विभिन्न योजनाएं :

- चार वर्ष दस माह में धन दो गुना योजना
- बिटिया की शादी हेतु योजना
- वाहन फाइनेन्स योजना
- दैनिक बचत योजना
- हाउसिंग फाइनेन्स योजना
- आवर्ती जमा योजना
- शिशु कल्याणकारी योजना
- ट्रिपल प्लस योजना

हमारे अन्य क्रियाकलाप :

- हाउसिंग्स
- मास कम्युनिकेसन
- ओवरसीज
- निष्पक्ष अमरदीप सप्ताहिकपत्र

कृषि एक्सपोर्ट कमर्शियल कार्पोरेशन लि०

रजि० एवं प्रधान कार्यालय

डी. ६४/४७-१ ए, माँ राजेश्वरी नगर, (सिगरा-महमूरगंज मार्ग) वाराणसी-२२१०१०

कार्यालय फोन : वाराणसी : ३६१८५४, ३६०६५० ● फैक्स : ०५४२-३६०६५० ● दिल्ली : २४३१०५१ ● बम्बई : ६११७५४३
● लखनऊ : २४७८७६ ● पटना : ३५४८६१ ● कानपुर : ३१७३८२ ● झाँसी : ४४४८३८

हमारी शाखाएं : उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान एवं दिल्ली

Kapooria

● ज़हीर कुरेशी ● रेखाचित्र: अज़ामिल

(एक)

पीठ पीछे से हुए वार से डर लगता है,
मुझको हर दोस्त से, हर यार से डर लगता है.

चाहे पत्नी करे या प्रेमिका अथवा गणिका,
प्यार की शैली में, व्यापार से डर लगता है.

अपने कानून की रक्षा नहीं पर पाई जो,
मूक दर्शक बनी सरकार से डर लगता है.

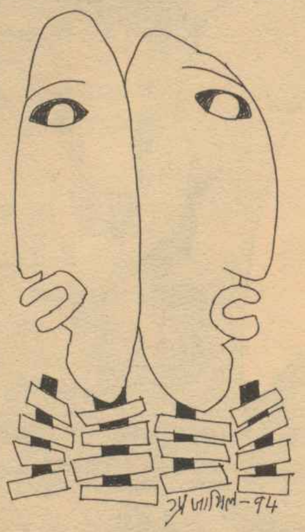

इस महानगरी में करना पड़े कब और कहां,
व्यस्तताओं भरे अभिसार से डर लगता है.

कोई तलवार कभी काट न पाई जिसको,
वक्त की नदिया की उस धार से डर लगता है.

एक झटके में चुका दे जो समूची कीमत,
रूप को ऐसे खरीदार से डर लगता है.

हम चमत्कारों में विश्वास तो करते हैं, मगर,
हम गरीबों को चमत्कार से डर लगता है.

(दो)

घर से निकले सुबह, शाम को घर लौटे,
मीठी-मीठी थकन लिये अक्सर लौटे.

जब भी लोगों को थोड़ा एकांत मिला,
सबके मन में अपने-अपने डर लौटे.

दंगों में इतना झुलसा घर का चेहरा,
हम अपनी ही देहरी तक आ कर, लौटे.

पंख कटे पंछी की आहत आंखों में,
जाने कितनी बार, समूचे 'पर' लौटे.

सोच रहा है बूढ़ा और अशक्त पिता—
बेटे के स्वर में शायद आदर लौटे!

शब्द बेचने में क्या पूंजी लगनी थी,
अर्थ लिये, शब्दों के सौदागर लौटे.

हमने जैसे कंकर-पत्थर बोए थे,
धरती से वैसे कंकर-पत्थर लौटे. ■

● महेश अनध ● रेखाचित्र: विज्ञान व्रत

अगर दीवार हट जाए तो ऐसे सायबां होंगे.
बिना छत के घरों में खूबसूरत आसमां होंगे.

नहीं हो नाम सड़कों का न तख्ती हो मकानों पर
नहीं हों कौम के चर्चे न झगड़े खामखां होंगे.

जरा सी बात है परचम नहीं हो भीड़ के आगे
जिन्हें हम काफिले कहते हैं कल के कारवां होंगे.

यहां तो जंग होनी है सियासत की शराफत से
मुझे यह फिक्र है अब प्यार के किस्से कहां होंगे.

सदी से पूछती है ये कि किताबों से लदी पीढ़ी
कहीं दो-ढाई आखर हैं जो हम पर मेहरबां होंगे

इन्हें पानी हवा की धूप की तासीर समझा दो
अभी जो फूल हैं वे कल यहां के बागवां होंगे.

कभी हम पत्र लिखते थे इन्हीं सूखे गुलाबों से
इन्हें छूकर हमारे आपके बच्चे जवां होंगे.

जरा-सा सर झुका कर हम जरूरतमंद को बांटें
मुझे पूरा यकीं है शायरी के कद्रदां होंगे. ■

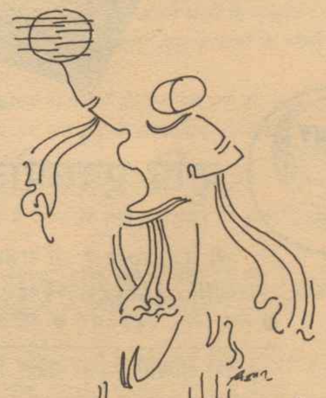

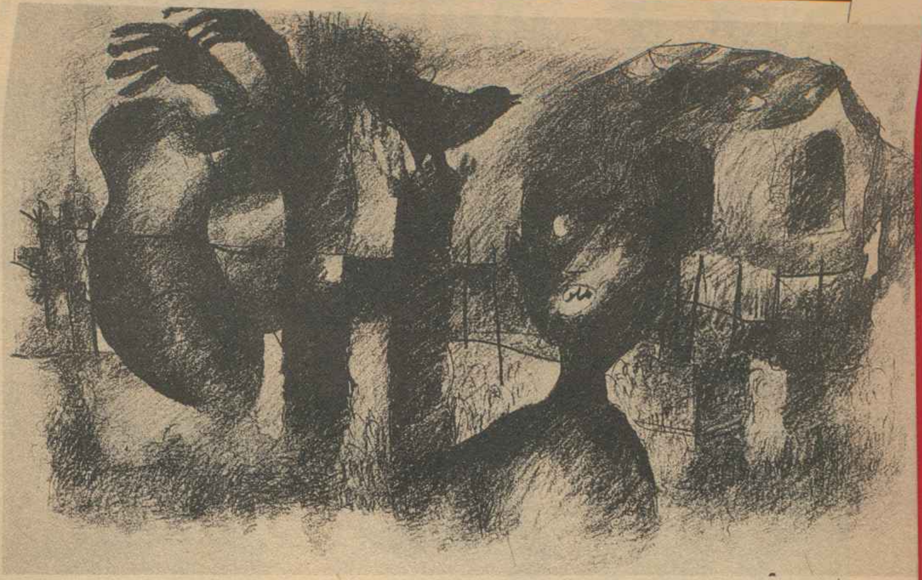

● ज्ञानप्रकाश विवेक
● रेखाचित्रः सुबाचन यादव

दो ग़ज़लें

सारी बस्ती ने उसे हुक्मे-खुदा माना था
वो जो सुलतान का लिक्खा हुआ परवाना था

दे गया तोड़ के पर अपने परिंदा मुझको,
मैं समझता हूं ये उसका कोई नज़राना था

ये तो मैं था कि उसे दावतें देकर आया
दर्द को यूं भी दबे-पांव चले आना था

जिंदगी नाम है जिसका वो असल में खुद को
सांप-सीढ़ी के किसी खेल में उलझाना था

वो दीया था तो लड़ाई थी हवा से उसकी
वो था जुगनू तो उसे धूप में जल जाना था

जाने वाला कभी वापिस नहीं आया यारो!
उस इमारत में यकीनन कोई तहखाना था

तंग जूतों को पहनने की सज़ा दी उसने
और ये हुक्म कि हर चोट पर मुस्काना था

(दो)

हम इस तरह तेरे बारूदघर में रहते हैं
कि जैसे डर के भिखारी शहर में रहते हैं

वो जिनके पास हैं अपने मकान क्या जानें—
भटकने वाले हमेशा सफर में रहते हैं

ये बात मुझको बताई थी एक चिड़िया ने-
कुछ आसमान परिंदों के पर में रहते हैं

वो मातबर नहीं लेकिन अमीरज़ादा है—
तमाम लोग अब उसके असर में रहते हैं

सुना है जीस्त का वो फलसफ़ा सिखाएंगे—
जो खुद मिठास की तरह ज़हर में रहते हैं

हमारे सीने में आतिश है हू-ब-हू वैसी—
कि जैसे आग के चेहरे शरर में रहते हैं ■

● एहतराम इस्लाम

सच को सच कहता तो कौन?

ग़ैज़ का सूरज था सर पर, सच को सच कहता तो कौन.
दश्त हो जाता समुंदर, सच को सच कहता तो कौन.

सबने पढ़ रक्खा था, सच की जीत होती है मगर,
था भरोसा किसको सच पर, सच को सच कहता तो कौन.

विष रहा प्यासा का प्यासा, बांझ ही ठहरी सलीब,
कोई ईसा था न शंकर, सचत को सच कहता तो कौन.

आदमी तो खैर से, बस्ती में मिलते ही न थे,
देवता थे सो थे पत्थर, सच को सच कहता तो कौन.

उम्र सोने का निवाला हो, कि लोहे का चना,
फ़ैसला छूटा था खुद पर, सच को सच कहता तो कौन.

जब हक़ीक़त में उभरता सच भी सच लगता न था,
ख्वाब में होते उजागर सच को सच कहता तो कौन.

याद था सुकरात का किस्सा सभी को 'एहतराम',
सोचिए ऐसे में बढ़कर सच को सच कहता तो कौन.

■

आज के आधुनिक कार्यालयों की छाप

पर्मा स्टाम्प - अपनी छाप जमाने का अत्याधुनिक तरीका... सर्वोत्कृष्ट टैक्नोलाजी को अपनाकर छोटी साइज में, बिना पैडवाली स्याही मोहर जिसने सदियों पुराने रबर मोहरों की जगह लेकर सारी दुनियाँ में तहलका मचा दिया है।

पर्मा स्टाम्प के बनाने में *आयातित सर्वश्रेष्ठ गुणतावाली स्याही, माइक्रो-पोरस रेसिन* पर इस्तेमाल की जाती है। इसकी छाप बिलकुल मुद्रणाक्षर-सी *लगती है,* हर बार इसकी *छोटी साइज अक्षरमाला की अनगिनत शैलियाँ, जटिल* डिजाइनें *और विभिन्न रंगों के चयन की सुविधा* (काला, लाल, नीला, बैंगनी, गुलाबी और नारंगी) ने सभी कार्यालयों को इसे लाज़िमी बना दिया है।

इसके अलावा, *सभी भाषाओं में उपलब्धता तथा हज़ारों बार एक-समान ठप्पा लगाने की क्षमता* ने **पर्मा स्टाम्प** को नई पीढ़ी की मोहर बना दी है। **पर्मा स्टाम्प** आधुनिक कार्यालय की शान है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

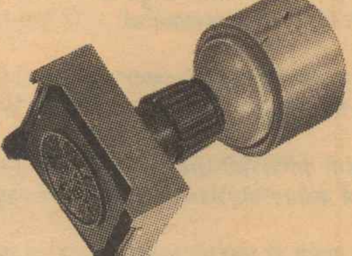

PERMA STAMP

आज के प्रबन्धक पर्मा स्टाम्प द्वारा अपनी छाप जमाते हैं।

For more details Call/Write to any of the addresses given below: SHYAM PRINTING & MARKING, 125, G.N. Chetty Road, T. Nagar, Madras 600 017. Ph: 8272432/8277862. *Distributors:* **BOMBAY:** Akshaya Enterprises, Santacruz, Ph: 6481935, Jalraav Enterprises, Dadar, Ph: 4222087. Mayur Stationery Stores, Fort, Ph: 2655667. Omega Enterprises, Govandi, Ph: 5569880. Pee Vee Enterprises, Thane, Ph: 5345817. Sri Ram Distributors, Turbine, Ph: 7686283. Sai Enterprises, Mulund, Ph: 5645762. Vel Enterprises, Chembur, Ph: 5510119. X-Sell Marketing & Avertising, Matunga, Ph:4302280. City Link Marketing, Lower Parel, Ph: 8622576. Rei Forms, Bandra, Ph: 6450297. The Professional Marketing Co, Ph: 5782720. Poonam Printers & Stationer, Ph: 2872833. Himgiri International, Ph: 6151289. **GOA:** INNOVATIVE MARKETING, Ph: 220396. ULHASNAGAR: Neelraj Fancy Stores, Ph: 546869. Parbhani, Needs Agencies, Ph: 3644. **PUNE:** Adhunk Enterprises, Ph: 333978. Kay Square Consultants, Ph: 327501. M S Enterprises, Ph: 369521. San Communications, Ph: 346471. Sapre Brothers, Ph: 453376. Pioneer Agritechnoscan Export Pvt. Ltd, Ph: 327684. Charudatta Papers, Ph: 670367. **GUJARAT:** AHMEDABAD: Sino Sales & Marketing, Ph: 313733. Alliance Traders, Ph: 356093. NAVSARI: D D Marketing, Ph: 56373. **SURAT:** Suja Collections, Ph: 625425. Tacit Communications, Ph: 687222. **BARODA:** Convenient Business Services, Ph: 332379. Shah Associates, Ph: 555134. SILVASSA: Real Deal, Ph: 2183. **NAGPUR:** Shreelaxmi Agency, Ph: 41494. Shree Marketing, Ph: 529221. KOLHAPUR: Atech Marketing, Ph: 20656. **MADHYA PRADESH:** JABALPUR: Jay Kay Enterprises, Ph: 310423. GWALIOR: Task Force, Ph: 323535. INFORE: Mehar Enterprises, Ph: 444085. Docodeal, Ph: 530345. BHOPAL: Swati Enterprises, Ph: 563200, Chhaya Enterprises, Ph: 554746. Electronic Dara Products, Ph: 511910. RAIPUR: Tarang Marketing, Ph: 427252. A G Enterprises, Ph: 510158. KORBA: Sangeet Lubes, Ph: 21978. **DELHI:** Rambo Trading Co, Ph: 5703962. Ark Enterprises, Ph: 7525976. Archana Enterprises, Ph: 5526963. Anant Enterprises, Ph: 2243580. S R Bhasin & Sons, Ph: 4638448. Sai Enterprises, Ph: 4635593. J K Business Services, Ph: 3275348. B C Enterprises, Ph: 5700134. Gagan Sales Corporation, Ph: 5700415. Innovative Tours, Ph: 5417573. Ideal Enterprises, Ph: 730827. Nuvac Capricorn Associates, Ph: 5732056. Office Automation Int, Ph: 5701534. Vandana Traders, Ph: 311362. Rajendra Marketing, Ph: 5434653. New Eara Business System, Ph: 6439977. Graphics Systems Pvt Ltd, Ph: 5707082. Automation Network, Ph: 5467492. **CHANDIGAR:** Flame Agencies, Ph: 44441. Graphics Systems P Ltd, Ph: 603861 (PP). Impact Marketing, Ph: 600573. JAIPUR: Universl Marketing, Ph: 368721. UDAIPUR: M M Agencies, Ph: 23938. **UTTAR PRADESH:** FARIDABAD: Malik Enterprises, Ph: 276313. AGRA: Cosmos Compu-Tracs Pvt Ltd, Ph: 551625. KANPUR: B N Agarwala & Co, Ph: 212139. Shariq Classics Investments, Ph: 251497. Occassions Stationery & Card Shop, Ph: 219468. LUCKNOW: Virendera Distributors, Ph: 232887. Search Marketing, Ph: 232774, Graphic Systems Pvt Ltd. Ph: 64141. VARANASI: Modern Enterprises, Ph: 52470. ALLAHABAD: Pannalal Agarwal & Sons, Ph: 54619. **HARAYANA:** PANIPAT: Shuv Enterprises, Ph: 88206. AMBALA CANTT: Shivam Traders, Ph: 23933, **PUNJAB:** KAITHAL: Sukirti Printers, Ph: 23318, YAMUNA NAGAR: Cornell Business Centre, Ph: 30314. LUDHIANA: Mehra & Co, Ph: 22912. **JAMMU:** Sethi Arms & Co. Ph: 530572. **KASHMIR:** SRINAGAR: Elysian Enterprises, Ph: 62793. **HIMACHAL PRADESH:** Priyadharshini Innovative & Advance Products, Ph: 5749. SHIMLA: Gupta Electricals, Ph: 203378. WEST BENGAL: **CALCUTTA:** Bee Gee Enterprises, Ph: 5524270. Mohan Merchandise, Ph: 2208290. Passand Marketing, Ph: 2207589. Adhiraj Enterprises, Ph: 299245. Elektrotechnik, Ph: 6140. Norton's International, Ph: 2205534. Mitcom Industries, Ph: 3501601. **ASSAM:** GUWAHATI: Merlin Joints, Ph: 543590. IMPHAL: Friends Agencies, Ph: 222710. **MIZORAM:** AIZAWL: V Neihkunga & Brothers, Ph: 2416, SILCHAR: Excel World, Ph: 20062. **ORISSA:** BHUBANESWAR: Multichannel Marketing, Ph: 402525. CUTTACK: Modern Xerox Centre, Ph: 20241. ROURKELA: Adman's Advertising Agency, Ph: 2177. **BIHAR:** BOKARO STEEL CITY: Praveen Enterprises, Ph: 40763. RANCHI: Rekha Sales Corporation, Ph: 314355. JAMSHEDPUR: Harsukhrai & Company Stationeries Unlimited, Ph: 24561. **MEGHALAYA:** SHILLONG: Intermix Marketing & Consultants, Ph: 225548.

व्यापार-सम्बन्धी विवरणों के लिए उपर्युक्त विक्रेताओं से सम्पर्क करें।

सिनेमा

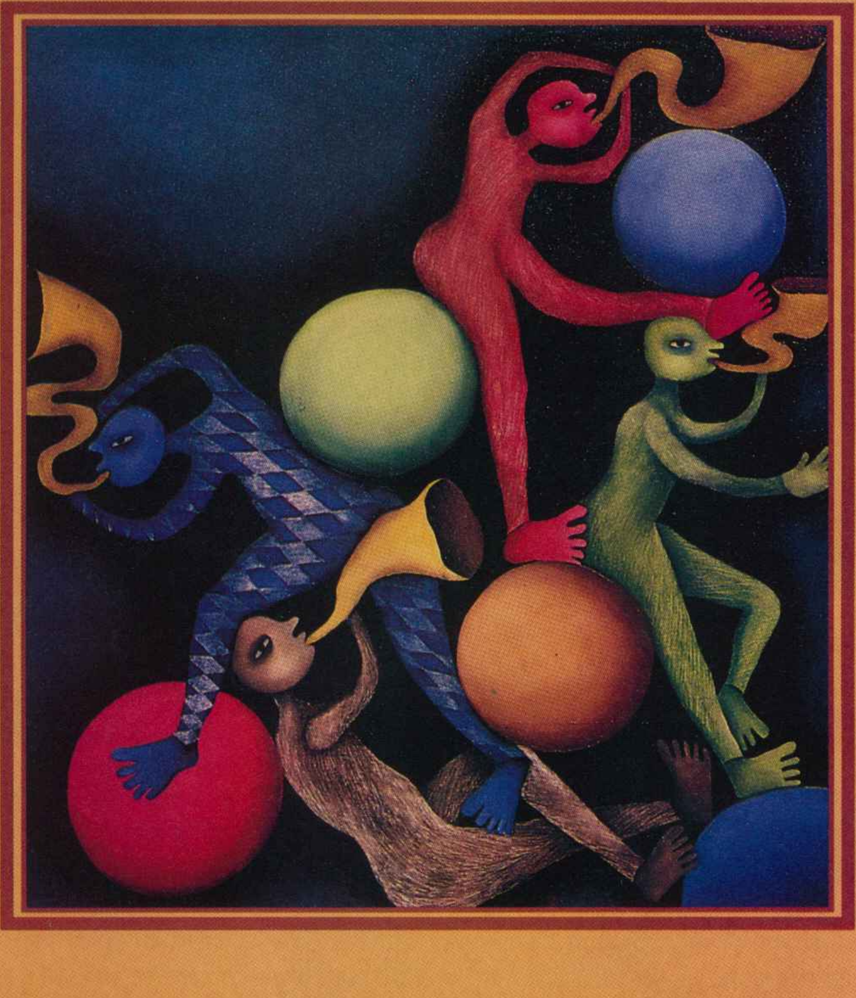

शम्मी कपूर से अंतरंग बातचीत
संवाद लेखन: संवाद- हीनता क्यों है?

शम्मी कपूर

'ग़म नहीं कि ऐक्टिंग में बहुत सारे शेड्स न दे सका'

हिंदी फिल्मों के नायक प्रधान दौर में एक वक्त वह था जब प्यार के इज़हार का सारा कारोबार जैसे तीन बिंदुओं के गिर्द सिमट कर रह गया था—पांचवें-छटे दशक के, बेकारी से जूझते, भोलेभाले युवाओं के सपनों को रोमांटिक अभिव्यक्ति देने वाले राज कपूर; मुहब्बत की खुशी या उसमें असफलता के दर्द को गुपचुप स्वयं में समेटे रहने वालों के प्रतिनिधि दिलीप कुमार; और थोड़ी छेड़खानी, थोड़े लटके-झटकों के बल पर युवतियों का ध्यान आकर्षित करने को सतत प्रयत्नशीलों के प्रतीक देव आनंद. उन दिनों हर नवोदित नायक इन्हीं की प्रतिकृति नजर आता था. शम्मी कपूर ने उन दायरों में बंद होने से इनकार करते नौजवानों की तूफानी भावनाओं को आंधी की-सी गति दी थी और दिया था यह विश्वास कि हमें दुनिया चाहे जो कहकर पुकारे, दिल की बात सब को सुनाकर रहेंगे. अपने समय के 'द रिबेल स्टार' कहे जाने वाले शम्मी कपूर आज प्रासंगिक हैं, इसलिए कि अभिनय को, मर्दाने नृत्यों को, मनोरंजनपूर्ण भावप्रदर्शन की सीमाओं को जो बेफिक्री उन्होंने दी थी, वह आज या तो व्यायाम जैसे एक-दो-तीन-चार की गिनती में बंधे अंग संचालन में कैद दिखाई दे रही है या फिर अदाओं और अंदाज के दोहराव की उसी दासता में असहाय दिखती है जिससे कभी शम्मी ने उसे मुक्ति दिलाई थी. शम्मी कपूर से **विनोद तिवारी** की अंतरंग बातचीत:

● ***आपको पहली बार इस बात का एहसास कब हुआ था कि आपको अभिनेता ही बनना है?***

मुझे यह एहसास होने से पहले पापा जी (पृथ्वीराज कपूर) को इस बात का अंदाजा हो गया था कि मुझमें ऐक्टिंग के जर्म्स हैं. मैं तब सिर्फ 13 साल का था और पांचवीं क्लास में पढ़ता था. पापा जी का थियेटर चलता था. उन्होंने ड्रामे में मुझे एक रोल दिया जो मैंने बखूबी निभाया और मुझे बड़ी तारीफ भी मिली. लेकिन इनाम यह मिला कि मुझे स्कूल से निकाल दिया गया. हमारे प्रिंसिपल को यह बात बर्दाश्त नहीं थी कि कोई बच्चा थियेटर में काम करे. पापा जी ने मेरे बड़े भाई राज जी (राज कपूर) को भेजा कि खुद मिलकर प्रिंसिपल को समझाएं. वे उनके पास गए तो प्रिंसिपल साहब ने थियेटर के बारे में कुछ गलत बातें कह दीं. राज जी उनके नजरिए से इतने नाराज हुए कि मेरे पास आकर बोले, "शम्मी, उठा अपनी कॉपी-किताब और अभी छोड़ दे यह स्कूल." यह लगन और यह इज्जत थी थियेटर के प्रति हम सबके मन में.

वह स्कूल छोड़ मैं दूसरे स्कूल में भर्ती हुआ. पापा जी के साथ थियेटर करता रहा. कई शहरों में नाटक होते थे हमारे थियेटर के. पर जिस दिन मैंने मैट्रिक पास किया, पापा जी ने जैसे नोटिस दे दी, "फैसला करो कि नाटक करोगे या कॉलेज जाओगे?"

यहां यह बात मैं डेस्टिनी की इंपॉर्टेंस (नियति के महत्व) बताने के लिए कह रहा हूं. पापा जी बी.ए. पास करके बंबई आए थे. उनकी बड़ी इज्जत होती थी पढ़े-लिखे होने के कारण. राज जी कॉलेज गए नहीं थे. मैंने फैसला किया कि मैं आगे पढ़ूंगा. थियेटर छोड़कर मैं कॉलेज में भर्ती हो गया. लेकिन किस्मत चूंकि मुझे कहीं और ले जाना चाहती थी, कॉलेज में मेरा मन नहीं लगा. यहां पूरी आजादी थी, कोई देखने पूछने वाला नहीं था, कोई डिसिप्लिन नहीं था, जिम्मेदारी का कोई एहसास नहीं था. इसी से मुझे लगा कि जहां कोई डिसिप्लिन है ही नहीं, वहां मैं क्या सीख पाऊंगा? बस, मेरा मन उचट गया और मैं थियेटर में लौट आया. यहां लौट आने के बाद इस बात का पूरा एहसास हो गया कि मेरी जड़ें अभिनय में ही हैं.

● ***इस बात का पहला एहसास आपको कब हुआ कि फिल्म अभिनय में आप जरूर सफल हो सकेंगे?***

यह भरोसा तो मुझे अपनी पहली-पहली फिल्म 'जीवन ज्योति' बनने के दिनों में ही हो गया था. यह बात और है कि सचमुच सक्सेस मिली चार-पांच साल की मेहनत और फेलियर के बाद. 'जीवन ज्योति' मुझे 1952 में मिली थी. इसके डायरेक्टर थे महेश कौल, जिन्होंने पापा जी के ड्रामा 'पठान' में मुझे देखकर हीरो लिया था. यह फिल्म मराठी की एक मशहूर बुक पर बेस्ड थी और मेरा रोल बड़ा ही मैच्योर किस्म का था.

फिल्म का हीरो मैरिड है, उसका बच्चा भी है. उसकी बीवी मायके गई हुई है. एक रात वह लौट आई. आकर खाना बनाया, बच्चे और पति को खिलाया फिर घर का काम-धाम निबटा कर साथ सो गई. सुबह किसी ने दरवाजा खटखटाया. पति ने खोला तो देखा, बीवी के गांव से कोई आदमी आया है और यह खबर लाया है कि हीरो की पत्नी की कल मायके में डेथ हो गई है! हीरो ने घर का कोना-कोना छान मारा पर बीवी होती तो मिलती! साथ ही, वह यह मानने को तैयार नहीं था कि कल रात जो कुछ हुआ वह कोई सपना था, किसी तरह का इल्यूजन था.

यह था फिल्मों में मेरा पहला-पहला रोल. इस फिल्म में चांद उस्मानी मेरी हीरोइन थीं. हमने बड़ी मेहनत से इस मुश्किल रोल को अदा किया था और मैं आज भी इसे अपनी अच्छी फिल्मों, अच्छे काम में गिनता हूं. लेकिन बदकिस्मती ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा. फिर भी, 'जीवन ज्योति' का वह रोल अच्छी तरह निभा लेने की वजह से मुझे अपने आप पर भरोसा हो गया था कि मैं फिल्मों में ठीकठाक ऐक्टिंग कर सकता हूं.

● ***शुरू के चार साल के दौर को आप बदकिस्मती का दौर क्यों मानते हैं? शुरू की फिल्में तो बहुत से ऐक्टरों की फ्लॉप हुई हैं.***

दो चीजें थीं जिनसे मेरा दिल बहुत छटपटाया करता था. फिल्म फ्लॉप होने के दुख से कहीं बड़ी तकलीफदेह बातें थीं ये: पहली तो यह कि मेरी अपनी कोई पहचान ही नहीं बन पा रही थी. मैं या तो 'वह, पृथ्वीराज कपूर का बेटा' कहलाता था या फिर, 'अरे, वह राज कपूर

"जैसे म्यूज़िक में रिद्म होती है, वैसे ही मेरी स्टाइल में भी एक रिद्म थी. उसका असली क्रेडिट जाता है नरगिस जी को...

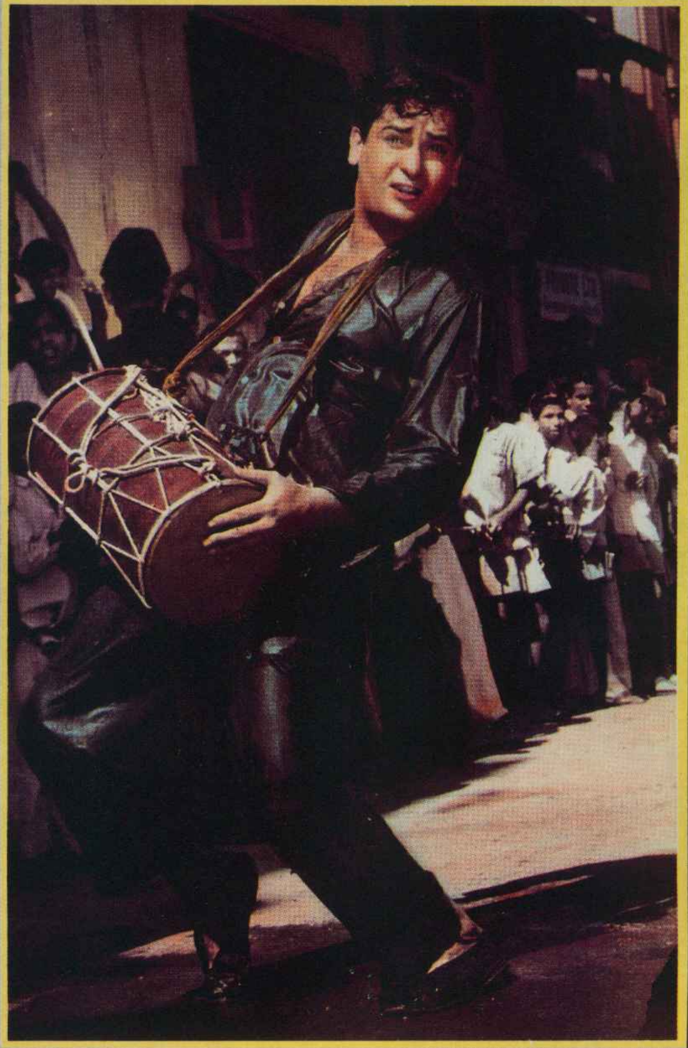

का भाई?' इस तकलीफ में तब एक इजाफा और हो गया जब मैंने इसी दौर में गीता बाली से शादी कर ली. गीता तब स्टार थी इसलिए मेरा एक नाम और पड़ गया, 'गीता बाली का हस्बेंड.'

दूसरी तकलीफ मुझे तब हुई जब मेरी पहली फिल्म—मिली थी 'जीवन ज्योति', पर रिलीज पहले हुई 'रेल का डिब्बा'—का रिव्यू छपा, एक बड़े अखबार के फिल्म क्रिटिक ने लिखा, "शम्मी ऐप्स राज कपूर.' पढ़कर मुझे बड़ा धक्का लगा. अरे, अगर मैं राज कपूर का भाई हूं तो कहीं-न-कहीं राज कपूर जैसा लगूंगा ही! इसका यह मतलब कैसे हो गया कि मैं राज कपूर को कॉपी करता हूं? तभी से मैंने यह सोचना शुरू कर दिया था कि मुझे कुछ-न-कुछ अलग करना ही पड़ेगा.

● ***आपने जब कैरियर शुरू किया, पृथ्वीराज कपूर और राज कपूर दोनों बड़े नाम थे. क्या शम्मी कपूर की नई ऐक्टिंग स्टाइल को इन दोनों के व्यक्तित्व से दबा रह जाने की प्रतिक्रिया स्वरूप पनपा विद्रोह माना जा सकता है?***

उसे विद्रोह तो नहीं कहूंगा मैं. हां, उस छटपटाहट का रिएक्शन जरूर कहूंगा जिसका जिक्र मैं ऊपर कर चुका हूं. मुझे अपनी आइडेंटिटी ढूंढनी थी. राज कपूर का भाई, गीता बाली का हस्बेंड जैसे लेबल अपने ऊपर से उतार फेंकने थे. इसलिए जब 1956 में मुझे 'तुम सा नहीं देखा' मिली तो मैंने सोच लिया, इस बार या तो आर या फिर पार! अपने आपको पूरी तरह बदल डालने के लिए जो कुछ कर सकता था, कर डाला. अब तक मूंछें रखता था, वे मुंडवा दीं. बहुत सारे सजेशन गीता ने भी दिए. इस तरह, बहुत सोच-समझकर तैयारी के बाद डेवलप हुई थी वह नई निराली स्टाइल.

● ***क्या आप लोगों को यह डर नहीं था कि अगर यह स्टाइल न चली तो क्या होगा? तब आप न नए रह जाते, न पुराने रह पाते!***

यह डर था और पूरा था. लेकिन इंसान की जिंदगी में ऐसे मुश्किल मौके आते ही हैं जब उसे कोई फैसला लेकर रिस्क उठाना पड़ता है. जो यह रिस्क नहीं उठा पाता, कहीं पीछे रह जाता है. मैंने भी रिस्क उठाया था जिसका ऊपर वाले की मेहरबानी से अच्छा ही नतीजा निकला. 'तुम सा नहीं देखा' हिट हुई और मेरी एक बिलकुल अलग ऐक्टिंग स्टाइल चल निकली, जो 'जंगली' (1961) तक आते-आते पूरी तरह खिल उठी. इसने मुझे आइडेंटिटी दी, नाम दिया, शोहरत दी, पैसा दिया, पब्लिक का प्यार दिया.

● ***ऐक्टिंग की इस स्टाइल में आपके विचार से ऐसा क्या था जो दर्शकों को इतना ज्यादा भा गया?***

मैं समझता हूं वह चीज थी, रिद्म (लय). जैसे म्यूज़िक में रिद्म होती है, वैसे ही इस स्टाइल में भी एक रिद्म थी जो सचमुच म्यूज़िक से ही पैदा हुई थी. उसका असली क्रेडिट तो जाता है नरगिस जी को. आप पूछेंगे कैसे? तो यह कहानी सुन लीजिए.

मैं छोटा था तो पापा जी के साथ थियेटर में काम करता था. उन दिनों राज जी और नरगिस जी की फिल्में साथ बन रही थीं. फुरसत मिलने पर मैं उनकी शूटिंग में चला जाया करता था. एक रोज जब मैं शूटिंग पर पहुंचा तो देखा नरगिस जी आंखों में आंसू लिये, मुंह लटकाए बैठी हैं. मालूम हुआ, किन्हीं वजहों से 'आवारा' में उन्हें हीरोइन नहीं लिया जा रहा जबकि वे यह रोल करने को बहुत ही एंक्शस (उत्सुक) थीं.

मैंने उनसे कहा, "आप रोइए मत. यह रोल आपको जरूर मिलेगा."

उन्होंने हंस कर कहा, "मिलेगा तो तुम्हें एक पप्पी इनाम में दूंगी." बात आई-गई हो गई. मैं पापा जी के साथ थियेटर में लगा रहा, टूर करता रहा. 'आवारा' नरगिस जी को मिल गई, शूटिंग भी हो गई. जब यह बात हुई थी, मैं छोटे लड़के जैसा ही था, निकर पहनने वाला. इसके बाद नरगिस जी के साथ मुलाकात तब हुई जब मैं बचपने की दहलीज पार कर चुका था. मेरा कद एकदम बढ़ गया था और मूंछें फूट आई थीं.

वे मिलीं तो मैंने शरारत की, "मेरा इनाम!"

"वह इनाम तो अब दिया नहीं जा सकता. कुछ और मांग लो," उन्होंने हंस कर कहा.

मुझे म्यूज़िक का जबरदस्त शौक था तब. इसलिए मैंने रिकॉर्ड प्लेयर मांग लिया. उस समय के रिकॉर्ड प्लेयर की अहमियत का आज अंदाजा नहीं लगाया जा सकता, जब गाने सुन सकने के सौ तरह के साधन मौजूद हैं. उस समय वह बड़ी चीज हुआ करती थी. नरगिस जी ने मुझे गाड़ी में बिठाया और बोलीं, "चलो, जहां से लेना हो, जैसा लेना हो, ले लो."

मुझे याद है, बंबई की फीरोजशाह मेहता रोड में रिद्म हाउस जाकर, 320 रुपयों में लाल रंग का रिकॉर्ड प्लेयर ले दिया था उन्होंने मुझे. रिकॉर्ड प्लेयर हो जाने से मैं ढूंढ़-ढूंढ़ कर अच्छे-अच्छे रिकॉर्ड जमा करने लगा. अच्छे रिकॉर्ड भी तब आसानी से नहीं मिलते थे. सारी बंबई में दो-चार ही दुकानें थीं जहां रिकॉर्ड मिलते थे. जब भी फुरसत होती, मैं अपने दोस्तों को साथ लेकर घर की छत पर चला जाता था. वहां हम रिकॉर्ड्स बजाते रहते और उस म्यूज़िक पर मनमाने ढंग से नाचते रहते. हालांकि तब इसका कोई मकसद नहीं था पर बॉडी मूवमेंट्स को रिद्म के साथ जोड़ना मैंने उसी दौर में सीखा. इसलिए मैं अपनी ऐक्टिंग स्टाइल को नरगिस जी की देन मानता हूं.

"अपने आपको पूरी तरह बदल डालने के लिए जो कुछ कर सकता था, कर डाला. अब तक मूंछें रखता था, वे मुंडवा दीं. बहुत सारे सजेशन गीता ने भी दिए..."

● *आपकी वह स्टाइल हालांकि आज भी कॉपी की जा रही है लेकिन आज वह बेजान लगती है. यह फर्क क्यों है?*

इसलिए कि आज ऐक्टरों के पास अपने कोई मूवमेंट्स नहीं हैं. उनके शरीर में लचक है, उनकी फीगर अच्छी है, वे नाच भी खूब सकते हैं लेकिन तभी जब उन्हें नचाने वाला कोई डांस डायरेक्टर हो. उन्हें सब कुछ बताना, सिखाना पड़ता है. डांस डायरेक्टर जब डांस कंपोज करता है तो ऐक्टर को सिखाने के लिए उसे टुकड़ों में बांटता है—'एक दो तीन चार, दाएं बाएं, बाएं दाएं, आगे पीछे, पीछे आगे...' आज के ऐक्टरों के पास अपना कुछ नहीं है इसलिए वे उसे ज्यों का त्यों दोहराते हैं और सारा डांस पीटी (कसरत) जैसा लगता है.

हमारे जमाने में डांस डायरेक्टर सिर्फ लड़कियों को नचाने के लिए रखा जाता था. मर्दों को अपना डांस खुद सोचना पड़ता था इसलिए हर वक्त कुछ नए की तलाश रहती थी. मुझे याद नहीं कि मैंने फिल्मों में कोई भी गाना या डांस, डांस डायरेक्टर के बताए मुताबिक किया हो. और जैसा कि मैं पहले बता चुका हूं, म्यूज़िक का बेहद शौक होने की वजह से हर समय, हर काम में रिद्म को पकड़ना मेरी आदत बन गई थी. जब कोई किसी के कहने, बताने पर नाचता है और जब अपने अंदर उमंग महसूस करके खुद नाचता है तो जैसा फर्क असल जिंदगी के डांसेज में नजर आता है, वही आज स्क्रीन पर भी दिखाई दे रहा है.

● *आपने ऐक्टिंग की एक नई स्टाइल दी जिसे ऐक्टरों की कई पीढ़ियों ने अपनाया. कई फिल्में हिट हुईं. कई लोग आपको साइन कर लेने भर की वजह से प्रोड्यूसर, डायरेक्टर हो गए. कई नई हीरोइनों ने अपने कैरियर की शुरुआत आपके साथ की और हिट हो गईं. यह सब देखते हुए क्या आप खुद को कम्प्लीट ऐक्टर मानते हैं?*

बिलकुल नहीं. मेरी ऐक्टिंग में ज्यादा शेड्स हैं ही नहीं. मैंने बहुत कम तरह के रंगों को छुआ है.

● *क्यों?*

क्योंकि मुझे इसका मौका ही नहीं मिला. एक बार जहां सक्सेस मिली कि फिर बस उसी इमेज में बंधता चला गया मैं. एक ही-सी फिल्में आती थीं मेरे पास.

● *आपने खुद कोशिश की हो कभी, एक्सपेरिमेंटल फिल्म या पैरेलल सिनेमा की तरफ कभी आपका झुकाव रहा हो, ऐसा देखने-सुनने में तो नहीं आया.*

यह सच है कि मैंने भी ऐसी कोई कोशिश नहीं की क्योंकि मैं यह नहीं समझता कि मेरी ऐक्टिंग में ऐसा कोई दम था जो लोगों के सोचने का ढंग बदल डालता. न ही मुझे कभी यह लगा कि अपनी फिल्मों के जरिये मुझे कोई मुद्दा खड़ा करना है. मैं तो यह मान कर चलता रहा कि मेरा काम है लाखों करोड़ों लोगों का दिल बहलाना, फिर वह चाहे 'याहू' करके बहले, चाहे 'ब्रह्मचारी' बनकर. आज भी मैं यही सोचता हूं. इसलिए मुझे इस बात का गम नहीं है कि मैं ऐक्टिंग में बहुत सारे शेड्स नहीं दे सका या पैरेलल सिनेमा की कोई फिल्म क्यों नहीं की.

● *आप फिल्म जगत में लंबे अरसे से हैं. क्या आपको कोई आर्टिस्ट ऐसा लगा जिसे आप 'कम्प्लीट ऐक्टर' मानते हों?*

कम्प्लीट तो कोई भी नहीं है और न ही हो सकता है, फिर भी, एक ऐक्टर है जो इसके बहुत नजदीक पहुंचा है—अमिताभ बच्चन. उसने जितने शेड्स दिए हैं दूसरा कोई नहीं दे सका. आगे आने वाले टाइम में भी कोई आसानी से उसके आगे नहीं जा पाएगा.

● *आपने जब हीरो बनना छोड़ चरित्र अभिनय को अपनाया था, क्या इस बात का डर मन में आया था कि अब उम्र बढ़ चली, बुढ़ापे की शुरुआत हो रही है?*

मैंने हीरो बनना उम्र बढ़ने की वजह से नहीं छोड़ा. मैं अब 63 का हूं. मेरी उम्र के आसपास के लोग आज भी हीरो बने हुए हैं. जब मैं हीरो था, पेड़ों से लटकने में, सड़कों पर गिर-गिर कर नाचने में, उछल-कूद मचाने में इतनी बार हड्डियों में चोटें आईं, इतने फ्रैक्चर हुए कि डॉक्टर की हिदायत पर मुझे एक्सरसाइज करना बंद ही कर देना पड़ा. नतीजा यह हुआ कि मेरा वजन बढ़ने लगा. अपने मोटे बदन के साथ मैं हीरो बनता तो पब्लिक मार कर भगा देती. इसलिए मैं खुद ही कुछ समय के लिए ऐक्टिंग के फील्ड से हट गया था.

● *आपने डायरेक्टर बनने की कोशिश भी की थी, 'मनोरंजन' बनाई थी जो एक विदेशी फिल्म पर आधारित थी. डायरेक्टर बनने की*

"मैं नहीं समझता कि मेरी ऐक्टिंग में ऐसा कोई दम था जो लोगों के सोचने का ढंग बदल डालता. न ही मुझे कभी लगा कि मुझे कोई मुद्दा खड़ा करना है..."

म्यूज़िक टुडे
की प्रस्तुति

लोक संगीत

पंजाब से

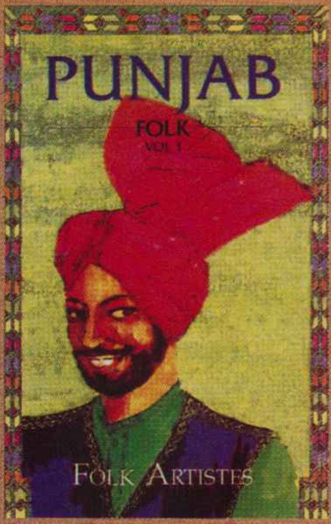

F 93033

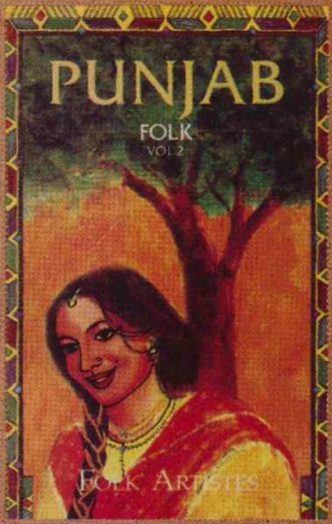

F 93034

लोक संगीत की श्रंखला में द्वितीय प्रस्तुति.
पंजाब के गांवों-खेतों में गूँजने वाले लोकगीत-भंगड़ा, प्रेमगीत
और लोककथाओं पर आधारित गीतों वाले दो कैसेट.
जाने माने लोक कलाकार - पूरन चंद वडाली, नरिन्दर बीबा, सतवंत कौर, दलजिंदर कौर,
शरीफ़ इदू, ग़मदूर अमन, जसविंदर लाम्बा और परमजीत सिद्धू आदि के स्वर में.

- एक एक घंटे वाले दो कैसेट
- डाक ऑर्डर द्वारा उपलब्ध. प्रति कैसेट कीमत: 55 रु. (सभी करों सहित)
- ऑर्डर मिलने के बाद कैसेट, 4-6 हफ्ते में रजिस्टर्ड पोस्ट / कूरियर से भेजे जाएँगे
- पैकिंग एवं डिलीवरी आदि के लिए अतिरिक्त 15 रु. भेजें
- चैक / डिमांड ड्राफ्ट 'म्यूज़िक टुडे' को देय हों
- मुफ्त कैटेलॉग के लिए लिखें
- कृप्या संपर्क करें: MUSIC TODAY, P.O. BOX-29, NEW DELHI-110001
- कैसेट के नं॰ सहित अपना ऑर्डर शुल्क तथा अपने नाम और पते के साथ भेजें
- या अपने पास के कैसेट विक्रेता से संपर्क करें।

MUSIC TODAY

For the finest in music

Satish Sud Graphics

शुरुआत आपको एक नकल बनाने से क्यों करनी पड़ी?

मैं आज भी उसे कॉपी नहीं कहता. इंग्लिश फिल्म बनी थी ड्रामे पर से. यह ड्रामा मैंने और गीता ने विदेश में देखा था. ड्रामा देखते ही गीता ने कहा था, ''यह रोल आप बहुत बढ़िया कर सकते हैं.'' तभी से हमने फिल्म बनाने की बात सोची हुई थी. बाद में अंग्रेजी फिल्म भी आ गई. दोनों का बेस एक ही था, इसलिए कुछ लोगों को वह नकल लगी होगी. हमने यह दावा भी नहीं किया था कि हम कोई बड़ी ओरिजिनल चीज देने जा रहे हैं. हमने साफ लिखा था कि फिल्म इस नाटक पर बेस की हुई है और इसीलिए हमने उसमें कोई फेरबदल भी नहीं किया वरना हर हिंदी फिल्म में किसी लड़की के वेश्या बन जाने की सौ तरह की मजबूरियां पहले ही गिना दी जाती हैं. हिंदी में सिर्फ 'मनोरंजन' ही ऐसी पहली फिल्म थी जिसमें जवान, खूबसूरत लड़की सिर्फ शौक के तौर पर वेश्या बन जाती है और वेश्या बनकर भी खुश रहती है.

● ***क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि भले ही यह बात 'फार्स' के तौर पर मान ली गई हो पर हिंदुस्तानी जनमानस को यह पची नहीं और इसीलिए फिल्म फ्लॉप हुई?***

हो सकता है यही वजह रही हो. हम लोगों को, हिंदुस्तान में आदत है कि खुले दिल से हंसने से पहले भी सौ बार सोच लेते हैं जबकि हंसना सोच-विचार के बाद नहीं होता. हंसने की बात पर हंसी 'इंस्टैंट' आती है.

● ***क्या 'मनोरंजन' की असफलता ने ही आपको डायरेक्टर बनने की रास्ते से हटा दिया?***

बिलकुल नहीं. उसकी वजह तो कुछ और ही थी.

● ***क्या आप बताना नहीं चाहते?***

न बताने जैसी भी कोई वजह नहीं है. मैं कोई कंट्रोवर्सी पैदा करना नहीं चाहता, पर डायरेक्शन की तरफ से मेरा मन खट्टा किया राजेश खन्ना ने. 'मनोरंजन' भले ही चली नहीं पर उसे बनाने में मुझे मजा आया था. लगता था कि हां, कुछ क्रिएट कर रहे हैं. इसीलिए उसके बाद मैंने फिल्म डायरेक्ट करनी शुरू की, 'बंडलबाज.' शुरू में तो काका (राजेश खन्ना) ठीक था लेकिन धीरे-धीरे लेट आने लगा. फिर तो हालत यह हो गई कि 9 बजे सुबह की शिफ्ट में वह शाम को चार बजे पहुंचता था जबकि शिफ्ट 6 बजे खत्म हो जाती है. सारा-सारा दिन उसके इंतजार में बैठे-बैठे निकल जाता था. ऐसी हालत में फिल्म जैसी बननी थी वैसी ही रद्दी बनी और चली नहीं. डायरेक्शन में क्रिएशन का मजा आने की जगह इरीटेशन (खीझ) और टेंशन (तनाव) मिलने की वजह से मेरा मन उचट गया. अगर राजेश खन्ना जैसा सीनियर ऐक्टर और स्टार एक सीनियर ऐक्टर और स्टार को इतना परेशान कर सकता है, तो कोई भी कर सकता है, यही सोचकर मैंने डायरेक्शन छोड़ दिया.

● ***राजेश खन्ना ने जो कुछ किया, उसके पीछे कोई डिफरेंसेज, कोई मनमुटाव रहा हो शायद?***

ऐसा कुछ नहीं था वरना मैं उसे लेता क्यों? काका उन दिनों अपनी पॉपुलैरिटी की चोटी पर था. सक्सेस कई बार आदमी को सही ढंग से सोचने नहीं देती. बड़ी बात है सक्सेस को पचा पाना.

● ***अपने समय में आप भी तो सुपर स्टार थे. क्या आपने कभी प्रोड्यूसरों को परेशान नहीं किया?***

जानते-बूझते तो कभी नहीं. कभी अनजाने में, अनअवॉइडेबल सर्कमस्टांसेज (बेहद मजबूरी) में मुझसे ऐसा कुछ हो गया हो जिसने किसी को हर्ट (आहत) किया हो, वह बात दूसरी है.

● ***इतने लंबे समय से आप फिल्म अभिनय के क्षेत्र में हैं, आज भी भूमिकाएं कर ही रहे हैं. फिल्म अभिनय में ऐसा क्या है जो इतने लंबे समय तक आपको बांधे रहा और जो दूसरे किसी प्रोफेशन के मुकाबले इसे कुछ अलग ठहराता है?***

मुझे इस काम में सबसे दिलचस्प चीज लगती है हर रोज दो तरह की जिंदगी जीना. ऐक्टर जब सुबह उठता है, एक नॉर्मल आदमी होता है. बीवी बच्चों के साथ हंसता-बोलता है, गृहस्थी की फिक्र करता है. लेकिन स्टूडियो पहुंचकर जहां उसने एक बार मुंह पर मेकअप लगाया नहीं कि वह आदमी ही बदल जाता है, कैरेक्टर में तब्दील हो जाता है. उसके हाव-भाव बदल जाते हैं और वह बजाय अपने मन की बात कहने के, दूसरों की लिखी लाइनें बोलने लगता है. उसका अपना, कुछ भी अपना नहीं रह जाता.

''मुझसे पहले पापा जी को इस बात का एहसास हो गया था कि मुझमें ऐक्टिंग के जर्म्स हैं. 13 साल की उम्र में ही उन्होंने अपने थियेटर में मुझे रोल दिया था...''

फिर शूटिंग खत्म होती है, पैकअप हो जाता है. वह मेकअप उतार देता है और फिर नॉर्मल होने की कोशिश शुरू कर देता है. नॉर्मल होने की कोशिश से मेरा मतलब यह है कि जिस तरह ऐक्टर का कैरेक्टर में उतरना मुश्किल होता है ठीक उसी तरह कैरेक्टर में से बाहर निकल कर फिर से नॉर्मल हो जाना भी उतना ही डिफिकल्ट होता है. जो जिंदगी उसने दिन भर जी है, उसे स्विच ऑफ कर देने की तरह अपने आप से तुरंत अलग नहीं किया जा सकता.

इसके साथ-साथ चलती है इमेज. फिल्म आर्टिस्ट की एक स्क्रीन इमेज अलग होती है. लोग उसे छूकर देखना चाहते हैं, उससे बात करना चाहते हैं, लड़के या लड़कियां उस पर जान निछावर करने को तैयार रहते हैं, उसे सातवें आसमान पर चढ़ाए रहते हैं. वह भी इन सब का आदी हो जाता है लेकिन घर में मां-बाप, भाई-बहन, बीवी-बच्चों के साथ तो यह इमेज नहीं चल सकती. उनके लिए तो वह फिर वही रोज का नॉर्मल बेटा या हस्बेंड या भाई है.

इस तरह, ऐक्ट्रेस या ऐक्टर को रोज दो-तीन जिंदगियां जीनी

पड़ती हैं. यह थ्रिल भला किसी और काम में कहां मुमकिन है?

● ***आज आप काम किसलिए कर रहे हैं? इसी थ्रिल के लिए, पैसे के लिए, नाम के लिए?***

नाम और पैसे का जहां तक सवाल है, ऊपरवाले की मेहरबानी से बहुत मिला है मुझे. आज काम की एक खास वजह रोटेशन में रहना, सबसे मिलते-जुलते रहने का एक बहाना भी है वरना घर ही में बंद रह जाऊं मैं.

● ***जब शूटिंग नहीं होती, तब क्या करना पसंद करते हैं? कोई हॉबी, कोई टाइमपास?***

ताश खेलने जैसे सौ तरीके हैं टाइमपास करने के लेकिन उनमें मेरा कोई इंटरेस्ट नहीं है. मेरे इंटरेस्ट हैं कंप्यूटर्स. आप देख रहे हैं इस कमरे में कितनी तरह के गैजेट्स लगे हैं. इन्हें देखकर, इस कमरे को देखकर यह लग सकता है कि कोई बहुत बड़ा बिजनेस यहां से कंट्रोल हो रहा है. ऐसा कुछ नहीं. मेरा कोई बिजनेस नहीं. मैंने अपने, अपनी फेमिली के सारे फोटोग्राफ्स कंप्यूटर में डाल दिए हैं. जरूरी कागजात भी इसी में हैं. फेमिली के साथ बाहर जाने पर बच्चों की फोटो न खींच कर फिल्म ही बना डालता हूं. ऐसी कई फिल्में भी पड़ी हैं. इन्हीं सब चीजों को देखने, सजाने, संभालने में पता ही नहीं चलता कि दिन कब, कहां निकल गया. कंप्यूटर तो खुद अपने आप में एक जबरदस्त नशा है.

"फिल्म 'जंगली' तक आते-आते मेरी स्टाइल पूरी तरह खिल उठी. इसने मुझे आइडेंटिटी दी, शोहरत दी, पैसा दिया, पब्लिक का प्यार दिया..."

● ***इसके अलावा और भी कोई नशा?***

नशा? हां, जरूर है. अपने ग्रैंड चिल्ड्रन के साथ खेलने से बड़ा कोई दूसरा नशा नहीं आज की मेरी जिंदगी में. और अगर आपका इशारा किसी और तरफ है, और मैं समझता हूं कि है, तो मैं बता दूं, कंप्यूटर्स के शौक और इनकी संगत की वजह से सिगरेट छूट गई. शराब पापा जी के जाने के साथ ही छूट गई थी.

● ***शराब तो आपको लत की तरह लग गई बताई जाती थी.***

नहीं, लत मुझे कभी किसी चीज की नहीं पड़ी, सिवा काम में सुधार के. शराब मुझ पर हावी नहीं हो सकी, पापा जी की सीख की वजह से. वे खुद कभी दो पेग से ज्यादा नहीं पीते थे. हालांकि उन्होंने हमारे ऊपर यह बंदिश कभी नहीं लगाई कि कितनी पियो, कितनी नहीं, पियो या न पियो लेकिन उनका कहना था कि सिगरेट शराब जो भी पीनी हो, मेरे सामने पियो, मुझसे छिपाकर नहीं.

वे ऐसा क्यों कहते थे, इसकी भी एक कहानी है. राज जी तब अलग रहने लगे थे. उनका बर्थडे था. पापा जी ने कहा, "चल, जाकर उसे बधाई दे आएं."

जब हम राज जी के घर पहुंचे, वहां पार्टी चल रही थी. राज जी के ग्रुप के सभी लोग वहां मौजूद थे. ड्रिंक्स का दौर जोर पर था. राज जी हालांकि इतने नामी हो चुके थे पर इतनी हिम्मत उनमें नहीं आई थी कि पापा जी के सामने सिगरेट या शराब पी सकें. यह हिम्मत उन्हें जिंदगी में कभी भी नहीं आई. अब यहां पार्टी का मूड भी था और सामने पापा जी भी थे. राज जी पिएं तो कैसे? राज जी पापा जी के पास से थोड़ी-थोड़ी देर में उठकर अंदर, दूसरे कमरे में जाएं और दो सिप मार कर फिर आ बैठें. दो-चार बार यही हुआ तो पापा जी सब समझ गए. उन्होंने कहा, "मुझे किसी काम से जल्दी लौटना है. तुम लोग इंजॉय करो," और वे चले गए.

अगले दिन, जब मैं उनके साथ जा रहा था, पापा जी ने कहा, "तुम लोग अब बड़े हो गए हो. इसलिए सिगरेट-शराब जो पीनी हो, मेरे सामने पी सकते हो..." वे मुझे कुछ परेशान-से लगे. उन्होंने कहा, "अगर मुझसे छिप कर पियोगे तो वही होगा जो कल हुआ. राज को बार-बार मेरे सामने से उठकर जाना पड़ा. अगर सामने पीता तो कम से कम सारे टाइम मेरी नजरों के सामने रहता. मैं उसे देखता तो रह सकता था. मेरा यह सुख यूं छिन तो न जाता..." वे बहुत इमोशनल हो गए थे. उसी बातचीत के दौर में उन्होंने मुझसे वादा कराया कि मैं उनसे छिपा कर नहीं, सामने बैठ कर पियूंगा. तुरंत वादा कर देने की हिम्मत नहीं हुई. ऐसा कैसे कर पाऊंगा मैं? पर मैं उनके इमोशंस को भी समझ रहा था. शराब की खातिर हम उनकी आंखों से ओझल रहें, यह मंजूर नहीं था उन्हें. मैंने कहा, "आज तो ऐसा नहीं हो पाएगा मुझसे, पर हां, शादी के बाद से मैं जरूर आपके साथ ही पिया करूंगा."

यही किया मैंने. सन् 55 में जिस दिन गीता से शादी की, फेमिली का कोई भी मेंबर बंबई में नहीं था. राज जी शूटिंग पर आउटडोर गए हुए थे और पापा जी का थियेटर भोपाल में शो कर रहा था. गीता को लेकर मैं सीधा वहीं गया. हमने पापा जी से आशीर्वाद लिया. उस रात ड्रामे में मैंने पार्ट भी किया और फिर जब सेलिब्रेट किया तो साथ बैठकर ड्रिंक किया. उसके बाद मैं उनके सामने पीने लगा और यह शायद इसी बात का असर था कि मैं शराब को कंट्रोल में रख सका.

● ***गीता जी की वह क्या विशेषता थी जिससे प्रभावित होकर आपने तुरत-फुरत शादी कर लेने का फैसला कर डाला?***

मैं कोई एक बात तो बता नहीं सकता क्योंकि यह फैसला किसी एक बात की वजह से तो था नहीं. यह तो इंसान की टोटल पर्सनैलिटी होती है. उसकी वार्म्थ को फील तो किया जा सकता है, वर्ड्स में एक्सप्रेस नहीं किया जा सकता. फिर मैं वर्ड्स का कारीगर भी नहीं हूं जो पोएटिक लैंग्वेज में कोई कशीदाकारी कर सकूं. उसके टोटल असर की

BAKELITE HYLAM

खूबसूरत घर की पहचान है उसकी साज-सज्जा. और उसके लिए चाहिए हेरिटेज सरफेस टेक्सचर. टिकाऊ साज-सज्जा के लिए हेरिटेज की दुनिया में कदम रखें.

DISCOVER DURABLE DECOR

- जलप्रतिरोधी-हर मौसम में चलती जाए.
- रंग-बिरंगी सज्जा के लिए भी एक कोट पर्याप्त
- न फीका पड़े, न फफूंद लगे.
- किसी भी आकार में ढाल लें, फौरन
- 118 रंगों की विशाल शृंखला.

घर के बाहर-भीतर चार चांद लगाइए.

फ्लेक्स, ग्रेन्यूल्स और ग्रेनाइट फिनिश से. मेटालिक्स, फाइन फ्लेक्स और फाइन ग्रेन्यूल्स है आंतरिक सज्जा के लिए.

HERITAGE
SURFACE TEXTURES

Corp. Off: BAKELITE HYLAM LTD., Surface Textures Divisions, 3rd. Floor, C-Block, Surya Towers, S.P. Road, Secunderabad-500 003, INDIA. Ph: 040-840881, Tlx: 0425-6671, Fax: 040-840890, **Regional Offices**: Ph Nos: New Delhi : 4623393, Bombay : 4952251, Pune : 451702 Dealer's Ph. Nos: **DELHI**: Vikas Effects (P) Ltd.; 5789234 M.D. Interiors, 536823 Texaco Interiors, 2294406 Newtex Enterprises, 5579196 Pearl House, 655574 National Business Consultants, 6842868 Trend setters, 3282147 Sonam enterprises, 5582712 Multiply, 4625395 Kwalitex, 2240333 Jain Paints and Sanitary Stores, 7278792. **UTTAR PRADESH**: **Lucknow:** Sharda Plywioods, 237204 **Kanpur:** S.G. Marketing, 312052 **Dehradun**: Dehra Sanitary Stores, 624843 **Ghaziabad**: POP Decor, 720471 **Varanasi**: Woodco, 311424 **Jhansi**: Nav Bharat Enterprises, 443146 **Agra**: Nav Bharat Enterprises, 364075. **MADHYA PRADESH**: **Bhopal**: Home decor, 551656 **Gwalior**: N.K. Enterprises, 322024 **Indore**: Kamakhiya, 490096. **HARYANA**: **Karnal**: Gagandeep Associates, 20891 **Faridabad**: Shreyans Mktg. Co., 8-283898 **PUNJAB**: **Chandigarh**: Associated Colours and Chemicals, 43763 Bhawani Plywoods Pvt. Ltd., 43139 **Ludhiana**: Sood Paints and Bldg. Materials, 20975 (PP) **Amritsar**: Interiors and Exteriors, 210787 **Jalandhar**: Golden Enterprises, 56749. **BIHAR**: **Patna**: Finesse Enterprises, 236273 Home Decor, 657487 **Dhanbad**: Capricorn Association, 61607 **Jamshedpur**: Plywood Agencies, 28477 **Ranchi**: Kraft, 314859.

Mudra : BK : 94237

बात करूं तो यही कह सकता हूं कि अंधेरे को उजाले में बदल डालने वाला ग्लो था उसके अंदर. नाउम्मीदी का तो जैसे नाम ही नहीं सुना था उसने. इसलिए हर हाल में खुश रहना और सबको खुश रखना आता था उसे.

हम दोनों जब नजदीक आए, वह स्टार थी और मैं एक तरह से स्ट्रगलर. मेरी कहीं कोई जगह नहीं थी. कभी होगी, इसकी भी कोई साफ सूरत नहीं थी. लेकिन उसे इससे कुछ लेना-देना नहीं था. शादी की बात तो तब दूर-दूर तक कहीं नहीं थी जब उसने मेरे फ्रस्ट्रेशंस, मेरे बिखराव को एक तरफ समेट कर मुझे यह कॉन्फिडेंस दिया कि मैं जरूर आगे जाऊंगा. वह मेरा खराब वक्त था. मुझे लगातार सहारे की जरूरत थी और गीता ने मेरे कुछ न होने के बावजूद हमेशा के लिए मेरा सहारा बन जाने से इनकार नहीं किया. हमारी शादी के साल भर के अंदर मुझे 'तुम सा नहीं देखा' मिल गई जिसकी स्टाइल शेप करने में गीता का बड़ा हाथ था. उसके बाद से मुझे पीछे मुड़कर देखना नहीं पड़ा.

कहते हैं न कि अच्छे लोगों की जरूरत भगवान को भी रहती है इसीलिए वह उन्हें जल्दी बुला लेता है. गीता क्या गई, मेरे पांवों के नीचे से जमीन निकल गई. जो बिखराव सक्सेस मिलने के पहले था वही अब, सक्सेसफुल होने के बाद लौट आया. मुझे लगने लगा कि मेरी जिंदगी बेमकसद होकर रह गई है. मैं फिल्में क्यों कर रहा हूं? मैं क्यों जी रहा हूं? उस दौर में शायद मैंने कुछ ऐसी हरकतें भी की हों जो नहीं करनी चाहिए थीं पर तब मैं आपे में नहीं था. तब शायद शराब भी ज्यादा पी होगी. हो सकता था कि मैं इसी सब में डूबकर रह जाता. मैंने अपनी जिंदगी बरबाद कर ली होती.

मेरे परिवार वाले यह सब देख रहे थे. फिर शादी करके घर फिर से बसा लेने की उनकी बातें मैं सुनता ही नहीं था. मैं यह बात समझ ही नहीं पाता था कि फिर से शादी मैं करूंगा कैसे? लेकिन उन्होंने मुझे समझा लेने की, राजी कर लेने की आस नहीं छोड़ी. मैं परिवार में सभी का कर्जदार हूं कि उन्होंने मुझे सेल्फ डिस्ट्रक्शन से बचा लिया.

● ***गीता बाली जी के इतने विराट व्यक्तित्व के बाद नीला जी से विवाह और उनके योगदान को किस तरह आंकते हैं आप?***

गीता से शादी के पहले मैं बिखरा हुआ था तो नीला से शादी के पहले तो जैसे टूटा, हारा और कन्फ्यूज्ड था. नीला ने आकर सब कुछ को दोनों बांहों में भरकर प्यार से इस तरह सहेजना संवारना शुरू किया कि वह फॉग (कोहरा) जिसमें मैं जी रहा था हटने लगा. हर चीज को उसने बारीकी से समझकर नए रास्ते खोले तो मेरी लाइफ की जैसे फिर नई शुरुआत हो गई.

● ***दूसरी शादी के साथ एक डर बराबर जुड़ा रहता है कि पहली पत्नी के बच्चों को दूसरी पत्नी से मां का प्यार क्या सचमुच मिल पाएगा? कहीं विवाह क्लेश का कारण तो नहीं बन जाएगा? क्या ऐसी शंका आपके मन में आई कभी?***

ऐसी कोई भी बात मेरे मन में कभी भी इसलिए नहीं आई कि नीला को मेरे परिवार वालों ने चुना था. वे लोग हर बात सोच-समझकर ही आगे बढ़े थे. नीला नामी खानदान से है. उनके यहां की वैल्यूज में छोटेपन के खयालात को कभी जगह नहीं दी गई. उन लोगों से हमारी कोई बात छिपी भी नहीं थी. यह मैच्योर लोगों के बीच बना रिलेशन था इसलिए इसमें डाउट्स के लिए जगह थी ही नहीं.

● ***क्या आप और आपके बच्चे गीता जी को अभी भी उसी शिद्दत से याद करते हैं?***

आप अगर यह पूछना चाहते हैं कि नीला ने गीता को भूल जाने की बातें कही हों या वैसी कोई कोशिश की हो तो जवाब है— नहीं. नीला से शादी के वक्त मेरे बच्चे छोटे-छोटे थे. उन्हें उसी ने पाला है इसलिए वे उसे ही अपनी मां समझते हैं. ऐसे में उनके दिल से गीता की याद एकदम निकाल देना बड़ा आसान था. लेकिन नीला ने उन्हें एक बात बार-बार याद दिलाई है— "मैं तुम्हारी मां जरूर हूं पर असली मां तो तुम्हारी गीता जी ही हैं, यह कभी मत भूलना." नीला की इसी शिक्षा का यह असर है कि बावजूद इसके कि उसने ही उन्हें मां का प्यार देकर पाला है और वे उसे मां ही मानते हैं, इस घर में मां के नाम की पूजा होती है तो गीता की.

● ***आपके बेटे आदित्य फिल्मों में नहीं आए जबकि आप मानते हैं कि कपूर खानदान ऐक्टरों का खानदान है. क्या आपको इस बात का अफसोस है?***

ये सब नसीब की बातें हैं, आदमी के हाथ की नहीं. कैरियर तो उसने भी वैसे ही शुरू किया था जैसे कपूर खानदान के हर ऐक्टर ने किया है—डायरेक्शन में असिस्टेंट होकर. तरक्की भी अच्छी की थी उसने, राज जी के फर्स्ट असिस्टेंट की पोजीशन तक पहुंच गया था लेकिन फिर उसका मन उचट गया फिल्मों से. वह मार्केटिंग करता है और खुश है. उसकी खुशी में ही मेरी खुशी है.

मेरी बेटी का हाथ मेरे पुराने दोस्त मनमोहन देसाई ने अपने बेटे केतन के लिए मांग लिया था. मैंने खुशी से मंजूर कर लिया. अब बेटी के भी दो बच्चे हैं, बेटे के भी. बेटा मेरे साथ ही रहता है और जैसा मैं बता चुका हूं, बच्चों के बच्चों के साथ खेलने से बड़ा दूसरा कोई सुख नहीं.

● ***आज आप रुद्राक्ष पहनते हैं, बड़े-बड़े मनकों वाली यह माला हमेशा आपके गले में दिखाई देती है. रोली चंदन का टीका लगाते हैं, आपकी 'याहू' इमेज से इसका मेल बिठा पाना मुश्किल पड़ता है जरा. इस सबके पीछे क्या भावना है?***

वही जो भक्त की भगवान से होती है.

● ***आप भगवान को मानते हैं?***

जवानी के दिनों में नहीं मानता था. जब मेरी शादी नीला से हो गई, उसके बाद मेरे ससुराल वालों ने मुझे एक बाबा से मिलवाया. उनसे मिलने के बाद मेरा सारा सोच ही बदल गया. उन्हें मैंने गुरु बना लिया

"गीता से शादी के पहले मैं बिखरा हुआ था तो नीला से शादी के पहले जैसे टूटा, हारा और कन्फ्यूज्ड था. नीला ने आकर ऐसे सहेजना शुरू किया कि वह कोहरा हटने लगा..."

या यूं कह लीजिए कि मैं उनका चेला हो गया. उन्हें हैड़ाखान के बाबा कहा जाता था. उनका आश्रम नैनीताल-हल्द्वानी के आसपास था. तभी से मैं भगवान को भी मानने लगा, पूजा-पाठ करने लगा.

● ***हैड़ाखान के बाबा में ऐसा क्या था जिसने आपको इतना प्रभावित किया? यह अंधविश्वास भी तो कहा जा सकता है.***

उन्होंने मुझे जो दिया, वह सिर्फ महसूस करने की चीज है. उनके चरणों में बैठकर आदमी दीन-दुनिया सब भूल जाता था. अब तो बाबा को गए 12 बरस बीत गए लेकिन उनकी याद हर वक्त दिल में ताजा रहती है. उन्होंने कभी कोई चमत्कार करके नहीं दिखाया. उनकी मौजूदगी ही चमत्कारी होती थी. इसलिए अंधविश्वास वाली बात का कोई मतलब नहीं. वे शिष्यों को ऐसी जगह पहुंचा देते थे जहां परम आनंद के सिवा कुछ नहीं. ए डिवाइन प्लेज़र! अंधविश्वास उन लोगों को लग सकता है जिन्हें यह फीलिंग ही न हुई हो. लेकिन यह फीलिंग भी यूं ही तो नहीं आती. इसके लिएं गुरु के चरणों में कम्प्लीट सरेंडर (संपूर्ण समर्पण) जरूरी है, एबस्यलूट फेथ (पूर्ण विश्वास) होना जरूरी है.

● ***दीन-दुनिया भूल जाने और आनंदमग्न हो जाने की यह फीलिंग आपको कब, कहां हुई?***

उसके लिए कोई टाइम-प्लेस फिक्स थोड़े ही होता है. कभी भी हो सकती है. वे बंबई आए थे. मेरे इसी घर में विराजे कुछ दिन. लौटने लगे तो मैं उन्हें छोड़ने रेलवे स्टेशन गया. वे कंपार्टमेंट में खिड़की के पास बैठे थे. बाबा लौट रहे हैं यह सोचकर ही मेरे मन में कुछ होने लगा. मैं वहीं, प्लेटफॉर्म पर, जमीन पर बैठ उन्हें ताकने लगा और भूल गया कि मैं कहां हूं! शम्मी कपूर फिल्म ऐक्टर, जमीन पर बैठा है—तमाशा देखने कई लोग जुड़ आए. मुझे कोई मतलब नहीं! मैं वैसे ही बैठा हूं. बस बाबा को देखे जा रहा हूं. कहां हूं, कैसे हूं, याद नहीं. ट्रेन धीरे-धीरे सरकने लगी है. बाबा खिड़की से देख रहे हैं. मैं खड़ा होकर ट्रेन के साथ-साथ भागने लगा हूं. प्लेटफॉर्म के तमाशबीन हंसने लगे हैं, 'अरे, अरे, वो देखो, मोटू कैसे दौड़ रहा है...' मैं सुन रहा हूं पर उसका कुछ असर मुझ पर नहीं है. ट्रेन की रफ्तार तेज हो चली है पर मैं रुक नहीं रहा हूं. बाबा नजर से दूर होते जा रहे हैं. लोग ताली पीटकर हंस रहे हैं, मैं रो रहा हूं—बाबा चले क्यों गए!

● ***गले में यह मोटे-मोटे मनकों वाली माला किसलिए पहनते हैं?***

यह मामूली माला नहीं, गुरु जी का प्रसाद है. मनके, रुद्राक्ष, मोतियां यही कुछ रहता था उनके पास. प्रसाद में कई मालाएं दीं उन्होंने जो घर में जगह-जगह टंगी हुई हैं. जिन दिनों वे यहां थे उन्होंने खुद यह माला बनाई पर यह मजबूत नहीं बनी. तब उन्होंने कारीगर बुलवा कर इसे सोने के तार में बंधवाया. मनमाफिक बन गई, तो अपने हाथों से मुझे पहना कर आशीर्वाद दिया. तब से सिर्फ रात को सोते समय उतारता हूं. दूसरे देवी-देवताओं के साथ गुरु जी विराजमान हैं मेरे पूजाघर में.

● ***हैड़ाखान के बाबा को आप दूसरे भगवानों या देवी-देवताओं के मुकाबले कौन-सी जगह देते हैं?***

उन्हें मैं क्या जगह दूंगा! वे साक्षात् शिव के अवतार थे.

● ***आज आप कपूर खानदान के मुखिया हैं. कपूर खानदान किन मौकों पर इकट्ठा होता है? आपकी राय को कितना महत्व देती है नई पीढ़ी?***

मुखिया तो कोई तब होता है जब जॉइंट फेमिली हो. अब तो सब अलग-अलग रहते हैं, सबकी अलग लाइफ स्टाइल है, सब अपने आप में बिजी हैं. ज्यादा मिलना-जुलना अब होता नहीं. वैसे भी, फेमिली में मैं नहीं, भाभी जी सबसे बड़ी हैं. उनकी राय को इंपॉर्टेंस दी जाती है.

● ***करिश्मा कपूर जिस तरह के नाच-गाने कर रही हैं, देख-सुनकर कैसा लगता है आपको?***

बहुत दुख होता है. वह जो कर रही है, सरासर गलत है. उसके बाप को चाहिए कि कान पकड़कर ठीक करे उसे. लेकिन शायद वह भी मजबूर है. फिल्मों का सारा माहौल ही बिगड़ा हुआ है. हमारे जमाने में छेड़छाड़

"मैंने भी शायद दूसरों के पांव दबा दिए हों, उन्हें मुझसे धक्का लगा हो जिसकी मैंने माफी नहीं मांगी. ऐसे लोगों का अनजान गुनहगार हूं..."

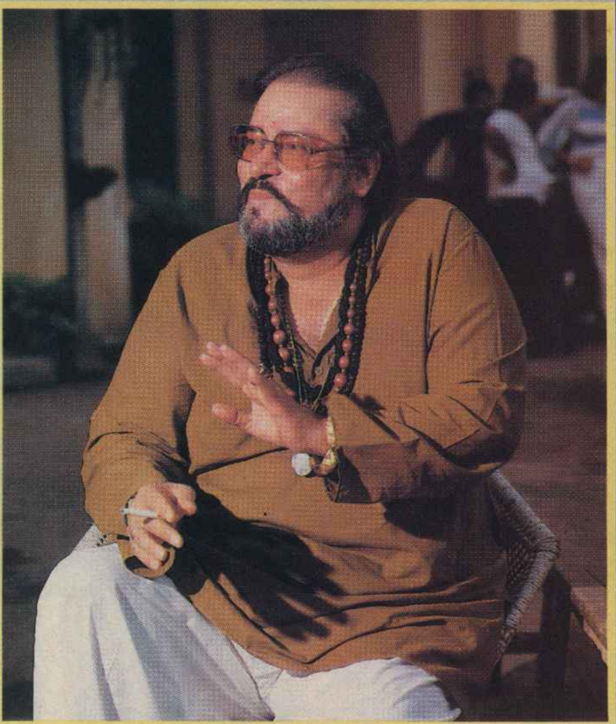

तक में शराफत थी, शरारत तक में डीसेंसी थी. आज इनडीसेंट को डांस कहा जाने लगा है. सेक्स ऐक्ट की इशारेबाजी को डांस में शामिल कर लेने से प्रोड्यूसर, डायरेक्टर, डांस डायरेक्टर, हीरो, सेंसर किसी को भी एतराज नहीं है तो करिश्मा जैसी कच्ची उम्र की लड़कियां करें भी तो क्या? फिल्में फेमिली के साथ बैठकर देखने लायक रह नहीं गईं जबकि हमारे जमाने में सारी फेमिली उन्हें इंजॉय करती थी.

● ***अपनी फिल्मों में से कोई फिल्में आपको ज्यादा पसंद होंगी?***

'तुम सा नहीं देखा,' 'दिल दे के देखो,' 'जंगली', 'प्रोफेसर', 'ब्रह्मचारी', ये कुछ फिल्में बढ़िया थीं. 'पगला कहीं का' चली नहीं, इसका अफसोस हुआ मुझे वरना यह फिल्म भी बहुत अच्छी थी. 'ब्लफ मास्टर' में कॉमेडी स्टाइल का नयापन था और 'तीसरी मंजिल' में सीरियसनेस थी.

● ***किसी तरह का और कोई सुख जिसकी तमन्ना रह गई हो जिंदगी में?***

कुछ नहीं. देने वाले ने सब कुछ ही दिया है मुझे.

● ***और कोई दुख जो मन को कचोटता हो?***

हां, वह जरूर है. जब आदमी भीड़ के बीच चलता है तो न चाहते हुए भी किसी को उसका धक्का लग जाता है, किसी का पैर दब जाता है, तब वह माफी मांग लेता है. दूसरे को बुरा नहीं लगता. लेकिन उसे यह पता ही न चले कि उसने किसी का पैर दबा दिया है, किसी को धक्का लग गया है तो वह माफी भी नहीं मांगता और इस तरह अनजाने में दोषी हो जाता है.

जिंदगी की भीड़भाड़ में चलते हुए मैंने भी शायद दूसरों के पांव दबाए हों, उन्हें मुझसे धक्का लग गया हो. जिसकी मैंने माफी नहीं मांगी. मैं शायद ऐसे कुछ लोगों का अनजान गुनहगार हूं, यह दुख जरूर दिल को जब तब भारी कर जाता है. ■

संवाद- हीनता क्यों हैं ?

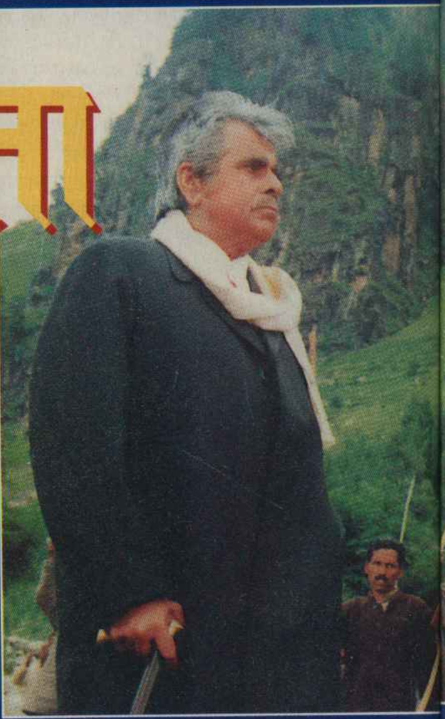

एक दौर था कि फिल्में अपने संवाद के कारण ही हिट हो जाया करती थीं, लोगों के जेहन में उनके संवाद वर्षों तक गूंजते थे. 'मुग़ले आज़म', 'मदर इंडिया', 'वक्त', 'ऊंचे लोग', ...एक पूरी शृंखला है ऐसे फिल्मों की. मगर आज फिल्मी संवादों में न वह वजन है, न वह गहराई. द्विअर्थी संवादों ने संवाद लेखन के आज के स्तर को गर्त में पहुंचा दिया है. क्यों हुई ऐसी हालत?

पंडित मुखराम शर्मा

'सितारों की दखल से गिरा स्तर'

हालात पहले जैसे हों तो कलम उठाऊं फिर से. पर अब न वो समय फिर से आएगा, न दिल कुछ लिखने को लहराएगा. जिस बात ने मेरा मन खट्टा कर दिया और जिसे मैं फिल्म लेखन के गिरते स्तर के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार मानता हूं वह है लेखन में फिल्मी सितारों की दखलंदाजी.

फिल्म लेखन का जो तरीका मैं समझता हूं कि सीधा है और जिस तरीके से मैंने जिंदगी भर काम किया वह फिल्म की थीम से शुरू होता है. लेखक और प्रोड्यूसर तथा डायरेक्टर के बीच बैठक हुई. लेखक ने कहानी संक्षेप में सुना दी. न पसंद आई तो बात खत्म. अच्छी लगी और कोई सुझाव हुआ तो बता समझाकर डायरेक्टर ने लेखक को पूरी फिल्म लिखने को छोड़ दिया. लेखक ने पूरी कल्पना कागज पर उतार दी जिसमें संवाद भी शामिल हैं. डायरेक्टर के साथ फिर मीटिंग हुई. कहीं पर कोई बात असंगत लगी तो उसे सुधार दिया. इस तरह फिल्म का एक ठोस आधार तैयार होता था जिस पर फिल्म सजावटदार मजबूत इमारत बनकर खड़ी होती थी.

धीरे-धीरे सितारों का असर बढ़ने लगा. उनके सामने डायरेक्टर का कद छोटा होने लगा. सितारे उसके काम में दखलंदाजी करने लगे और डायरेक्टर इसे मंजूर करने लगे.

इस मामले में मेरा जो नजरिया था उसे मैं एक घटना के जरिये साफ कर दूं. बी. आर. चोपड़ा के लिए बहुत-सी फिल्में लिखीं मैंने. हमेशा यही हुआ कि उन्हें पहले कहानी सुना दी और फिर पूरी फिल्म लिखकर दे दी. बीच में कभी किसी के साथ कोई डिस्कशन नहीं. लेकिन इस बार जब कहानी पक्की हो गई और पटकथा लिखने की शुरुआत होने लगी तो चोपड़ा जी ने मुझसे कहा, "थोड़ा लिख चुकें तो एक दिन चलकर यूसुफ साहब को सुना देंगे. वे ऐसा ही चाहते हैं."

मतलब यह कि दिलीप कुमार (यूसुफ खान) को लेना पक्का था. वे उस समय सबसे बड़े सितारों में से थे. उनकी बात मानना जरूरी था पर मैंने चोपड़ा जी को मना कर दिया, "मैं किसी को कुछ सुनाने नहीं जाऊंगा. मैं इसे गलत मानता हूं." नतीजा यह हुआ कि मुझे वह फिल्म छोड़नी पड़ी. मेरी कहानी नहीं ली गई पर दिलीप कुमार को लेकर चोपड़ा जी ने फिल्म बना डाली 'नया दौर' जो किसी और ने लिखी थी. 'नया दौर' जबरदस्त हिट हुई. इस खुशी में जो पार्टी हुई, उसमें मुझे भी बुलाया गया था. दिलीप भी आए थे. मैं जाकर उनसे मिला और साफ कह भी दिया कि मैंने स्क्रिप्ट पूरी होने के पहले आपको कुछ भी सुनाने से इनकार कर दिया था. दिलीप कुमार ने हंसकर कहा, "सुना देने में ऐसा कोई हर्ज तो नहीं था. सजेशन तो कोई भी दे सकता है."

मैंने कहा कि, "डायरेक्टर के साथ तय हुआ, समझिए, गाय की तस्वीर बना देने का. जब तक गाय की तस्वीर मुकम्मिल नहीं हो जाती तब तक कोई सजेशन क्या देगा? हां, जब मैं गाय का चित्र बना चुकूं और उसमें पूंछ गाय की नहीं घोड़े की जैसी बनी हो या सींग-कान गायब हों तो जरूर सजेशन दिया जा सकता है. अधूरी तस्वीर में सजेशन कैसा?"

यह बात मैंने लेखक का महत्व बताने के लिए बताई है. आज अगर कल के मुकाबले का स्तरीय लेखन देखने को नहीं मिल रहा तो उसकी वजह यही है कि लेखक लेखक नहीं, सितारों के स्टेनो होने तक को तैयार हैं. तो जब चलेगी उनकी जिन्हें भाषा तक नहीं आती, तब भला भाषा और भाव का सौंदर्य पैदा कहां से होगा?

संगीतकार अगर एक-एक सुर सोच-समझकर लगाता है और धुन में निखार पैदा करता है, कैमरामैन अगर हर लाइट और हर लेंस एक विशिष्ट प्रभाव पैदा करने के लिए लगाता है तो यह क्यों नहीं माना जाता कि लेखक ने जो संवाद लिखा है, जो शब्द उसमें रखे हैं, जो सीन

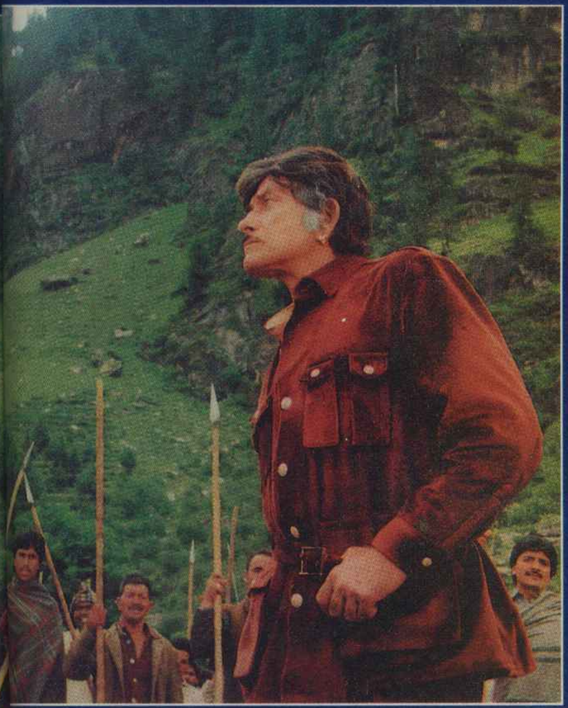

'मुगले आज़म', 'मदर इंडिया', 'वक्त' जैसी फिल्मों में संवाद का जो स्तर था उससे आज गिरावट आई है तो उसमें सितारों का भी हाथ बताया जाता है.

सोचा है उसके पीछे भी कोई वजह रही होगी. जैसे पेंटर एक स्ट्रोक गलत लगा दे तो सारी तस्वीर बिगड़ सकती है, वैसे ही लेखक की रचना में से कुछ निकाल देने या मनमाना जोड़ देने से पूरी बात बिगड़ सकती है.

मैं यह नहीं कहता कि लेखक का अड़ जाना ही सही है. वक्त जरूरत मैंने भी फेरबदल किए हैं लेकिन सही बात को स्वीकार कर लेने और हमेशा हर किसी के आगे झुक जाने में फर्क है. अगर आपको अपनी बात पर विश्वास है, उसके पीछे कोई चिंतन-मनन है तो आप किसी के कहे में क्यों आएंगे? चूंकि अकसर ऐसा नहीं ही होता और आज कहानियों के नाम पर, पटकथा या संवाद के नाम पर जोड़तोड़ करने वाले भी अपने आपको लेखक कहने लगे हैं, उन्हें लेखक मानने वाले निर्माता भी पैदा हो गए हैं तो लेखन में रीढ़ रह ही नहीं गई. मैंने बी.आर. चोपड़ा के लिए 'धूल का फूल' लिखी थी. उसमें चोपड़ा जी ने राजकुमार को हीरो लिया था. राज जी ने कहानी सुनी तो बोले, "पंडित जी, आपने तो मुझे विलेन बना दिया. यह ऐंगल बदल दीजिए."

"ऐंगल ही बदल दिया तो कहानी में बचेगा क्या?" मेरा यही सवाल था. राज जी को कहानी समझ नहीं आई और मुझे कहानी बदल देने की बात समझ नहीं आई. उन्होंने फिल्म छोड़ दी. राजेंद्र कुमार को लेकर फिल्म बनी और उसकी सफलता की कहानी जानी-पहचानी है.

एक जमाने में दक्षिण भारत में बनने वाली ज्यादातर हिंदी फिल्में मेरी ही लिखी हुई होती थीं. वासन जी मद्रास में अपनी फिल्म की शूटिंग कर रहे थे. वह भी मेरी ही लिखी हुई थी. इसमें तकनीकी वजह से एक संवाद को थोड़ा बदलने की जरूरत आ गई. मैं बंबई में था. आज की जैसी स्थितियां होतीं तो चाहे जैसे संवाद बदल लिया जाता लेकिन तब, मुझे बंबई फोन किया गया. मैं घर पर नहीं था. वहां डायलाग की वजह से शूटिंग रुकने की नौबत आ गई. तब भी यह नहीं सोचा गया कि खुद ही कुछ फेरबदल करके काम चला लें, भला किसको पता चलना है! सोचा यह गया कि संवाद में परिवर्तन कराने के लिए किसी विद्वान की राय ली जाए. संयोग से उस दिन रामानंद सागर मद्रास में ही थे. उनसे बात की गई. थोड़ा ऊपर नीचे करके डायलाग में इच्छित असर आ गया.

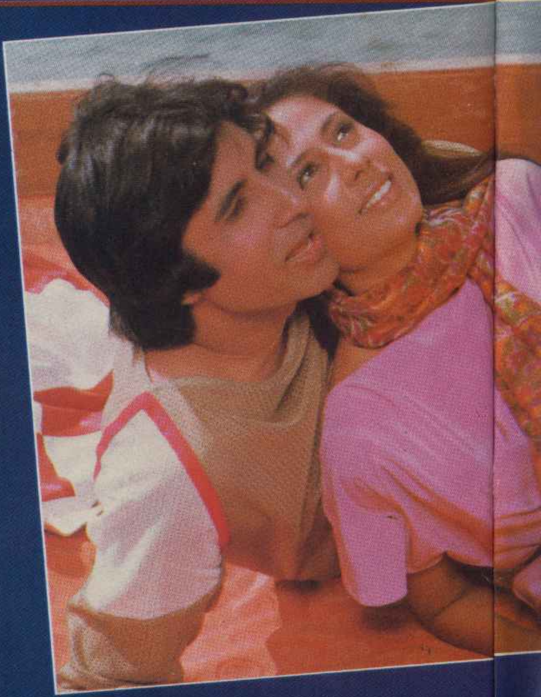

'नाम' (बाएं) और 'शक्ति' (बीच में) की सफलता ने साबित कर दिया कि आज भी दर्शक अच्छे संवाद वाली फिल्में चाहते हैं.

फिर भी, वासन जी ने रात को मुझे फोन किया, सारी स्थिति स्पष्ट की और इजाजत मांगी कि मैं संवाद का बदला हुआ रूप रखने की सहमति दे दूं. ऐसे थे हमारे समय के लोग और ऐसी थी लेखक की प्रतिष्ठा. ■

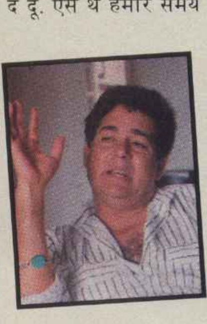

सलीम खान

'बुनियादी समझ की कमी है'

विदेशों में जो स्क्रिप्ट लिखता है, वही डायलाग भी लिखता है क्योंकि स्क्रिप्ट और डायलाग दो अलग चीज़ें हो ही नहीं सकतीं. जो आदमी सीन सोचेगा, वही सबसे बेहतर जानता है कि उसके कैरेक्टर्स क्या कहेंगे और किस अंदाज़ में कहेंगे.

हमारे यहां डायलाग राइटर की ज़रूरत इसलिए अलग से हुई कि फिल्में बनाने वाले प्रोड्यूसर्स, डायरेक्टर्स और स्क्रिप्ट राइटर्स अलग-अलग भाषाएं बोलने-लिखने वाले थे. अब भी यही बात है. कई लोग तो अंग्रेजी में लिखते हैं. ये लोग स्क्रिप्ट में डायलाग भी लिख देते हैं लेकिन चूंकि उन्हें हिंदी ठीक से नहीं आती, इसलिए उन्हें ऐसे आदमी की ज़रूरत पड़ती है जो उनकी बात को जरा सजा-संवारकर कह दे. इस हालत में लिखने वाला एक तरह से यूं समझिए कि रिफाइंड ट्रांसलेटर हो गया.

फिल्म राइटिंग के लिए बेसिक एजुकेशन बहुत ज़रूरी है. दुनिया को, कैरेक्टर्स को, वाक़यों को देखने का अपना एक नज़रिया होना बहुत ज़रूरी है. लेकिन यहां ऐसे लोगों की कमी नहीं जिनकी बेसिक ऐजुकेशन कुछ नहीं, जो कभी कॉलेज नहीं गए, जिन्होंने अपने मुल्क या दूसरे मुल्कों का कोई लिटरेचर कभी नहीं पढ़ा, जिन्हें पढ़ने से कोई दिलचस्पी कभी थी ही नहीं पर वे फिल्म राइटर हैं क्योंकि वे थोड़ा इस फिल्म से, थोड़ा उस फिल्म से, थोड़ा रीजनल फिल्मों से, थोड़ा ड्रामे से लेकर सबको जोड़ देना जानते हैं. बासी कढ़ी में उबाल लाने की कोशिश करते रहते हैं.

यह इल्जाम मेरे ऊपर भी है कि मैंने अकेले या सलीम-जावेद जोड़ी के एक पार्टनर के तौर पर भी, फॉरेन की फिल्मों और नॉवल्स में से बहुत कुछ उठाया है. मैं इस बात से जरा भी इनकार नहीं करता. लेकिन मेरे काम में और उस तरह के राइटर्स के काम में जिनका ज़िक्र मैंने अभी-अभी किया, वही फर्क है जो एक इंजीनियर के किए काम और फिटर के किए काम में होता है.

आज से 40-50 साल पहले के, लिटररी बैकग्राउंड वाले राइटर्स ने जो काम काम किया, कमाल का किया. उनके काम की अहमियत हमारे मुकाबले इसलिए और ज्यादा है कि उन्हें बड़ी लिमिटेशंस में काम करना पड़ता था. फिल्म इंडस्ट्री आज जितनी डेवलप नहीं थी. फिर भी वे जितना कह गए बहुत है. मैं उसके लिए उन्हें सलाम करता हूं.

हमसे पहले अगर कोई फिल्म राइटर 25 हजार रु. मेहनताना मांग लेता था तो लोग उसकी शकल देखने लगते थे कि कहीं पगला तो नहीं गया. हमने उन्हीं लोगों से इसका 25-50 गुना लिया और उन्होंने खुशी से दिया. हमने साबित कर दिया कि फिल्म राइटर भी स्टार हो सकता है, बल्कि स्टार मेकर हो सकता है.

इस संदर्भ में मैं कादर खान जी का नाम लेना चाहूंगा. मैं यह नहीं जानता कि वे कौन से प्रेशर्स हैं जिनकी वजह से वे कई बार डबल मीनिंग डायलाग्स की तरफ झुक जाते हैं, वरना मैं समझता हूं कि उन जैसा बढ़िया फिल्म राइटर इस समय इंडस्ट्री में दूसरा नहीं.

जिस समय हमारी यानी सलीम-जावेद जोड़ी टूटी थी, सबको लगा था कि अब ये गए. पर ऐसा हुआ नहीं क्योंकि दो बाते थीं जिन्होंने मेरा साथ दिया. पहली तो यह कि उसको अपना क्राफ्ट आता हो और दूसरी, राइटर का अपने काम में इतना इंटरेस्ट भी हो कि वह उसमें पूरी तरह डूब कर एक के ऊपर एक सीन जमाता हुआ फिल्म का महल खड़ा कर दे. मैं इन्हीं की वजह से फिल्म राइटर के तौर पर बना रहा. अपने पार्टनर के बारे में यही बातें मैं इतने इत्मीनान के साथ नहीं कह सकता.

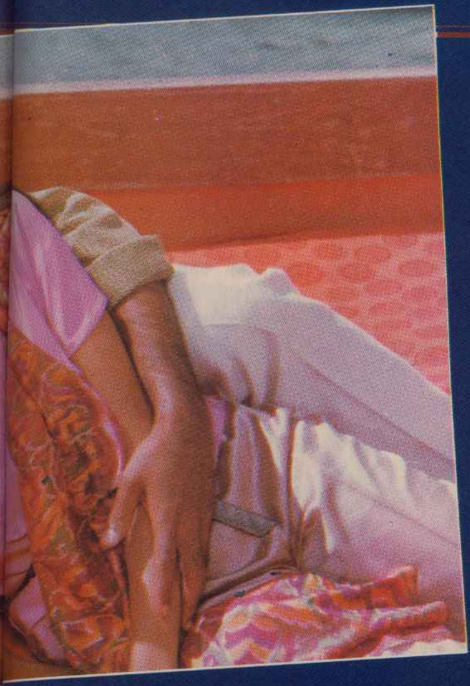

समाज में आ रहे बदलावों, उसमें व्याप्त हिंसा को 'तेज़ाब' (नीचे) के संवादों ने उजागर करने की सफल कोशिश की.

जोड़ी टूट जाने के बाद मैंने पहली फिल्म लिखी थी 'नाम', जिसकी कामयाबी ने यह साबित कर दिया कि नयापन हमेशा सराहा जाता है. 'जंज़ीर', 'दीवार', 'शोले' और 'शक्ति' कुछ उन खास फिल्मों में से हैं जिन्हें लिखकर मन को तसल्ली हुई कि हां, मैंने कुछ अच्छा काम किया.

यह सही है कि हमें आज बहुत-सी बातें वैसी नहीं लगतीं जैसी वे कल थीं. लगता है, कल आज से अच्छा था पर अगर बदलाव न हो तो ग्रोथ कैसे होगी? पहले के ज़माने में सोहराब मोदी साहब की तरह ड्रामाई डायलागबाजी बड़ी चीज़ समझी जाती थी, आज नैचुरलनेस पर ज़ोर है. कल दर्शकों की मांग पर फिल्मों से गाने गायब ही हो जाएं तब आप क्या कहेंगे? यह कि वह गीतों भरा जमाना अच्छा था या आज की यह खामोशी बेहतर है जो उनसे भी ज्यादा कुछ कह जाती है? मेरे कहने का मतलब यह कि कमी कहीं नहीं आई, सब समझ का फेर है. ■

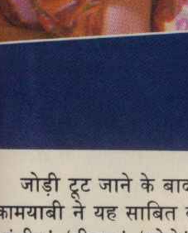

कमलेश पांडे

'आदर्श तो सामयिक होते हैं, सनातन नहीं'

मैं यह मानता हूं कि आज से 25-30 बरस पहले जैसी प्रतिभा के धनी लेखक फिल्म उद्योग में थे, आज नहीं हैं. कहानीकार, पटकथा लेखक, संवाद लेखक—अधिकतर वही थे जिनकी साहित्य जगत में भी कोई जगह थी. लेकिन यह कहना कि लेखन की दृष्टि से अब फिल्मों में कुछ रहा ही नहीं या आज के संवाद नौजवान पीढ़ी को गुमराह कर रहे हैं, जरा ज्यादती होगी. जमाने के साथ फिल्मों की रफ्तार तेज हो गई है. विषय, सामाजिक मूल्यों के मुताबिक लिखे जा रहे हैं. गिरावट है तो इन मूल्यों में वरना लेखन में तो आज की पीढ़ी के आदर्श कल के साहित्यिक दिग्गज ही हैं.

सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन भी है. अगर यह परिवर्तन हमारे गले नहीं उतरता तो कुछ भी ठीक नहीं लगता, फिल्म लेखन भी नहीं, संवाद भी नहीं. उदाहरण के लिए नारी पात्रों का चरित्र चित्रण.

ऐसी स्थिति में, जहां परंपरागत मान्यताएं तोड़ने की बात आती है, लेखक घबरा जाते हैं. उन्हें लगता है कि पब्लिक औरत के मुंह से कोई मर्दानी बात सुनना नहीं चाहती. इसलिए कुछ फिसफिसा लिखकर काम चला लिया जाता है, तो भला संवाद में वजन कहां से आएगा? मेरा अनुभव यह है कि फिल्म लेखक जब पहल करेगा, तभी नई बात कही जाएगी और स्वीकारी भी जाएगी. यह हो सकता है कि शुरू में एक झटका लगे जिसे कोई सम्हाल पाए, कोई न भी सह सके. और परंपरावादियों को लग सकता है कि आज का फिल्म लेखन स्तरीय न ही रह गया है. मगर समय के साथ विचारों में आए फर्क को ध्यान में रखना ही होगा.

कल के विषय, कल के संवाद हमें आज से ज्यादा अच्छे लग रहे हैं तो इसलिए कि हम शायद कल की मान्यताओं के मुताबिक उनका मूल्यांकन कर रहे हैं. यह बात सच है कि उस समय के आदर्श भी इसी समाज ने रचे थे लेकिन आदर्श कितने भी लुभावने क्यों न लगें, सदा ही सामयिक होते हैं.

स्तर बनने न बनने की और एक वजह है जो कल भी थी, आज भी है और कल भी रहेगी—लेखक का नजरिया और उसकी मजबूरी. फिल्म इंडस्ट्री में काम कर रहे लगभग हर लेखक के सामने रोजी-रोटी का सवाल मुंह बाये खड़ा है. इसलिए जब फिल्म लिखने का ऑफर आए तो शर्तें चाहे जो हों, मंजूर करनी पड़ती हैं. इसीलिए 90 प्रतिशत फिल्म लेखन बिलकुल कूड़ा जैसा किया जा रहा है. पहले के जमाने में भी स्थिति यह तो थी नहीं कि हर फिल्म शानदार ही लिखी गई हो. ऐसे लेखक न तब ज्यादा थे और न आज हैं जो यह कह सकें कि 'मैं फिल्म लेखन करूंगा तो अपनी शर्तों पर करूंगा वरना बेकार बैठा रहूंगा.'

फिल्म इंडस्ट्री में नाम की कीमत अच्छी मिलती है. तो जब तक नाम

चलता है काम बटोर कर दाम वसूल कर लो, यह नजरिया भी होता ही है. मैं ऐसा इसलिए नहीं करता क्योंकि मेरे लिए फिल्म लिखना इश्क करने जैसा है. ज्यादा फिल्में हो जाएंगी तो मुझे उनसे पार पाने के लिए असिस्टेंट रखने पड़ेंगे जो मेरे नाम से फिल्में लिखेंगे, घोस्ट राइटिंग करेंगे और मैं नहीं समझता कि इश्क असिस्टेंटों के जरिए किया जा सकता है.

बहुत से लेखक, जिन्हें मैं तथाकथित लेखक कहूं तो ज्यादा सही होगा, यह सोच कर डबल मीनिंग डायलाग लिखते हैं कि इससे दर्शक खुश होता है. हो सकता है कि दर्शकों का एक वर्ग होता भी हो. लेकिन मैं यह मानता हूं कि दर्शक के प्रति मेरी एक जिम्मेदारी है. मुझे अपनी बात को भारी और बोर होने से बचाना भी है. इसलिए मेरा कर्तव्य है कि थोड़ा झुकूं और थोड़ा उन्हें ऊपर उठाऊं ताकि मनोरंजन तो हो, भोंडापन न हो. समझाने की इस प्रकिया में मैं अपने व्यक्तिगत विचारों को दर्शक पर लादने से बचता हूं. मैंने देखा है, बीते कल और आज की भी कई फिल्में, लेखक के इसी आग्रह के कारण कथ्य से भटकी हुई प्रतीत होती हैं. फिल्म लेखक के तौर पर मेरी प्रतिबद्धता दर्शक के प्रति है, उसको दिखाए जा रहे विषय के प्रति है, कमलेश पांडे के नाम के व्यक्ति के प्रति नहीं. ■

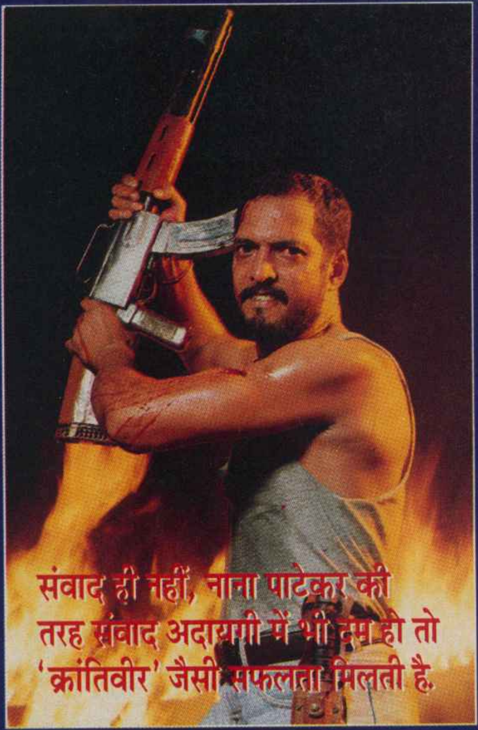

के. के. सिंह

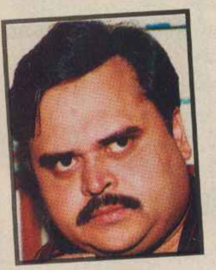

'स्तरहीन कृपापात्रों ने बेड़ा ग़र्क किया'

जिस समय को आप फिल्मों का स्वर्णकाल कह रहे हैं, उस समय स्थितियां इतनी खराब नहीं थीं. तब लेखक का अर्थ माना जाता था—विद्वान. इसलिए हर किसी को लेखक स्वीकार नहीं कर लेता था कोई. यह साबित करना पड़ता था कि आप सचमुच लेखक हैं, सिर्फ इसलिए लेखक नहीं बन गए कि ऐक्टिंग में नहीं चले.

जब से समय का मिज़ाज इस तरह बदल गया कि लेखक होने के लिए लिखना आना जरूरी नहीं रहा और डायरेक्टर का मलतब 'कैप्टन ऑफ द शिप' से बदल गया, तभी से वह सब भी शुरू हुआ जिसकी सजा आज उन्हें भी भुगतनी पड़ रही है जो बाकी कुछ हों न हों कलम के सच्चे हैं, सही अर्थों में लेखक हैं. यह दोष उन पर भी बराबर मढ़ा जा रहा है कि फिल्म लेखन में कोई दम नहीं रह गया है.

यह तय कर लेना ज्यादा जरूरी है कि किसे लेखक माना जाए, किसे नहीं? यह एक बड़ा ही टेढ़ा सवाल है क्योंकि अगर प्रोडयूसर किसी ऐक्टर या कल को किसी ऐक्ट्रेस या अपनी साली या डॉक्टर दोस्त से फिल्म का कुछ भी लेखन—कहानी, पटकथा या संवाद—करवा रहा है और डायरेक्टर वाहवाही के साथ उसे मंजूर कर रहा है तो किसी समालोचना का सवाल ही कहां उठता है?

आप मेरी ही बात कर रहे हैं तो यह सही है कि स्व. राज कपूर ने मुझे अवसर न दिया होता तो आज आप यह बातचीत करने मेरे पास क्यों आते? मैं जवाब में इतना ही कहूंगा कि कृपापात्र होकर किसी काम के लिए किसी के पास जाना एक बात है और योग्य होने की वजह से चुना जाना बिलकुल दूसरी. फिल्म लेखन को स्तरहीन कृपापात्रों ने बनाया है, लेखकों ने नहीं. फिल्म लेखन को सतही, तथ्यहीन और कथ्यहीन बनाता है मौलिकता का अभाव, जो लेखक नहीं है, जो सोच-विचार नहीं कर सकता, जो घटनाओं से विचलित नहीं होता, प्रतिक्रियाहीन रहता है.

मैं जब भी कोई फिल्म लिखने के लिए सहमति देता हूं तो पहले यह नहीं देखता कि उसका सबजेक्ट क्या हैं? सब्जेक्ट तो ढेरों हो सकते हैं, मेरे लिए हमेशा महत्वपूर्ण रहा है 'ऑब्जेक्ट', फिल्म बनाने का उद्देश्य. अगर ऑब्जेक्ट ऐसा है जिसको लेकर मैं नया कुछ कह सकूं, तभी उसे लिखने में मेरी रुचि जगती है, अन्यथा अस्वीकार ही कर देता हूं.

संवादों में दम नहीं होगा तो ऐक्टर लाख कोशिश कर ले, डिलीवरी दमदार हो ही नहीं सकेगी. ठीक इसी तरह, यह भी इतना ही सच है कि अगर ऐक्टर में दम नहीं है तो डायलाग चाहे कितना ही दमदार क्यों न हो, वांछित असर पैदा ही नहीं हो सकेगा. इसी को इस सवाल का जवाब भी समझ लीजिए कि 'क्रांतिवीर' में अगर नाना पाटेकर न होते तो भी क्या फिल्म इतनी ही प्रभावशाली साबित हो सकती थी?

कमजोर फिल्में पिछले समय में भी कम नहीं बनती थीं. यह बात सही है कि पहले के समय में आज के मुकाबले फिल्मकार के मन में अपने सामाजिक दायित्व का बोध ज्यादा था इसलिए फिल्मों का कोई मकसद साफ दिखाई देता था. आज मकसद एक ही नजर आता है जल्दी से जल्दी, ज्यादा से ज्यादा पैसा बनाना. पैसा ऐसी चीज है जिसके असर में बाकी सारे असर बौने हो जाते हैं. इसीलिए ऐक्टर का महत्व बढ़ा है. आज 'कैप्टन ऑफ द शिप' डायरेक्टर नहीं, वह हीरो या हीरोइन है जिसके नाम से फिल्म बेची जानी है.

हां, मैं स्वीकार करता हूं कि जब मैं 'क्रांतिवीर' लिख रहा था, तब नाना पाटेकर का चुनाव उस भूमिका के लिए हो चुका था और फिल्म लिखते समय वे निरंतर मेरे ध्यान में थे. ऐक्टर की रेंज अगर मालूम हो तो राइटिंग में ज्यादा असर पैदा किया जा सकता है लेकिन ऐक्टिंग की रेंज एक बात है और स्टार इमेज दूसरी. पहली का सीधा संबंध उस कैरेक्टर से है जिसे ऐक्टर निभाने जा रहा है और यह कैरेक्टर ही सदा मेरे ध्यान में रहता है. दूसरी का संबंध ऐक्टर के शारीरिक व्यक्तित्व से, उसकी अदाओं और लटकों-झटकों से है. जो लेखन अदाओं पर आधारित होता है, उसमें यह कोशिश साफ झलकती है कि संवादों को जबदरस्ती भारी-भरकम बनाया हुआ है.

हमारी सरकार के कायदे-कानून, हमारा सेंसर बोर्ड, हमारी सरकारी व्यवस्थाएं और उनकी व्याख्याएं अच्छे फिल्म लेखन के आड़े आती हैं. ये सब उसे सुधारने के लिए नहीं, नपुंसक बनाए रखने के लिए हैं. फिल्म लेखन के महत्व को इस देश में आज तक उचित आंका ही कहां गया? ■

OFFICIAL SPONSOR
WILLS
Teamwork
INDIAN CRICKET TEAM

HE USES HIS WRISTS
TO DO AWAY WITH THEM

IT'S THE SAME WITH HIM

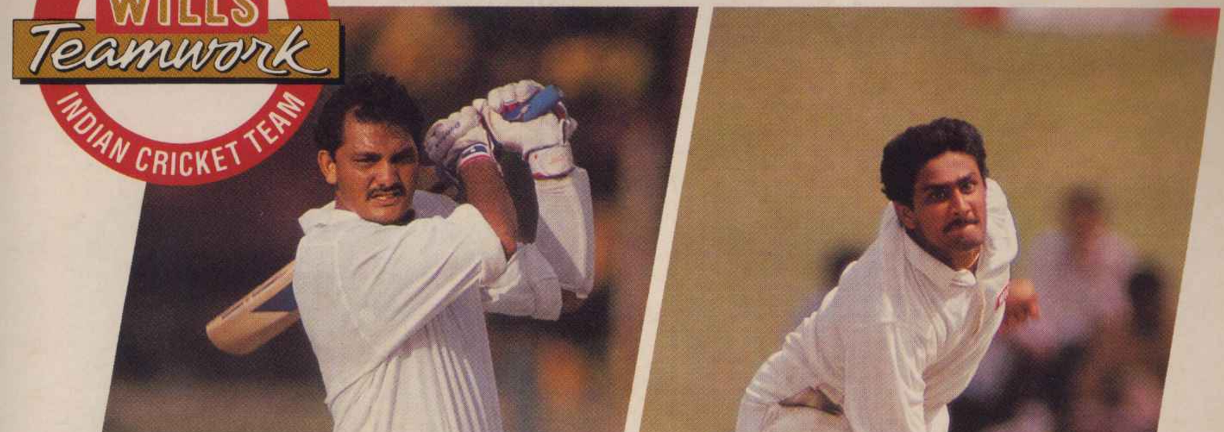

TOGETHER THEY'RE PERFECTLY MATCHED

Azhar's wristy stroke play has always made bowlers wary of him. And Kumble's wristy leg spinners have constantly baffled most of the top batsmen in the world. A perfect combination of talent and craftiness.

It is such combinations that have set the highest standard for Indian cricket. Wills, the official sponsor of the Indian cricket team, wishes them greater success.

The 'made for each other' blend • that set the filter trend •

WILLS The 'Made for each other' blend

A BRAND OWNED
BY I.T.C LTD
MADE IN INDIA

STATUTORY WARNING CIGARETTE SMOKING IS INJURIOUS TO HEALTH

HTA.3397.95

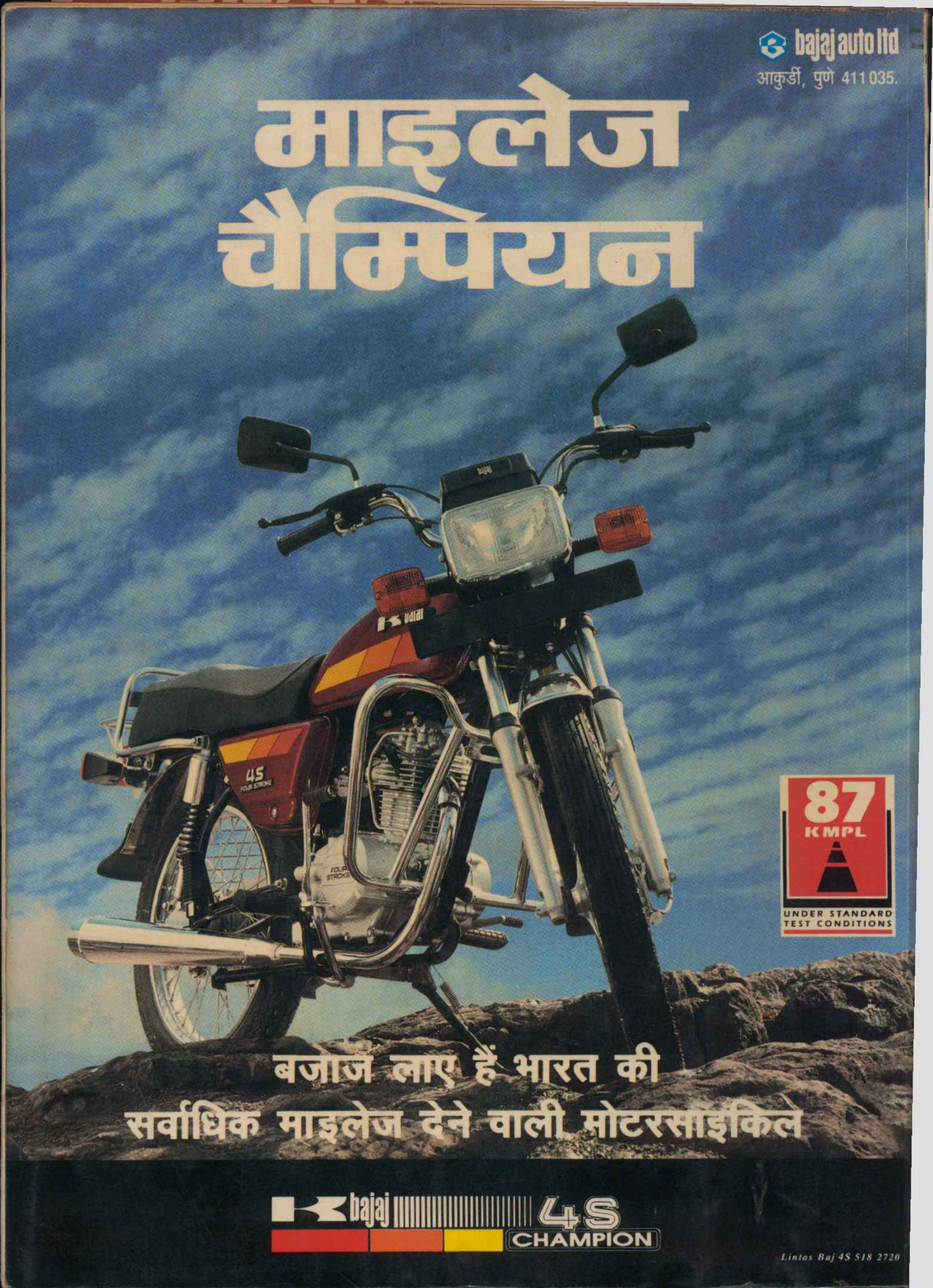
bajaj auto ltd
आकुर्डी, पुणे 411 035.
माइलेज
चैम्पियन
87
KMPL
UNDER STANDARD TEST CONDITIONS
बजाज लाए हैं भारत की
सर्वाधिक माइलेज देने वाली मोटरसाइकिल
bajaj 4S
CHAMPION
Lintas Baj 4S 518 2720